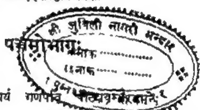
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ को सेवा में सादर

भवदीय

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः नवमपुष्पकम् :—मनसुखराय मोर

स्मृति - सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत धर्मशास्त्रसंग्रहग्रन्थः
कपिलादिदशस्मृत्यात्मकः



पञ्चमो भागः

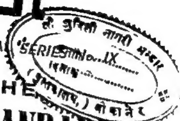
श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवान्
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ;
श्रीमन्मालिनिमंत्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता ।

...ाब्दः	प्रथम संस्करणम्	ख्रीस्ताब्दः
२०१२	५०००	१९५५

हलियाराम गुप्त
बनारस प्रिंटिंग वर्क्स
४, सिनागाग स्ट्रीट,
कलकत्ता-१





GURUMANDA SERIES No. IX

THE

MRITI SANDARBHA

Collection of Ten Dharmashastric Texts by Maharshis.

Volume V

5. CLIVE ROW.
CALCUTTA.

n Era *2.*	*First Edition* *5000.*	*Christian Era* *1955.*

अयि भो धर्मशास्त्रप्रणयिनो, विमलप्रकृतयो विद्वद्वरेण्याः सहृदयाः !

समुपस्थाप्यते भवत्पुरस्तादिदं स्मृतिसन्दर्भाख्यस्य गुरु-मण्डलग्रन्थमालाप्रकाशितस्य नवमपुष्पस्वरूपं पञ्चमं खण्डं कपिलस्मृत्यादि भारद्वाजस्मृत्यन्तं दशस्मृतीनां संग्रहात्मकम्। पूर्वभागचतुष्टयसङ्कलितचतुश्चत्वारिंशत्स्मृतिभिः सङ्कलनेन संख्यैषा चतुःपञ्चाशद्भवतीति अष्टोत्तरशतस्मृतीनां ततोऽपि समधिक-स्मृतिनामसंग्रहमाप्त्या न्यूनमेव संख्यासङ्कलनमिति प्रमोदस्य परमात्मसन्तोषस्य च विषयोऽस्माकम्।

अत्र विषये गवर्नमेण्टमैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी ट्रिप्लीकेन मद्रासतः, थियोसोफिकल सोसाइटी तत्त्वावधानस्थितस्य अड्यार पुस्तकालयतः, भाण्डारकर प्राच्यशोधसंस्थान पूनातः, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्तातो वाराणसीस्थसंस्कृत महाविद्यालयाधिकृतसरस्वतीभवनतश्च बहूनामादर्शहस्तलिखित-पुस्तकलिपीनां सङ्कलीकरणे तैस्तैः पुस्तकालयाध्यक्षैरधिकारिभिश्च बहुसाहाय्यं समाचरितम्; तदर्थं तेषामधिकाधिकमभिनन्दनं सहर्षमाभारञ्च वयं प्रकटीकुर्मो वितरामश्च तेभ्यः परः सहस्रान् धन्यवादान्।

अस्मत्प्रमादालस्यादिभिः याः सम्भवन्त्यस्त्रुटयो भाग-चतुष्टयवत्परिलक्ष्यन्ते ता अत्राऽपि विदुषां दृष्टिपथिसमाया-

स्यन्तीति तासां संशोधने पुनः पुनः सकलनिगमागमपारगाः निपुणाः धीधनाः अभ्यर्थ्यन्ते। अत्र परेषु नूतनाः त्रिपराः प्रायश्चित्तनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानसंदर्शिनो दरीदृश्यन्ते मन्यामहे यद्भवन्तः स्वकल्याणबुद्ध्या स्वाध्यायं कृत्वा जगदुद्धाराय शास्त्रप्रचाराय च दुर्लभग्रन्थप्रकाशकस्य श्रीमनसुखरायमोरश्रेष्ठिवर्यस्य समुद्योगे सुष्ठु सहयोगं विधास्यन्तीति।

श्रीकरुणावरुणालयस्यासीमयानुकम्पयाऽनायभि पत्रभागे सम्मेलनाय द्वे स्मृती लौगाक्षिमार्कण्डेयाभिधे समधिगते। अनुदिनं प्रयत्नसापेक्षस्य कार्यस्यास्य समाप्त्यै कृतचेष्टा अपि वयं नितरामसमर्था इति विशिष्टानामप्रकाशितस्मृतिग्रन्थानां सङ्कलने तत्तद्ग्रन्थाधिकारिणो महानुभावाः सततं प्रार्थ्यन्ते यदेकोऽपि शब्दःसृष्टिसंरक्षणोपायपरो यदि तेषु मिलिष्यति बहूपकारभाजो वयं सर्वेऽपि भविष्यामः। आशास्महे सर्वेऽपि विद्वांसो मोर पदवीभाजः श्रीमनसुखरायश्रेष्ठिमहोदयस्य लेखे धन्यवादप्रकाशने प्रतिपादितानां नामावशेषतां नीतानां स्मृतिग्रन्थानां पृथगथवा सम्मिलितरूपेणास्मभ्यं वितरणं विधाय कृतकृत्या-न्विधास्यन्तीति विनिविश्य विरमाम इति।

॥ श्रीः ॥

धन्यवाद प्रकाश

सत्चित् आनन्दकन्द ब्रजविहारी श्रीकृष्णचन्द्र की असीम अनुकम्पा से स्मृति-सन्दर्भ के पञ्चम भाग को कृपालु विद्वज्जन की सेवा में प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त आनन्द अनुभव हो रहा है। इस भाग में निम्नलिखित स्मृतियों के लिये जो अपेक्षित प्रतिलिपीकरण के साथ सहायता प्राप्त हुई है उन सभी अधिकारी महानुभावों का हम हृदय से धन्यवाद करते हुए आभार प्रदर्शन करते हैं।

पेलस्मृति—अड्यार पुस्तकालय, थियोसोफिकल सोसाइटी, मद्रास।

मूलस्मृति— " "

श्वामित्रस्मृति—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता " एवं गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास।

देतस्मृति— " " "

ायणस्मृति— " " "

ाडिल्यस्मृति—गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास।

स्मृति—अड्यार पुस्तकालय, थियोसोफिकल सोसाइटी, एवं भण्डारकर प्राच्यशोधसंस्थान, पूना।

सस्मृति—अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

रसस्मृति—अड्यार पुस्तकालय, थियोसोफिकल सोसाइटी, अड्यार, मद्रास।

जस्मृतिः—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

इसके साथ-साथ हमारे पूर्व चार भागों में ४४ स्मृतियाँ और ये १० स्मृतियाँ इस प्रकार ५४ स्मृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। महामहोपाध्याय डा. पी. व्ही. काणे एम. ए. डी. लिट्. एल. एल. एम. सदस्य, 'कौंसिल आव् स्टेट' नई दिल्ली ने अपने ग्रन्थ "हिस्ट्री आव् धर्मशास्त्र" में तीन लिखी हुई अप्रकाशित स्मृतियों का उल्लेख किया है।

इनके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों से संग्रह की गई सूची में मुझे जिन नामों का उल्लेख मिला उन्हें मैं अविकल अपने सम्मान्य महानुभावों की सेवा में उपस्थित करता हूँ जिससे भविष्य में इनकी गवेषणा की जाकर हमारा मार्ग प्रशस्त हो सके :—

अगस्त्य संहिता	शान्तनुस्मृति
आत्रेयधर्मशास्त्र	छागलेयस्मृति
आश्वलायनधर्मशास्त्र	सप्तर्षिस्मृति
इन्द्रदत्तस्मृति	लोमशस्मृति
उपकश्यपस्मृति	हिरण्यकेशीस्मृति
ऋष्यशृङ्गस्मृति	वैखानसस्मृति
कण्वस्मृति	पैठीनसिस्मृति
क्रतुस्मृति	सोमस्मृति
गर्गस्मृति	नारद संहिता
गार्ग्यस्मृति	काश्यपस्मृति
चन्द्रस्मृति	व्याघ्रपादस्मृति
स्कन्दस्मृति	लल्लस्मृति
कौशिकस्मृति	बैजवापस्मृति

पुलहस्मृति
पैठ्‌यसमृति
प्रह्लादस्मृति
वभ्रु स्मृति
मरीचिस्मृति
विश्वेश्वरस्मृति
विश्वेश्वरीस्मृति
शाकटायनस्मृति
शाकलस्मृति
शाट्यायनिस्मृति
सत्यव्रतस्मृति
सुमन्तुस्मृति
च्यवनस्मृति
जमदग्निस्मृति
गर्वेयस्मृति
जतुकर्णस्मृति
कापिञ्जलस्मृति

वाराही संहिता
वामदेव संहिता
शौनकस्मृति
वैश्वानर संहिता
शुनः पुच्छ संहिता
शाट्यायन संहिता
शाकलस्मृति
षण्मुखस्मृति
सनत्कुमार संहिता
सांख्यायनस्मृति
ईशान संहिता
कात्यायन स्मृति
कार्ष्णाजिनिस्मृति
गालवस्मृति
छागलेयस्मृति
जाबालस्मृति
कणादस्मृति

षष्ठ भाग में केवल दो स्मृतियां ही उपलब्ध हुई हैं ५५००, लोकोंयाली, लौगाक्षि और मार्कण्डेय। यदि समस्त धर्मशास्त्र प्रेमी इस ओर कुछ विशेष अनुसन्धान दृष्टि से कृपा करें तो हमारे प्रकाशन कार्य में शीघ्रता होकर भारतीय जनता द्वारा संसार को प्रकाशित स्मृति-संग्रह की अनुपम भेंट प्रस्तुत की जा सकती है।

स्मृति-सन्दर्भ और निरुक्त ग्रन्थों की आलोचनात्मक प्राप्ति स्वीकृति पृथक्-पृथक् व सम्मिलित रूप से भाण्डारकर

जीवन का मूल्यांकन उसमें होनेवाली छोटी-मोटी भूलों को प्रतिदिन अन्तर्निरीक्षण द्वारा और नित्य कृत्यों से ठीक बनाने से है। हमारे पूर्वजों ने आत्म-सुधार के लिये इन धर्मशास्त्रग्रन्थों को सम्पूर्ण संसार की नियमावली के रूप में प्रकाशित किया। आज की भीषण परिस्थिति में जिन महानुभावों ने शास्त्रमय जीवन से अपने शरीर द्वारा प्राणिहित का प्रण लिया है वे धन्य हैं। आशा करता हूँ कि शास्त्र मर्यादित जीवन से हम सभी अपना मार्ग प्रशस्त कर सभी का कल्याण सम्पादन करेंगे। इस प्रकाशन की विशालता और अन्य महापुराणादि के प्रकाशन में व्यापृत रहने के कारण हमारे कार्यकर्तृवृन्द के द्वारा अपूर्णता रह गई है उन्हें कृपालु पाठक महानुभाव शोधन कर लेंगे यह प्रार्थना है।

'कामये दुःखतप्तानाम्प्राणिनामार्तिनाशनम्'

श्रावणी पूर्णिमा
२०१२

विद्वन्मण्डली का अनुचर:—
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता।

श्रीगणेशाय नमः।

अथ स्मृतिसन्दर्भस्थ पञ्चमभागे सङ्कलित-स्मृतीनां नामनिर्देशः

विशेष द्र०—द्वितीयाङ्गिरसस्मृतेर्विषयवैशिष्ट्येनपृथगुपन्यासः

५५९९

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

स्मृतिसन्दर्भ पञ्चम भाग

की

विषय-सूची

कपिलस्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठ

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठ

कपिलस्मृति की विषय-सूची समाप्त।

वाधूलस्मृति के प्रधान विषय

अध्याय प्रधान विषय पृष्ठाङ्क

अध्याय प्रधान विषय पृष्ठाङ्क

अस्पृश्य के छू जाने से १३ बार जल में नहाने से शुद्धि हो। रजस्वला स्त्री को यदि ज्वर चढ़ आवे तो वह कैसे शुद्ध हो इसके उत्तर में वाधूल ने बताया कि चतुर्थ दिन दूसरी स्त्री उसे स्पर्श कर दश या बारह बार आचमन कर अपने पहलेवाले कपड़ों को छोड़कर नये कपड़े पहन ले फिर पुण्याहवाचन के साथ यथाशक्ति दान करे (३१-४८)। भूमि पर गिरा हुआ जल गंगा के समान पवित्र है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय कुआ, वापी, तड़ाग के जल शुद्ध हैं। अपनी शौच क्रिया से निवृत्त होकर स्नान करे दोनों हाथों को मिला कर जल की अञ्जलि से जल में तर्पण करे जिस तीर्थ से जल लिया जाय उसीसे जलाञ्जलि देवे (४९-५६)। पूर्व की ओर मुख करके देवतागण को, उत्तराभिमुख होकर ऋषियों को और दक्षिण की ओर मुंह करके जल में पितरों को तर्पण करे। स्नान के लिये जाते हुए मनुष्य के पीछे पितरों के साथ देवगण प्यास से व्याकुल जल के लिये लालायित होकर वायुरूप होकर जाते हैं अतः देवर्षिपितृतर्पण किये बिना वस्त्र को न निचोड़े यदि वस्त्र निचोड़ा जाता है तो वे निराश होकर चले जाते हैं। सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिये नदी, तलाब, पहाड़ी झरनों में प्रतिदिन स्नान करे (५७-६३)।

दूसरे के बनाये हुए सरोवर में स्नान करने से उस बनानेवाले के दुष्कृत (पाप) स्नानार्थी को लगते हैं अतः उसमें न नहावे (६४)। सोकर उठने से लार-पसीनों से भरा हुआ मनुष्य अशुद्ध है उसे स्नानादि से शुद्ध होनेपर ही नित्यकर्म सन्ध्योपासन देवर्षि पितृ तर्पण करना चाहिये। सूर्योदय के पूर्व प्रातःकाल का स्नान प्राजापत्य यज्ञ के समान है और आलस्यादि को नष्ट कर मनुष्य को उन्नत विचार और कार्यशील बना देता है। स्नान के समय पहले वस्त्र से शरीर को न मले न पोंछे ही इससे शरीर कुत्ते के द्वारा सूंघा हुआ हो जाता है जो फिर स्नान करने से ही शुद्ध होता है (६५-६८)।

स्नान मूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च।
स्नानाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः ॥६७॥

सम्पूर्ण क्रियायें स्नान के अन्तर्गत ही हैं। रविवार को उषा काल में स्नान करने से हजार माघ स्नान का फल और जन्म दिन के नक्षत्र में वैधृत पुण्यकाल, व्यतीपात और संक्रान्ति पर्वों में, अमावस्या को नदी में स्नान कोटि कुलों का उद्धार कर देता है। प्रातः स्नान करनेवाले को नरक के [illegible]

पड़ते। स्नान किये बिना भोजन करनेवाला मल का भोजन करता है (६६-७५)।

शिव सङ्कल्प सूक्त का पाठ, मार्जन, अघमर्षण, देवर्षि पितृ तर्पण ये स्नान के पाँच अङ्ग हैं (७६-७७)। जल के अवगाहन, जल में अपने शरीर का अभिषेक, जल को प्रणाम और जल में तीर्थों गङ्गादि नदियों का आवाहन फिर मज्जन, अघमर्षण, देवर्षि पितृतर्पण का विधान बतलाया गया है (७८-८६)। प्रातः स्नान का महत्त्व। अपने शरीर को पोंछने पर सूखे कपड़े पहनकर उत्तरीय धारण करे। वन्दन और तर्पण के समय इसे कटि प्रदेश में ही बांधे रक्खे। फिर तिलक करे। पर्वत की चोटी से, नदी के किनारे से, विशेष रूप से विष्णु क्षेत्र में मिली सिन्धु के तट पर तुलसी के मूल की मिट्टी से तिलक प्रशस्त बताया गया है (६०-१०८)।

श्यामतिलक शान्तिकर लाल वश में करनेवाला, पीला लक्ष्मी देनेवाला और सफेद मोक्षदाता बतलाया है (१०६-११०)। भगवान् पर चढ़ाये गये हरिद्रा के चूर्ण के तिलक का माहात्म्य (१११) सम्पूर्ण संसार में जो कर्महीन द्विजाति मात्र हैं उनको शुद्ध करने के लिये सन्ध्या स्वयं ब्रह्मा ने बनाई।

प्रातःकाल गायत्री का ध्यान, मध्याह्न में सावित्री

और सायंकाल गायत्री का ध्यान करना चाहिये। प्रतिग्रह, अन्नदोष, पातक और उपपातकों से गायत्री मन्त्र के जपनेवाले की गायत्री रक्षा करती है इसलिये इसका नाम गायत्री है।

> प्रतिग्रहादन्नदोषात्पातकादुपपातकात्।
> गायत्री प्रोच्यते तस्माद् गायन्तं त्रायते यतः ॥११४॥

सविता को प्रकाशित करने से इसका नाम सावित्री और संसार की प्रसवित्री वाणी रूप से होने से इसका इसका नाम सरस्वती अन्वर्थ है (जैसा नाम वैसा गुण) (११२-११६)।

आपोहिष्ठेत्यादि मार्जन मन्त्रों से भी ओङ्कार के साथ जो मार्जन किया जाता है उससे वाणी, मन और शरीर के सभी दोषों का क्षय हो जाता है (११७-१२०)। सायंकाल में अर्घ्य जल में न देवे जहां सन्ध्या की जाय वहीं जप भी हो। वेदोदित नित्यकर्मों का किसी कारण अतिक्रमण हो जाय तो एक दिन बिना अन्न खाये रहना चाहिये और १०८ गायत्री मन्त्र के जप दोनों सन्ध्या में विशेष रूप करे (१२-१२६)।

सूतक और मृतक के आशौच में भी सन्ध्या कर्म न छोड़े प्राणायाम को छोड़ कर सारे मन्त्रों को मन से

ऋषि मुख्यतया धर्मपत्नी। कोई श्रुति काल की मृत पत्नी को प्रतिनिधि रूप में रखकर नित्यकर्म क्रिया करने की गृहस्थ को आज्ञा देते हैं (१४७-४८)। होम के लिये गो घृत श्रेष्ठ पर न मिले तो माहिष घृत उसके न मिलने पर बकरी का घृत और उन सब के न मिलने पर माषाण तैल का व्यवहार करे (१४९)। समय पर आहुति देने का माहात्म्य (१५०-१५२)। वेदमार्ग को व्यर्थ में लानेवाले मनुष्य की निन्दा। छे प्रकार के वेदों को बेचनेवाले का गणन (१५३-१५८)। रविवार, शुक्रवार, मन्वादि चारों युगों में और मध्याह्न के बाद तुलसी न लावे। संक्रान्ति, दोनों पक्षों के अन्त में द्वादशी में और रात्रि तथा दिन की सन्ध्या में तुलसी चयन का निषेध है (१६०)। तीर्थ में मन, वाणी और कर्म से कैसा भी पाप न करे और दान न लेवे क्योंकि वह सब दुर्जर है अतः अक्षय्य है। ऋत (व्यवहार) अमृत सत्य कर्तव्य पालन ऋत या प्रमृत से और सत्य-अनृत से जीविका कमावे (१६१-६३)।

किसी वस्तु को बिना पूछे लेने से पाप (१६४)। मनुजी ने वनस्पति, कन्द, मूल फल, अग्निहोत्र के लिये काठ, तृण और गौओं के लिये घास ये अस्तेय बताये हैं। भिन्न-भिन्न लोगों से किसी भी रूप में कोई

इसका वर्णन (१६५-१६८)। दूसरे के लिये तिल का हवन करनेवाले दूसरे के लिये मन्त्र जप करनेवाले और अपने माता पिता की सेवा न करनेवाले को देखते ही आँख बन्द कर ले (१६९)। जो लोग निन्द्य कर्म करते हैं उनके सङ्ग से सत्पुरुष भी हीन हो जाते हैं और उनकी शुद्धि आवश्यक है (१७०-१७४)। जो आदेश, तीन या चार वेद के महाविद्वान् दें वही धर्म है और कोई हजारों व्यक्ति चाहे, कहे वह धर्म सम्मत नहीं। वेद पाठी सदा पञ्चमहायज्ञ करनेवाले और अपनी इन्द्रियों को वश में करनेवाले मनुष्य तीन लोकों को तार देते हैं (१७५-१७९)।

पतित लोगों से सम्पर्क करने से मनुष्य एक वर्ष में पतित हो जाता है (१८०)। कलियुग में सभी ब्रह्म का प्रतिपादन करेंगे परन्तु कोई भी वेद विहित कर्मों का अनुष्ठान नहीं करेगा (१८१)। मैथुन में त्याज्य दिनों की गणना—षष्ठी अष्टमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी, दोनों पर्व अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति कोई भी श्राद्ध दिन, जन्म नक्षत्र का दिन, श्रवण व्रत का समय और जो भी विशेष महत्त्वपूर्ण दिन हैं उनमें मैथुन (स्त्री गमन) निषिद्ध है (१८२-१८३)। शुभ समय में अर्थार्थी मनुष्य जिन कामों को अपने स्वार्थ के लिये

करता है उन्हें ही यदि धर्म के लिये करे तो संसार में कोई दुःखी नहीं रह सकता।

अर्थार्थी यानि कर्माणि करोति कृपणो जनः।
तान्येव यदि धर्मार्थं कुर्वन् को दुःखभाग्भवेत् ॥१८६॥

भिन्न-भिन्न वस्तुओं एवं पतितों के छू जाने से स्नान का विधान किसी वस्तु को बेचने पर स्नान का विधान आवश्यक है (१८४-१८८)।

श्रुति स्मृति के आदेश प्रभु की आज्ञा है इनको न माननेवाले को भगवद्भक्त बनने का अधिकार नहीं (१८६)। सच्चे अन्धे का लक्षण—जो श्रुति स्मृति का अध्ययन, मनन और अनुशीलन कर उनके मार्ग का अनुष्ठान नहीं करता वह अन्धा है (१६०-१६१)। पापी को धर्मशास्त्र अच्छे नहीं लगते (१६२)।

सच्चा ब्राह्मण वही है जो भूख करने से ऐसे डरता है जैसे सर्प को देखकर। सम्मान से ऐसे दूर रहता है जैसे लोग मरने से और स्त्रियों के सम्पर्क से जैसे मृतक से घृणा होती है वैसे दूर रहता है। ब्राह्मण वह है जो शान्त हो, दान्त हो, क्रोध को जीतनेवाला हो, आत्मा पर पूरा अधिकार करनेवाला हो, इन्द्रियों का निग्रह कर चुका हो। ब्राह्मण का यह शरीर उपभोग के लिये नहीं बल्कि इस शरीर से क्लेश के साथ तपस्या करते हुए

॥ वाधूलस्मृति की ...

विश्वामित्रस्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	मुख्य विषय	श्लोक
१	नित्यनैमित्तिककर्मों का [illegible]	[illegible]

[illegible] और [illegible] के [illegible] नैमित्तिक तथा काम्य कर्म [illegible] करने से [illegible] देते है (४) [illegible] [illegible] को और सूर्य को देखकर [illegible] ( ) [illegible] बीतने पर कोई कर्म करने से [illegible] किसी कारण से [illegible] जप करने से उसका प्रायश्चित्त [illegible] है। [illegible] निद्रा अथवा प्रमाद आलस्य से [illegible] से प्रायश्चित्त बतलाया गया है ([illegible])। [illegible] समय पर नित्यकर्मादि को [illegible] है [illegible] लोगों पर जय पाकर अन्त में [illegible] है (१६)।

प्रातः स्नान सन्ध्या और जप [illegible] है। जैसे समय पर वर्षा होते ही बीज बोने से अच्छी खेती होती है वैसे ही नियुक्त कर्मों को नियुक्त समय पर करने से सद्यः सिद्धि मिलती है (१७-२१)। —

अधम सन्ध्या के भेद। शुचि या अशुचि हो, नित्यकर्म को कभी न छोड़े (२२-२५)। तीनों सन्ध्या काल में या तो पूर्व की ओर या उत्तर की ओर मुँह कर नित्यकर्म करे। दक्षिण या पश्चिम की ओर मुँह करके नहीं (२६)। सन्ध्या स्नान किये बिना विद्या पढ़ना हानिकारक है, सन्ध्या काल आने पर उसे छोड़नेवाले को पाप लगता है (३०)। सोपाधि एवं अनुपाधि भेद से आचार के दो भेद—सोपाधि गुणवान् और अनुपाधि मुख्य है (३१-२६)। गायत्री मन्त्र की विशेषता—प्रातः शय्या-त्याग के बाद पृथ्वी का वन्दन भैरव की स्तुति, दक्षिण दिशा में जाकर मल-मूत्र आदि का त्याग करे (३२)। शौच का प्रकार (५३-५६)। दन्तधावन और दतुवन के लिये वनस्पतियों का परिगणन (६३)। आचमन कर स्नान करने का प्रकार (६८)। सन्ध्यादि, तर्पण का विधान (७३)।

जलस्नान का विधान मन्त्रोच्चारण पूर्वक विशेष फल-दायक है। तीनों कालों में स्नान का विशेष विधान (७८)। स्नान करनेवाले पुरुष के रूप, तेज, बल, शौच, आयु, आरोग्य, अलोलुपता, एवं तप की वृद्धि व दुःस्वप्न का नाश होता है। तर्पण की विशेषता (८७)। वस्त्र-धारण में वस्त्रों के महत्त्व का वर्णन, प्राणायाम का

प्रकार, पूरक, कुम्भक और रेचक से सम्पूर्ण शरीर के अवयवों का मल धोकर शरीर को शुद्ध होती है और अन्तःकरण बढ़ता है। [illegible] की सिद्धि, पुण्य प्राप्ति इसके बिना नहीं [illegible] (१-४)।

आचमनविधिवर्णनम् २६११

मुख्य तीन प्रकार के आचमनों का वर्णन, पौराण, स्मार्त और आगम, इनके साथ और भी अनेक आचमनों का वर्णन—मन्त्र जपने एवं क्रियाओं के आदि और अन्त में आचमन करे। आचमन के ११ नामों के साथ न्यास विधान (१-२०)।

विधिवदाचमनस्यैवफलवर्णनम् २६१२

गोकर्ण की आकृति बनाकर अंगूठे और सबसे छोटी अङ्गुली को छोड़कर अञ्जलि में जलपान कर आचमन का विधान है इसी का फल है (२१-२३)। थूकने, सोने, ओढ़ने, अश्रुपात आदि में विघ्न होने पर आचमन करे या दक्षिण कान को तीन बार स्पर्श करे। भोजन के आदि में और अन्त में नित्य आचमन करे। मानसिक आचमन में भी केशवाय नमः, माधवाय नमः और गोविन्दाय नमः मन में बोलकर चित्त शुद्धि करे (२४-३२)।

(४-५)। पहले कुम्भक फिर पूरक और फिर रेचक, इस क्रम से प्राणायाम करना इष्ट है। सन्ध्या होम काल और महायज्ञ में कुम्भक से आरम्भ कर प्राणायाम करे। प्राणायाम में करने योगाध्यान का वर्णन (६-१०)। दश प्रणव एवं गायत्री मन्त्र के साथ इडा और पिङ्गला को छोड़ सुषुम्ना नाड़ी से कुम्भक करे साथ में मन्त्र का स्मरण बराबर होता रहे (११)। रेचक और पूरक बिना प्रयास के होते हैं। कुम्भक में प्रयास करना होता है यह अभ्यास से शक्य है। अनभ्यास से शास्त्र विष का काम करते हैं, अभ्यास से वही अमृत बन जाते हैं। प्राणायाम के समय सिद्धासन से बैठे। प्राणायाम में चारों अङ्गुली और अंगूठा काम में लेना चाहिये। इस समय मन्त्र के उच्चारण के साथ-साथ उस-उस देवता की मानसी पूजा करनी चाहिये इससे विशेष फल मिलता है।

लं, हं, यं, रं, वं इन बीजों से पृथिव्यात्मा को गन्ध, आकाशात्मा को पुष्प, वाय्वात्मा को धूप, अग्न्यात्मा को दीप और अमृतात्मा को नैवेद्य प्रदान करे। इस पञ्च-भूतात्मक मानसी पूजा से ही प्राणायाम की सिद्धि मिलती है (१२-२१)। प्राणायाम का अभ्यास सिद्धासन, कुम्भक के साथ और मन्त्र दृष्टि के रूप में आँखें बन्द

करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। प्राणायाम में मानसी पूजा का माहात्म्य (३०-३६)। प्राणायाम के विना सब निष्फल है। विलोम गायत्री मन्त्र का वर्णन (३७-४६)। इससे सम्पूर्ण पाप, रोग, दरिद्रता दूर होते हैं (४७)।

विलोम गायत्री मन्त्र के जाप का फल सम्पूर्ण मन, वाणी और कर्म से किये गये पापों का नाश होना बताया है (४८-४६)। प्राणायाम न करनेवाला अवकीर्णी होता है उसे प्रायश्चित्त लगता है (५०-५२)। विशेष जिन-जिन मन्त्रों का विधान आता है उनके साथ भी पूरक, कुम्भक और रेचक क्रम से प्राणायाम करने का विकल्प है। चार्वाक, शैव, गाणेश, सौर, वैष्णव और शाक्त जो भी मन्त्र है उन-उन से प्राणायाम की विधि फल देनेवाली है। भिन्न-भिन्न विधियों में प्राणायाम की १०, १५, २०, २४, १३, १४ और १६ वार आवृत्ति करने की विधि हैं। वैश्वदेव में १० वार आदि में १० वार अन्त में प्राणायाम करने का विधान हैं। जहां सङ्कल्प है वहां २ वार और सभी काम्य आदि कर्मों में १०-१० वार आवृत्ति का विधान है। विलोमाक्षरों से गायत्री का प्राणायाम अनन्त कोटि गुणित फल देता है (५३-७६)।

वैश्वदेव में कोद्रव (कोदों), मसूर, चना, माषा और कड़वे द्रव्यों को काम में न लें (१-३)। नाना प्रकार की बलि करने से नाना प्रकार के काम्य कर्मों की सिद्धियाँ होती हैं। द्विजों के लिये तीन ही क्रम से बलि का विधान है। पहले उपवीत, दूसरे निवीत, तीसरे पितृमेध के लिये बलि की जाती है (३-१२)।

वैश्वदेव में ताजा अन्न ही काम में लिया जाय (१३-१६)। वैश्वदेव मन्त्र के साथ हो या बिना मन्त्र के इसे किसी भी रूप में करना चाहिये; क्योंकि इसको करनेवाला अन्नदोष से लिप्यमान नहीं होता (१७-२४)। पञ्चशूनाजनित पापों को जैसे, चूल्हा, चक्की, जल भरने का स्थान, झाड़ू आदि के दोषों को दूर करने के लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है (२५-३६)।

वैश्वदेव को करने से सकल दोषों का निवारण होता है। नित्य होम का वर्जन सूतक एवं मृतक में बताया

लोहितस्मृति के प्रधान विषय

के प्रमुख व्यक्तियों के सामने हुए, भाई-बन्धुओं को बुलाकर बिना पुत्र के माता को विधि-विधान से देना चाहिये। जो पुत्र समाज के गोत्र कुल में से दत्तकरूप में लिया जाय वास्तव में वह अपने पुत्र तुल्य है और अपुत्रक माता-पिता के लिये सर्वथा दैवपैत्र्य कार्य के लिये ग्राह्य है। उस पुत्र का औरस पुत्रों के समान ही सारा अधिकार होता है (६०-७१)।

यदि दत्तक पुत्र लेने के बाद उन माता-पिता के सन्तान हो जाय तो वह चतुर्थ भाग का स्वामी होने का अधिकार रखता है (७२-७४)। जब आदि धर्मपत्नी के न रहने व पुत्र न होने पर दूसरी पत्नी से जो पुत्र होगा वही ज्येष्ठत्व का अधिकारी होगा और अवशिष्ट स्त्रियों की सन्तान कायम रहेगी (७५-८५)।

आत्मज सन्तान की ही औरसता कही गई है (८६-८७)। यदि कोई धर्मपत्नी के सन्तान न हुई उसने पति की इच्छा से दत्तक पुत्र लिया और संयोगवश फिर सन्तान हो गई तो दत्तक पुत्र को ज्येष्ठ पुत्र के रूप में बराबर भाग मिलेगा। यदि दत्तकपुत्र और औरस पुत्र उपस्थित हो तो औरस पुत्र को ही पिता-माता के और्ध्वदैहिक कर्म करने का अधिकार है (८८-९८)।

से अपुत्रा विधवा स्त्री दत्तक ले (२४३-२४४)। जो निकट सम्बन्धी दो या दो से अधिक सन्तानवाला हो उसका कोई-सा भी पुत्र अपने लिये दत्तक लिया जा सकता है (२४६)। यदि कोई-सा भी लूला, लङ्गड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा, काना, नपुंसक या कुष्ठ का रोगी हो तो उसे लेना न लेना बराबर है (२४७)। यदि ऐसे विकलाङ्ग दत्तक लिये गये तो मन्त्र क्रिया आदि का लोप हो जाता है (२४८-२५२)। यदि समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं परिवार के भाई-बन्धु जिसके लिये आज्ञा दें तो वह दत्तक सफल होता है (२५३-२५७)।

अपुत्रक का दत्तक लेना दौहित्र न उत्पन्न हो तब तक प्रामाणिक है बाद में यदि दौहित्र पैदा हो जाय तो वह अप्रामाणिक है।

मनु ने दौहित्रों में बड़े छोटे में किसी एक को लेने का विधान बताया है (२५८-२६३)। हां, ३ या ५, ६ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ को छोड़ किसी एक को लिया जा सकता है (२६४-२६६)। यदि मोह से ज्येष्ठ को दत्तक ले लिया गया तो मौञ्जी विवाह विधि के बाद वह अपने सगे पिता का ही पुत्र होने का अधिकारी है दूसरे का नहीं (२६७)। ऐसा दत्तक

से अपुत्रा विधवा स्त्री दत्तक ले (२४३-२४४)। जो निकट सम्बन्धी दो या दो से अधिक सन्तानवाला हो उसका कोई-सा भी पुत्र अपने लिये दत्तक लिया जा सकता है (२४६)। यदि कोई-सा भी लूला, लङ्गड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा, काना, नपुंसक या कुष्ठ का दागी हो तो उसे लेना न लेना बराबर है (२४७)। यदि ऐसे विकलाङ्ग दत्तक लिये गये तो मन्त्र क्रिया आदि का लोप हो जाता है (२४८-२५२)। यदि समाज के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं परिवार के भाई-बन्धु जिसके लिये आज्ञा दें तो वह दत्तक सफल होता है (२५३-२५७)।

अपुत्रक का दत्तक लेना दौहित्र न उत्पन्न हो तब तक प्रामाणिक है बाद में यदि दौहित्र पैदा हो जाय तो वह अप्रामाणिक है।

मनु ने दौहित्रों में बड़े छोटे में किसी एक को लेने का विधान बताया है (२५८-२६३)। हां, ३ या ५, ६ पुत्रों में सब से ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ को छोड़ किसी एक को लिया जा सकता है (२६४-२६६)। यदि मोह से ज्येष्ठ को दत्तक ले लिया गया तो मौञ्जी विवाह विधि के बाद वह अपने सगे पिता का ही पुत्र होने का अधिकारी है दूसरे का नहीं (२६७)। ऐसा दत्तक

पुत्र होनेवाले के किसी काम का नहीं (३०१)। कई स्त्रियों के एक पति से पुत्र हो तो ज्येष्ठ और कनिष्ठ को छोड़ अन्य लिये जा सकते हैं (३०३)।

एकपुत्रस्य दत्तकग्रहणनिषेधः २७२७

एक पुत्र यदि पिता औरस के हो और विधवा भी उसे दत्तक ले उसका निषेध (३०४-३०५)।

विधवाम्नीहृतपुत्रदण्डम् २७२८

जो कोई सुत और दौहित्र को तिरस्कार कर अन्य को दत्तक ले उसपर राजाविशेष विधान से दण्ड लागू करे (२६०-२६६)।

दौहित्रप्रशंसा २७२९

दौहित्र की प्रशंसा (२६७-३२३)।

दौहित्रत्रैविध्यम्—

एक तन्मातामह गोत्री, दूसरा दौहित्र और तीसरा निर्दोष

विवाह में कन्याप्रदान के समय मातामह एवं पिता की प्रतिज्ञा के अनुसार होनेवाले सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान क्रमशः तन्मातामह गोत्री और दौहित्र हैं

॥ लोहितस्मृति की विषय...

नारायणस्मृति के प्रधान विषय

॥ श्री नारायणस्मृति की संक्षिप्त विषय-सूची समाप्त ॥

शाण्डिल्यस्मृति के प्रधान विषय

में [illegible] है। [illegible] की आराधना सर्वोत्तम है। देव, मनुष्य और पशु आदि का विकार इन्हीं से है।

> [illegible] सर्वकारणकारणम्।
> [illegible] सर्वं [illegible] ॥
> देवा मनुष्याः पशवो मृगपक्षिसरीसृपाः।
> [illegible] ॥

ज्ञान एवं कर्म से भगवान की ही आराधना सर्वोत्तम है। वही ज्ञान है, वही सत्कर्म है एवं वही सत्पात्र है। जो भगवान् के चरणारविन्दों की सेवा नहीं करते हैं वे शोचनीय हैं (४०-५६)।

सात्त्विकराजसतामसगुणानां वर्णनम् २७६६

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है एवं जगत की कारणभूता है। सम्पूर्ण संसार देव, असुर और मनुष्य इसी के विकार हैं। इस प्रकार सात्त्विक राजस और तामस गुणों का संक्षेप से वर्णन (६०-७०)।

देश शुद्धि का वर्णन—जहाँ म्लेच्छ पाषण्डी न हों धार्मिक तथा भगवद्भक्तिपरायण मनुष्य रहते हों और हिंसक जन्तुओं से शून्य हो वह स्थान शुद्ध है (७१-८२)

के बाद सर्व प्रथम भगवान गोविन्द के दिव्य नामों का सङ्कीर्त्तन करते हुए वस्त्र और दण्डादि कमण्डलु लेकर अपने मस्तक पर कपड़ा बांध कर मल-मूत्र त्याग करने के लिये गांव के बाहर जावे। पेशाब, मैथुन, स्नान, भोजन, दन्तधावन, यज्ञ और सामूहिक हवन में मौन धारण करने की विधि है। यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर टांग कर मल-मूत्र का त्याग करना चाहिये (१-९)। मलमूल करने में जो स्थान वर्जित हैं उनका परिगणन (१०-१२)।

मल-मूत्र त्याग के समय, देवता, शत्रु, शिष्य, अग्नि, गुरु, वृद्ध पुरुष और स्त्री को न देखे। अधिक समय तक मल-मूत्र न करे केवल आकाश, दिशा, तारा, गृह और अमेध्य वस्तुओं को देखे (१३-१४)। मिट्टी से गुदा और लिङ्ग को जल से धोवे। फिर हाथ धोकर दन्तधावन करे। स्नान के लिये तीर्थ, समुद्रादि, तालाब, कूप और झरने का जल विशेष प्रयोजनीय है (१५-२०)। जल को अञ्जली से अधिक न पीदे न जल में कुल्ला किया जाय और देह का मल भी जल में न छोड़ा जाय फिर बाहर आकर सन्ध्या कर्म के लिये स्थान को धोवे और वस्त्र पहने (२१-२८)। स्नान प्रकरण के साथ नित्य कर्मों का वर्णन (–

॥ शाण्डिल्यस्मृति की विषय-सूची समाप्त ॥

कण्वस्मृति के प्रधान विषय

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठाङ्क
	कण्व द्वारा धर्मसार का निरूपण धर्मकर्तव्यवर्णन—जिस व्यक्ति की बुद्धि ऐसी है कि क्रिया, कर्ता, कारयिता, कारण और उसका फल सब कुछ हरि है वही स्थिर बुद्धि का है, उसका जीवन सफल है (६-१०)। परमेश्वरप्रीत्यर्थ किया हुआ कर्म ही सफल है। सत्सङ्कल्प एवं उसका फल (११-६१)। नित्य-नैमित्तिक कर्मों का फल निर्णय (४-५०)। नित्यकृत्य का वर्णन (५१-७४)। प्रातःकाल में स्मरण करने योग्य कीर्त्य महानुभावों का वर्णन (७५-८०)। प्रातः शौचस्नानादि क्रियाओं का वर्णन (८१-९४)। गण्डूष के समय शब्द का निषेध और उसका प्रायश्चित्त का वर्णन (९५-९७)। भक्षण एवं खाने के समय भी शब्द करने का निषेध (९८-१०४)। मूत्र पुरीषोत्सर्ग में गण्डूष के बाद आचमन का विधान (१०५-११६)। गृहस्थों का मृत्तिका शौच का विधान (११७-१२६)। शुभकर्मों में सर्वत्र आचमन का विधान (१२७-१४०)। नित्यकर्मों में उलट-फेर करने से फल नहीं होता है (१४१-१५०)। स्नान के समय आवश्यक कृत्य जैसे सन्ध्या, अर्घ्य, गायत्री मन्त्र का जप देवर्षिपितृतर्पण, स्नानाङ्गतर्पण अवश्य करने चाहिये (१५१-१५८)। कण्ठस्नान,	

[illegible] पादस्नान, कटिस्नान, [illegible] स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करने का विधान, [illegible] शरीर [illegible] (२०१-२१०)।

प्रातःस्नान का [illegible] से [illegible] वर्णन (२११-२१७)। [illegible] का विधान (२१८-२२०)। [illegible] ही गायत्री जप का [illegible] (२२१-२२६)। सन्ध्या ही सब का मूल है (२२७-२३०)। गायत्री मन्त्र का वैशिष्ट्य वर्णन (२३१-२३२)। वेद पढ़ने का अधिकार गायत्री से ही प्राप्त है (२३३-२३८)।

सम्यक्प्रकार गायत्री जप का फल वर्णन (२३९-२४१)। सन्ध्या, गायत्री और वेदाध्ययन का फल नहीं मिलता (२४२-२४६)। कलि में गायत्री मन्त्र का प्राधान्य (२६०-२६६)। मूढ ब्राह्मण का वेदादि व वैदिक कर्मों के करने में योग्यता का वर्णन (२७०-२८०)। वैदिक कृत्य की सब में प्रधानता (२८१-३००)। ब्रह्मार्पण बुद्धि से ही सब कर्मों का अनुष्ठान [illegible] है (३०१-३२५)।

एक कार्य के अनुष्ठान में कार्यान्तर (दूसरा काम) वर्जित है (३२६-३२७)। उपासना का महत्त्व (३२८-३३४)। गार्हपत्य अग्नि की स्थापना और

श्रेयस्कर है, सप्तसोम संस्था के पाकयज्ञों का विधान (४८६-४६४)। इन अनुष्ठानों को न करने से प्रत्यवायिक दोषों का निरूपण (४६५-४६७)।

ब्रह्मचारी के नित्यकृत्यों का वर्णन (४६८-५०२)। जातकर्म, चौल, प्राजापत्य, उपाकर्म आदि का विधान (५०३-५१३)। भिन्न-भिन्न अनुवाकों का वर्णन (५१४-५२६)। नाना काण्डों का वर्णन (५२६-५३७)। ब्रह्मचारी वेदव्रतों का सम्पादन कर विधिपूर्वक स्नातक-धर्म में दीक्षित हो (५३८-५३९)। गृहस्थ में प्रवेश के लिये लक्षणवती स्त्री से विवाह और उसके साथ वैदिक विधि से गृहप्रवेश व अग्निहोत्र का विधान (५४०-५४५)। शुनि होम का विधान (५४६-५४८)। औपासन कृत्यों का वर्णन ([illegible])। गृहस्थ के लिये नित्य कर्तव्य विधि का वर्णन ([illegible])। फिर इष्ट कर्तव्य एवं अनिष्ट कर्तव्यों का परिगणन ([illegible])।

प्रातःकाल से सायंकाल तक के कर्तव्यों का निर्देश ([illegible])। गृहस्थ भगवान लक्ष्मीनारायण का ध्यान [illegible] करे। गृहस्थ को आनेवाले सभी सम्मान्य गुरुजन अतिथि एवं [illegible] जनों की पूजा का विधान ([illegible])। [illegible] पात्रों का विधान और उनके बनेवाले और पुरुषों का वर्णन ([illegible])। पंक्ति-

॥ कण्वस्मृति की विषय-सूची समाप्त ॥

दाल्भ्यस्मृति के प्रधान विषय

से स्नान और भोजन करने से कृच्छ्रसान्तपन का विधान। जो चाण्डाली में अकाम से गमन करे उसके लिये सान्तपन एवं दो प्राजापत्य का विधान। सकाम चाण्डाली गमन करनेवाले को चान्द्रायण और दो तप्तकृच्छ्र का प्रायश्चित्त करने का विधान (८६-६६)। गोहत्यावाले के लिये प्रायश्चित्त का विधान (६७-१०२)। रोध, बन्धन, अतिवाह और अतिदोह का प्रायश्चित्त विधान (१०३-१०८)। वृषभ की हत्या का प्रायश्चित्त (१०६-११०)।

गोदोहन का नियम—दो महिने बछड़े को पिलावे व दो मास दो स्तनों का दोहन करे तथा दो मास एक स्तन शेष समय में अपनी इच्छा हो वैसे करे।

द्वौमासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौस्तनौ दुहेत्।
द्वौमासौ चैकवेलायां शेषं काले यथेच्छया ॥१११॥

किन-किन स्थानों में प्रायश्चित्त नहीं लगता इसका वर्णन (११२-११३)। किन-किन को प्रायश्चित्त न करने का पाप लगता है (११४)। आशौच का निर्णय वर्णन (११५-१२१)। किसी हीन से सम्पर्क करने में दोष कहा है (१२२-१२३)। सूतक और मृतक के आशौच का विधान (१२४-१२६)।

प्रधान विषय — पृष्ठाङ्क

दाल्भ्यस्मृति की विषय-सूची समाप्त ॥

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठाङ्क
	आशौचनिर्णयवर्णनम्	२६४३

बाल, शिशु एवं कुमार की परिभाषा (१३०)। विवाह, चौल और उपनयन में यदि माता रजस्वला हो जाय तो शुद्धि के बाद मङ्गल कार्य करे (१३१-१३३)। कोई कार्य प्रारम्भ हो और सूतक का आशौच हो जाये तो उस कार्य के सम्पादन का विधान (१३४)। श्राद्धकर्म उपस्थित होने पर निमन्त्रित ब्राह्मण आवें तो सूतक का आशौच नहीं लगता व उस कार्य के सम्पादन का विधान (१३५)।

	देशान्तरपरिभाषावर्णनम्	२·

ब्राह्मणों के भोजन करते हुए यदि सूतक हो जाय त दूसरे के घर से जल लाकर आचमन करा देने से शुि हो जाती है (१३७)। देशान्तर में यदि कोई सपिण मर जाय तो सद्यः स्नान से शुद्धि कही गई है (१३८) देशान्तर की परिभाषा ६० योजन दूर या २४ योजन अथवा ३० योजन दूर को देशान्तर बताया है य बोली का अन्तर या पर्वत का व्यवधान तथा महानदी बीच में पड़ जाती हो तो देशान्तर कहा जाता है (१३९-१४०)।

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठाङ्क
	शुद्धाशुद्धिवर्णनम्	२६४७

आशौच का विशेष रूप से वर्णन—सूतक एवं मृतक आशौच का प्रारम्भ कब से माना जाय इसका निर्णय। रजस्वला के मरने पर तीन रात के बाद शवधर्म का कार्य सम्पादन किया जाय। शुद्धाशुद्धि का वर्णन (१४१-१६३)। स्पृष्टास्पृष्टि कहाँ नहीं होती इसका वर्णन (१६३)। दिन में कैथ की छाया में, रात्रि में दही एवं शमी के वृक्षों में सप्तमी में आंवले के पेड़ में अलक्ष्मी सदा रहती है अतः उनका सेवन न करे (१६४)। शूर्प (सूप) की हवा, नख से जलबिन्दु का ग्रहण केश एवं वस्त्र गिरे हुए घड़े का जल और कूड़े के साथ बुहारी इनसे पूर्वकृत पुण्य का नाश होता है (१६५)। जहां कहीं भी शुद्धि की आवश्यकता हो वहां-वहां तिलों से होम एवं गायत्री मन्त्र के जप से शुद्धि कही गई है (१६६)। दाल्भ्यस्मृति के सुनाने का फल (१६७)।

॥ दाल्भ्यस्मृति की विषय-सूची समाप्त ॥

आङ्गिरसस्मृति के प्रधान विषय

कर अवशिष्ट निर्मन्त्रक विधि करे और शुद्ध होने पर समन्त्रक विधि समाप्त करे ([illegible])।

औपासन अभी आरम्भ न हो और दूसरे दिन रजस्वला हो तो इसी प्रकार अमन्त्रक विधि कर शुद्ध होने पर मन्त्रोच्चारण के साथ किया करे (८५-९१)। आशौच में नित्यनैमित्तिक कर्मों का वर्जन (९४-९५)। इससे प्रेतकृत्य का नाश होता है अतः वर्जित है (९६-९७)। अत्यन्याय, अग्निहोत्र और अग्निकृत्य कलि में भी वर्जित है। अग्नि जन्म और अग्निसाध्य भी वर्जित है (९८-१०३)।

जीवत्पितृक पिण्ड पितृ यज्ञ श्राद्ध का वर्णन (१०४-१०७)। पिता यदि सन्यास ले ले तो पातित्यादि दूषित होने पर उनके पितादि के श्राद्ध का विधान (१०८-११७)। इसी प्रकार चाचा आदि की स्त्रियों का (११८-१२०)। गौणमाता के श्राद्ध का विधान (१२१-१२५)। श्राद्धाधिकार और श्राद्धकर्ता गौणपिता के लिये भाई का पुत्र सपत्नीक कृतक्रिय भी पुत्र सञ्ज्ञा पाता है (१२६-१२९)। गोत्र नाम का अनुबन्ध व्यत्यास होने पर फिर कर्म करे (१३०-१३२)।

[illegible]

अध्याय	प्रधान विषय	पृष्ठाङ्क

स्त्रीणां पुनर्विवाहे प्रायश्चित्तवर्णनम् २६६६

जातिभेद से निष्कृति (१६२)। स्त्री के पुनर्विवाह में दोष जैसे—

पुनर्विवाहिता मूढैः पितृभ्रातृमुखैः खलैः।
यदि सा तेऽखिलाः सर्वे स्युर्वै निरयगामिनः ॥१६३॥
पुनर्विवाहिता सा तु महारौरवभागिनी।
तत्पतिः पितृभिः सार्धं कालसूत्रगतो भवेत्।
दाता चाङ्गारशयननामकं प्रतिपद्यते ॥१६४॥

यदि मूर्ख एवं दुष्ट पिता व भाई आदि के द्वारा फिर स्त्री विवाहित की जाय तो वे सब नरकगामी होते हैं और वह स्त्री महारौरव नरक में जाती है, व उसका विवाहित पति अपने पितरों के साथ कालसूत्र नामक नरक में गिरता है एवं देनेवाला अङ्गारशयन नामके नरक में जाता है। पुनर्विवाह के दोष निवार प्रायश्चित्त का कथन (१६३-२०४)।

भ्रान्ति से पुत्रिकादि विवाह होने पर चान्द्रायण करने से स्वमात्र की शुद्धि (२०५-२०७)। पुत्र हो‍ भन का विधान (२०८-२११)। एक, दो, तीन धार-पाँच बार विवाहिता होनेपर प्रायश्चित्त (२ २१७)। उससे तो वेश्या की विशेषता (२१८-२२ प्रविष्ट परपति के काय द्वारा संयोग होनेपर प्रायरि

श्राद्धे निमन्त्रितब्राह्मणपूजनवर्णनम् ३०४१

रुद्र कुम्भ (८७५–८७७)। प्रथम वर्ष तिल तर्पण न करे सपिण्डीकरण के बाद श्राद्धाङ्गतर्पण (८७८–८८२)। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों की पूजा का वर्णन (८८३–८९२)। पितरों के निमित्त रजत और देवता के निमित्त स्वर्ण मुद्रा दे। उपस्थान और अनुव्रजनादि का कथन (८९३–८९७)। कर्म के मध्य में ज्ञानाज्ञानकृत दोष का प्रायश्चित्त (८९८–९०४)। उच्छिष्टादि श्राद्ध में सात पवित्र (९०५–९०९)। उच्छिष्ट, निर्माल्य, गङ्गामहिमा, महानदी, नदियों का रजस्वलात्व, पुण्यक्षेत्र (९१०–९४२)। वमन (९४३–९४५)। फिर श्राद्ध प्रकरण (९४६–९५०)।

अनुमासिक में उच्छिष्ट वमनमें व उच्छिष्ट के उच्छिष्ट स्पर्श में विचार (९५१–९५९)। एक दूसरे के स्पर्श में (९६०–९६४)। दर्शादि में छींक आने पर विचार (९६५–९७३)। अपुत्र की अशासिरहयता (९७४–९७५)। पति के साथ अनुगमन में पत्नी का एक साथ ही पिण्डदान (९७६–९७८)। मृत के ग्यारहवें दिन या दूसरे दिन सहगमन में श्राद्ध (९८१–९८८)। यदि पत्नी ऋतुकाल में हो पति के मरने पर तो पति को तेल की कड़ाही में छोड़ दे और शुद्ध होने पर ही और्ध्वदैहिक

संस्कार करे (९८९-९९५)। उसका पिण्ड संयोजन (९९६)।

अन्यगोत्रदत्तकपुत्रकृत्यवर्णनम् ३०४

माता के साविण्ड्य न होने का स्थल (९९७-९९८)। दत्तपुत्र का पालक पिता का सापिण्ड्य होता है (९९९)। दत्तपुत्र का औरसपिता के प्रति कृत्य (१०००-१००५)। अन्य गोत्र दत्त का सपिण्डीकरण में विधान (१००६-१००८)। कथाहति (१०१९-१०२१)। श्राद्ध दिन में वर्ज्य (१०२२)। श्राद्ध के दिन दान जप न करे (१०२३-१०२७)। दर्श में मृताह के श्राद्ध को पहले करे (१०२८)। मृताह के दिन मातामहादि का श्राद्ध हो तो मन्वादिक श्राद्ध करे (१०२९-१०३१)।

मृताह में नित्यनैमित्तिक आ जाय तो नैमित्तिक पहले करे (१०३२-१०३४)। दर्श में बहुश्राद्ध हों तो दर्शादि को कर फिर कारुण्य श्राद्ध करे उसमें मत-मतान्तर (१०३५-१०४४)। किन्हीं का कल्प प्रकार (१०४५-१०५९)। अष्टकिया का विधान, पतित की पचीस वर्ष के बाद क्रियायें हों (१०६०-१०७२)। श्राद्धपाक तर्पण दूसरे दिन (१०७३-१०७५)। उद्देश्य त्याग के समय सव्यविकिर न करे (१०७६-१०७८)। वमन में कर्ता के भोजन न करने पर अर्ध रात्रि, तिल

॥ आङ्गिरसस्मृति के पूर्वाङ्गिरसम् की विषय-सूची समाप्त ॥

आङ्गिरस (२)

उत्तराङ्गिरसम्

भारद्वाजस्मृति के प्रधान विषय



॥ भारद्वाजस्मृति की विषय-सूची समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

※ कपिलस्मृतिः ※

कपिल-शौनक-संवादवर्णनम्

वेदनिन्दकानां दूषणम् :—

पुरा ॥ शौनकः श्रीमान्भाविनं पतिमीक्ष्य वै ।
मीनोत्थितं कलौ भूम्यां तिष्ठेद्विप्रत्वमित्यसौ ॥ १ ॥
अत्यन्तं चिन्तयाविष्टः कपिलं विष्णुरूपिणम् ।
अथशात्वागतं वीक्ष्य प्रहृष्टः सत्वरं सदा ॥ २ ॥
समुत्थायाभिवाद्यैनं गामर्घ्यमुदकं शिवम् ।
कल्पयित्वा नष्टश्रमं पश्चात्प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ३ ॥
कलौ पापैकबहुले धर्मानुष्ठानवर्जिते ।
कथं तिष्ठति विप्रत्वं भूतले वद मे महन् ॥ ४ ॥
संशयोऽत्तीय सुमहान् वर्त्तते छिन्धि नु(मे)विभो ।
नितेन(शौनकेन)हन(कृतः)प्रश्नः कपिलः स सनातनः ॥५॥
स्मयं कृत्वा जगद्भर्त्ता सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ।
त्वं महानसि सर्वज्ञः सर्ववेदविदाम्वरः ॥ ६ ॥
अग्रगण्यश्च भक्तानां वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ।
अष्टादशानां विद्यानां कोशभूतो महाद्युतिः ॥ ७ ॥
ऐकायोगत्व(?) नानात्वं समवायविशारदः ।
क्रियाकल्पविशेषज्ञः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ८ ॥

अथापि शुष्कमार्ग(र्ग)निरपत्यैः मुनिभिद्वगैः ।
ब्राह्मण्यमागतैः कर्मविशंषैरेव तत्परम् ॥ ९ ॥
ब्राह्मण्यं तत्समीपं निजमति जितपरं शिवम् ।
सुस्थितं प्रभवो नो चेन्न तिष्ठन्ति ते(?)षितेति ॥ १० ॥
निष्कर्षसुमुक्तोऽयं (च) तस्मिन्नर्थे न संशयः ।
अथापि सूक्ष्मं वक्ष्यामि तन्ममैकमनाः शृणु ॥ ११ ॥
अब्राह्मणेषु सर्वेषु सर्वस्मिन्ब्राह्मणमते(षु थे) ।
नामधारकमात्रेषु श्रोत्रियेषु महत्स्वपि ॥ १२ ॥
सर्वेष्वपि च वैदिकपारगेषु महात्मसु ।
ब्रह्मत्वमेकसामान्यात्तिष्ठत्येव ह्यनश्वरम् ॥ १३ ॥
तन्महत्तारतम्येन न्यूनं चाधिकमेव च ।
महच्च सुष(म)हच्चापि दोषयुक्तं गुणोत्तरम् ॥ १४ ॥
निर्दोषम(मि)त्ति भेदेन बहुधाभि(हि)मृतेहि(स्मृतं)तत् ।
सर्वकर्मैकशून्येऽस्मिन्कलौ पापैकसङ्कुले ॥ १५ ॥
कर्मानुरूपं ब्रह्मत्वं प्रतिष्ठति हि भूतले ।
तन्न दूष्यं दुराधर्षं युगधर्मानुरूपकम् ॥ १६ ॥
परान्नेन मुखं दग्धं हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
परस्त्रीचिन्तया चित्तं कुतः (श्र) शापः कलौ युगे ॥१७॥
विरी (रो) हितस्तत्र वेदः स्वभावात्पुनरि (रे) ष्यति ।
कुतर्कैर्बाधितोऽत्यन्तमापाप्रद्व(न्थै)र्न राजते ॥ १८ ॥
भाषाप्रध(न्थ)कुतर्काणामागमानां प्रचारणात् ।
वैष्णवानांशोभ(ना)नां पुरान्नेवानां(पुरुषाणां)दुरात्मभिः १९

प्रकल्पितानां शास्त्राणामसतां सद्विरोधिनाम् ।
प्रवाहतुल्यात्कर्ममूलं वेदः शास्त्रतरं भवेत् ॥ २० ॥
एवं वेदे धर्ममूले परं शांतमवस्थिते ।
तथागतमतं केचिदनुसृत्य ततस्ततः ॥ २१ ॥
कर्मोपयुक्तमात्रैकपुत्राध्ययनमात्रतः ।
सम्पूर्णं तत्र विप्रत्वं प्राप्तमेवेति वादिनः ॥ २२ ॥
देवो ध्येतव्यइत्युक्ते तदुपर्यपि युक्तिभिः ।
यत्किञ्चित्स्त तु यावद्वा यत्किञ्चिच्चेत्तदा किल ॥२३ ॥
या(?)श्रीमात्रतःस्याद्धि यावच्चेद् ब्रह्मणे नमः ।
सततं प्रत्या(?)सैवं पुनस्तेषां दुरात्मनाम् ॥ २४ ॥
अद्वियस्यस्तत्तद्वात्रयोश्चारणेद्दिभयं च न (?) ।
वैदिकान्यपि कर्माणि दूषयन्ति समासु च ॥ २५ ॥
तद्वाक्यतः पुनर्लोकेऽप्यल्पप्रज्ञानां हि निश्चयः ।
बहुज्ञानां संशयोऽपि कदाचिज्जायते किल ॥ २६ ॥
सद्वैदिकेषु शास्त्रेषु सदकर्मसु(सत्कर्मनिरतेष्वपि)।
विश्वासस्ताहशानां च जायतेऽपि च कुत्रचित् ॥२७॥
ब्रह्मयोनिषु जातानामपि केषां दुरात्मनाम् ।
तानि प्रयुतकर्माणि दूषयन्त्यपि सन्ति च ॥ २८ ॥
श्रुतिप्रोक्तानि दिव्यानि मूढाः पण्डितमानिनः ।
मूढानां ताहशानान्ते(श्च)गुरुत्वं समुपाश्रिताः ॥२९॥
स्वयं च वैदिकाश्चेति वदन्तः पुनरप्यति ।
कुबुद्धिं बोधयन्तश्च ताहशाः दुष्टचेतनः(नाः) ॥ ३० ॥

षट्से भूमिनेत्रोपि कलिधर्मम्नु मादराः।
अत्रापि मूलते भूमन्त्र मत्र कश्चित्कश्चित् ॥ ३१॥
वैदिकान्यपि कर्माणि वैदिकाध्ययनोत्सुकः।
मामानि च यमुत्रेयं मन्त्रमागांनं(?)मामानि ॥ ३२॥
शाम्मामाग्नाभ्रमयानि मायेन (?) महार्द्विनम।
श्रोत्रियत्वं (च) प्रथिमं दुर्लभं सर्वदेहिनाम ॥ ३३
शतजन्मसु विप्रत्वं प्राप्नम्य कृतिमन्नतः।
श्रोत्रियत्वं सिध्यति हि ना स्त्रः(?)क्रमपाठकः ॥ ३४
वर्णक्रमविभागज्ञः स्वरमात्रादिलक्षणैः।
सदाचार (रा) यरो धीरो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३५
तन्मन्त्रविनियोगज्ञः तत्क्रियाकरणक्षमः।
चतुर्मुखस्सुभूतो (समुद्भूतो) लोकेऽयंशो जगद्गुरुः॥
साक्षान्नारायणः सोऽयं भेदस्थ (ह) (?)हायमाभवेत्।
वेदो नारायणः साक्षात्तदर्थज्ञः स एव हि ॥ ३७।
सोऽयमर्थः कल्पसूत्रैः ब्राह्मणेन चतुर्दश।
वर्णान्यप्योजसाल्पेन तद्वर्णं (?) यासिपूर्वकम् ॥३८॥
क्षिणात् (?) वा नित्य नाशार वामा ग्रस्यात्र जडासकः।
व्यत्यस्त मुखरन्व्याक्र (?) तदर्थं (र्दं) वत्ति केवलम् ॥३६
शतजन्मसु तं विद्यात्साक्षाद्दैवतमागतम्।
वेदनारायणद्रोही निर्भयेन श्रुति सताम्(?) ॥ ४० ॥
वाचा संस्कृतया वर्त्ति(कि)ह्रासससां(?)सुरत्तस्तु।
वर्णव्यत्यासतः प्रोक्त्या वेदेऽस्मिन्ब्रह्महा भवेत् ॥४०॥

विसर्गबिन्दुदीर्घाणां व्यत्यासोक्त्यावशादपि ।
भ्रूणहत्यामवाप्नोति स्वरादीनां तु केवलम् ॥४१॥
वीरहत्यां दुर्निवार्यामुच्चरन्तं तु तादृशम् ।
अनधीत्यैव तूष्णीकं वेदवाक्यं शिवात्मकम् ॥ ४२ ॥
दुर्बोधीनं कारपाठं अपि तूष्णीकपाठकम् ।
सद्यो वै धार्मिको राजा स्वस्माद्राष्ट्रात्प्रवासयेत् ॥४३॥
वेदं समुच्चरन्तं तच्छूद्रं तत्क्षण एव वै ।
जिह्वाच्छेदं तस्य कुर्यात् (धार्मिको नृपसत्तमः) ।
अनधीत्य गुरोः वेदं या वा(अन्य)शास्त्रं श्रमं(मो)वृथा ॥४
करोति ब्राह्मणो मूढोऽसरो गर्दभ उच्यते ।
नरगार्दभसंसर्गं स्नानं पश्चाङ्ग (सं) युतम् ॥ ४४ ॥
कृत्वा सङ्कल्प्य तत्पश्चात्प्राणायामशतं चरेत् ।
पूर्वस्मिन्जन्मनि स तु नरगार्दभसञ्ज्ञिकः ॥ ४६ ॥
सत्यं मृगवधाजीवः निर्घनिको नित्यकर्कशः ।
सत्ययं वेद यत्व (?) निरूपणक हेतवो ॥ ४७ ॥
भूतले कलिना सृष्टः न कुर्यात्तेन भाषणम् ।
अश्रोत्रियै र्ब्रह्मविद्याविषये कलहं वृथा ॥ ४८ ॥
न कुर्यादेव सोऽयं वै महाव्यामोहकारणम् ।
कुलादिनः कुतकार्ये(तर्काश्र)कुत्सिताः कलिरूपिणः ॥४६॥
कुबुद्धयः कुबोद्गारः कुत्सिताचारकारकाः ।
नावलोक्याः न सम्भाष्याः विप्रनामकधारकाः ॥५०॥

विशेषेण श्राद्धदिने यदि स्यात् हठागमा।
इदं विष्णुं कपाहतीश्च जपित्वा प्रयतस्वरम् ॥ ५१ ॥

साधुमार्गश्च च श्रोत्रं दर्भाणां संगृहीतमपि।
सर्वेषामेव धर्माणां मुख्यधर्मोऽयमेव वै ॥ ५२ ॥

कलौ पापैकबहुले श्राद्धान्यः मुनिभिर्यदितः।
सन्त्या वै तद्वपनान्यन् श्रावणस्य महाभयः (?) ॥५३॥

जीवतुश्च ततःश्राद्धं भक्त्या कुर्यात्तदन्वितः।
तत्र नानाविधं ज्ञेयं नित्यं नैमित्तिकन्तथा ॥ ५४ ॥

काम्यं चैतेषु सर्वेषु प्रत्यङ्क्रान्तर मद्मद्दा(मेवच)।
पित्रोर्दैवतताग्तम्याकरणे मस एव हि ॥ ५५ ॥

चण्डालत्वमवाप्नोति तस्मात्तत्तुद्विवैव वै (?)।
मृतयोर्दिवसे कुर्याच्छुद्धः सन् भक्तिसंयुतः ॥५६॥

एवमेतद्वत्सरस्य स्थलेऽस्मिन् भक्त्या(?)भवेन्।
श्राद्धममिमवर्षस्य शुश्रेति (?) वा वदेत् ॥ ५७ ॥

सर्वेषां शृण्वतां मध्ये तावन्मात्रेण ते तदा।
अतितुष्टा हि पितरः तावर्द्या श्रताह्लि(?)॥ ५८ ॥

किमप्य (?)मद्काश्चत्तं तदाद्येन सन्ध्यकैः।
सदाशिपः प्रयुञ्जन्त एतत्पालनसम्मुखाः ॥ ५९ ॥

मलद्वार्यस्य सततं तिष्ठन्ति किल सानुगाः।
मापेभ्यः पञ्च पड्भिर्वागन्वहं मित्र मायपे(?) ॥६०॥

प्रसक्ते सति तैरेतच्छ्राद्धकार्यं कथञ्चन।
कुत्र केन कथं कस्मात्प्रभविष्यति वै तदा।
किं कुर्मश्चेति सचिन्तापर एव स्थितो भवेत्॥ ६१॥

तावन्मात्रेण तेषान्तु नित्यमेव विधानतः।
कृतमेव भवेच्छ्राद्धं कीर्त्तनादेव केवलम्।
समीचीनव्रीहिमाषमुद्गमभ्युत्सदर्शने।
एतत्तुलिवस्तूनि स्वपितॄणां मृतेऽहनि॥ ६२॥
यत्नात्संपादीप्या(?)न मयास्त्वेवदेन्मुदा।
न यथयाः समुद्दिश्य भावयेद्वा स्वचेतसा॥६३॥
शक्त्या कालेन च ततः तदर्थं वस्तुसंग्रहम्।
कुर्यादेव स्वयं भक्त्या पितॄणां प्रीतिहेतवे॥ ६४॥
पश्चाच्छ्राद्धेऽथ पूर्वेद्युः(?)रात्रौ कल्यस्य तद्भवेत्।
श्वःकर्त्तव्यस्य तन्नाद्यात् स्वीकुर्यात्कामतःस्वयम्॥६५॥
रात्रौ कृताशनान्विप्रान्श्राद्धे चैव निमन्त्रयेत्।
ततः प्रातर्विधानेन स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च॥ ६६॥
कृत्वाग्निहोत्रं स्मार्त्तं च ब्राह्मणान्वै निवेदयेत्।
श्राद्धेऽत्राहवनीयस्य स्थाने वै भविमित्ततः॥६७॥
प्रसादो भवता कार्यं इति वाक्येन केवलम्।
केवलं लोके नैव शृणुयाद्भवे दत्वा मयापुनः(?)॥६८॥
तूष्णीं वा प्रति विप्राणामेवमेव विधिःस्मृतः।
सर्वेषां पुनरप्येषां प्रति पूर्वं (वं) त्रयोमतः॥ ६९॥

यत्र पञ्च यथा प्रोक्ता शाखा गन्त्या न चैपुनः ।
एकमेकं च सर्वत्र गत्वाशाखा च चैवन्तु ॥ ७० ॥
पित्रादीनां त्रयाणां च विप्रो यद्योऽपि वा भवेत् ।
पिण्डद्वयं तथा देवे नाम(?)मिवं यथा भवेत् ॥ ७१ ॥
गायन्त्यादिमन्त्रा कार्यो यथा पुत्रः प्रजायते ।
जातकर्म तथा कुर्यात्कुर्यादभ्युदयं तथा ॥ ७२ ॥
सर्वं(चै)तस्य पितुः स्नानं जातमात्रे विधीयते ।
अत्र दैवे च पित्र्ये च युग्मसंख्या द्विजाःस्मृताः ॥७३॥
कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे वेश्मनामपि ।
नामकर्मणि (सु) चौलानां चूडाकर्मादिके तथा ॥७४॥
सीमन्तोन्नयने नै(चै)व पुत्रादि मुखदर्शने ।
नान्दीमुखं प्रकर्त्तव्यं तत्र वृद्धान् पितृनशुभान् ॥७५॥
कुलजं सप्तमं पूर्वं षष्ठं चाऽपि ततः परम् ।
पञ्चमञ्चापि यत्नेन क्रमेणैव प्रपूजयेत् ॥ ७६ ॥
गोत्रान्तय (तर) प्रतिग्रस्य नाश्यास्तेपि नरो खलाः ।
मातामहाश्च नितरां दुर्लभाः राय सत्तरम् (?) ॥७७॥
माता पितृभ्यां तद्गोत्रत्यागेऽङ्गीकार पूर्वकम् ।
स्व(स्वी)कृतोऽयं पालकेन तद्वर्गं तेन चासनम् ॥ ७८ ॥
तन्मातृपितृभिः साकं न तत्यागः पुरा कृतः ।
तेन तन्मातामहानां त्यागस्त्वन्याय एव हि ॥ ७९ ॥
तथैव क्रियते सर्वे तेन दत्तोऽस्य पापकृत् ।
त्यक्तमातामहः क्रूरः दत्तो वैदिकवर्त्मना ॥ ८० ॥

नान्दीमुखे मातृवर्गः प्रपूर्यः (य) वेद शास्त्रगः ।
पितृवर्गं ततः पश्चाद्वर्गं मातामहस्य च ॥ ८१ ॥
सर्वकर्मसु चाप्येवं शुभास्येषु विधीयते ।
मातृपूजा प्रथमतः पितृपूजा ततः परम् ॥ ८२ ॥
वस्त्रभूषणयोर्दाने समनुश्चारणं तथा ।
दम्पती पूजने चापि स्त्रीपूर्वैणैव चोपत्ता (त्तमा) ॥८३॥
श्रुतिस्सा श्रीमती पुण्या तादृशे पुण्यकर्मणि ।
त्यक्ता दत्तेन तूष्णीकं मोहान्मातामहाःपरे ॥ ८४ ॥
सपत्नीका हि पितरस्त्रयस्ते देवताः पराः ।
त्यक्तः स्विष्टेष्टदेवो(स्य-इष्ट)यः सोऽयमत्यन्तपापकृत ।
इष्टं दत्तं यत्तुतत्तु सूतकान्ते विलक्षणम् ।
एकोद्दिष्टाग्नरतस्त्यक्त (?) स्त्रीकृतगोत्रिणः ॥ ८७ ॥
नरसिंहाकृतेरस्य संयोगं वस्तुभिश्चरेत् ।
रुद्रैरपि तथाऽऽदित्यैः प्रीतत्वस्य(?)द्युस्तयोः ॥ ८८ ॥
सद्गोत्र शर्मभिस्ताव पितामहगुरैः सह ।
वस्वादिरूपैः क्रमतः इत्येवं न कथञ्चन ॥ ८६ ॥
कुत एवमिति प्रोक्ते दत्तोऽयं भिन्नगोत्र्यपि ।
पालकस्यततादानीतादृशस्यास्य(?) केवलम् ॥ ६० ॥
सोऽयंशून्यशुद्धैकगोत्राश्रय(णा)मत्र गोत्रिणः ।
पित्रैः संयोजनमत्र विधिरोपेन न शक्यते ॥ ६१ ॥
रमत्वमपि शुद्धत्वं भीमत्वं (?) च तत्त्वकम् ।
तथा पितामहत्वञ्च प्रपितामह (हत्व) मेवच ॥ ६२ ॥

तद्गोत्रिवीर्ये(?)न्येष्वेयम्तु नान्यत्र कथञ्चन।
कयोत्पत्ति निदान(श्च)ज(य)द्वीजं रस इतिस्मृतः ॥९३॥
तस्यापि यन्निदानं तच्छुक्ले शब्देन शब्द्यते।
तस्यापि यत्कारणंहि जीरशब्देन शब्द्यते(भण्यते) ॥९४॥
तथेति पुरन्येऽपि ततः शब्दादिकाः शिवाः।
तत्तद्गोत्रजपिण्डेषु भवेयुर्मुख्यधर्मतः ॥ ९५ ॥
मध्यप्रविष्टगोत्रस्य तत्त्वं तत्साम्यमेवच।
सर्वथा दुर्लभं प्राहुस्तदसाधारणा गुणाः ॥ ९६ ॥
तस्मादेनत्ताद्दशेषु योजयेन्न तु धर्मतः।
तातादयस्तु गुणिनः वसुत्वादिकमुच्यते ॥ ९७ ॥
गुणा इत्येव तेषां सद्विधानं मंत्रवर्त्मना।
सुखायाश्रयभूतानां तद्विधानां प्रशस्यते।
गुण्यरण्य (?) भावे तस्य विधानं शास्त्रवर्त्मना।
गुणस्य तत्कम (कथं) मंत्रतस्त्वसमञ्जसम् ॥ ९९ ॥
सपिण्डीकरणाभावे प्रेतत्वं न निवर्त्तते।
तस्मात्तद्पापो जपित्वा वस्वादित्येन मंत्रवै(त्रेणवै) ॥१००॥
तत एकं समुद्दिश्य चैकोद्दिष्टे विधानतः।
प्रति सम्वत्सरं श्राद्धं कुर्यादिति मनोर्मतम् ॥१०१
अन्यगोत्रप्रविष्टस्य सुतुश्चेद्याकृतिगतः।
मृतं स्वपितरं तस्य गोत्रेणैव क्रिया परा ॥ १०२ ॥
कुर्य्यादेव त्रिरात्रेण मातुश्चापि तुरीयके।
दिने सपिंडीकरणं सूच(त)कं च तथैव वै ॥ १०३ ॥

समनुत्पद्येमेवेति सर्वशास्त्रविनिश्चयः।
मातुलादि समस्तातः भिन्नगोत्रः तथाप्रभुः ॥ १०४ ॥
आदिकेऽपि तयोरेकं पिण्डंदद्यादिति श्रुतिः।
केचित्तत्र पुनः प्राहुःपितरं तादृशं मृतम् ॥ १०५ ॥
तादृशस्तनयः पूर्वैस्तत्तातादिभिरेव वै।
तद्गोत्रैर्योजयेन्मंत्रै रन्यथास्य गतिः भवेत् ॥ १०६ ॥
इति(शास्त्रं)समाचोल्य प्रत्यब्दमपि केवलं।
या धर्मेन विधानेन कुर्य्यादित्येव चास्त्रवीत् ॥ १०७ ॥
नमस्याश्च(?) तथा कुर्य्यात् सूतकंच्चे त्रिरात्रकम्।
यतोभिन्नं तस्य गोत्रं गोत्रिणामेव केवलम् ॥ १०८ ॥
दशरात्रं सपिण्डानां जातकं मृतकं स्मृतम्।
तद्भिन्नानां तु बन्धूनां प्रत्यासत्ति प्रभेदतः ॥ १०९ ॥
त्रिरात्रं दक्षिणि(?)चाहर्दिनंश्च विधिनोदितम्।
भिन्नगोत्राय पुत्राय तमल्पास्तत्सुतस्य च ॥ ११० ॥
जातके मरणे चापि सूतकं पूर्व्ववत्स्मृतम्।
तत्पित्रोरपि तत्रैवं मर्य्यादा वै विलक्षणा ॥ १११ ॥
आत्रिपूर्वततस्त्वेवं तत्कुले दैन्यता परा।
निखिला समता भागान्यूनताशाभिस्तथा(?) ॥ ११२ ॥
भवंत्येवेति सर्वत्र निर्विवादो महानयम्।
जनप्रवादः परमः सर्वशास्त्रविनिश्चितः ॥ ११३ ॥
तातततातवातानां यावदेकं भवेत्तु तत्।
गोत्रं पुराणं सत्पुत्रं ततस्तं निर्दिशं जडम् ॥ ११४ ॥

निष्कृष्टं नैच्यन्यं गाम्या(?)तन्महत्व वहिष्कृतम् ।
ज्ञातिमात्रग्रहणं गोप्यं वैदिकं कर्मणाम् ॥११५॥
वैदिकानामयोगस्यादस्वीकार्यं विपश्चिनाम् ।
ताततत्ताततानां क्रमोक्तिःस्याद्यदातदा ॥११६॥
तत्कुलं सत्कुलैस्साम्यं लभते नात्र संशयः ।
पद्धत्यया पुनरपि दत्तसूनोः मृतौपितु(?) ॥११७॥
भिन्नगोत्रस्य कथिता तातास्तु कुलजैस्त्रिभिः ।
योजयेदेव विधिना बाधकं तत्र नैव वै ॥११८॥
एकोद्दिष्टं तस्य सूनोः त्यक्त्वा चा(ता)तं ततःपरं ।
पितामहादीनां सम्यग्योजयेदेव नान्यथा ॥११९॥
यतो पितामहत्यागः पतितिश्चततः(?)पुनः ।
तेनतद्वंशमात्रस्य निदानैच्येस (?) कीर्तिते ॥१२०॥
यावत्प्रकृतिसंप्राप्तिपर्यन्तं धर्मतःस्मृतम् ।
एकस्मिन्नेव गोत्रे तु प्रवेशो यदि जायते ॥१२१॥
तत्संततौ ततो घोरं संकटं सुमहत्खलु ।
जायते तत्तादृशांतु(?)तुच्छकर्मं न चाचरेत् ॥१२२॥
एतद्धि तत्तुच्छकर्मं प्रविष्टस्यास्य संततौ ।
सांकर्यं प्रथमस्याभूत्तत्सुतस्य ततः परम् ॥१२३॥
गतस्य प्रकृतिं चापि सपिंडीकरणात्परम् ।
या गोत्रवति पित्रादेः तत्सुत प्रभृतित्रिगोः ॥१२४॥
व्यत्यासाद्वातप्रज्ञो(?)योजायते स्वयमेव वै ।
तद्वंशानां तेननैच्यन्दं प्रदेनानि सूरिभिः(?) ॥१२५॥

उपन्यस्तानि तावत्तु यावत्स्यात्प्रकृतेः पुनः ।
संभवस्तेन गोत्रेण कुर्यात्पुत्रस्य संग्रहः ॥१२६॥
शस्त्रेण निहतस्यैवं चतुर्दश्यं पितुः श्रुतम् ।
इष्टे महालयाख्येऽस्मिन् एकोद्दिष्टाख्यवर्त्मना ॥१२७॥
सर्वेषामविशेषेण एकोद्दिष्टविधानतः ।
श्राद्धानि निखिलान्याहुः सपिण्डीकरणं विधि ॥१२८॥
परं सपिण्डीकरणात्सोदकुम्भानि कृत्स्नशः ।
पार्वणेन विधानेन मासिकानि चरेत्परम् ॥१२९॥
संवत्सरविमोकाख्यं संतते च्छेति(?) तत्क्रमः ।
अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः ॥१३०॥
मातामहस्य सपत्न्याः श्राद्धं पितृवदाचरेत् ।
पितृवत्करणं ह्येतस्येति संवत्सरं मतः ॥१३१॥
अत्यंतापत्यसत्वेन कारणं ह्येतदुच्यते ।
औपासनाग्नौ तत्कुर्यादग्नौकरणमंजसा ॥१३२॥
सत्स्वपरेष पत्न्याश्च तन्मातामहयोरपि ।
अग्नौकरणमित्याहुर्द्वमंत्रात्मन्वदर्शिनः ॥१३३॥
नियामकं किमत्रेति मत्ताकाङ्क्षा भवेद्यदि ।
गर्भाधानं वदत्येतदयात्तद्दम्यं मुनीरिमम् ॥१३४॥
नित्यनैमित्तिकेष्वेषु काम्येषु सकलेष्वपि ।
ए(?)र्ता या दैवताल्यं स्यात्तेषामौपासनेन च(नेन च) ॥१३५
अग्नौ करणं कार्येषु स(भवतीति)भीततः पुनर(?) ।
तदि दत्त्वा यद्यंवेति मत्ताकांक्षा पुनर्भवेत् ॥१३६॥

[illegible] स्तोत्पूरो (?) निलयतु ।
[illegible] (?)मनेप्सिते ॥१३७
[illegible] सन्निधौ ।
[illegible] तस्यास्तु मरणं पुनः ॥१३८॥
[illegible] सि(?) प्रसनाकांक्षा भवेत् ।
[illegible] नसनंयच्छिदानंच शाम्यते(?)१३८
[illegible] स्वामिस्थर्मयत्मना(?) ॥१३६॥
[illegible] पुत्रलेन दातं भैयाविलयन(?) ।
[illegible] तु निर्मध्ये नैयतोदहेत् ॥१४०॥
[illegible] (?)तत्परयाऽकुर्वन्नित्यं क्रियापरम् ।
[illegible] भिदत्यं तावश्यकाः पराः(?) ॥१४१॥
[illegible] श्यादितथा महण पूर्वकाः(?) ।
[illegible] विधिना शुचिर्धर्म(?)यतोऽन्यहं ॥१४२॥
[illegible] प्रदद्यात्तु वह्निमयं तथा ततः ।
[illegible] पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥
[illegible] गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।
[illegible] श्राद्धे प्राहुर्दिव्या महर्षयः ॥१४३
[illegible] (?) पकुतिहशीपदेवत्यत्र तत्तथा ।
[illegible] तथा मातामहा अपि ॥१४४॥
[illegible] प्रतिसंकल्परा(ना)स्त्यकम् ।
[illegible] विशेषोऽत्र पुनः स्मृतः ॥१४५॥

धात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ।
मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥१४६॥
प्रतिसंवत्सरं श्राद्धेऽप्येषां नित्यं श्रुतीरितम् ।
तानि त्रिदैवतकानि सपिण्डीकरणात्परम् ॥१४७॥
सोदकुम्भादिकान्येवं प्रत्यब्दा(?)तानि कानि चित् ।
षड्दैवत्यानि नित्यानि दशान(?)दीनिस्मृतान्यपि ॥१४८॥
नव दैवतकान्येवं व्यष्टकादीनि केवलम् ।
तथैव नान्दी परमा नव दैवतकास्मृता ॥१४९॥
एतेभ्योऽप्यधिकं प्रोक्तं जीवच्छ्राद्धमतीव वै ।
विचित्रमेवं कथितं बहुदैवत्यमुच्यते ॥१५०॥
चतुर्दश्याममादेशकाले कार्यं विपश्चिता ।
नान्यकाले प्रकर्तव्यमित्युवाच बृहस्पतिः ॥१५१॥
आगत्य न्यासकल्पे तु नैत्यावश्यकं मतम् ।
श्राद्धानि दर्शादीनि स्युः समुद्दिष्टानिति सूरिभिः(?) ॥१५२॥
कथितानि महाभागैः कानिचित्तु तथैव वै ।
अपिण्डकानि श्राद्धानि संक्रमादीनि केवलम् ॥१५३॥
अष्टोत्तरशतानि स्युः श्राद्धान्येतानि संवत ।
वर्षसंख्यत्वेन ख्यातानि वत्सरान्तेषु सत्तमः ॥१५४॥
नव द्वादश संख्यानि मासि श्राद्धान्यनन्तरं ।
मासि मासि यथाकामं तत्तत्कालेषु तानि वै ॥१५५॥
कृष्णपक्षे विशेषेण विहितानि समासतः ।
अमामत्तु (?) युगादीन्यन्यतीतानि महालयाः ॥१५६॥

तिर्यगोष्ट कामजं ह्यायामंरावन्य.(?)दशीमिताः ।
एतेषु नित्यादर्शाभि मनवस्त युगादयः ॥१५७॥
महालया अष्टकाश्च तथा नैमित्तिकाः स्मृताः ।
संक्रांतिवैधृतयः निमित्ताः पातसंज्ञिकाः ॥१५८॥
गर्भिन्छाया च कथिनाः तत्कर्थमंचेसदुच्यते ।
छिनकाला गमाभावा निमित्तम्(?)मुदाहृतं ॥१५९॥
मात्यदीनांतु(?)विज्ञेया दर्शादीनां तु नित्यदा ।
श्रीमाकाला(?)गमेनैव सरण्यानान्यथा मता ॥१६०॥
निश्शेषदेशलोकादिवर्णाश्रमनमात्रतः ।
आमतो यस्य सततं क्लीप्त्या नित्यत्वमुच्यते ॥१६१॥
नास्तिताह शनित्यत्व(?)मन्यस्य हिन कस्यचित् ।
प्रत्यद्धादिस्तु विज्ञाया अतोनैमित्तिकं हि तत् ॥१६२॥
अथापि तस्याकरणेनयः (?) चंडालत्वं व्रजेत् ।
पित्रोक्तेन (?) चान्यस्य तत्ससमस्तं न वै पुनः ॥१६३॥
प्रोक्तं मातामहश्राद्धे पितृव्यस्य तथैव वै ।
भ्रातुर्ज्येष्टस्य तत्पत्न्याः गुरोरपि विशेषतः ॥१६४॥
येन केनाप्युपायेन पत्न्या अपि मृताहकम् ।
अनेनैव विधानेन कुर्यादेव न चान्यथा ॥१६५॥
न हेन्मामेनवामंत्रे अमौ (?) करणमात्रतः ।
पिण्डप्रदानतो वापि कक्षदाहेन वा तथा ॥१६६॥
या वसेन कक्षा कंटक (?) फलेन विलोदकैः ।
न प्रत्यब्दं चरेत्कष्टा वयप्येहं न(?)संशयः ॥१६७॥

दर्शादिकं तु यच्छ्राद्धवृद्धि कल्पतिवत्सरं ।
येन केन विधानेन कुर्यादित्येव वै मनुः ॥१६८॥
शक्तौसत्यो विधानेन कुर्यादेव न संशयम् ।
दर्शादि सर्वश्राद्धानि मुख्यान्येव तु(?)मन्ततं ॥१६९॥
आमादिनानुकरणममुख्यमिति वै मनुः ।
यदनुष्ठानं तत्सर्वानुष्ठानं जायतेतराम् ॥१७०॥
तादृशं परमं दिव्यं दर्शं कुर्याद्दतंद्रितः ।
येनकेनाप्युपायेन प्रतिमासं विधानतः ॥१७१॥
पितॄणां तृप्तयेऽत्तीव द्विजो धर्मपरोऽनिशम् ।
दर्शानुष्ठानमात्रेण सर्वश्राद्धानि केवलम् ॥१७२॥
कृतानि सम्भवं येन नात्र कार्या विचारणा ।
दर्शानुष्ठानरहितः येनकेनाप्युपायतः ॥१७३॥
सर्वश्राद्धान्तनो याति पितृश्राद्धनसम्नुनःद्धन्नवर्जितः ।
आपद्यपि पितृश्राद्धमनेनैव समाचरेत् ॥१७४॥
न स्वर्णेन न धामेन(?,मंत्रभद्रादिभिर्विना(भि)र्नु वा ।
विभवे सति दर्शाख्यं श्राद्धं मंत्रेन(?)नघरेत् ॥१७५॥
न धैयामेन हेम्ना वा मान्त्रैर्यवतिलादिभिः (?) ।
दर्शादादाभिर्वान कृतैः पिण्डाभावस्यादिभिः ॥१७६॥
उदकेनापि वा कुर्यादन्यथापतितोभवेत् ।
महात्ययरोगिपः प्रतिसंवत्सरं तथा ॥१७७॥
पित्रो मृत्याहि(हि)श्राद्धं दिनूनां मन्द्रमाहनः ।
गयाश्राद्धसदृशं नित्यमदर्शाख्यतेऽभिमत्म् '' ॥१७८॥

अष्टकारहितो मूढः पितृद्रोहीति कथ्यते।
मासश्राद्धपरित्यागी सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥१७९॥
तदकृत्वा पितृश्राद्धं तद्विधानेन केवलम्।
न कुर्यात्सर्वथा श्राद्धं प्रत्यब्दाख्यं कथंचन ॥१८०॥
पितृयज्ञविधानेन श्राद्धं विप्रैः समाचरेत्।
एतद्धि न विधानेन तस्मिन् श्राद्धे तु(?)केवलम् ॥१८१॥
कतिभिश्श्राद्धदिवसा(ना) नातटयिनंतु(?)गच्छति।
मासश्राद्धविधानेन कृतं श्राद्धन्तु केवलम् ॥१८२॥
पुरुषाणां देवतानां कृतं कर्मत्रयं भवेत्।
स्त्री देवतानां न भवेत् तस्माच्छ्राद्धं तु तादृशम् ॥१८३॥
न म (कु) र्यात्तद्विधानेन बाधकं बहु तत्र हि।
श्राद्धपाकं भिन्नगोत्रैः कारयेन्नतु सर्वथा ॥१८४॥
सुता स्व(स्व)स्य पितृष्वस्य (स्वसृ) सुतादिभिः।
गृहिण्या वा गतायान्तु कारयेदिति केचन ॥१८५॥
गुरुश्रोत्रियसद्विप्रबन्धुश्वश्रूजनादयः।
स्युस्तास्वस्याप्यसामर्थ्ये पत्न्या इति महर्षयः॥
स्नुषायाश्चैकमधुरा:(?) पितरस्संततं परम्।
सुतादिपरिचारैकमावसाक्षादि (?) पाकतः ॥१
यान्तुवंत्यनिशं हृष्टं यजमानपरिश्रमात्।
सुखितादुःखिताश्राद्धे(?)भविष्यंत्यपि केवलम् ॥
ऋत्विग्वाभाद्दुश्रोत्रिये ज्यावाजकादिक संजना(?)
सपत्नी [illegible] पिता सर्वे स्वयं चापि स प्रिये(?) ॥१

पैतृप्रिये कर्मणि ॥ यजमान(?)सताधिका ।
र्मयत्येव(?)कथिता स्वस्नुषा तत्समा मता ॥१६०॥
रस्नुषा सा स्वस्नुषा या श्राद्धपाके महात्मभिः ।
ाभिपित्राध्यायधर्ममंत्रतंत्रक्रियादिभिः ॥१६१॥
ासर्व्वेन तु या नारी पितृश्राद्धे ह्युपासि(ग)ते ।
ककिया न कुरुते जा(या)माता मोहमाश्रिता ॥१६२॥
। जन्मजन्मनि सदा(या)दुर्भगा पितृघातिनी ।
न्ध्या दरिद्रा विधवा भवेदेव न संशयः ॥१६३॥
ानां स्नुषया पाकं यदा(दि)लोके नराधमाः ।
ाश्राकार्यिष्यन्ति पितरस्तः किल वै सतः ॥१६४॥
ो श्वशुरयोःश्राद्धे कृतसमाकजामिकर(?) ।
ो दौर्भाग्यमापन्ना जायते सूकरि(री)सु(पु)नः ॥१६५॥
यहृसनेपन्नीस्थालीपाकादिकर्मसु ।
ति श्रुतिसिद्धा वै पित्र्ये पाके तदैव हि ॥१६६॥
र्या विद्यमानायां मद्रजोदर्शनात्परं ॥१६७॥
॥ कुर्यात्पाकंपत्नी(नी)त्ययं प्रतिपत्स्यम् ॥१६८॥
ताः पितरस्तस्य (अथ)मान्यानिराश्रयाः ।
ासहिता नित्यं =स्नुल्या दिवानिशम् ॥१६९॥
ाविलाः मानदुग्रा आसंमानमनोरथाः ।
मपि सपत्नी शपन्त्यथ दिवानिशम् ॥२००॥
मयैव स्मर्त नित्यं भोजनकांक्षिणः ।
र्शनतः पूर्वं तादृशं ’धर्हि ताः स्त्रियः ॥२०१॥

अशक्तयोग्या अपि ताः सजन्मजननाशनाः ।
पितृणां प्रत्येकमपि महोत्सवमानये (न्ये) ॥२०२॥
मधुमधुसारणं पाकशालायामादिशासनम्(?) ।
पयोदधिघृतमधुशर्करान्नभोजनम् ॥२०३॥
अपकपूर्णमधुगन्धमाश्रनामननंसयः ।
सभा न धनिकरणमपर्णन कृतायपि(?) ॥२०४॥
अत्यंतामनन्नातीव (?) कार्याभयति केवलम् ।
न चेमं जन्मयैव्यर्थं प्रमाणैरेवं न संशयः ॥२०५॥
स्नुषाणामपि पुत्राणां पितृकार्यममन्ययात् ।
सदयं तत्कथितं सद्भिः न चेत्तरं न सिध्यति ॥२०६॥
पुत्राणां पितृकृत्येषु पृथिवीते तु इति संमतः ।
सत्क्रन्नद्रव्यसाक्षिप्रहरतस्पर्शन(?) कर्मणः ॥२०७॥
कारमुपितृत्वतोतीव (?) पुत्रत्वं सिध्यति सा ।
श्रुतिःप्राह शिक्षा पुण्या द्विव्या शातपथाह्वया ॥२०८॥
तस्मात्पुत्राः श्राद्धदिने पितृणामतितृप्तये ।
तुष्टये च स्वयं पक्वा(तस्मात्)त्सर्ववस्तु(सद्)नि भाजने ॥
निक्षिप्तानि स्वमर्यादाजनेन तु ततः परम् ।
सम्यग्विलोक्य संप्रोक्ष्य गायत्र्या कूर्चवारिणा ॥२१०॥
विप्रहस्तेन मंत्रेण स्पर्शनं भावशुद्धितः ।
कारयित्वाऽतियत्नेन पत्न्यर्पितजलेन च ॥२११॥
दानं कुर्यात्तदन्नस्य नो चेत्सर्वं तु निष्फलम् ।
न देवैस्तदा(ज्ञ)पात्रेण(?) प्रेतपर्पटकेन च ॥२१२॥

नैपालकं चलेनादि गन्धद्रव्येण वा पुनः ।
ते वै यवैः पुष्पकालैः पुण्यदेशोद्भवैरपि ॥२२१३॥
तीर्थैः पवित्रैः परमैः वाद्यै(ध्रौ)गसुमनोरपि ।
उच्छिष्टेन च दिव्येन शिवनिर्माल्यतोऽपि वा ॥२२१४॥
वमनेनातिसौलभ्यतृप्तिकारकयन्नुतः ।
राजतेन च पात्रेण महाभिश्रावणेन च ॥२२१५॥
तृप्तिर्न जायते तेषां किंतु तत्पुत्रं(तत्पुत्र) हस्ततः ।
हुतेन तद्विप्रहस्तसंपृक्तैः क्षणपूर्वतः ॥२२१६॥
सम्पत्स्वपि तपोत्साहा (तत्काला) दानतोऽत्यंतमुद्दिश्य ।
तृप्तिस्मार्तविधानोक्ततोयं समाप्लाद्ये तु तत्परः ॥२२१७॥
आत्मनो वापि दरिद्रो वा यस्तु संपादितं तु यत् ।
द(त)द्धार्यासुरगन्धमयं सर्वो(र्वौ)षीनं पिधानतः ॥२२१८॥
कारयित्वा स्वयं चापि कृत्वा शुद्धमनाः शुचिः ।
अग्रे महानचार्याद्(?)सुम्नतः भोक्ष्य चक्षु पत्र ॥२२१९॥
प्रक्षाल्य प्रोक्षयित्वा च मंत्रामंत्रक्रियादिना ।
दद्यात् पितृभ्यानितराम्नुमुत्सव महत्फले ॥२२२०॥
अनिपतनमपर्वनात्क्षेपदं च सर्वोत्तमम् ।
अदृष्टमरणपर्यायिनं अपोक्षितमनादिशम् ॥२२२१॥
पितृभ्यो न भवेद्यत्तु तस्मात्तन्न तथाचरेत् ।
यदन्नु यज्ञमानेन न दत्तं दीक्षितं(?)न तु ॥२२२२॥
तदपरोक्षितं वदत्यन्यायतादनुमोदन(?)।
भोक्ता चोरो भवेन्नरः सन्मानमदाद (दन) सः ॥२२२३॥

तस्मिन्नावाहिता ये चा पितरः खलु तत्क्षणात्।
यमेन छिन्नजिह्वाःस्युः तदोपस्य निवृत्तये ॥२२४॥
श्राद्धान्ते वामदेवाय महामंत्रजपः परं।
ह्यानज्ञानैकतादृक्तादुत्पन्नाघस्य शान्तये ॥२२५॥
उपायःकल्पितःक्वापि वामदेवादिभिः पुरा।
तस्मात्सम्यक्प्रवक्ष्यामि श्राद्धे कर्त्तं मतां पराम् ॥२२६॥
औपासनाग्नौपचनं प्रवरंचोत्तमोत्तमम्।
न चेत्पाकादधो यत्तत्तदन्नं होमकर्मणा ॥२२७॥
समये चाप्यधिश्रित्य प्रोक्ष्याज्यस्याभिघार्य च।
हुत्वाभिमृश्य तत्सर्वमन्नशाकफलादिकम् ॥२२८॥
प्रोक्ष्य मंत्रेण गायत्र्या व्याहृतीभिस्ससारकम्।
स्वपत्नीकरनिर्मुक्तं तत्पात्रे स्वकरान्मृते ॥२२९॥
कारयित्वाथस्पर्शयित्वाथ(सर्व) (?) मंत्र विधानतः।
तत्पात्रधारणं कुर्यात्प्राचीनावीतिनाखिलम् ॥२३०॥
तदाज्यपात्रस्पर्शञ्च कारयित्वापि सैन्धवं।
पात्रयन्तरेण संसृष्टं तद्विधाय च (?) ॥२३१॥
जलपूर्वं प्रदद्यात्तु पितृतीर्थेन तत्परम्।
पृथक्प्रदानाभावेन ह्यग्नौकरणलोपतः ॥२३२॥
पिण्डदान एहीति पुनः श्राद्धं परेऽहनि।
चमनेष्वाविरस्यनष्टावेलद्भयोः (?) ॥२३३॥
इत्यादत्यादे(दु)त्क(के)न (?) पुनः श्राद्धं परेऽहनि।
अभ्यादिष्वर्गादित्यान्त्यं मोक्षयोः परस्परम् ॥२३४॥

पृथिवीतेति मंत्रेण पुनः श्राद्धं परेऽह्नि ।
यजमानाप्रोक्षणेन हविषामनवेक्षणात् ॥२३५॥
पाकात्परं तद्दिनेऽस्मिन्पुनः श्राद्धं परेऽह्नि ।
पत्नीवचनसामर्थ्यो सति तस्य तु पैतृके ॥२३६॥
तृप्ति(प्ती)करणवा(शा)हित्यात्पुनःश्राद्धं परेऽह्नि ।
पुनः फलानां तद्युक्ता(?) पत्न्या अपरिवेषणात् ॥२३७॥
भमायनयनाकार्यद्विजाणानं पदे पदे ।
यजमानस्य भुक्त्यंते पूर्वं द्वा(ध्य,न्नभक्षणात् ॥२३८॥
तत्राक्षितपअपून्यात् (?) तथातस्यामसर्पणात् ।
आदिमध्यावसानेषु स्वकीयजलपात्रतः ॥२४०॥
स्वपत्न्यानीतसद्गीत (?) पानीय प्रभवून्यतः ।
निरन्तरैक तद्दृष्ट्वा पुनः श्राद्धं परेऽह्नि ॥२४१॥
आदिमध्यावसानेषु संप्रवीक्षणप्रभयोः ।
पद्धीरपायजमानस्य पुनः श्राद्धं परेऽह्नि ॥२४२॥
तद्धोमा दीयनावेल (?) प्रापानाविमसंतान् ।
ततःपिण्डंददत्तापि(?) पुनः श्राद्धं परेऽह्नि ॥२४३॥
यस्मै यस्मै तद्दिवसे पुत्राना तप्रदानतः ।
तच्छ्राद्धं गत एव स्यात्तदेवं न संशयः ॥२४४॥
तद्दिनेनिरयत्नेन दोमयेनानुकंपत्स्म (?) ।
स्वपानेद्दयनवभाग (?) न पुत्रोत्पद्यतेऽहति ॥२४५॥
दम्पत्योर्गर्भिणीवा तत्रपावपूनामपि ।
गुरुतल्पंवरणं नैव महाकर्मदिनद्विजः ॥२४६॥

विप्रोद्वाग्मनतः पश्चाद्दाद्धकार्यनंतरं (?) ।
फलांश्याशेन विहितं न भेल्लादं निरर्थकम् ॥२४७॥
तन्त्रं श्राद्धदिने गमादं यनान्तरपूजनम् ।
न कुर्यादेव नितरां यदि कुर्यात्प्रमादतः ॥२४८॥
कुर्यात विर(शिर)श्छेनं तस्मात्तं परिवर्जयेत् ।
दानाध्ययनदेवाश्च जपहोमप्रनादिकान् ॥२४९॥
न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राशिश्राणां विसर्जनात् ।
संनिधाने देवविप्रयोः श्राद्धं विधिनाशुचिः ॥२५०॥
अक्रोधश्चात्वरोशोय पुनः स्नात्वा समाचरेत् ।
विश्वेदेवान्विधाश्राद्धे नान्यान्देवान्समर्चयेत् ॥२५१॥
सपिण्डीकरणे तस्मिन् विष्णुमन्त्रेति केन च ।
शिवं शैवाः समभ्यर्च्य केशवं वैष्णवा अपि ॥२५२॥
श्राद्धं कर्त्तव्यमेवेति कुर्वन्ति प्रवदन्ति च ।
न तथा वैदिका कुर्युः किन्तु श्राद्धार्यारि(?)पुनः ॥२५३॥
भिन्नपाकाद्देवपूजावैश्वदेवादिकं चरेत् ।
देवपूजादिकं यत्तु प्रदक्षिणविधानतः ॥२५४॥
यज्ञोपवीतिना कार्यं पुण्ड्रधारणपूर्वकम् ।
तत्पैतृकं कर्म यत्तदप्रदक्षिणपूर्वकम् ॥२५५॥
प्राचीनावीतिनाकार्यं नापुण्ड्ररहितेन वै ।
तदेतत्कर्मयुगलं परस्परविलक्षणम् ॥२५६॥
तेजस्तिमिरयोरेतत्तद्वेषेणैव (?) केवलम् ।
एतत्कर्मैककरणं पितृशेषेणतत्परम् ॥२५७॥

वैश्वदेवैककरणं देवपूजाकृतिश्च सा ।
द्वयमेतदनुष्ठानं न तु प्राणादिकं स्मृतम् ॥२५८॥
अयमेव महामार्गः श्राद्धीयेऽह्नि संस्थिते ।
पितृपूजानन्तरं तन्निखिलं देवतार्चनम् ॥२५९॥
ब्रह्मयज्ञादिकं कुर्यादन्यथा तद्विनश्यति ।
देवतार्चननिर्माल्यं तच्छ्राद्धकरणे किल ॥२६०॥
बाधकानि भवन्त्येव सम्भवन्त्यपि केवलम् ।
महादेवार्चने विष्णो नैवेद्यायान्नमुत्तमम् ॥२६१॥
सुवर्णं कारयित्वैव पाकपात्रात्तदन्यतः ।
कुर्यान्निवेदनमिति तद्विधानं धूर्तेरितम् ॥२६२॥
पैतृके कर्मणि पुनः पायसुष्णान्नसमन्वितम् ।
पुलुम्भसिधत्तपात्रस्थादन्नमुद्धृत्य (?) यत्नतः ॥२६३॥
कृष्णादिना ततो भूयः तत्पिधायोपसंस्थिते ।
तदुद्धृतं पिण्डपात्रे निक्षिप्यदानवेत्ततः ॥२६४॥
अपूर्णं परमान्नं तद्भाण्डवर्जितमेव (?) च ।
अपूपान्यपि शाकानि सूपादीनि च कृत्स्नशः ॥२६५॥
तेन मंत्रेण तन्मौख्ये पृथिवीत्यादिना तथा ।
दद्यादिति विधानं तत्तुच्छं नाम पातकं च ॥२६६॥
धर्मभेदादिकं हि तच्छेषेण पुनः कथं ।
श्राद्धस्य कारणं कुर्यं भवेदिति च पश्यतः ॥२६७॥
निवेदनानंतरं च (?) शामंबलादिकाच तु ।
श्राद्धस्य देवतर्पणकालस्य पतिकाश्रमं ॥२६८॥

अपराह्णे भवति तस्मिन्नेदिनमोदनम् ।
उत्पादितमिदं पूर्वं सुनोष्णं तत्कर्म पुनः ॥२६९॥
अनन्तोष्यामसमायुक्त(?) श्राद्धयोग्यं भविष्यति ।
कर्म यद्देवपूजार्थस्यं एवं तद्धि(?)महात्मनि ॥२७०॥
दैनन्दिनं प्रकथितं श्राद्धं तत्प्रातिपत्स्मरम् ।
नैमित्तिकमिति प्रोक्तं तेनतद्धाप्यते परम् ॥२७१॥
योधोनमात्यत्तथाय(?) सम्यगेवयद्दाम्यहम् ।
एतस्य करणात्प्रभात्तत्कार्यमत एव वै ॥२७२॥
एतच्छ्राद्धः प्रकथितः नान्य इत्येव सूरिभिः ।
तस्माच्छ्राद्धं तद्दिनैव अकृत्वैव कदाचन ॥२७३॥
कर्मान्यम्मोहतः कुर्यात्तद्धि सद्यः प्रणश्यति ।
यद्वैदिकोक्तं तत्कर्म ह्यग्निहोत्रं तथेष्टिकम् ॥२७४॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च तथैवाग्रयणं पुनः ।
औपासनं च कृत्वैव तस्मिन्नग्नौ ततः परम् ॥२७५॥
कुर्यात्त्वत्याह्निकर्माद्धं (?) इत्येव मनुशासनम् ।
वैदिका दुर्बलं कर्म दर्शादिःश्राद्धकर्म तत् ॥२७६॥
अपि स्मार्त्तं यथा भूयः तेन बाध्यतरो भवेत् ।
वैदिकानन्तरं कार्यःस्मार्त्तकर्मसुसन्ततं ॥२७७॥
सर्वेभ्यःस्मार्त्तकर्मभ्यः श्राद्धमेकंमहत्स्मृतं ।
न साद्या(सद्यः)स्मार्त्तकर्म किंतु वैदिक कर्म हि ॥२७८॥
प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वादग्निहोत्रसमं च तत् ।
औपासनं च कथितं तद्द्वयंतेन कृत्वैव(?) ॥२७९॥

विधिनायश्रात्तश्राद्धं (?) तत्परं चरेत्।
नान्यस्मिन्नपि तत्कुर्यात्कर्मकार्यं(न्य)न्तु तद्दिने।
कर्मान्तरावशिष्टेन द्रव्येण न कदाचन ॥२८०॥
नैव कुर्यात् तथा श्राद्धं आपन्यापैतपेक्षत (?)।
(न)चेद्गतानि श्राद्धानि जातकादीनि कालतः ॥२८१॥
संप्राप्तान्येकदा यापि शिष्टद्रव्येण तत्परम्।
न कुर्यादेव सहसा यदि कुर्याद्विनश्यत(ति) ॥२८२॥
कर्तव्यत्वेन संप्राप्तान्यपि कर्माणि यानि वै।
तानि सर्वाणि भिन्नानि प्राधान्येन पृथक् पृथक् ॥२८३॥
कुर्वीतैव प्रयत्नेन पूर्वशेषेण वस्तुना।
कुर्यात्तदुत्तरं कर्म नैवं चेति हि निर्णयः ॥२८४॥
पुराप्येता आश्यशेषेण समकालेन(?) कर्मणोः।
संप्राप्ते संस्थितयोर्वं मोऽप्यौ कृत्वायतत्परम्(?) ॥२८५॥
परतन्त्रोऽनुष्ठयता कर्मक्रममभूत्परम्।
इति भूयस्तकाराधमस्योपनयनं किल ॥२८६॥
तस्मात्कर्मावशिष्टेन येन केन च वस्तुना।
कर्मान्तरं न कुर्याद्धि कुर्याच्चेन्निष्फलम् ॥२८७॥
भवत्येव न संदेह श्राद्धे त्रि माय चेत्तुव(?)।
एक दैवत्यश्राद्धकर्मणि (?) ॥२८८॥
द्वितीयवारनिश्चितं तार्तीयोक्तेन वै सह।
न तन्त्रमप्रवात्मैव समनीप्यक्रा(?)मनुत्तमम् ॥२८९॥

यत्र यत्रैक देशस्यापूर्तिमत्र मया भवेत् ।
प्रायाग्निदेशमथाग्नेदयविनियेनयैव (?) वै ॥२६०॥

एकदैव भवो नूनमभवन्नान्यथा हि मन् ।
कर्मणः कस्यचित्तस्माग्निद्वरश्रेण कर्मणः ॥२६१॥

अन्येषां करणंन्याय्यं न भवेदिति वै मनुः ।
कर्मभ्योनिखिलेभ्योवै सूर्यमदमहाधिकः ॥२६२॥

पैतृकं कर्म परममधिकंचोत्तमोत्तमम् ।
तादृशं तत् परं (कर्म) कर्मशेषैकयन्तुना ॥२६३॥

न्यायेन शक्यते कर्त्तुं कथंकाकेभिनेत्तरम्(?) ।
कर्मास्ते त्रिषु लोकेषु महद् ब्राह्मण्यमूलकम् ॥२६४॥

तस्यैवैवं महाघोरे संकटे समुपस्थिते ।
कथंतत्कुस्थिलोके (?) कलौतिवृति केवलम् ॥२६५॥

विप्रत्वं श्राद्धसंध्याभ्यां कलौ नान्येननिर्वृतिः ।
तस्मात्तु तद्द्वयं सम्यक् भक्त्यानुष्टेयमेव वै ॥२६६॥

अंध पंगुजदद्भ्राम्ताः (कश्चार्तो) ह्रीयोमूको चिकित्सकः ।
उन्मत्तो बधिरः काणः वैश्यः क्षत्रिय एव च ॥२६७॥

भिन्नभिन्नोपनयनाः वैश्य क्षत्रिय एव च ।
त एते निखिला ज्ञेयाः विधर्माभि.(?)नयेज्जयः ॥२६८॥

दर्शनादिप्वयोगत्वमंधादीनां स्फुटन्तरम् ।
तेन तत्कर्म वैकल्यं जायते किल तेन वै ॥२६९॥

सर्वसाम्यं भवेन्नैव तेषांतस्मात्सहस्रमभिः ॥२७०॥

संधाद्योविशेषेण असंन्यास्ते निरंशकाः ।
तेषामुपनये ग्रामे वैलक्षण्यं महद्भवेत् ॥३०१॥
तदाभ्युदयकं सद्यः कर्त्तव्यत्वे न कोर्त्तितम् ।
■ पूर्वेण द्विशेषेण श्रुतत्वस्तूत्तरायणम् ॥३०२॥
कत्सातु (तुनुवस्तु) कालोयिशेयः नक्षत्रं पुण्यदैवतम् ।
स्नानं त्वलंकृतंकृन्याद्योपनेष्यति येवलम् ॥३०३॥
संकल्पश्च विधानेन याघमव्य विधानतः ॥३०४॥
यज्ञोपवीतसूत्रेण कृत्वात्तमुपवीतिनम् ।
तथायोगंप्रकुर्यांच सर्वतंत्रं विशेषवित् ॥३०५॥
प्रागुक्तथाविभूत्वय स्वयं मंत्रक्रियाक्रमेण् ।
यात्रिकं समिधं तूष्णीमाधापयतितत्वरा(?) ॥३०६॥
तूष्णीमभा समाप्याय्य समंत्रामंत्रतो वा ।
गर्वं कुर्याद्विपत्ने (मौ) न तद्दारयं यदेव हि ॥३०७॥
यंत्रमन्त्रे प्रकुर्वीत कृत्स्ने तद्वाघकारिके ।
गर्भमिन्नपि सत्कार्यं स्वयमेव क(य)दातदा ॥३०८॥
मभवेद्दिनि तत्कर्ता मौञ्जीकृत्यायन(त)धरेण ।
यातिदं सामर्थ्यं पूर्णं आधापयति तत्वरा(?) ॥३०९॥
उर्वीकृष्णाजिनं तथा देवताश्व(?)मदानंबदनमदण मेव च ।
शाश्वं गर्वं प्रकुर्वीत यथाशाख्यं यथाविधि ।
स्वशाख्यं निखिलं कुर्यात् स्वमन्त्राथसंहितः ॥३१०॥
यद्दापयं न्तेदेव मातकायो विचारणा ।
शुभत्रयति मंत्रं च कर्मे कुर्यात्तरं तथा ॥३११॥

ब्रह्मचर्यमित्यादीनान्तुलोप एव परस्ततः।
प्रतिप्रश्नप्रवचननिवृत्तिस्तदनंतरम् ॥३१२॥
मंत्रेष्यसावितिस्थाननामनिर्द्देशवर्जनं।
प्रधानहोमं विधिना कुर्यादेवाखिलं क्रमात् ॥३१३॥
चरेद्देशत्यागमखिलं (?) स्वयमेव वदेदपि।
अथ यश्चजपादीनामन्ते ब्रह्मणि संस्थिते ॥३१४॥
तूष्णीं कूर्चं ततो गृह्य स्वयं तस्मिन् सुखेन ये।
उपविश्य विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् ॥३१५॥
अभ्यर्चेति क्रमेणैव व्याहृतीभिर्विधानतः।
सम्यगुच्चारयेदुच्चैः प्रयत्नेनाधिकेन वै ॥३१६॥
तदर्धोनं कारयीत चिरकालेन वायतन् (?)।
उच्चमम(च)दनेनालं बधिरस्य विशेषतः ॥३१७॥
पंग्वंधशोजडभ्रांतक्षीणपाद्यैकरोगिणां।
यथा योग्यं यथाशक्ति वाचयित्वैवतामनून् ॥३१८॥
अरिमर्वान्मनूराममस्मृसद्विजायद्दून् (?)।
वरस्थानव्यामिश्रार्यमभ्युपस्थानमेव च ॥३१९॥
मनत्रवचनंचापि सत्या शक्तौ यथामति।
गयार्थातंनर्थेचरयान्मन्त्रभिक्षादिकं तथा ॥३२०॥
मत्र ते मनयर्थाय (?) अल्पग्रहणमाचरेत्।
यरयादिनत्रशान्ते(?) [illegible] पानशादिक माचरेत् ॥३२१॥
मूकमात्रमयकोन्येको(?)विशेषोच्यतेऽधुना।
प्रधानहोमग्रध(च)मध्याद्धोमाकविधानतः ॥३२२॥

चरुं कृत्वाऽथसावित्र्या हुनेदेकाहुतिं तथा।
स्वयंकृत्वाखिलं कृत्यं यथायोग्यं यथा तथा ॥३२३॥
पश्चात्तदत्तकोऽस्मिन्नुपविष्टो (?) जनोऽथवा।
दधिघृते चापिसावित्रिवाराद्यकया(?) ॥३२४॥
लेपयित्वा च संपूज्य ध्यानावाहनकर्म च।
धूपदीपौ विधायैवं नैवेद्यं चप्रदक्षिणम् ॥३२५॥
नमस्कारानूनीराजनोपचारानशिष्टपि(?)।
स्वयंकृत्वा तेन चापि कारयित्वा च सत्परम् ॥३२६॥
तत्संस्कारपेद्विधानेन तेनासौ कृतकृत्यताम्।
प्रयातीति विधिमाह ततो नित्यममी पुनः ॥३२७॥
संध्यात्रयंचाभिलषक्रियया सर्वमाचरेत्।
ब्रह्मबीजसमुत्पन्ना माहात्म्यादुत्तमं (?) परम् ॥३२८॥
अंतर्मायद्विजेष्वेव प्राप्नोति किल नान्यथा।
न मंत्रैकस्य संस्कारो विद्यते सर्वथा ह्ययं ॥३२९॥
सर्वसामग्न्येव भजे न योग्यो द्रव्यवययोः।
यद्यर्थं तनयः पित्रोरेवराचमवेद्भर्(?) ॥३३०॥
पैतृके कर्मणि तथा प्रता (?) संस्तुधार्मिकः।
तत्कार्यं हे चतःकश्चिन्मंत्रोच्चारकोभवेत्।
तन्मंत्रकृत्प्रकारेर्व दुराद्दूगतो भवेत्।
तेनैव नहिशाखाऽहं लिखितं कारयेत्तया ॥३३१॥
पुत्रान्तरस्ये तत्कार्ये मूलपंक्त्यादयस्तदा।
निरंतराहवर्जिताः (?) तत्कालाद्यादिपर्यंतम् ॥३३२॥

वैदिके का(लौ)किके कृत्ये न साम्यं स्यात्तु पंधुभिः।
निखिलान्नार्णवस्थैः कृपया ते विमत्सरैः ॥३३३॥
पालनीया गोपनीया रक्षणीयाश्चसन्ततम्।
स पंक्ति योग्य अस्पृश्याः द्विजानेतु नृपेस्समाः ॥३३४॥
क्षत्रियश्चेत्समा वैश्याद्दूर(त)श्चे(श्चे)ज्जधन्यजैः।
न विप्र पंड्मा(ह्क्तौ)राजन्यः सुश्येयोभोजनादिषु ॥३३६॥
एवं राजन्य पंक्त्याच्चेद्दूरजोक्षयउच्यते।
उरव्यपंक्तौ शूद्रोपि नोपविश्यतमो भवेत् ॥३३७॥
राजन्यमहुक्तौ तु ब्राह्मणस्य पृथक्स्मृता।
पंक्तौसदा तथा वैश्य(?)महुक्तौनृपस्य च ॥३३८॥
विप्रस्य वा पृथक् पंक्तिर्न समान्यत्रकुत्रचित्(?)।
पार्श्वयोरभिमुख्ये वा पश्चाद्वा पंक्तिरुच्यते ॥३३९॥
सवनं भिन्नजातीनां पश्चाच्छूद्रस्य नैकदा।
समकालश्चुनः प्रोक्ता द्विजानां पंक्तिभेदतः।
श्रपाणामप्येकदैवभोजनंविधिचोदितं ॥३४०॥
समानमु(मु)किर्मर्यादासत्तञ्जातिषु संततं।
अंधपंगुजडोन्मत्तमूकादीनां तथैव वै ॥३४१॥
समा पंक्तिः कदाचिन्न कर्मन्यूना यतस्तु ते।
भिन्नपंक्तौ भोजनीयाः समकालेपि सन्ततं ॥३४२॥
समानपंक्तौयदि ते भोजिताः प्रत्यवायिनः।
भवंत्येवात्र संदेहो नैवेति ब्रह्मवादिनः ॥३४३॥

अथ पंगुजडोन्मत्तमूकादिसमभोजने ।
प्राजापत्यं प्रकथितं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ॥३४४॥
अंधस्य मंत्रसामर्थ्ये यद्यप्यस्ति तथाप्यति ।
समीक्षणादि कृत्येषु यतो वैकल्यमेव तत् ॥३४५॥
स्पष्टं प्रत्यक्षमेतत्तु न सर्वैस्मद्विजैस्समः ।
पद्भ्यां गमनकृत्येषु वैदिकेषु निरंतरम् ॥३४६॥
वैकल्यं स्पष्टमेवैतत् तद्द्वारा तस्य वैफल्यम् ।
ब्राह्मण्यपरिपूर्तिर्न जडोन्मत्तौ तथैव हि ॥३४७॥
मूकस्य मंत्रमात्राभ्यासाभावादेव निरन्तरम् ।
ब्राह्मण्यलेशोऽपि कथं तस्य स्यादिति पश्यत ।
ब्रह्मवीर्यप्रेमात्रसमुत्पत्तिमहत्त्वतः ।
पुनस्तन्मंत्रकार्यैश्च न भवेद्भिन्नजातिकः ॥३४८॥
हिरण्यसम्पूर्णोऽपि विप्रत्वमपि नास्ति तत्क्वचित् ।
वसुधर्मतः योगेन क्षत्रवैश्यसमो जनः ॥३४९॥
शाखादीनां विप्रसाम्यं कुतो नास्तीति चेच्छृणु ।
प्रोच्यते कारणं तत्र तदोपनयनं मतम् ॥३५०॥
ऋतुस्वस्थानतः पूर्वं स्वस्वाश्रमाद्यतः परम् ।
दण्डभेदात् क्रियाभेदाद्विवाहादिविभेदतः ॥३५१॥
वेदाध्ययनभेदाच्च तथा भिक्षाकभेदतः ।
सर्वगाय च महत्त्वोक्तं तारतम्यं निरंतरम् ॥३५२॥
तेन सर्वेऽपि विप्रस्य नानुयान्ति पदं मतम् ।
साम्यं न सर्ववंशे हि देवानामपिदुर्लभम् ॥३५३॥

सवर्णं धर्मनीतस्य चतुर्जन्मनगराणां ।
संस्कारं पूर्वमाजीर्णं सर्वोऽस्त्वनघात्मना. ॥३५४॥
यद्वै स्वगोत्रान्ततु स्वधर्मं पितुर्गते ।
अमावस्यादिनि स्नाने प्रवर्णास्य सदैव. ॥३५५॥
संपूज्य पितॄन् स्वस्मात् सर्वेष्वपि स्थिताः ।
कृत्येषु वैदिकेष्वेषु पूर्वास्त्वपितृष्वपि ॥३५६॥
ते शुद्धगोत्रिणः स्युर्वै सदा वक्तुं समञ्जसम् ।
अभ्यर्थुणा तेन होत्रा शक्यतेऽन्यस्य नैव हि ॥३५७॥
अन्यगोत्रप्रविष्टस्य सुतो यः पूर्वगोत्रभृत् ।
परमदानपूर्वं वै श्रार्णानामन्यगुलया ॥३५८॥
तत्पुत्रपौत्रपर्यन्तं तस्य सन्तंततेरपि ।
पित्राद्युच्चारणे सम्मिन्यतृके समुपस्थिते ॥३५९॥
तस्मान्न शक्यते यस्मात् स्वपुत्रादिकं न्यमुः ।
दत्तसत्पुत्रतत्पुत्रतत्पुत्राणामतोऽखिलाः ॥३६०॥
वेदप्रोक्ताःक्रियास्सर्वा स्थानंकस्तु समञ्जसम् ।
प्रवरोक्तयोग्यतायाः अभावान्न्यंगनैच्यके ॥३६१॥
तत्संततौ चतसृणां(त्रयाणां)स्यात्पूर्वाणां हॆन्यमुत्तमम्
तच सम्यक् प्रवक्ष्यामि सुस्पष्टं शृणुताधुना ॥३६२
त्रिष्वेष्वाद्यःत्यक्तपिता पश्चात्त्यक्तपितामहः ।
प्रपितामहानसंत्यागी क्रमात्ते वर्णिताःकिल ॥३६३
तत्र यद्यपि दत्तस्तु शुद्धवत्प्रतिमाति हि ।
पित्रादित्यागशून्येन सर्वपित्र्येषु संततम् ॥३६४॥

९ सम्प्रदानमन्यथानर्थ एव वै।
य शनै.कालात्तं गृह्णन्जनसन्निधौ ॥३८६॥
सद्यः प्रकर्त्तव्यः व्याहृतीभिर्घृतेन वै।
ाय पितुर्गोत्रात् स्वत्वसंपादनाय च ॥३८७॥
वेशसिद्ध्यर्थं प्रतिगृह्य च तं पुनः।
होमं व्याहृतीनामाज्येनाष्टोत्तरं शतम् ॥३८८॥
त्वेति मन्त्रेण संतत्यै कर्मणेति च।
तलपानश्च कुर्याद्यच्चैव तन्त्रतः ॥३८९॥
कृते त्वन्यसुतः कर्मणे स्वस्यकालतः।
यं प्रभवेत्पश्चात्तज्जातस्तु स्वकं सुतम् ॥३९०॥
प्रार्थनापूर्वं व्यूहयित्वाखिलानपि।
हद्भ्य मन्त्रेण नमस्कृत्वाखिलान्स्वकान् ॥३९१॥
तं सहस्रं वा परं प्राञ्जलिरास्थितः।
मपश्यन्तो परं संगृह्य मामकम् ॥३९२॥
न ते यूयं कृपया स्वीयगोत्रके।
धनकृत्याय स्वीकृत्यानतचेतसा ॥३९३॥
र्थ्यं तेषां वै संनिधावेव केवलम्।
विधानेन कृत्वा कर्माणि शास्त्रतः ॥३९४॥
पुण्याहादीनि मंगलार्थानि यानि वा।
र्णाणि तत्पश्चात्तस्मिन्नग्नौ यथाविधि ॥३९५॥
तिस्सर्वास्तद्गोत्रावेशकारकाः।
विशादस्मज्जमिमंकुमारंमहसे पिता-

तस्माद्दत्तसुतो लोके भिन्नगोत्रेषु कर्मसु।
विवाहादिषु तद्वेव द्रोहिणःस्युर्न संशयः ॥३७६॥
ये देवहेलनपराः संत्यक्तस्वीयदेवताः।
स्वदेवतामकाशान्ते च्यवन्ते नात्र संशयः ॥३७७॥
तस्मात्परां गतिं दिव्यां प्राप्नुवंति न चैव हि।
पापीयसो भविष्यंति भवेयुर्नरकालयाः ॥३७८॥
तद्दाने तु यथापित्रोः सम्मतिः परमा भवेत्।
तन्मातामहयोस्तद्वत् सम्मतिश्चेत्तदायदि ॥३७९॥
भवेद्दोषो नैव भवेदितिवेदानुशासनम्।
यथा संत्यक्तमित्रादिः लोके भवति निन्दितः ॥३८०॥
त्यक्तमातामहश्चापि तथैवेति न संशयः।
(तथैवत्यात्र संशय इतिपाठान्तरम्)।
दद्यातां दम्पती पुत्रं गृह्णीयातां च दम्पती ॥३८१॥
तयोरेकाधिकारोऽयं तद्दाने तत्प्रतिग्रहे।
संप्रदाने तु पुत्रस्य तन्मातामहयोरपि ॥३८२॥
अभ्यनुज्ञा विशेषेण वीक्षणीया तथा पुनः।
पश्चात्पितामहादीनां बन्धूनामविशेषतः ॥३८३॥
सतां गुरूणां महतां ज्ञातीनाञ्च सगोत्रिणाम्।
तद्ग्रामवासिनां चापि वणिजामधिपस्य च ॥३८४॥
पुरस्थानामपि तथा भगवत्यानीहनात्मनाम्।
सर्वेषामपि वर्णानां सम्मत्या तत्समाचरेत् ॥३८५॥

परिग्रहं संप्रदानमन्यथानर्थ एव वै।
भवेदेव शनैःकालात्तं गृह्णन्वह्निसन्निधौ ॥३८६॥
होमःसद्यः प्रकर्त्तव्यः व्याहृतीभिर्घृतेन वै।
प्रभ्रंशाय पितुर्गोत्रात् स्ववंशसंपादनाय च ॥३८७॥
गोत्रप्रवेशसिद्ध्यर्थं प्रतिगृह्य च तं पुनः।
कृत्वा होमं व्याहृतीनामाज्येनाष्टोत्तरं शतम् ॥३८८॥
धर्मायत्वेति मन्त्रेण संतत्यै कर्मणेति च।
हरिद्राजलपानञ्च कुर्यादस्यैव तन्त्रतः ॥३८९॥
एवं कृते त्वन्यसुतः कर्मणे स्वस्थकालतः।
योग्योऽयं प्रभवेत्पश्चात्तज्जातस्तु स्वकं सुतम् ॥३९०॥
तज्ज्ञातिप्रार्थनापूर्वं व्यूहयित्वाखिलानपि।
नमो महद्भ्य मन्त्रेण नमस्कृत्वाखिलान्स्वकान् ॥३९१॥
दत्वा शतं सहस्रं वा परं प्राञ्जलिरास्थितः।
वदेदेवं प्रपश्यन्तो परं संगृह्य मामकम् ॥३९२॥
तनयं मम ते यूयं कृपया स्वीयगोत्रके।
मौञ्जीबन्धनकृत्याय स्वीकृत्यानतचेतसा ॥३९३॥
इति संप्रार्थ्य तेषां वै संनिधावेव केवलम्।
प्रतिष्ठाप्य विधानेन कृत्वा कर्माणि शास्त्रतः ॥३९४॥
अभ्यञ्जनमुखादीनि मंगलार्थानि यानि वा।
तानि सर्वाणि तत्पश्चात्तस्मिन्नग्नौ यथाविधि ॥३९५॥
हुचेत्तदाहुतिस्सर्वास्तद्गोत्रावेशकारकाः।
कुलमन्यद्विशाद्स्मज्जमिमंकुमारंसहसे पित्ता-

महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्नेस्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारमोजसे पिता-
महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्नेस्वाहा ॥
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारं वस्त्रायपिता-
महस्यामुष्यायणस्यगोत्रं प्राकृतंप्रापयाग्नेस्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारं तेजसे पिता-
महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्ने स्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारं यशसे पिता-
महस्यामुष्याणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्नेस्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारं हरसे पिता-
महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्ने स्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारं भ्राजसेपिता-
महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्ने स्वाहा ।
कुलमन्यद्दाविशाद्दस्मज्जमिमं कुमारमिन्द्रियाय पिता-
महस्यामुष्यायणस्य गोत्रं प्राकृतं प्रापयाग्नेस्वाहा ।
कुलमन्येति मन्त्रेण हुत्वैकादशसंख्यया ।
कृत्वा जपादि होमञ्च हरिद्रासलिलं ततः ॥३६६॥
पश्चात्तु मातृभिक्षार्थं प्रायश्चित्ताद्विधानतः ।
एवं कृते तस्य सूनोः मौञ्जी कर्मणि तत्परम् ॥३६७॥
पितामहस्य गोत्रेण संयुक्तो जातश्त्यपि ।
सिद्धं भवति शास्त्रेण तत्पौत्रस्य तत्परम् ॥३६८॥

यदि जातस्सुतः सोऽयं सम्यक्शुद्धो न संशयः ।
स योगकर्मणा योग्यस्तदार्थत्वे हि तत्कुले ॥३९९॥
तद्योग्यता जायते च तावत् दत्तस्य संवितिः ।
अयोग्यता कवलिता त्र्यंगनैच्यप्रपीडितः ॥४००॥
सहायाद्यं शसाम्यादि कुण्ठिता श्रीवह्निष्कृतः ।
स्वजनैकप्रसादश्रीकामुकास्तज्जनाश्रिताः ॥४०१॥
कुर्वती घातकी वृत्तिं प्रतिष्ठति हि भूतले ।
कर्मठत्वसजातित्वतत्समत्वादिसिद्धये ॥४०२॥
पित्रादीनां त्रयाणाञ्च क्रमोक्तेःसिद्धिरुत्तमा।
यदा सञ्जायते सम्यक् प्रवरस्य च तत्कुले ॥४०३॥
तथैव साम्यसिद्धिःस्यात् अंशभाक्त्वञ्च जायते ।
प्राधान्यञ्च समीचीनं तथा यागाधिकारिता ॥४०४॥
यथा पुत्रस्य तातस्य श्चोभयोर्भिन्नगोत्रता ।
तदेव त्रिदिनाशौचं संस्पष्टं मातुरेव च ॥४०५॥
गांधर्वादिविवाहैस्तैर्यदि माता विवाहिता ।
तदा पितुः स्यात्त्रिदिनं तन्मृतौ सूतकं मतम् ॥४०६॥
मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिण्डोदकक्रियाः ।
कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिः ॥४०७॥
पितुश्चेन्मृतकं पूर्णं तथा मातामहस्य च ।
मातुलस्य च तत्पत्न्या यतस्तद्गोत्र्ययं स्मृतः ॥४०८॥
यत्र मातुर्विवाहे तु दानं जातन्तु(तत्स्मृतः)शास्त्रतः ।
तत्र सप्तपदाख्यं च कर्म संजायते स्वतः ॥४०९॥

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहे सप्तमे पदे।
लाजाहोमप्रधानाभ्यां प्रवेशो भर्तृगोत्रके ॥४१०॥
स्त्रीजाते सर्वकार्यैककर्तृत्वाभार ईरितः।
नित्यं पराधीनता च न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥४११॥
बाल्ये पित्रोरधीना सा पत्युरेव तु यौवने।
वार्धके तनयानाञ्च स्वातन्त्र्यं न कदाचन ॥४१२॥
कन्यादाता ब्रह्मलोकं पुत्रदो निरयं व्रजेत्।
दाक्षिण्यमपि कारुण्यं कृपा यत्र प्रजायते ॥४१३॥
पितृबन्धुगुरुष्विष्ट तत्रापदि कुलस्य च।
यदि स्यात् बहुपुत्रत्वं तदैकस्यैव केवलम् ॥४१४॥
स्वगोत्रिणे स्वान्यभ्रात्रे स्वकुलीनाय वै सते।
नैष्यन्यह्नैकरहितो लोभाशा परिवर्जितः ॥४१५॥
दीयमानस्य तस्यापि न्यंगनैच्ये यथातराम्(?)।
न भवेता तथालोच्य तस्य वृत्तिं तथाददाम् ॥४१६॥
एवमेतादृशी सम्यक् दृढयित्वेति लोकतः।
राजतोऽपि विनिश्चित्य दानं कुर्यादिति श्रुतिः ॥४१७॥
एवं दत्तस्य पुत्रस्य काले बहुगते ततः।
वैपुथिव्युभवन्येषु मातामहविवादतः ॥४१८॥
शास्त्राणि भिन्नभिन्नानि बहूनि किल सन्ततम्।
स्वमतानि मतभेदेन तस्य मातामहद्वयम् ॥४१९॥
जनन्या जनकस्येति जनको मातृकस्य च।
वंशो विच्छिन्नो बभूव किल केवलम् ॥४२०॥

विवादोऽयं परं त्वत्र तन्मात्रस्यैव जायते।
न तस्य संततिः प्रोक्ता भिन्नगोत्रप्रदस्य चेत् ॥४२१॥
आत्रिपूर्वं तत्सुतस्य तेन साकं तु पैतृके।
परं सपिण्डिमारभ्य कुमार्गः संभवेत्तु ॥४२२॥
तेन तावत्तस्य कुले जातानामात्रिपूर्वतः।
विप्रत्वहैन्यताज्ञाति भागसाम्यैक शून्यता ॥४२३॥
न्यक्कृता नैच्यतातीव तज्जनाश्रयता तथा।
तद्बन्धुमित्रपुत्रादि जनचित्तानुवर्तिता ॥४२४॥
एता भवन्ति सततं तस्मात्पुत्रं पिताद्दता।
स्वल्पागति समीक्ष्यादौ न दद्याद्भिन्नगोत्रिणे ॥४२५॥
पश्चात्तु तावता गाढं बाधकं प्रभविष्यति।
येन केनापि दुर्वारमाचतुष्टयपूरुषम् ॥४२६॥
सर्वदानानि सर्वैश्च कर्तव्यानि मनीषिभिः।
शक्तौ सत्यां विशेषेण पुण्यकालेषु तेषु वै ॥४२७॥
वेदशास्त्रपुराणादि चोदितेषु युगादिषु।
अर्धोदये महोदये चन्द्र सूर्योपरागके ॥४२८॥
धरादानं प्रशंसन्ति सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
धेनुदानं वाहदानं गजदानं तदा न सः ॥४२९॥
रथदानं वस्त्रदानं वार्षभं दानमेव च।
शय्यादानन्तुलादानं कल्पवृक्षाख्यकं परम् ॥४३०॥
गोदानं रत्नदानञ्च पुष्पताम्बूलयोरपि।
सुगंधं चन्दनमहो पवनोशीरसद्मनाम् ॥४३१॥

पृथक्कृष्णाजिनस्य महीषाजधेनुभाम् ।
गन्धोत्पन्नमार्जारकस्तूरीमृगजाम् ॥४३२॥
गुडाज्यलवणधान्यरूपिकर्पूरमृगजिनाम् ।
हिरण्यरजतस्वर्णशिलाचर्माजिनाम् ॥४३३॥
धनानामपि धान्यानां मधूनां पंचकाम्यनाम् ।
महाचन्दनकाष्ठानां कर्पूरैलामरीचिनाम् ॥४३४॥
दिव्यानां देवपुत्राणां मनुष्याणां विशेषतः ।
फलानामपि शाकानां भूषणानां विशेषतः ॥४३५॥
कम्बलानां च दिव्यानां द्विपटानां सुपक्ष्मणाम् ।
उष्णीषोत्तरधार्याणां माष्यानां सुखासनाम् ॥४३६॥
तिरस्करणिकानां च रज्जूनां दीर्घसूत्रिणाम् ।
शोभनोभयतो मुख्याः सवत्सायाः पृथक्पुनः ॥४३७॥
गोसहस्रस्य चित्रस्य तिलपद्मस्य शूलिनः ।
शूलस्य दक्षिणामूर्तेरयसच्छागमेषयोः ॥४३८॥
हिरण्यगर्भसंज्ञस्य लांगलस्य कपालिनः ।
साशिश्राण(सलिंगस्य)महामूर्तेर्भस्मरुद्राक्षयोः पृथक्॥४३९॥
महालिङ्गस्य लिङ्गस्य बाणलिङ्गस्य कर्मणः ।
ताम्रसीसादिपात्राणां दासीदासादि देहिनाम् ॥४४०॥
पुनरन्यानि दानानि पात्रदत्तानि शास्त्रतः ।
कामनारहितानि स्युः ब्रह्मज्ञानाय केवलम् ॥४४१॥
पारमेश्वरतुल्यैकद्वारा नो चेत्तु वै पुनः ।
कृतानि कामतःसद्भिः तत्तत्कार्यकराण्यति ॥४४२॥

यद्यत्कामनया कर्म क्रियते वस्तु तत्पुनः ।
सद्गमाच्छिद्रसगुणमलोभाशाठ्यसंयुतम् ॥४४३॥
मन्त्रतंत्रादिवैकल्यरहितं चेत्फलत्यदः ।
यत्किंचिदङ्गलोपेऽपि काम्यं कर्म न सिध्यति ॥४४४॥
अप्यनेकाङ्गविकलं क्रियते पारमेश्वरम् ।
तत्कर्म सफलं सद्यः भविष्यति न संशयः ॥४४५॥
तस्मात्सद्भिः सदाकार्यं कर्ममात्रं न संशयः(निरन्तरम्) ।
परमेश्वरतुष्ट्यर्थं चित्तशुद्ध्यर्थमात्मतः(मात्मनः) ॥४४६॥
स्वीयस्य दानं कुर्वीत नान्यदीयस्य वस्तुनः ।
न्यायार्जितस्य द्रव्यस्य प्रदाने योग्यता भवेत् ॥४४७॥
अन्यायेनार्जितं द्रव्यं चौर्यव्याजमोहनादिभिः ।
संप्राप्तमागतञ्चापि दानयोग्यानि नाचरेत् ॥४४८॥
कृतेन दानेन यथा परपीडा न जायते ।
वृथा तथा प्रकुर्वीत दानं धर्माय तत्परः ॥४४९॥
परपीडाकरं दानं दातुस्तद्ग्राहकस्य च ।
उभयोर्नरकायैव फलिष्यति न चान्यथा ॥४५०॥
दानेन यस्य कस्यापि यथा पीडा व्यथा तथा ।
दुःखमादिश्च संमोहस्तथा कुर्यान्नचेद् वृथा ॥४५१॥
न सामान्यं धनं देयं अल्पं वा महदेव वा ।
सामान्यवस्तुदानेन कलिं विंदति तत्क्षणात् ॥४५२॥
यत्संदिग्धं परास्वाद्यं संशयं वस्तु केवलम् ।
अदेयमेव सततं यत्तद्धर्मैकभोग्णा ॥४५३॥

शुद्धं मत्वेन सुस्पष्टमनाकांक्ष्यं परैरपि।
यद्वस्तु दीयते तत्तु परलोकाय युज्यते ॥४५४॥
यद्वस्तु स्यात्परप्राप्यं कालेन शनकैस्तु तत्।
अदेयं सर्वथा प्रोक्तं चोरस्तद्ग्राहकश्च यः ॥४५५॥
क्रयश्चतादृशस्यैव वस्तुनः विधिचोदितः।
कर्त्तव्यत्वेन तद्भिन्नं वस्तुनो न कदाचन ॥४५६॥
राजतत्तुल्यतद्भृत्यतत्प्रेष्यपितृबन्धुभिः।
तत्समैर्बलयद्भिर्यद्दत्तं सिद्ध्यति संततम् ॥४५७॥
तद्भिन्नैर्दुर्बलैरन्यैः दत्तं यच्छास्त्रवर्त्मना।
विशुद्धागमनं प्राप्तं चेत्सिद्ध्यति न चेतरत् ॥४५८॥
यस्य प्रदानकर्तृत्वं शास्त्रागमसुनिश्चितम्।
तेनैव दत्तं सर्वत्र सिद्ध्यत्येव न चेतरत् ॥४५९॥
भगिमहेण लब्धाय भूमिमाप्तोऽथ वर्णकः।
माचास्यम्मीमनामा वा विशासंमायलादितः ॥४६०॥
तेषां प्रतिमाहयिता यजमानस्स एव हि।
कर्ता कारयिता चापि स्वामी गोता प्रयत्नतः ॥४६१॥
स एव सर्वं कथितः निग्रहानुग्रहादिकृत्।
यदि तेन कृतान्येषु कृतयो वर्णकादिषु ॥
कांस्त्र दत्तागमो वा ताः पुनःश्रेष्ठयान्यथा।
धर्मेरण्या वापि स नाम्ना पतिरेव हि ॥४
राजा यथा कृतान्येषु कृतयो द्विजदत्ते।
सत्मान्यमनन्दा कर्ता तत्र राजा प्रभुस्सदा ॥४

विशेषेण प्रदत्ताश्चेत्तत्तन्नाम्ना पृथक् पृथक् ।
अंशभेदेन तत्रापि तदा सर्वे तथा मताः ॥४६५॥
तावन्मात्रस्य कर्तारः मिलित्वा निखिला अपि ।
तस्मिन् ग्रामे तु कर्तारो निग्रहानुग्रहादिषु ॥४६६॥
तत्तत्स्ववृत्तिषु परं कर्तृत्वं पृथगुच्यते ।
स्ववृत्तिभिन्नवृत्तीनां न कर्तारस्तु ते स्मृताः ॥४६७॥
भूमेर्ग्रामादिरूपाया दत्तया स्वेन वान्यतः ।
प्रभुर्नराजा कथितः कर्तारोग्राहकाः स्मृताः ॥४६८॥
देशाधश्यकस्यकार्यस्यकर्तव्यत्वे ह्यवस्थिते ।
तत्र राजैव तत्कार्यं कर्ता सम्यग्भवेद्ध्रुवम् ॥४६९॥
यतो हि जगतो राजा कर्ता दण्डयिता पिता ।
पालकश्च गुरुर्भीक्ष्न् निग्रहानुग्रहैकभूः ॥४७०॥
एकद्वित्रिचतुर्थ्यक्तिमत्प्रभेदजनाश्रयः ।
ग्रामो यदि तदा तत्र तत्तन्मात्राधिकारिणः ॥४७१॥
नाधिकस्य तु कर्तारः भवेयुरिति शास्त्रहृत् ।
सामान्यवल्लवत्कार्ये कर्तव्यत्वेन चागते ॥४७२॥
सर्वे मिलित्वा कुर्वन्ति(र्वीरन्) एकबुद्ध्यैव नान्यथा ।
स स्वामिकग्राममध्ये बृहत्कार्ये निपातिते ॥४७३॥
स्वाम्युक्तवर्त्मना सर्वं तत्कार्यं साध्यमित्ययम् ।
पक्षस्तु सर्वशास्त्राणां तत्र चापि स एव हि ॥४७४॥
निर्वाहकः स्यादित्येव जावालादिमतं परम् ।
अस्वामिकग्राममध्ये बहुद्विजनिरन्तरे ॥४७५॥

न भिन्नग्रामिणा कार्यः क्षेत्रवृत्तिपरिग्रहः ।
स्त्रीकारात्क्षेत्रवृत्तेस्तु वृत्तिमर्द्धविनिर्गतः ।
तस्मिन्ग्रामे न चान्येषु कृता यदि न सिद्ध्यति ॥४७६॥
ये प्रतिग्रहिणः पूर्वं ग्रामान्तरं सुयान्त्यम् ।
अत्युत्तमाः कर्तुमुत्या सन्त्यक्तप्रतिग्रही ॥४७७॥
महात्मनो दुर्बलोऽयं यदि तेन गतं बली ।
विधदेवकार्यकालेषु सत्कार्येऽस्मीन्महात्मभिः ॥४७८॥
समानमपि यादृ यः शुभं श्रुत्वा तु शक्तिमान् ।
तत्रिमह्यमकुर्वाणो दुर्गतिं प्रतिपद्यते ॥४७९॥
यदि स स्वामिको ग्रामस्तदा तन्मतपूर्वकम् ।
दानमाधि क्रयश्चापि कुर्वीतैव न चान्यथा ॥४८०॥
ग्रामःसस्वामिको यो वा तस्मिन्वै तदनुज्ञया ।
क्रयादिदानकर्माणि कार्याणीति प्रचक्षते ॥४८१॥
पुत्रपौत्रज्ञातिबन्धुसामन्ताद्यभ्यनुज्ञया ।
शुद्धचित्तेन यद्दत्तं तत्सिध्यति हि संततम् ॥४८२॥
अन्वये सति भूदानं सहसा यत्नमाचरेत् ।
सर्वैरालोच्य सर्वेषां पर्याप्ता भूस्थिता यदि ॥४८३॥
स्वगोत्रिणां सपिण्डानां समालोच्यैव केवलम् ।
वेदशास्त्रस्मृतिन्यायाविरोधेन ततः परम् ॥४८४॥
जनमत्या ज्ञातिमत्या बंधुमत्या सहादिषु ।
सर्वेषां पश्यतामारान् न्यायात्तधरणीं त्यजेत् ॥४८
समीपज्ञातिदुष्टिश्चेद् भूदानाद्भिन्नगोत्रिणाम् ।
शक्यते हि तदा कर्तुं तद्दानं तु न चेद्वरेत् ॥४८

दौहित्रसाम्यमात्रा येविभक्ता ह्यतु तस्य कुम् ।
नेच्छेयुरेव धर्मेण तामिच्छन्तः पतन्त्यधः ॥४८७॥
त्रिभागा ज्ञातयस्सर्वे भिन्नभिन्नाः स्मृताःपरम् ।
तत्तद्धनानां ते ते स्युःकर्तारश्चपृथग्ग्रहाः ॥४८८॥
अपुत्रस्य धनं ज्ञातेर्विभक्तस्याखिलं भवेत् ।
दौहित्रस्यैव धर्मेण न ज्ञातेस्तु कथंचन ॥४८९॥
ज्ञाती खलु सगोत्रस्य धनार्थं प्रेतकर्म यत् ।
तावन्मात्रं करोत्येव प्रत्यब्दश्च न चेतरत् ॥४९०॥
दौहित्रश्चेद्धनाभावेऽप्यस्य सर्वेषु कर्मसु ।
पुत्रेण समतो नित्यं स्वविवाहानिलेऽद्भुते ॥४९१॥
असाधारणके मुख्येऽप्यग्नौकरणपूर्वकम् ।
सर्वश्राद्धानि नित्यानि करोत्येवाजुगुप्सितः ॥४९२॥
अमात्यो न तथा कापि किं करोति स्वगोत्रिणे ।
तस्मादभावे दौहित्रजनस्य किल तत्परम् ॥४९३॥
असुतस्य धनं तत्तु प्रत्यासन्नः सपिण्डकः ।
यो वा सतु गृह्णीयादिति वेदानुशासनम् ॥४९४॥
दौहित्राणामनेकेषां समवाये सदा किल ।
(श्राद्धानि नित्यानि करोत्ये वा जगुप्सितः)।
यो वाऽत्यन्तं निर्धनः स्यात् सधर्मेण हरेद्धनम् ॥४९५॥
समवाये निर्धनानां सर्व एव यथांशतः ।
पुनश्च निर्धनेष्वेषु धनिनस्तस्यतन्मनः ॥४९६॥

यथा भवति (वदन्ति) तद्रीतिमनुसृत्य न चान्यथा।
चरेयमिति सश्रीमान् कपिलो व्याजहार ॥४९७॥
दौहित्र एव सर्वेषां पुत्राणामुत्तमः स्मृतः।
तत्समस्त्वौरसस्तज्ञः सुतश्चापि तथाविधः ॥४९८॥
अपुत्रो यद्युपस्थिश्रीः विभक्तो ज्ञातिगोत्रिभिः।
वृत्तिदानं प्रकुर्वाणो यथेच्छं कर्तुमर्हति ॥४९९॥
स्वग्रामज्ञातिसामन्तादायादानुमतेन वै।
मेषपुष्पसुवर्णाभ्यां कार्यं भूदानमेककम् ॥५००॥
सर्वाण्यन्यानि दानानि शास्त्र स्थीयानि छंदतः।
तुष्टये परमेशस्य कार्याण्येवान्वहं यथा ॥५०१॥
यथा वा कन्यकादाने गोत्रभिन्नमनन्तकम्।
तथाच्युतपदप्राप्तिसाधनं कथितं तथा ॥५०२॥
स्वगोत्रमुख्यतो ज्ञेयं भूमिदानं पुरातनैः।
कृतं कारयितव्यापि शास्त्रज्ञैरपि नैकधा ॥५०३॥
उक्तं प्रोक्तं प्रगीतं च सामादि त्रितयेन च।
अभावे पुत्रयोर्वंशे भूमिदानं ततश्चरेत् ॥५०४॥
सति वंशे वृत्तिदानं क्रयो वा तस्य नाचरेत् ॥
जाता जनिष्यमाणाश्च गर्भस्थाश्चापि देहिनः ॥५०५॥
वृत्तिमेवाभिकाङ्क्षन्ते तस्माद्वृत्तिं प्रपालयेत्।
अन्वये सति पुत्रस्य पुत्रिकाया विशेषतः ॥५०६॥
वृत्तिच्छेदं सुवं मोहादन्या निरयभाग्भवेत्।
विषमग्नो भूमिदाने शास्त्रनयवर्जितः ॥५०७॥

पात्रेभ्यो विशेषेण दद्यात् भूमिं सदक्षिणाम् ।
मिदाने भ्रातृपुत्राः भ्रातरःपितरस्तथा ॥५०८॥
तामहाः पितृव्याश्च प्रद्वेष्टारोऽपि पात्रताम् ।
ान्ति च कृपादाक्यं प्रापकाः प्रभवन्त्यपि ॥५०६॥
ात्संततिविच्छित्तौ भूमिदानं सगोत्रिषु ।
ति धर्मतो गत्या संप्राप्यैनो दुरात्मनः ॥५१०॥
ेण तु विद्वांस' स्यक्तवैरो हरिं स्मरन् ।
दिव ततो याति तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥५११॥
ारिसो दानकाले न तद्दानं समाचरेत् ।
पीडाकरं दानं महारौरवदायकम् ॥५१२॥
ातिह्रत्तुष्टिकरदानं शिवपदप्रदम् ।
ते ज्ञातिबन्धून्वा स्वयमहो बलापि वा ॥५१३॥
। भूवृत्तिबन्धुदानं सद्गतिवारकम् ।
ह्येष्वपि विद्वत्सु भ्रातृतत्पुत्रकेष्वपि ॥५१४॥
सत्सु तिष्ठत्सु नरो नारीसमोऽपिवा ।
ाश्रोत्रियो मूढो विद्वान्वा वेदपारगः ॥५१५॥
ोऽपि भूमिदानं तत्तेभ्य एव समाचरेत् ।
ज्ञातिजनो नित्यमसंततिधनार्घ्यति ॥५१६॥
र्पयं भूमिरूपं ज्ञातये देयमेव हि ।
ूपा विधवा मध्यप्राप्तसुवृत्तिका ॥५१७॥
मती साध्वी मृयमाणापि सुव्रता ।
मिं विनाज्ञातीनन्येभ्यो न निवेदयेत् ॥५१८॥

परं तद्विषये तूष्णीं कलहं नैव कारयेत् ।
विभक्ता विधवा साध्या दैवात्संप्राप्तसत्कुला: ॥५१९॥
अवशादागतमहाभृत्तिमत्यश्वतन्मुखात् ।
संप्राप्त्यैकमहाभागवाः कुमत्यो धर्मबुद्धितः ॥५२०॥
अधर्ममेव कुर्वन्त्यः स्वजनद्वेषतत्पराः ।
दानविक्रयकार्यैकयोग्यता रहिता अपि ॥५२१॥
तत्कार्यकर्त्र्यो दुर्बोधमहिम्नायाः खलाश्रयाः ।
ता विलोक्य प्रयत्नेन धार्मिको नृपतिः स्वयम् ॥५२२॥
देशात्प्रवासयेत्सद्यः तत्प्रतिग्राहकानपि ।
विधवानामनाथानामज्ञातानां च केवलम् ॥५२३॥
पाकंच्चं तथा नाद्यान् सतीनामपि संततम् ।
रंडापाकं सदात्याज्यं प्रवदंतिमनीषिणः ॥५२४॥
रंडाबहुविधाज्ञेयाः पाकायोग्याः सदा सताम् ।
अज्ञातनामका काचित् काचित्प्रज्ञातनामका ॥५२५॥
भ्रष्टाभ्रष्टा नष्टसुता सत्पुत्रा चेति सूरिभिः ।
ता एता निखिला ख्याताः मूलानामधिकारकाः ॥५२६॥
पाकक्रिया दूरगाश्च भर्त्तव्यास्साधुवृत्तयः ।
या भर्तारं [redacted] जानाति साक्षाता कथ्यते बुधैः ॥५२७॥
अत्यंतबाल्यसंप्राप्तवैधव्यात्यंतपापमूः ।
या विजानाति भर्तारं नान्यत्किमपि केवलम् ॥५२८॥
सा विज्ञातेति विख्याता विधवा सर्वरिक्तिका ।
रतिमात्रेण वा भर्तुः वैधव्यं प्रतिपद्यते ॥५२९॥

सुखदोषनिमित्तेन स्पृष्टायाविधमुच्यते।
पश्चात्तु रजसो भर्तुः संगमप्राप्य या वशात् ॥५३०॥
वैधव्यं समवाप्नोति सा स्पृष्टा विधवा परा।
नष्टप्रजा काचिदेवं विधवान्या मनीषिभिः ॥५३१॥
नष्टपुत्रेति सम्प्रोक्ता चायोग्या पाककर्मणि।
एवं सपुत्रिणी चापि स्वभर्तुर्मरणात्परम् ॥५३२॥
वैधव्यं समनुप्राप्ता सत्पुत्रविधवा स्मृता।
सपुत्रा विधवा या तु तया पाकः कृतस्तु यः ॥५३३॥
स स्वीकार्यो हि निखिलैः रण्डापाको न च स्मृतः।
सर्वा रण्डाःपाककृत्ये दूषिता स्युर्मनीषिभिः ॥५३४॥
ताभिर्यदि कृताःपाकाः कर्मिणां ब्रह्मचादिनाम्।
त्रैवर्णिकानां गृहिणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥५३५॥
न भक्षणैकयोग्याः स्युर्नैवेद्याय च शाकिनाम्।
बलीनामपि होमानां नाल्पमेवेति वेदहृत् ॥५३६॥
रण्डापाकेन यो मोहाद्देवतानां निवेदनम्।
होमं बलिं तथा भिक्षां कव्यं हव्यं न भोजनम् ॥५३७॥
ब्राह्मणानां स्वस्य चापि कुर्याद्वाकारयेदपि।
तत्सर्वं व्यर्थमेव स्यात्प्रत्युतप्रत्यवाप्यपि ॥५३८॥
भवत्येव विशेषेण तस्माचासां प्रमादतः।
त्यजेदेव विशेषेण पाकं कृत्स्नं विशेषतः ॥५३९॥
तत्कृतेन तु पाकेन यो मोहाज्ज्ञानवर्जितः।
श्राद्धं करोति पितरः तत्क्षणात्तस्य केवलम् ॥५४०॥

प्रशस्तगतिर्घोरेषु नरकेषु न संशयः ।
रंडा वैदिककर्मा(?)णां भवा सुमङ्गलानामपि ॥५४१॥
सर्वथैव न योग्यास्यात्तेषु कर्मसु सन्ततम् ।
कर्मादौ कर्ममध्ये वा सवथा नावलोकयेत् ॥५४२॥

अस्नानत्वं स्वतःस्त्रीणां सर्वशास्त्रैःप्रचोदितम् ।
विधवानां विशेषेण रंडानामपि तत्र च ॥५४३॥

न कुर्युश्चित्सद्धर्मेषु यदि ताः पितृमातृतः ।
भ्रातृतो भर्तृतो वापि भूमद्रव्याण्यथततः ॥५४४॥
तदा ताभिर्विशेषेण धनैःस्वीयैः समागतैः ।
सतीपथैव संप्राप्तैर्यस्य कस्य च देहिनः ॥५४५॥

अपीडाजनकैरेव धर्मः कर्तुं हि शक्यते ।
भूमि धान्यासिलान्येव दानानि धनवाससाम् ॥५४६॥
भूषणानां च पात्राणां शय्याश्वद्वाश्वसाधनाम् ।
कुर्याद्देयान्यहं भक्त्या दिव्यनामस्मृतिं पराम् ॥५४७॥

स्नानोपवासनियमगुरुशुश्रूषणादिकम् ।
सद्गुरूक्तिवचः श्राव्यं पुराणश्रवणं तथा ।
शक्तौ सत्यां तटाकादिप्रतिष्ठा सुरसद्मनाम् ॥५४८॥
वृक्षौघस्थापनं मार्गे तीर्थचर्यां तदा तदा ।
कुर्यादेव स्वबन्धूक्तवचनान्महतामपि ॥५४९॥
भूमिन्नमखिलं दातुं तयैव किल शक्यते ।
पितृतो यदि भूः प्राप्ता मातृतो भ्रातृतस्तथा ॥५५०॥

भर्तृतो वा सदा तां कुं स्वपक्षात्सा यथा पुनः ।
तत्तद्गर्भगता सम्यक् तथा यत्नेन भीतितः ॥५५१॥
कुर्यादेव न चेत्सेयं भूमिहन्त्र्यपि जायते ।
तीर्थकोटिसहस्रैस्तु व्रतकोटिशतैरपि ॥५५२॥
यज्ञकृच्छ्रसहस्रौघैः भूमिहन्त्री न शुद्ध्यति ।
न भूमिहरणात्पापमन्यत्किमपि न विद्यते ॥५५३॥
भूमिहर्त्रीं स्वयं राजा यत्नेन प्रविचार्य वै ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा चोरदण्डेन दण्डयेत् ॥५५४॥
अपराधसहस्राणि कृतानि वनिताजनैः ।
क्षन्तव्यान्यखिलान्येव धरित्रीहरणं विना ॥५५५॥
कदाचिद्विधवासाध्वी सपुत्रा भर्तृभाग्यका ।
सोमपीथिन्यपिचिच संजाता नष्टभर्तृका ॥५५६॥
बहुरिण्यधनाग्रामवती पतिमहत्त्वतः ।
तादृशी कुलविच्छित्तौ कुलजात्यौघबंधुभिः ॥५५७॥
संप्रार्थिता सर्वशिष्यैः पुनरन्यैर्महात्मभिः ।
वंशोद्धरणकार्याय महत्सत्कृताय च ॥५५८॥
सर्वज्ञातिमहाबन्धुजनमत्या सगोत्रिणम् ।
प्रत्यासन्नं सुतं कृत्वा स्वकुलं स्थापयेदिति ॥५५९॥
अतिगुह्यमिदं शास्त्रं प्रसिद्धं वेदशास्त्रयोः ।
कण्वकाश्यपकाणादकपिलैः समुदाहृतम् ॥५६०॥
तादृश्येव तथा कुर्यात् नान्यावारा तु लौकिका ।
या काचित्प्राकृताल्पा तादृक्तत्करणे बहु ॥५६१॥

मापनं प्रवराख्यानां सुराणां [redacted] महत्कुलम्।
सुमहाधनसंपत्तिः सहस्राभिरता वरा ॥५६२॥
पश्चात् ग्रामरूपस्य भूमिभागस्य संस्थितिः।
सुमहाशिष्यसंपत्तिः बन्धुसम्पत्तिरेव च ॥५६३॥
सर्ववस्तूनां सम्पत्तिः धर्मसम्पत्तिरीदृशी।
सर्वेषामप्येकदैव सर्वसत्कर्मसंपदा।
संयुक्तस्त्वस्य तथा कर्तुं तादृगग्निचितस्सतः ॥५६४॥
धर्मपत्न्याः संघटते न चेद्दैवात्स्वदेहिनः।
अयं हि सनयोद्धारः मथनाग्निथिलो यथा ॥५६५॥
पुराभवत्तथा प्रोक्तं आर्षः सर्वपुराणगः।
उपमारहितः कोऽपि तादृश्येव हि शक्यते ॥५६६॥
कर्तुं तथा तादृशेन चोपायेन च शक्यते।
महद्भिस्तादृशैर्दिव्यैः पूर्वोक्तैरखिलैर्गुणैः ॥५६७॥
न चेदेकेन लोपेन सतीनाममविदुर्घटः।
पुत्रोद्धार इति ज्ञेयः दरिद्राणां सुदूरतः ॥५६८॥
धनग्राममहाशिष्यबन्धुश्रीक्रतुशून्यतः।
न शक्यते हि रंडायाः पुत्राद्यखिलसंपदः ॥५६९॥
रंडानां सततं धर्मः उदयात्परमेव वै।
नित्यस्नानं वैश्वबंधुसंनिधावेव संततम् ॥५७०॥
निवासो गुह्यसंभाषा सच्छुश्रूषा सदाश्रयः।
चतुर्थकालभुक्तिश्च दधिक्षीराज्यवर्जनम् ॥५७१॥

सुगन्धवस्त्रालंकारगीतादीनां विसर्जनम् ।
ताम्बूलाञ्जनपुष्पाणां सन्ततं दूरवर्जनम् ॥६७२॥
खट्वातल्पादिशयनं शरीरोद्वर्तनं स्रजम् ।
अथाञ्जनं चोष्णवारिस्नानमभ्यंजनं तथा ॥६७३॥
पुनरन्यानि सर्वाणि वस्तूनि न च कामयेत् ।
दुरालापं दुर्दर्चितां निग्रहानुग्रहार्थताम् ॥६७४॥
पुण्याधिकारकल्याणयज्ञकार्यादि कर्तृता ।
कुर्वती ताडनीया सा सत्त्वीयगुरुसज्जनैः ॥६७५॥
क्षारं च लवणं दिव्यं मधुरं सूपकंदरे ।
वर्जयित्वा विशेषेण तिक्तं कटुकमेव च ॥६७६॥
प्राशयेद्भोजयेन्नित्यं ग्रासार्धेनैव जीवनम् ।
आपष्टिवर्षपर्यंतमेवं कालं प्रयत्नतः ॥६७७॥
(विशेषानयनंकार्या पश्चात्कार्यानुगुण्यतः) ।
प्राणवृत्तिं प्रकुर्वीत वयसश्चरमे सतः ॥६७८॥
यथारुच्यशनं कुर्याद् गुरुवृत्तौ रता भवेत् ।
सा ज्ञातिगुरुवन्ध्वादिसचिन्ता निपुणा भवेत् ॥६७९॥
यदि गुर्वादिसचिन्ता रहितातीव केवलम् ।
याजमान्यं समाश्रित्य स्वीयान्भृत्यवराञ्जहान् ॥६८०॥
पितृभ्रात्रादिदुर्दोषान् परिवारान्विधाय च ।
व्याहादिकारिणीभूत्वा मदीयस्याखिलस्य वै ॥६८१॥
द्रव्यस्य भूमिमुख्यादेरहमेवाधिकारिणी ।
इत्येवं प्रवदन्ती वै वालरंडाधिका खला ॥६८२॥

दानादिव्यपदेशेन स्ववशस्थितमेदिनीम् ।
स्वजनैर्मोहयंत्येषा कुल्घ्नी परिकीर्तिता ॥५८३॥
स्वभर्तृकुलसंजातविद्वज्जनविरोधिनी ।
तदीयवृत्तिभूभाग श्रीसंपद्विनिवारिणी ।
स्वभर्तृत्वैकसंबन्धमात्रेणैव पुरस्कृता ॥५८४॥
कुलप्रतिष्ठानाशाय पापैपात्र समागता ।
तामेनांधार्मिकोराजा धर्मान्न्यक्कृत्य सत्वरः ॥५८५॥
प्रवासयेन्निक्षयेद्वा तद्वाक्यान्यन्यथा चरेत् ।
तदीयपरिवाराणां यथा शिक्षां समाचरेत् ॥५८६॥
तामुद्दिश्य च ये मूर्खा जीवंति वरसंज्ञिकाः ।
पुरुषःपशवास्तुल्याः श्वाविदो वापि गर्दभाः ॥५८७॥
अज्ञातारुयज्ञातिरंडाकृताभिस्तां(स्तां) मनीषिणः ।
मृतोद्दिष्टे प्रशंसंति नवश्राद्धेषु पद्स्वपि ॥५८८॥
अज्ञाता रण्डयाघोन्नं (?) कृतं यत्तु विशेषतः ।
नम(व)श्राद्ध प्रशंसन्ति जीवश्राद्धे च सन्ततम ॥५८९॥
श्मशानचत्ये चापि वेदिकाचलयेऽपि च ।
श्राद्धाद्याख्यकाख्यान्तु यद्रूक्तं परिकल्पितम् ॥५९०॥
मयोग्यं षोडशाख्यानां श्राद्धानां तद्गुणस्य च ।
वगुरुडगणद्वयोरप्येवंगुनिश्चितम ॥५९१॥
अवशिष्टपुरोभागंशात्वयोरपि तत्पुनः ।
...भिरात्कश्राद्धाय नरगुरा कृर्त वरम ॥५९२॥

।पुत्रा तु या नारी विधवेति न चोच्यते।
पतिपुत्रविहीना या विधवेत्युच्यते बुधैः ॥६६३॥
तेः सूनोर्विनाशेऽपि या नारी सोमपीथिनी।
त्रीन्मिचितयाल्पूर्वं वै तपस्विन्यपि केवलम् ॥६६४॥
कुलप्रविष्टा चेत् तादृशस्य तु पुत्रिका।
राधकान्नदातीव विद्वज्जनमता सती ॥६६५
दंपती समा नित्यं सर्वदा रमेव सा।
ग्रासस्यास्सर्ववेदोक्तं नित्यकर्मसु केवलम् ॥६६६
धिकारस्तया तस्मात्पुत्रस्यापि परिग्रहम्।
ासत्वं सपिण्डेषु विच्छित्ती संततेस्तथा ॥६६७
द्बहुज्ञातिशिष्यबन्धूपकरणाय वै।
तु शक्यतेऽत्रीव तेषां प्रार्थनया परम् ॥६६८
नस्ताभिस्तद्भिन्नाभिः नारीभिः ब्रह्मचारिभिः।
[illegible]

रंडाभिस्नातकाभिश्च कृतं पाकं विगर्हितम् ।
गृहीतव्रतेन्द्रियेणेन दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥६०४॥
स्नुषा वा सोदरीयापि मातुलानी पितृष्वसा ।
मातृष्वसा ज्येष्ठपत्नी सोदरा चाग्रजा पुनः ॥६०५॥
पितृव्यपत्नीभगिनी नादरणी यदि संकटे ।
दैवपैतृककार्याणि तासां पाकं न दुष्यति ॥६०६॥
निराकृतो रंडपाकः न प्रायश्चित्तभाग्भवेत् ।
सर्वेषामपि वर्णानामाममात्रो विगर्हितः ॥६०७॥
पत्नीसहोदरास्वसृमातृश्वश्रूपरगमयाः ।
प्रजावती गुरुपत्नी पुरोहितसती यदि ॥६०८॥
श्यालकस्यसती दौहित्रस्यभार्या तथैव च ।
मातुलानी पितृव्यस्य पत्नी सत्यास्सहोदरी ॥६०९॥
मातुलस्यस्नुषा कन्या सपिण्डायाः समीपकाः ।
नादरयो यदि तासां च पाकं रात्रिकृतं तु यत् ॥६१०॥
भुक्त्वा तु संकटे विद्यात् मृत्युञ्जयमनुं शिवम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पुनः श्रीमान्भवेद्‌यम् ॥६११॥
रंडा यदि स्नुषा तां वै श्वशुरोऽन्वहमेव वै ।
दानमानादिसत्कार्यैस्तन्मनः परितोषयन् ॥६१२॥
प्रपालयेत्तां यत्नेन स्वयं पत्नीप्रजायुतः ।
तत्पालनात्तत्प्रदानात्तन्मनस्तोषणादपि ॥६१३॥
जन्मजन्मसुदीर्घायुः प्रजावान् धनधान्यवान् ।
नित्यारोग्यो नित्यभव्यः नित्यश्रीमान्निराकुलः ॥६१४॥

भवत्येव न संदेहस्त वसतु तथाचरेत्।
यः श्रीप्रजाधनपशुर्दीर्घायुर्भगवत्परः ॥६१५॥
स रण्डानां स्वकीयानां प्रपाल्यानां विशेषतः।
सम्मनस्तोषणं कुर्यात्तथाचित्तवसुप्रदः ॥६१६॥
भवेद्यान्यद् भित्वा मुक्तोऽयं तावता श्रिया।
संवृद्धः प्रभवेदेव नात्रकार्याविचारणा ॥६१७॥
याः पाल्याश्शास्त्रतो रंडाः विहितत्वेन चोदिताः।
आमयस्ताः प्रकथिताः तद्दुःखाद्गृहिणोऽनिशम्।
व्याधिदुःखंदरिद्रं च दौर्भाग्यमतिवर्धते ॥६१८॥
तादृक्मातृस्वसृधात्रपत्नीपार्कं कृतंक्षपा।
प्रार्थयंगत्यंतराभावात्तस्मिन्सत्या न चाचरेत् ॥६१९॥
विरयस्तया समासीनो प्रीतिहेतोर्महात्मभिः।
स्मशानाग्निसमोज्ञेयो गृहिणो वैदिके जगुः ॥६२०॥
विरयस्तया समासीत अलंभयनलेपने।
पात्रपादक्षालनाय तण्डुलक्षालनाय वा ॥६२१॥
शाकपत्रक्षालनाय भवेद्वागोमयाम्भसे।
तदानीं जलं आतपालानां हायनान्तरे ॥६२२॥
यत्र ण्णयित्वा स्नानाय कल्पयेयुस्तदान्यतु।
बुद्धिरल्पा महामंदा तथापुत्र दिने दिने ॥६२३॥
भवेत्क्षीणंततस्तस्मात्तत्कर्मं विनिवर्तयेत्।
तदानीं तेन पयसा शुभकर्मसु मोहनः ॥६२४॥

नीराजनं प्रकुर्वन्ति ये वा ते दुःखभागिनः ।
कर्ता कारयिता तौ ते सर्वे स्युर्नात्र संशयः ॥६२५॥
तेषां [redacted] सततं कर्म नित्यस्नानात्परं सदा ।
नामस्मृतिर्नित्यकर्मवृद्धब्राह्मणसेवनम् ॥६२६॥
देवगृहेरंगवल्ली करणं व्रतकर्मणाम् ।
अनुष्ठानं सतीवाक्यश्रवणं तत्समागमः ॥६२७॥
सत्यांशकौमीहि यवमाषमुद्गादिगोपनम् ॥६२८॥
(समीकरणमेतेषां पयोदश्चियादिरक्षणम्)
समीकरणमेतेषां वस्त्रकंचुकयानिनाम् ।
घृतसारंगचारुण्डशलाटूनां च खंडनम् ॥६२९॥
खंडितानां पुनस्तेषां लवणादिमुखैःपरैः ।
वस्तुभिर्योजनद्वारा तत्क्षणसुस्वादिकम् ॥६३०॥
निखिलानामपक्वानां पेष्टा वहननादिकम् ।
चूर्णानामपि कल्कानां करणं कर्मकारकम् ॥६३१॥
पुनस्तेषु सदा प्रोक्तं चोष्यखाद्यादिवस्तुषु ।
भक्ष्यभोज्यादिषु तथा सर्ववस्तुषु संततम् ॥६३२॥
प्रावीण्यं प्रापणं नित्यं प्राकट्यं धर्म उच्यते ।
अतिरंहा महारंहा क्षुद्ररंहास्त्रिधापुनः ॥६३३॥
चोदिता यास्तु तासां च स्वरूपं वर्ण्यतेऽधुना ।
अन्यगोत्रप्रदत्तस्य कलत्रं विधवा यदि ॥६३४॥
भवेत् शैशवेऽत्यंते सातिरंहा प्रकीर्तिता ।
दीर्घकालं भारतेन सर्वांश्चिन्त्या सुखं ततः ॥६३५॥

विश्वस्ता प्राप्य भवति महारंडेति साखिलैः।
महद्भिः कथिता पापा निरीक्ष्या भद्रदूषिणी ॥६३६॥
सगोत्रदत्ततनयकलत्रं नष्टभर्तृकम्।
असुतं पतिसंयोगरहितं स्यात्तदाख्यकम् ॥६३७॥
तिसृणामपि चैतासामन्वहं मनुरब्रवीत्।
भक्षणे कवलानां वा स्यातत्र्यं नेति सर्वदा ॥६३८॥
नित्यास्वतंत्रं नारीणां विश्वस्तानां विशेषतः।
तत्रापिबालरंडानामेवं सत्यत्र किं पुनः ॥६३९॥
स्थावरे क्रयदानादिकृत्येष्वासां तु दूरतः।
अधिकारस्य(स्य)विलोपः चोदितो निखिलागमैः ॥६४०॥
तस्मात्तु तत्कृतं राजा दानमादि क्रयं तु या।
सर्वं मिथ्यार्पयित्वैव स्वस्थाने विनिवेशयेत ॥६४१॥
रंडाकृतं भूमिदानं यत्तद्यज्ञोपवीतकम्।
नीराजनं वेदमन्त्राशिषस्सिध्यन्ति भूतले ॥६४२॥
राजा प्रभुर्भूमिदाने तत्समस्तसचिवादिकः।
राजस्वीकृतभूभागो विप्रादिश्च भवेदपि ॥६४३॥
विशुद्धागमसंप्राप्त धरणी सर्वजातयः।
दानंकर्तुं शक्नुवन्ति विवादे रहिते यदि ॥६४४॥
विवादशून्यदत्ता या धरणीग्राहकस्य सा।
सिद्धगतयत्र पुनर्नोचेत् स्वीकृतापि न जीर्यते ॥६४५॥
दानादि [illegible] ।
 [illegible] ॥६४६॥

नीराजनं प्रकुर्वन्ति ये वा ते दुःखभागिनः।
कर्त्ता कारयिता यो ते सर्वे मुनीन्द्र संशयः॥
तेषां तु मनने कर्म निरूपणादरं मतः।
नामस्मृतिर्निन्द्यकर्मदुष्टमादगमेवनम् ॥६१६॥
देवगृहेरंगवल्ली करणं मलकर्मगम्।
अनुमानं मनीषाश्रमयमं स्नसमागमः ॥६१७॥
मत्यांशाल्मीमीहि ययमागमुद्गाङ्गिगोसनम ॥६१८॥
(समीकरणमेतेषां पर्यादृशिलादिरसमम्)
समीकरणमेतेषां वस्त्रकंपुकयानिनम्।
घृतसारंगचाम्रस्वान्लाद्रूला च मंडनम् ॥६१९॥
मंडितानां पुनस्तेषां लवणादिभुर्मैःपरैः।
वस्तुभियोंजनद्वारा नवक्षणमुग्मादिकम ॥६२०॥
निसिलानामपक्वानां पेषा पद्ननादिकम्।
चूर्णानामपि कल्कानां करणं कर्मकारकम् ॥६२१॥
पुनस्तेषु सदा प्रोक्तं चोप्यसाद्यादिवस्तुषु।
भक्ष्यभोज्यादिषु तथा सर्ववस्तुषु संततम् ॥६२२॥
प्रावीण्यं प्रापणं नित्यं प्राकट्यं धर्म उच्यते।
अतिरंडा महारंडा क्षुद्ररंडास्त्रिधापुनः ॥६२३॥
चोदिता यास्तु तासाञ्च स्वरूपं वर्ण्यतेऽधुना।
अन्यगोत्रप्रदत्तस्य कलत्रं विधवा यदि ॥६२४॥
भवेत्तु शैशवेऽत्यंते सातिरंडा प्रकीर्तिता।
दीर्घकालं तादृशेन भर्त्रासित्वा सुतं ततः ॥६२५॥

विश्वस्ता प्राप्य भवति महारंडेति साखिलैः ।
महद्भिः कथिता पापा निरीक्ष्या भद्रदूषिणी ॥६३६॥
सगोत्रदत्ततनयकलत्रं नष्टभर्तृकम् ।
असुतं पतिसंयोगरहितं स्यात्तदाख्यकम् ॥६३७॥
तिसृणामपि चैतासामन्यहं मनुरब्रवीत् ।
भक्षणे कथलाना या स्वातन्त्र्यं नेति सर्वदा ॥६३८॥
नित्यास्वतंत्रं नारीणां विश्वस्तानां विशेषतः ।
तत्रापिबालरंडानामेवं सत्यत्र किं पुनः ॥६३९॥
स्थावरे क्रयदानादिकृत्येष्वासां तु दूरतः ।
अधिकारस्य(स्स)विज्ञेयः चोदितो निखिलागमैः ॥६४०॥
तस्मात्तु तत्कृतं राजा दानमादि क्रयं तु वा ।
सर्वं मिथ्यापयित्वैव स्वस्थाने विनिवेशयेत् ॥६४१॥
रंडाकृतं भूमिदानं यत्तद्यज्ञोपवीतकम् ।
नीराजनं वेदमन्त्राशिषस्सिध्यन्ति भूतले ॥६४२॥
राजा प्रभुर्भूमिदाने तत्समस्तविवादिकः ।
राजस्वीकृतभूभागो विप्रादिश्च भवेदपि ॥६४३॥
विशुद्धागमसंप्राप्त धरणी सर्वजातयः ।
दानंकर्तुं शक्नुवन्ति विवादे रहिते यदि ॥६४४॥
विवादशून्यदत्ता या धरणीग्राहकस्य सा ।
सिद्ध्यत्यत्र पुनर्नोचेन् स्वीकृतापि न जीर्यते ॥६४५॥
दानादियोग्यतालब्धभूमिः पुंसो न च स्त्रियः ।
सर्वस्वरस्य तंत्रस्य तस्यैव सततं भवेत् ॥६४६॥

भृत्री तासां प्रदानेऽप्यधिकारः पुनः उच्यते ।
न स्त्री स्थितं स्वयं दातुं कथं शक्नोति धर्मतः ॥५७॥
पुत्रः सवर्णस्तनिजाप्रदानेऽधिकारी निगद्यते ।
सर्वेषां [illegible] शुक्लपक्षेण निरूपितः ॥५८॥
मनुः पुत्र[illegible] [illegible] त्रिरोमंशेन वै ।
शूद्रदानेऽधिकारःस्यात् वनितायाश्च संमतम् ॥५९॥
इत्येवं धर्मतःप्रोक्तः निर्विवादेन चैव तु ।
पुत्रस्यापि प्रदाने निर्विवादेऽधिकारिता ॥६०॥
विवादेत्वधिकारित्वं न सिद्ध्यति कदाचन ॥६१॥
(पित्रापुत्रेणयन्मुखैरास्तैः ब्रह्मचर्यात्परं परम्) ।
(ब्रह्मचर्यणधियानित्यं कृतान्यपिविवादेत्वधिका) ।
पित्रापुत्रेणभर्त्रा वा नप्त्रापौत्रेण वा सदा ॥६२॥
स्त्रियस्सनाथाः कथिताः रंडाःस्युरपेतुरोदिताः ।
अनाथा हि कथं तासां सुतोदानेऽधिकारिता ॥६३॥
याजनेनाध्यापनेन प्रतिग्रहमुखेन च ।
विशुद्धागमसंप्राप्तभूवृत्तौ च सदा द्विजः ॥६४॥
निवसन्नित्यकर्माणि कुर्वन्धर्मेण देवताः ।
संप्रीणयन्मुखैरास्तैः ब्रह्मचर्यात्परं परम् ॥६५॥
ब्रह्मार्पणधिया नित्यं कृतान्यपि विभावयन् ।
पितॄणां तनयद्वारा तरणं चतुसंगतः ॥६६॥
अपाकुर्वन् शास्त्रमार्गात् कृतार्थः प्रभवेदपि ।
॥ अश्रोत्रियो न म्रियेत नाहिताग्निरसोमपाः ॥६७॥

अमंत्रदग्धो न भवेदमंत्रो न क्षणं भवेत् ।
अनाश्रमी क्षणं तिष्ठेत्पुत्रवांश्चेदनाश्रमी ॥६५८॥
न भवत्येव यदि सः श्रोत्रियोऽयं विचक्षणः ।
तथा""तस्य सततं ब्रह्मचारित्वमेव वै ॥६५९॥
भवेन्नित्याहिताग्नित्वं विधुरत्वं च नैव हि ।
श्रोत्रियत्वात्पुत्रगतात्कृतकृत्यः पिता भवेत् ॥६६०॥
दग्धभार्योऽप्यपत्नीकस्त्वसौ तनयवर्जितः ।
तथाविधो दग्धसुतः स्वयमश्रोत्रियो यदि ॥६६१॥
भवेद्ब्रह्मतः पत्नीकः श्रोत्रियश्चेदसौ ततः ।
नष्टभार्योऽपि न भवेदपत्नीकः कदाचन ॥६६२॥
तत्र चेत् ब्रह्ममेधाख्या याज्ययं तु विशेषतः ।
सपत्नीको ब्रह्मनिष्ठः सोमयाज्यपि चोदितः ॥६६३॥
पुत्रिणःश्रोत्रियस्यात्र नापत्नीकत्वमुच्यते ।
पत्नीयत्वं तु यज्ञस्य नेनेन्द्रस्यानुवाक्यतः ॥६६४॥
चोदितं श्रुतिवाक्येन तात्सपत्नीत्वमस्य च ।
श्रोत्रियस्य सदास्त्येव(?)विशेषेण पुनः किल ॥६६५॥
सद् ब्रह्ममेधाध्यायी चेत्पुनमारहितः परः ।
(संशयोवर्तते पूतं श्रोत्रियो सो मनीषिभिः) ॥६६६॥
(सपत्नीक इत्युक्तः पुत्रवान् चेद्विशेषतः) ।
न पुत्रेण समोधर्मःन पुत्रेण समक्रतुः ।

सर्वे सपुत्रतुलिताः भिन्नाः पुत्रगताभिलाः।
मुमुक्षुःस्याद्यतोलोकाः सत्कृत्या प्रतारगः ॥६६८॥
योगी धनी पुत्रवान् स्याद्यतोऽनित्यमतंद्रितः।
सत्पुत्रोत्पत्तये यत्न मनोवाक्कायकर्मभिः ॥६६९॥
(स्वकीयदेवताध्यानं पूजान्प्रार्थनादिभिः)।
अदृष्टयत्नरागान्तैरन्यद् कार्यं एव वै ॥६७०॥
तदुत्पत्त्या क्षणान्मर्त्यो मुच्यते पैतृकादृणात्।
यत्रजाते तु तनये सर्वयत्नराद्यतः ॥६७१॥
स्वभ्रातृजादिपुत्रेषु पुत्रमेकं परिग्रहेत्।
ज्येष्ठमन्त्यं वर्जयित्वा मध्यमेष्वेककं सुतम् ॥६७२॥
परिगृह्यविधानेन होमपूर्वादिना ततः।
जातकर्मादि कुर्वीत तेनैवास्य सुतो भवेत् ॥६७३॥
न चेत्तु गौणपुत्रः स्यात् गौणःस्यात्तनयो यदि।
तस्यैतत्कर्मकरणेकर्तृत्वं शास्त्रतो मतम् ॥६७४॥
प्रत्यब्दकरणे चापि न तु दर्शादिकर्मसु।
ये भ्रातृसूनवो लोके कृतमौञ्ज्यादिका अपि ॥६७५॥
कृतदाराः संगृहीताः पुत्रत्वेन विपत्सुते।
सत्येतत्क्रयमात्रस्य तत्प्रत्यब्दस्य शास्त्रतः ॥६७६॥
कर्तारः प्रभवेयुर्वै न चान्येषां तु कर्मणाम्।
दर्शपातमुखादीनामतो भ्रातृसुतानपि ॥६७७॥
तदन्याद्भिन्नगोत्राद्वा यं कंचन गृणन्नरः।
तन्मतः. पूरणं कृत्वा तत्पुत्रस्य च संविदम् ॥६७

एवमेवं वृत्तिगोहक्षेत्रेष्वन्यसुनिश्चितं ।
येषु तेषु च सर्वेषु मर्यादेयं मया कृता ॥९७९॥
अथ चेति दृढं नूनं दृढयित्वा ततः परम् ।
स्वीकुर्याद्विधिनोक्तं न त्यक्त्वान्यं ज्येष्ठमेव च ॥९८०॥
मध्यमेकेन होमेन देवब्राह्मणसंनिधौ ।
राज्ञि बन्धुषु चावेद्य पितरौ तस्य केवलम् ॥९८१॥
भूषयित्वाप्रीणयित्वारत्नवस्त्रगृहादिभिः ।
तहारिद्र्यं वारयित्वा स्वीकुर्यात्तनयन्ततः ॥९८२॥
यद्यन्यगोत्रस्तनयः संग्राह्योत्थयशाङ्कवेत् ।
कदाचिद् दैवयोगेन पश्चाज्जातस्तदौरसः ॥९८३॥
वयसा यं कनिष्ठोऽपि पितृकर्मसु केवलम् ।
ज्येष्ठत्वं समवाप्नोति न कानिष्ठ्यं कदाचन ॥९८४॥
सर्वथा दत्ततनयः वयोज्येष्ठः कृतक्रियः ।
सोमपास्त्यग्निचिच्चापि जातपुत्रोऽपि केवलम् ॥९८५॥
सर्ववेदनिधिःशास्त्रनिपुणोऽप्यात्मवित्तमः ।
तदौरसेन पुत्रेणानुपनीतेन केवलम् ॥९८६॥
अनभ्यस्ताक्षरेणापि न समःस्यादिति श्रुतिः ।
स एव पितृकार्येषु ज्येष्ठ्यमाप्नोत्यसंशयम् (संशयम्) ॥९८७॥
मन्त्रोच्चारणसामर्थ्याभावेऽप्यस्य ये सदा ।
तत्कर्तृकं पुरस्कृत्य स्वयं दत्तः कनिष्ठवत् ॥९८८॥
कुर्वीत सर्वकृत्यानि धर्मोऽयं शाश्वतः स्मृतः ।
यानि प्रधानि(प्रधानानि)कर्माणि तत्सुतानि दत्तकः ॥९८९

तद्धस्तेनैव विधिना स्वमंत्रोक्त्या प्रचालयेत्।
मर्यादेयं समाख्याता तत्क्रमे शास्त्रजालकैः ॥६६०॥
परंत्वत्रविशेषोऽस्ति यदि दत्तोऽन्यगोत्रजः।
स्वीकृतस्तु तदापश्चाद्विभागे तुर्यभाग्भवेत् ॥६६१॥
सगोत्रश्चेदयंत्वत्रतनयः श्रीमतःसतः।
तत्प्रदानासहिष्णुभ्यामतिप्रार्थनयावशात् ॥६६२॥
दत्तस्तत्स्वीकृतश्चेत्तु पुनश्चशपथादिभिः।
पित्रादिकृतमर्यादः यथा या स्यात्तथा भवेत् ॥६६३॥
तेनायं सममागेव न तुरीयांशभाग्भवेत्।
पुनः कोऽपि विशेषोऽत्र स्पष्टमेव निरूप्यते ॥६६४॥
विभक्तं भ्रातरं दीनं दरिद्रं बन्धुमेव वा।
अत्यंतकृपणं निम्वं पुत्री(त्रं?)दृष्ट्वा कृपापरः ॥६६५॥
तद्रक्षणाय तनयं स्वीयं दत्वा श्रियं पुनः।
दत्ते समुद्धरेत्श्रीमान् ततस्तस्य च दैवतः ॥६६६॥
संजाततनयस्सोऽयमौरसो दुर्बलो भवेत्।
दत्तपुत्रादिविज्ञेयः ज्येष्ठपत्नीसुतोऽप्ययम् ॥६६७॥
ज्येष्ठपत्नीसुतस्यैव चौरसत्वं प्रकीर्तितम्
विभागेऽपि तथा श्रेयः समत्वेनैव सर्वतः ॥६
औरसस्य च दत्तस्य न्यूनत्वाधिक्ययोस्तदा।
यथागममन्यथैव स्यात् निर्णयो धर्मतो मतः।
पुत्रमहत्त्वमात्मसंपत्तीः प्राप्तये यदि।
पुत्रत्वं प्राप्तिमाप्नोत्या दुर्बलः प्रभवेत्सुतः ॥७:

अपुत्रः प्रार्थनापूर्वं दत्तोऽयं यदि तत्सुतः ।
श्रीमानेव तदा सोऽयं समभागी भवेद्ध्रुवम् ॥७०१॥
भ्रातृपुत्रं ज्ञातिपुत्रः बन्धुपुत्रोऽथ वा धनी ।
निरपेक्षोऽस्य सौभाग्ये ग्राहकप्रार्थनादिभिः ॥७०२॥
पुत्रत्वं समनुप्राप्तः निर्धनस्य विशेषतः ।
दत्तश्च कृपया तूष्णीमौरसादधिकोऽप्यति ॥७०३॥
पुनरसत्कुलजो न्यूनकुलाय यदि केवलम् ।
दत्तः स्यात्तु तदासोऽयं विभागे समुपस्थिते ॥७०४॥
तुल्यो भवेदौरसेन न पित्र्येषु तु सर्वदा ।
औरसो ज्यैष्ठ्यमाप्नोति पितृकर्मणि दत्ततः ॥७०५॥
वयसा पर्यया विद्याज्ञानाभ्यामधिकोऽपि वा ।
दत्तः पैतृककृत्येषु न्यूनएव भवेद्ध्रुवम् ॥७०६॥
जातेन्द्रियाणां दौर्बल्ये सु(दु)हिता तनये सति ।
अयशादस्तु (?) सन्देहो पुत्रग्रहणमुच्यते ॥७०७॥
पुत्रयोस्तनयाभावे नष्टयोरपि वै तयोः ।
पुत्रस्य कुर्याद्ग्रहणमिति वेदानुशासनम् ॥७०८॥
पौत्रे नप्तरि दौहित्रे सति वा पुत्रसंग्रहः ।
सर्वशास्त्रनिषिद्धःस्यात् न तस्मात्तत्समाचरेत् ॥७०९॥
आपन्निवारकस्तोऽयमापत्मापुत्रशून्यता ।
एक एव भवेन्नूनं दुहिता(तृ)तनयो मतः ॥७१०॥
दौहित्रे सतिपुत्रस्य ग्रहणं शास्त्रदूषितम् ।
कथं तदिति वा प्रोक्ते स्पष्टतश्च तदुच्यते ॥७११॥

दौहित्रोत्पत्तिमात्रेण ह्यनुत्तमगतिं गताः ।
उद्धारिताः स्म एव भो पुन्नामनरकात् ॥७१२॥
सामान्यमनुजा भागिनो पुत्रसंपदहेतवे ।
सद्यश्च गति दौहित्रे त्रिपक्षजः स्वयं पतिः ॥७१३॥
दौहित्रोत्पत्तिमात्रेण मातामहादिका मुदाः ।
दुहितुःस्यात्मसुद्वीक्ष्य हर्षगद्गदया गिरा ॥७१४॥
प्रपद्स्यन्ति मां पार्श्वं पितृलोकेऽतिसुन्दरे ।
अस्मत्सुतभिप्राप्ते यान्तया निखिलाः स्थिराः ॥७१५॥
तर्पणे महायज्ञादिनित्यकर्मसु सन्ततम् ।
एकमेवाञ्जलिनोऽयं भ्रातृतज्ज्ञातयो ददुः ॥७१६॥
अद्यास्मज्जलदो जातः (तो) वयमेतेन भूषिताः ।
कृतार्था नितरां जाताः युष्मत्तुल्या अमूनहि ॥७१७॥
तस्मात्तद्दत्तमुदकमस्माकं परमामृतम् ।
दधिसोमघृतक्षीरमेदोमधुकसिन्धवः ॥७१८॥
नारायणपदप्राप्तिकारकाश्चातिपावनाः ।
कुम्भीपाकमहाघोररौरवादिनिवारकाः ॥७१९॥
पयस्त्वञ्जलयः श्रीकाः शङ्खकुन्दवराङ्गिनः ।
अस्मत्सर्वोत्तमत्वस्य मापकाः(स्)तुल्य शून्यकाः ॥७२०॥
यद्दीयतेऽस्मानुद्दिश्य चानेन भुवि नोऽमृतम् ।
अत्यल्पमपि तन्मेरुमहामन्दरसंनिभम् ॥७२१॥
अक्षय्यं तु ददौऽनेन पुत्रादिः कोऽपिनैव हि ।
दौहित्र एव नो लोके पुत्राणामुत्तमोत्तमः ॥७२

तत्समस्त्व(त्वौ)रसस्तज्ञ:(स्)तज्ज्ञापि तथाविधः ।
इत्युक्त्वा नर्तनं चक्रुः मातामह्यादिकानगाः ॥७२३॥
दौहित्रजनने पूर्वं तस्माद्दौहित्रसंनिभः ।
पितॄणां तृप्तिदं(दो) कोऽपि नात्येव धरणीतले ॥७२४॥
मात्रादित्रयसाम्येन तर्पणे समुपस्थिते ।
तेषाऽप्यञ्जलिदस्सोऽयमेको दौहित्र उच्यते ॥७२५॥
तद्दत्तमुदकं तासां परं त्र्यञ्जलिसंख्यया ।
तथकं तत्पृथक्त्वेन महापद्मादिसंभवम् ॥७२६॥
तस्माज्जहाति यो मोहान् प्रसक्तौ तर्पणस्य चेत् ।
दुहितात्तनयो मूढः(ढ्) तासामेकाञ्जिकाञ्जलिम् ॥७२७॥
सामान्यनारी बुद्ध्या वै कुर्याद्दौहित्रपात्रतः ।
तासां शेवधिहर्ता स्यात् तच्छ्रापस्यापि पात्रताम् ॥७२८॥
प्रयात्ययं स च एव तस्मात्तत्र तथाचरेत् ।
अत्र भूयः प्रवक्ष्यामि निष्कृष्टार्थमिदं रहः ॥७२९॥
सापत्नी जननी पत्न्योरन्यहं द्व्यञ्जली स्मृते ।
मातामही मातृवर्गद्वयं त्र्यञ्जलिभाजनम् ॥७३०॥
तर्पणेष्वतिरिक्तेनं (व) सर्वशास्त्रसुनिश्चितम् ।
दौहित्र्यपुत्रयात्रैव भवेल्लोके द्विजातिषु ॥७३१॥
विशेषेण समाख्यातः (तो) भर्तृ पुत्रादयोऽवरः ।
सपिण्डोऽपि तथैवस्यात्तत्कथं चेतिचेत्तदा ॥७३२॥
निरूप्यते च सुस्पष्टं सपिण्डे भर्तु केवलम् ।
पितामह्यादयस्याः पित्रादिद्वारतोऽपि वै ॥७३३॥

मुसंबद्धाः नास्य तत्र स पितुः स्वस्य वा खलु ।
न सन्त्येव विशेषेण तन्मुखात्तु सपिण्डता ॥७३४॥
सपिण्डानां प्रकथिता नान्येन किल वर्त्मना ।
भ्रातृपुत्रेषु तेष्वेवं भ्रातुश्चापि पितुस्तथा ॥७३५॥
सन्तिह्यवयवास्तेन भ्राता तत्पुत्र एव च ।
मार्गेण स्वीय इत्युक्तः नतुस्वावयवैरहो ॥७३६॥
दौहित्रे दुहितृद्वारा स्वकीयावयवोद्भवे ।
संबन्धस्त्वधिकः स्वस्य तथा तेषु न संभवेत् ॥७३७॥
संबन्धः कोऽपि सुस्पष्टः(स्)तस्मादेव तथाविधः ।
दौहित्रो भ्रातृपुत्रादिभ्योऽयं स्वावयवादिभिः ॥७३८॥
(णामधिकोऽवयवादिभिः)
अधिकश्चेति सर्वेषु स्वकर्मसु धनादिषु ।
नैतस्य संग्रहः कार्यः जन्मनैवायमुच्यते ॥७३९॥
पुत्रत्वेन समश्चेति परश्चेति क्वचित्स्थले ।
अतः पुनःस्वकरणं विरुद्धं न्यायशास्त्रयोः ॥७४०॥
दौहित्र जननादूर्ध्व पवित्र(?)वित्तैकमानसाः ।
विभक्ता ज्ञातयो दुष्टाः भवन्त्येवातिदुःखिनः ॥७४१॥
विभक्ताः पुत्रभ्रातृनियन्तःशेषादिषु तु ।
तदुन्मुखाः सन्ततं ते कदापीति दुराशयाः ॥७४२॥
दौहित्रजननादेव केचिदत्र विरोधिनः ।
नेतः परमिदं नैव स्यादित्येव स्वचेतसि ॥७४३॥
निश्चित्य तूष्णीं तिष्ठन्ति केचिच्छास्त्रानुगुण्यतः ।
शास्त्रानभिज्ञा नितरां पामरा धर्मदूषकाः ॥७४४॥

येन केनाप्युपायेन परं तद्ग्रहणोन्मुखाः ।
दुरालापान्प्रकुर्वन्तः सज्जनैरपि निन्दिताः ॥७४५॥
दूषयन्तश्च तान्भूयः द्वी(धिक्) स्कृताश्चापि साधुभिः ।
न्यक्कृताः पण्डितैः सर्वैः सर्वत्रापि वृथैव हि ॥७४६॥
तद्दुर्यत्नादिशतकं कुर्वन्तश्च तदा तदा ।
दुष्क्रियाश्च कुर्वन्तो लयं यान्त्येव केवलम् ॥७४७॥
सर्वत्र धर्मोमध्यस्थः कदाचित्कलिदोषतः ।
न सिद्ध्यति कलौ भूयः सिद्ध्यत्यपि पुनः क्वचित् ॥७४८॥
प्रायेण धर्मतो वृद्धिः ततो भद्राणि विन्दति ।
व्यवहारे च जयति सन्तो व्याकुलयत्यपि ॥७४९॥
परस्वान्यपि (हि) गृह्णाति समूलं च विनश्यति ।
सदैव धर्मः परमः सेव्यो नाधर्म उच्यते ॥७५०॥
धर्ममार्गेण सर्वैर्नैः गन्तव्यो नान्यमार्गतः ।
दौहित्रभिन्नं यं कंचित् विना ज्येष्ठं तथैककम् ॥७५१॥
संगृह्णीयाच्च तनयं मध्यस्थं ज्ञातिमेव वा ।
मत्रंभ्यनुज्ञाभिज्ञायाभ्यनुज्ञा पुत्रसंग्रहे ॥७५२॥
संगच्छते ज्ञात्यभावेतत्पुरस्ताच्च युज्यते ।
ज्ञातिमस्याकृतं यत्तु पुत्रसंग्रहणादिकम् ॥७५३॥
चिरयत्नतया धरादान सुसकृत्त्वं तु सिद्ध्यति ।
सर्वज्ञातिमतं कार्यं पुत्रसंग्रहणादिकम् ॥७५४॥
पारादिष्टं च नो चेत्तन् न कार्यं यदि सत्कृतम् ।
यादृशं धार्मिको राजा न्यायशास्त्रदूषितम् ॥७५५॥

सद्यस्त्वन्यथयित्वैव शास्त्रीयेनैववर्त्मना ।
तत्कारयेज्ज्ञातिमुखसामीचीन्यं ततः पुनः ।
तद्यथा योग्यदण्डश्च तत्रमध्यम उच्यते ॥७५६॥
आद्यन्त्यावेव संत्याज्यौ बहुभ्रातृषु तत्सुतौ ।
मध्ये ज्येष्ठात् द्वितीयादि नियमो नेति चोचिरे ॥७५७॥
मोहाद्दत्तो ज्येष्ठसूनुः स्वयंदत्तोऽथवा जडः ।
पतितः सद्य एवस्यादुभयभ्रष्ट ईरितः ॥७५८॥
उपनीतेः परं तस्य विप्रत्वं तु न सिद्ध्यति ।
यदि ज्येष्ठसुतो दत्तः पितुर्वा पालकस्य वा ॥७५९॥
तत्कर्मयोग्यो नैवस्याद्यत्कृतं तेन तत्परम् ।
सलिलं पुण्यलोकैकमहापापाणसंनिभम् ॥७६०॥
महारौरवकर्माभ्यनयनं सत्क्रियौघहम् ।
न तत्समाचरेत्तस्मात्पुत्रदानमहो द्वयम् ॥७६१॥
विधवाश्रणिविधुरदूरभार्याय(प)तिव्रताः ।
न दद्युः प्रतिगृह्णीरन् अपि सूतकिनोऽपिवा ॥७६२॥
रजस्वला तत्पतिश्च कन्यकोऽनुपनीतकः ।
कौतुकी दीक्षितोवाऽपि श्राद्धकर्ता प्रदूषितः ॥७६३॥
बहिष्कृतो दूरपर्यस्तभुक्तान्नो ग्रामरूपगम् ।
प्रायश्चित्ताद्यन्नुगश्च पुनरन्ये तथा विधाः ॥७६४॥
न दद्युः प्रतिगृह्णीरम् तनयं संशयभ्रमे ।
अहमेकसुनः पित्रोः दत्तोऽस्मीति वदन् पुनः ॥७६५॥
सभायां निर्भयं घोरः प्रमिदः कथितो बुधैः ।
पुत्रेण आत्ममात्रेण तातमातानन्तराः ॥७६६॥

नन्दन्ति च प्रगायन्ति नटन्ति प्रनटन्ति च ।
उत्तारकोऽयमस्माकं संजातस्तनयोऽधुना ॥७६७॥
वदन्त एव परममानन्दं दैवमानुषम् ।
आरभ्य कृत्स्नं ब्राह्मं तद्विधिना श्रुतिनिरूपितम् ॥७६८॥
सद्यः प्राप्ता भवन्त्येव ब्रह्मानन्दस्तु सः परः ।
श्रुत्युक्तधर्मेना साध्यः न केनान्येन सर्वथा ॥७६९॥
यस्य कस्यापि संप्रोक्तः सद्भिरानखिलान्वरान् ।
आनन्दास्तस्य संभूत्या दौहित्रस्येक्षणादितः ॥७७०॥
प्राप्ता भवेयुः पितरः सत्कुलद्वयतारकः ।
तनयो दुर्लभो नृणां जातमात्रेण तेन वै ॥७७१॥
एकोत्तरकुलं चापि सद्यस्तुष्टं भविष्यति ।
तादृशं तनयं त्वेनमेकं जातं सुतं जडः ॥७७२॥
धनाशयान्यं कुरुते यः पितॄणः स्मृत. स तु ।
कृतस्तथेति चेद्व्यक्तं सम्यगेवेदमुच्यते ॥७७३॥
सुतप्रदानोत्तरक्षणमात्रेणैव तेऽखिलाः ।
नष्टानन्दा भग्नकामाः ताडिता यमकिंकरैः ॥७७४॥
नीयन्ते नरकेष्वेव ते य उत्तारिताः पुरा ।
माह्यकस्यापि पितरः तादृशांस्तान्पितॄन् वरान् ॥७७५॥
दृष्ट्वाति दुःखिताः सर्वे सहमानाश्च कश्मलम् ।
असह्यमिति घोरं तदीयं वै दुःसहं स्वरम् ॥७७६॥
पुनः पुनरुद्वीक्ष्यैव किमासीदिति केवलम् ।
अशक्नुवन्तस्तद्दुःखं स्वयं चापि तथाविधाः ॥७७७॥

अन्येनुरेण निजश्च मातृ संगमश्च नोऽन्यगम्।
इन्दुवन्तैनं दूषयन्ति नाङ्गीकुर्वन्ति मन्दनम् ॥७७८॥
प्रदूषयन्ति यं दृष्ट्वा पन्नागतकृतान्तराः।
महतां यत्र तत्र मत्रं यमरात्रोपमं स्मृतम्(?) ॥७७९॥
अङ्गीकुर्वन्ति नामार्त्ता पितरं मातरस्य च।
तस्मादेकसुतो दत्तो मातृकेन प्रदापितः ॥७८०॥
उभयोर्वंशयोश्चापि पितॄणां नरकप्रदः।
तस्मादेकं सुतं दत्तपुत्रत्वेन कदाचन ॥७८१॥
न स्वीकुर्यात्तत्तेन न किंचिन्स्यात्प्रयोजनम्।
तथा कनिष्ठं तनयं औरसं वैधवं शिशुम् ॥७८२॥
पुरुषेण प्रदत्तं वा कन्यावर्णियति (?) प्रदम्।
मातृदत्तं सूतकिना प्रदत्तं कन्यया तथा ॥७८३॥
अनुमीतप्रदत्तं च सापत्नीमातृदत्तकम्।
पितृव्यदत्तं तत्पत्न्या प्रदत्तं भगिनीप्रदम् ॥७८४॥
पितामहादिभिर्दत्तं ज्ञातिदत्तं सगोत्रिभिः।
प्रदत्तं येन केनापि पुत्रत्वेन कथञ्चन ॥७८५॥
न स्वीकुर्याद्बुधस्त्वेते तनया जडाः।
प्रदातुर्ग्राहकस्यापि महादुर्गतिदायकाः ॥७८६॥
मामकस्तनयो जातस्तावकस्त्वधुना मम।
संमत्यैवायमभवदिति वाक्येन तत्क्षणात् ॥७८७॥
पुत्रघ्नः प्रभवेत्सद्यः वीरहेति निगद्यते।
तत्स्वीकर्ता भ्रूणहा स्यात् तद्दत्तो ब्रह्महा परः ॥७८८॥

एवं त्रयाणामेकस्य तनयस्य परिग्रहे ।
प्रत्यवायो महानुक्तः तस्मात्तत्कर्म नाचरेत् ॥७८९॥
जडमूढान्धमत्ता ये मूकक्लीबाभिशस्तराः ।
पतिताः पापराश्चापि न स्वीकार्या विशेषतः ॥७९०॥
ज्येष्ठपुत्राः पितॄणां स्युर्वल्लभा जगतीतले ।
यथा तथा कनिष्ठाश्च मातॄणामतिवल्लभाः ॥७९१॥
अतः कनिष्ठास्तनयाः निन्दितास्स्युस्तथैव हि ।
पुत्रग्रहणकार्येषु यदि दत्तो मृताः सुतः ॥७९२॥
पुनः पुत्रं न गृह्णीयादेकस्यैव सुतस्य वै ।
ग्रहणं शास्त्रविहितं न द्वितीयस्य सर्वथा ॥७९३॥
अपविद्धस्ततोग्राह्यो यदि भूयः सुते मनः ।
निदुष्टपुत्रा जगति त्रय एव प्रकीर्तिताः ॥७९४॥
औरसः पुत्रिकापुत्रः अपविद्धश्च सूरिभिः ।
अन्ये तु तनया भूयः भूतले स्युर्जुगुप्सिताः ॥७९५॥
असत्कुलप्रसूतानां क्षेत्रजातिसुताः स्मृताः ।
महाकुलप्रसूतानां त्रय एव पुरोदिताः ॥७९६॥
जगुप्सा सा प्रकथिता स्वस्मिन्पश्यति जीवति ।
पित्रादिषु स्वकीयेषु सत्सुजीवत्सुतत्परः ॥७९७॥
परस्मै पुत्रकार्याय धर्मपत्न्यर्पणं किमु ।
न्याय्यं युक्तं सच्चरित्रं सर्वैस्तत्रविचार्यताम् ॥७९८॥
पांसुलानां विटानां वा सा वृत्तिरज्जुगुप्सिता ।
याति घोरा वागवर्ण्या स्वभार्यान्यनिवेदनम् ॥७९९॥

विना जुगुप्सां ह्रीं घोरां ह्रियं भीतिं दुरासदाम् ।
परसंगात्तसद्गर्भनारी (?) महणतां भुवि ॥८००॥
सम्पाद्य चापिगार्हस्थ्यं लोकानां पश्यतां पुरः ।
परवीर्यैकसंजातगर्भिणी स्वकलत्रतः ॥८०१॥
ते जायन्ते तादृशानां पाकाः पद्मनिभेक्षणाः ।
कानीनपौनर्भवादितनया न जुगुप्सिताः ॥८०२॥
किंवा न जाने तद्युगं विवाहानन्तरं क्षणात् ।
मुहूर्ताद्यामयामाद्वा यामद्वयमत एव वा ॥८०३॥
(अन्हो) अह्ने दिनात्तद्द्वितीयाद्वितीयात्तस्य तत्परम् ।
पक्षान्तमासादन्तो(र्)मासात् तृतीयाद्वा चतुष्टयम् ॥८०४॥
पञ्चपेभ्योऽपि मासेभ्यो डिम्बानां जननादहो ।
द्विपात्पशूनां मालक्ष्यालक्ष्यते न च किं पुनः ॥८०५॥
ते चापि मनुजैः साम्यं संप्राप्य च ततः परम् ।
यूयं वयं च मनुजाः समा एवेति वादिनः ॥८०६॥
पाणिशीर्षकर्णनासादि सर्वावयवसंयुताः ।
निर्लज्जाः सर्वकार्यैकनिपुणास्त इमे पुनः ॥८०७॥
महात्मन(त्मानं)सत्पुरुषीनाम हेलयन्ति हसन्ति च ।
पुनर्निराकरिष्यन्ति व्यवहारेषु सन्ततम् ॥८०८॥
पराजयन्ति कुर्यन्ति तादृशैरखिलं जगत् ।
स्वत्वमार्गेति बहुना तादृशाभिभिव्यान्ततनान् ॥८०९॥
व्यवहारेषु समनः संत्रस्ताः सज्जनैरिमाः ।
दुष्कृतान दुरात्मनो दुष्ट धार्मिको नृपतिः स्वयम् ॥८१०॥

पराजयेत्तान्धर्मेण न्यायेनापि समागतान् ।
अब्राह्मणं ब्राह्मणेन व्यवहाराय चागतम् ॥८११॥
अपि न्यायगतं राजा व्यवहारे पराजयेत् ।
एवमश्रोत्रियं राजा श्रोत्रियेण सभासु चेत् ॥८१२॥
तुल्यानतुल्यैः समतः सद्भिस्सत्कुलसंभवैः ।
सार्धं विवदतो नित्यं मोचयित्वा पराजयेत् ॥८१३॥
दुर्बलेन स्वामिनैवं विवदन्तं सभासु चेत् ।
दुर्बलं बलिनं पोष्यं मदान्धो दुर्जनाश्रयात् ॥८१४॥
सद्भिः सोऽयं विगर्ह्यःस्यात् राज्ञे प्रोक्ता यथास्य तु ।
शान्तिगर्वस्य महतः प्रभवेद्धै समुत्थितः ॥८१५॥
अश्रोत्रियश्रोत्रिययोः विवादे समुपस्थिते ।
तदात्वश्रोत्रियन्यायसत्पथस्थेऽपि केवलम् ॥८१६॥
यथा वा श्रोत्रियजयः भवेत्सद्यः (स्) तथा वदेत् ।
नित्यं सर्वत्र पूज्योऽसौ श्रोत्रियस्तेन तं वराम् ॥८१७॥
नाधमन्येरपूजयित्वा प्रेषयेदेव सन्ततम् ।
स्वसारं भगिनीं पत्नीं मातरं तनयां तु वा ॥८१८॥
साधकीमभिगन्तास्मीत्यहं वादिनमुद्धतम् ।
विवादे श्रोत्रियं दृष्ट्वा श्रोत्रियं सद्य एव वै ॥८१९॥
कपोलयोस्ताडयित्वाङ्गीकृत्य (धिक्कृत्य) च दिनत्रयान् ।
परं निरोधादुद्धृत्ययथाशक्ति पणानपि ॥८२०॥
चतुर्विंशतिसंख्याकान् द्विगुणं वा चतुर्गुणम् ।
ततोऽपि द्विगुणंभूयः शतं वा तद्द्वयं तु वा ॥८२१॥

तस्यशक्तेरानुगुण्यात् समं संप्रेक्ष्य धर्मतः ।
दण्डरूपेण कृत्वास्य पश्चात्तं मोचयेन्नृपः ॥८२॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनैव पराजितः ।
समायान्तं पुनर्जित्वा दापयेद्द्विगुणं दमम् ॥८३॥
सदस्यदूषकं तूष्णीं ग्रामदूषणतत्परम् ।
अनपेक्ष्यस्वापराधं स्वकार्यवृजिने तथा ॥८४॥
नृपतिर्धार्मिकः सद्यः पणानष्टशतं हरेत् ।
सकाशात्तस्य विधिना न चेद्दोषमवाप्नुयात् ॥८५॥
समुद्दिश्यस्वकार्यं यः तूष्णीकं वेद सर्वतः ।
अश्रोत्रियः स्वयं (तद्वत्) सत्कर्मत्वेन विशेषतः ॥८६॥
विद्यमानो मन्यमानः स्वयमस्यैव केवलम् ।
सच्छ्रोत्रियाः समुद्वीक्ष्य विवादे सति केवलम् ॥८७॥
पूजाभोजनकालेषु स्वस्यानाह्वानकारणात् ।
तदुद्द्वयनिरोद्धारं कृतशापं तथाविधम् ॥८८॥
यत्नेनैवाह्वयित्वैनं सभामध्ये परीक्ष्य ।
न्यक्कृत्य विधिना सम्यक्कृत्वा(धिक्)कृत्यैव ततः पुनः॥८९॥
नैतादृशमितः कर्म परं स्यात्तु त्वया भवेत् ।
इति भीत्या समायुक्तं कृत्वैनं निश्चयेन वै ॥९०॥
त्रिशोत्तरं शतपणान् हरेत्तस्मान्न संशयः ।
यो भुक्तिकाले विप्राणां स्वकामैकपुरस्कृतः ॥९१॥
निरोधं कुरुते मूढः सम्यग्दण्डप्रदेशिका ।
क(प)णास्युर्द्वादश पुनः ऽस्मरेत् पुनः किल ॥९२॥

विशेषतः क्रतुषु च निरोधे मौढ्यतस्तराम् ।
स्वपुरस्कारतोऽतीव समष्टचा तस्य निग्रहः ॥८३३॥
राज्ञो निवेद्य पश्चात्तु ताडयित्वा कपोलयोः ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा धर्मेनं राष्ट्रतो नयेत् ॥८३४॥
ग्राममध्ये स्वशुद्ध्यर्थमपकीर्त्यैकशुद्धये ।
क्रियाविशेषान् कुर्वन्तः मूढान पण्डितमानिनः ॥८३५॥
शनैः कालेन महता धराधीशो महामनाः ।
शास्त्रविद्भ्यो विनिश्चित्य तत्कार्याणि ततः परम् ॥८३६॥
एतदर्थं त्वया चैवमेतत्तत्समनुष्ठितम् ।
किलेतिवचनं प्रोक्त्वासौ(धिक्)कृत्य च विशेषतः ॥८३७॥
तस्य शक्तेरनुगुणो दण्डो ग्राह्यो विशेषतः ।
ततः पुनरिदं वाक्यमेवमेतादृशं लघु ॥८३८॥
त्वया न कार्यं कर्मेति बोधयित्वा विशेषतः ।
विसर्जयेच्चिक्षयित्वा तथा तद्बोधकानपि ॥८३९॥
समष्टचा बहुधो भूयः एकं निरपराधिनम् ।
हठात्कारेण तूष्णीकं कार्यकाले समागते ॥८४०॥
बाधयेयुर्विवदमानास्तज्ज्ञात्वा धर्मज्ञो नृपः ।
शिक्षयेदेव विधिना ज्ञात्वा सत्कार्य(?)वर्त्म च ॥८४१॥
पृथक् पृथक् सम्यगेव शनैर्वा सत्वरं नु तत् ।
एकं चेच्छ्रोत्रियग्रामे तदीयां पूज्यतां पराम् ॥८४२॥
महत्वं व्यपदेश्यं च गुरुत्वमधिकं तथा ।
आचार्यत्वं पटुत्वं वैरा(र)त्वा(म)अनश्वरम् ॥८४३॥

निन्दाधिकं च [illegible] [illegible] ।
[illegible] शूद्रोऽपि [illegible] ॥८४४॥
आ[illegible] वै शूद्रा न [illegible] ।
[illegible] न [illegible] वै [illegible] [illegible] ॥८४५॥
निन्दादर्शिविहीनाः शूद्रशूद्रा सदा ।
धार्मिको शूद्रतः श्रीमान बहुना नास्ति [illegible] (?) ॥८४६॥
कृत्या यथाति [illegible] [illegible] परम् ।
कृत्वैव [illegible] [illegible] नमेदेवं प्रभूजयेत ॥८४७॥
शतानामपि शूद्राणां वचन नैव कारयेत् ।
तथा पुनस्माह्वानागमुखानां विशेषतः ॥८४८॥
किमति वचने तस्मिन् शूद्रोक्ते समुत्पन्ने ।
वचनं तच्छ्रोत्रियस्य वेदशास्त्रविनिन्दितम् ॥८४९॥
संभाव्य सर्वदा सर्वैः सर्वलोकोपकारकम् ।
ये वा विरोधिनस्तस्य ते सर्वे दण्डभागिनः ॥८५०॥
भवेयुरेव सततं मूढा वेदविरोधिनः ।
यत्करोति श्रोत्रियोऽसौ वचने नैव तत्परम् ॥८५१॥
न तत्कर्तुं मूढशतं किं शक्तं प्रभवेद्द्विजो ।
यो भुक्तिसमये मौर्ख्यात् ब्राह्मणानां समर्पितम् ॥८५२॥
दत्तं तथा प्रोक्षितं च मन्त्रेण परिषेचितम् ।
विघातयेद्दूषयेद्वा पांसुभिर्भस्मभिर्मृदा ॥८५३॥
उच्छिष्टेन पुरीषेण तथा तं सद्य एव वै ।
माहयित्वा विशेषेण निगलेन च संवृतम् ॥८५४॥

मासत्त्वयनरूपेण विप्रसंख्यानुरूपतः ।
कारयित्वा ततः पश्चात् एकविप्रस्य षट्शतम् ॥८५५॥
पणान् दण्डं गृहीत्वा च सर्वेषां तत्र वै तथा ।
भोक्तुं समुपविष्टानां पृथगेवं निरीक्ष्य वै ॥८५६॥
सर्वान् पणान् सान्स्वीकृत्य तं शूरिमुपहृत्य च ।
तद्ग्रामिभ्योऽथ वा तस्य तत्सत्पर्यायिन एव वा ॥८५७॥
देशादुच्चाटयित्वाथ दद्यादेवाविशङ्कितः ।
विप्रवृत्तिस्तु विप्रेभ्यः एव देया न तु स्वयम् ॥८५८॥
हरेद्राजा धर्मपरः हरन्सद्यः पतेदधः ।
एवं शूद्रश्चेत्कोऽपि तस्य दण्डो वधस्ततः ॥८५९॥
छित्वा हस्तौ प्रथमतः निगले वसतिस्सदा ।
राज्ञानिष्टप्रवक्तारं सर्वेषाक्रोशकारिणम् ॥८६०॥
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं सत्यश्रीकृत्वसङ्ककम् ।
छित्वा जिह्वां च शिश्नं च सद्यो दूराद्विसर्जयेत् ॥८६१॥
स्वजनैर्दूर्षितः सद्भिः भोजनादिषु कर्मसु ।
मोक्षयित्वा सदा यत्नाद्वशात्वाप्यचिन्तितम् ॥८६२॥
समागतश्च समये विवादेनैव केवलम् ।
दुराशया भोक्तुकामः दूर्शुवंन्परान्द्विजान ॥८६३॥
दापनीयस्त्वसौ सम्यक् चतुर्विंशतिकान् पणान् ।
न आगतो यदि वयं भोक्तुं यत्र च यत्र च ॥८६४॥

तत्र तत्र च गच्छामः(मो) न भुजिष्यामहे ततः ।
इत्यस्मिन् सङ्कटेऽर्थे तु विवादायागतो यदि ॥८६५॥
भुक्तिकाले दण्डनीयः नान्यकाले तदुक्तितः ।
भोजनेषु ब्राह्मणानां विवादे तु परस्परम् ॥८६६॥
संजाते सद्य एवास्य शान्तिः कार्या न चेद्वृथा ।
हानिस्सुमहती घोरा जायते चोभयत्र तु ॥८६७॥
विवादे तादृशे शक्तः श्रोत्रियश्चेद्विशेषवित् ।
बहुभिस्तु विशेषेणाविद्यैरश्रोत्रियैर्युतः ॥८६८॥
यदि स्युः श्रोत्रियास्सन्तः बहवस्तत्र तैस्समम् ।
अश्रोत्रियस्त्वं यं चैकः विवदेन्न तु धर्मतः ॥८६९॥
परेषां तु सहायेन तद्वाक्यश्रवणादिना ।
न कर्म कुर्यात्किमपि साहसं वचनं तथा ॥८७०॥
न वदेच्चापि तूष्णीकं किं तु तानखिलान्द्विजान् ।
संश्रित्यैव प्रणत्या च प्रियोक्त्या स्ववशान्नयेत् ॥८७१॥
तानेतानखिलान्नो चेद्धानिरस्यैव जायते ।
बहुब्राह्मणविद्वेषः तद्दुःखकरणं वृथा ॥८७२॥
श्रेयसो न भवेदेव तस्मात्तु तथा चरेत् ।
अधिकान् श्रोत्रियान् कुर्यात् न्यूनानश्रोत्रियान्सदा ॥८७३॥
कर्मणा मनसा वाचा प्रयत्नेन समाचरेत् ।
ब्राह्मणानर्चयेन्नित्यं ब्राह्मणानेव तोषयेत् ॥८७४॥
भोजयेद्ब्राह्मणानेव दद्यात्तेभ्योऽनिशं धनम् ।
सर्वदेवमयो विप्रः सर्ववेदमयो द्विजः ॥८७५॥

सर्वक्रतुस्वरूपश्च सर्वतीर्थसदाश्रयः ।
सर्वव्रतानि कृच्छ्राणि तपांसि ब्राह्मणः स्मृतः ॥८७६॥
सर्वे धर्मास्स एवस्याच्छ्राद्धानि नियमा अपि ।
ब्राह्मणेन विना किंचिदभिप्रेतं न सिद्ध्यति ॥८७७॥
तस्मान्न ब्राह्मणसमं किं भूतमिह विद्यते ।
यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥८७८॥
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ।
ब्राह्मणो जङ्गमं तीर्थं प्रयक्ता ब्राह्मणस्सुरः ॥८७९॥
अदाहकः पावकोऽयं ब्राह्मणो वायुरुच्यते ।
पद्मबन्धुरयं प्रोक्तः संत्यक्तास्तमयोदयः ॥८८०॥
सुपात्रं सर्वदा नाना शुभानामास्पदः परः ।
अभव्याज्ञानरोगाधीःमृत्युदारिद्र्यमारकः ॥८८१॥
अकर्तुमन्यथाकर्तुं कर्तुं सर्वं विचक्षणः ।
दुर्वर्णानपि सद्वर्णान्परान्स कुरुते क्षणात् ॥८८२॥
नैतस्मादधिकं तुल्यं वस्त्वस्ति जगतीतले ।
हिरण्यगर्भत्रितयदानमात्रेण तत्क्षणात् ॥८८३॥
विप्रत्वं परमाप्नोति वृषलो नात्र संशयः ।
तत् षोडशमहादानप्रविष्टं कस्य वा भवे ॥८८४॥
करणादेव शेषाणां दानानां करणे पुनः ।
शूद्रादेर्वेदमन्त्रैस्ते सम्यक्कारयितुर्यथा ॥८८५॥
विधानतस्तुप्रभवेत् तत्तु विप्रमुखेन चेत् ।
क्षत्रादि मुखतश्चेत्तु न युक्तं प्रभवेद्धि तत् ॥८८६॥

तुलाभारो गोसहस्रं कल्पवृक्षादिकं तु वा ।
शूद्रेण परमं दानममन्त्रकमथापि च ॥८८७॥
कृतं येन तत्परं सर्वं गुणाभिराम चेत्स्मृतम् ।
वेदोक्तेनैव मार्गेण अग्रिमादिगुणेन च ॥८८८॥

विप्रैस्तत्तु पण्डितैर्वा यज्ञियैः कृतोऽपि सन् ।
द्वितीयादीनि दानानि तत्र ब्राह्मणसंनिधौ ॥८८९॥
वेदोक्तेनैव मार्गेण कुर्याद्वियाविचारयन् ।
महादानस्य तस्मा(स्या)स्य कारणादेव केवलम् ॥८९०॥
एतस्यापि ततः सद्यः तच्छिष्टे दानकर्मणि ।
वेदमार्गेण शक्नोति कर्तुं तत्कर्म तादृशम् ॥८९१॥
न साक्षाद्वेदमन्त्रोक्तीः तस्य संगच्छतेतराम् ।
ब्राह्मणस्य मुखेनैव तदुक्तिस्तस्य तत्र वै ॥८९२॥
संगच्छते विशेषेण न तु स्वस्य विधीयते ।
त्रिवारं तेषु सर्वेषु कृतेषु ततः परम् ॥८९३॥
तदुक्त्यधिकारोऽपि सम्यक् संगच्छतेऽस्य तु ।
यो वा दानानि सर्वाणि महान्ति परमे यतः ॥८९४॥

करोति भक्त्या शूद्रोऽपि तत्क्षणात्तेन कायतः ।
विष्णुलोकं प्रयात्येव महिम्ना तस्य केवलम् ॥८९५॥
हिरण्यगर्भदानस्य चतुर्वारकृतस्य तु ।
महिम्ना वृषलस्यापि मौञ्ज्यामधिकृतिर्भवेत् ॥८९६॥

ततोऽपि कृतया मौञ्ज्या शूद्रो ब्राह्मण्यमृच्छति ।
तुलाष्टादशधा ज्ञेया तत्रादौ राजता स्मृता ॥८९७॥
चामीकरमयी पश्चात्त्रपुसीसकयोरपि ।
औदुम्बरमयी पश्चात् कार्पासपटयोरपि ॥८९८॥
गुडाज्यलवणक्षीरदधिशाकमयाः पराः ।
माध्वीकतिलतैलानां पैल्वाकी धान्यराशिभिः ॥८९९॥
चरमा सा प्रकथिता सप्तधान्यैः पृथक् पृथक् ।
धान्यैरपि तथाख्यैः विकल्पेन मनीषिभिः ॥९००॥
चरमा सा तुला ज्ञेया चतुर्दशविधैकका ।
ग्राहकस्य ब्राह्मणस्य सद्योरक्षस्त्वदायिनी ॥९०१॥
प्रायश्चित्तापनोद्या सा न भवेदेव सर्वथा ।
सर्वाण्यपि च दानानि तुलादीनि तु षोडश ॥९०२॥
महाशान्त्येव सर्वाणि नात्र कार्या विचारणा ।
फलंसद्यस्सर्वपापनाशकारैव केवलम् ॥९०३॥
भुक्तिदान्येव सर्वेषां वर्णानामविशेषतः ।
एतानि चरमे काले यो वा मर्त्यो महामनाः ॥९०४॥
मध्ये तेषां तुलादीनामप्येकं दानमुत्तमम् ।
करोति सद्यो मुक्तिं स ब्रह्मसायुज्यलक्षणम् ॥९०५॥
अयत्नादेव मनुजो लभते नात्र संशयः ।
चरमे जन्मनि नरस्तानि दानानि मानवः ॥९०६॥
करोत्येव न चान्यस्मिन् यद्वयं तन्मयोदितम् ।
दानं महत्स्वेषामप्येकं भक्तिमान्नरः ॥९०७॥

दशानां च समानां तु कुर्वाणानि नरैव हि।
फलं तु लभते दिव्यं प्रत्यगात्मप्रकाशनम् ॥६०८॥
हैरण्यगर्भं नदान (नं) गोमूत्रं प्रथमं स्मृतम्।
गोमयोदकसंज्ञं तत् (तु) द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥६०९॥
दधिपूर्तिमन्यत्तु तृतीयमिति सद्विदुः।
क्षीरपूर्तिमन्यत्तु चतुर्थं पापभञ्जनम् ॥६१०॥
घृतेन पूर्तिं प्राहुः पञ्चपातकनाशनम्।
तैलं हिरण्यगर्भाख्यं गतो भिन्नं प्रचक्षते ॥६११॥
मधुना पूर्तिं पुण्यमत्यन्ताशानवारकम्।
तथेक्षुरससंपूर्णं महारौरवभीतिहम् ॥६१२॥
नारिकेलोदकैः पूर्णं तथाम्भःपूर्णमेककम्।
हैरण्यगर्भं परमं प्राहुर्दिव्या महर्षयः ॥६१३॥
एवं दशविधं प्रोक्तं दानं पापापनोदकम्।
हैरण्यगर्भसंज्ञं तत् ग्राहकस्यातिभीतिहम् ॥६१४॥
तद्ब्रह्माण्डकटाहाख्यं दानं सर्वार्थदायकम्।
चतुर्दशविधं प्रोक्तं भूर्भुवस्स्वादिभिः पदैः ॥६१५॥
अतुलादिपदैश्चापि संयुक्तं सर्वसिद्धिदम्।
महादानं महाभूतिदायकं पापवृन्दहम् ॥६१६॥
एवां यदेककं वापि कृतं चेन्निखिलं कृतम्।
तत्तत्कामनया चेत्तु चरेदेव तथा तथा ॥६१७॥
तूष्णीकं परमेशस्य तुष्टये चेत्कृतं तु तत्।
कर्तुःसायुज्यदं सद्यः तथापि तु पुनः परम् ॥६१८॥

रहस्यमेकं वक्ष्यामि ग्राहकस्त्वस्य केवलम् ।
रक्षस्त्वं समवाप्नोति दाता सायुज्यमृच्छति ॥९१९॥
गोसहस्रमतिश्लाघ्यं गोसत्रशतसन्निभम् ।
नीलादिभेदतस्तत्तु सप्तरूपं प्रचक्षते ॥९२०॥
स्वर्णलाङ्गलसंज्ञं तद्परं दानमेककम् ।
मन्वादिभिर्विरचितं दातुस्सर्वफलप्रदम् ॥९२१॥
नैतेन तुल्यमन्यत्तु दानं दानोत्तमोत्तमम् ।
कामधेन्वाख्यकं पश्चादेकं सर्वगुणान्वितम् ॥९२२॥
हरिश्चन्द्रादिभिर्धीरैः राजभिः समनुष्ठितम् ।
सर्वयज्ञोपविनुतमपरं दानमेककम् ॥९२३॥
कल्पवृक्षाख्यकं देवदेवस्य परमात्मनः ।
अतिसंप्रीतिजनकं सद्यः कैवल्यदायकम् ॥९२४॥
एवं महाधरादानं गोमेधशतसंनिभम् ।
सर्वाण्येतानि दानानि कर्तुं देव त्रिपूर्वकम् ॥९२५॥
पूर्वोक्तफलदं ज्ञेयं नान्यथेति सुनिश्चितम् ।
एवं सर्वाणि दानानि दशपञ्च च केवलम् ॥९२६॥
प्रथमं कन्यकादानदातुर्ग्राहकस्य च ।
चन्द्रमण्डलपर्यन्तं धवरााशिः कृता यदि ॥९२७॥
सूर्यमण्डलपर्यन्तं तिलराशि(:)कृता यदि ।
(अ)नन्ते शिवलोकपर्यन्तस्सर्पपा राशिकृतमा ॥९२८॥
सप्तर्षिलोकपर्यन्तं वालुका राशिकृतमा ।
इत्यस्यासां तु या संख्या तावद्वर्षसहस्रकान् ॥९२९॥

श्मशानामपि पूर्वेषां श्मशानामपि पूर्वशः।
पितुः स्थाप्य तथा पश्चात्पितुर्मातृपितुस्तथा ॥६३०॥
एकोत्तरशतानां च कुलानां महतामपि।
पितॄणामपि सर्वेषां नरकोद्धारपूर्वकम् ॥६३१॥
गयाश्रयणसहस्रेभ्यो ह्यधिकारकमुच्यते।
दत्तेषु सत्सु विज्ञानदानेव पुनरेव वै ॥६३२॥
तद्ब्रह्मसायुज्यनामा मुक्तिकारकमेव वै।
तस्मान्नैतत् समं दानं धर्मो वै सत्वरः पुनः ॥६३३॥
सर्वैतत्समं दानं लक्ष्मीनारायणप्रियम्।
महासन्ततिसंवृद्धिकारकं कथितं महत् ॥६३४॥
यथैतदेतत् परमं निश्शेषपितृतारकम्।
कुर्याद्दानं प्रशंसन्ति तथा तत्तनयस्य च ॥६३५॥
दानं पितृणामत्यन्तकलिदुर्गतिकारकम् (?)।
पूर्ववत् कालसंख्या च वेदितव्या विशेषतः ॥६३६॥
अस्मिन्नर्थे न सन्देहः एवमाह महर्षयः।
यतये कन्यकादानं रसदानं च वर्णिनः ॥६३७॥
भिक्षादानं गृहस्थाय त्रयमेतद्विगर्हितम्।
तथार्थिनं मस्करिणं वर्णिनं चान्नकामुकम् ॥६३८॥
भिक्षार्थिनं गृहस्थं च सद्यो राष्ट्रात्प्रवासयेत्।
तूष्णीं भिक्षां गृणन् ग्रामे वसन्तान्भक्षयन्नृपा ॥६३९॥

विनैव वेदाध्ययनं ब्रह्मचारी विशेषतः ।
दण्डनीयः प्रयत्नेन ताडनीयस्तदा तदा ॥६४०॥
राष्ट्राद्वु (द्वासयेत्तस्मा) वेदाध्ययनतत्परम् ।
नित्यंभिक्षार्थिनोयस्मात् शाकसूपरसादिभिः ॥६४१॥
भिक्षाप्रदानात्परतः सत्समाप्ति समाचरेत् ।
तावन्मात्रेण ते वेदाः सर्वे शास्त्राणि चाङ्गकैः ॥६४२॥
तथा स्मृति पुराणानि (सेतिहासानि सर्वशः) ।
वर्णिभुक्तौ पसूपरसाद्यदधिगोरसाः ॥६४३॥
द्वादशक्षितिगोरत्नगजवाहा भवन्ति वै ।
गृहाश्रय प्रतिदिनं शुद्धो धर्मः स्वयं महान् ॥६४४॥
यतेर्वा वर्णिनोदत्ताः लवणव्यञ्जनादयः ।
भुक्तिकालेऽन्यहं नृणां अद्विपः कामधेनवः ॥६४५॥
कल्पवृक्षा भवेयुर्हि किं चैते रत्नसानवः ।
कन्याभूस्वर्णरत्नाश्वगजवाहनसंचयाः ॥६४६॥
यतिवर्णि प्रदत्तास्ते गृहिणो नरकप्रदाः ।
भवेयुर्नात्र सन्देहः तस्यां(स्यां) दद्यादतो न तान् ॥६४७॥
गृहिणं स्वन्नभिक्षार्थे समागतमुदीक्ष्य ना ।
द्वितीयेऽहनि हुंकृत्य दूरमुद्वासयेद्घृणम् ॥६४८॥
प्रथमेऽह्नि वेदघ्नः किं कार्यं क्रियते त्वया ।
नेतः परं न कार्यं स्यादित्युक्त्वा तां प्रदापयेत् ॥६४९॥
गच्छेत्सु(द्रु)माटयेत्तूष्णीं द्वितीयेऽह्नि चन्द्रवै ।
याचन्तं तण्डुलान् ब्रह्मचारिणं यतिमेव वा ॥६५०॥

दृष्ट्वा विप्रोक्त मार्तण्डं पुण्डरीकाक्षमुत्तमम्।
नाशुद्धं भरति माल्यं यतिवर्यः कदाचन ॥६५१॥
जातरूपं न दद्याच्च सुगन्धकुसुमान्वितम्।
गण्डूषाय पात्रकार्ये न दद्यात् कदाचन ॥६५२॥
आगतायै भिक्षुकायै करमात्राधिकान्नतु।
तासां नित्यं धान्यमेव प्रदेयं करपूरितम् ॥६५३॥
यदि पञ्चाशदधिकसंवत्सरपरा पुनः।
तदा तण्डुलयोग्यापि भवेदिति भृगोर्मतम् ॥६५४॥
व्रतश्राद्धनिमित्तेन याचितो यदि वा स्वया।
तत्पूर्तिमात्रदानेन गयाश्राद्धफलं भवेत् ॥६५५॥
विधवाभिरनाथाभिः यत्नाय यदि याचितः।
तन्मनः पूरणं कुर्वन्नश्वमेधफलं भवेत् ॥६५६॥
षष्टिवर्षात्परं तासामनाथानां तु याचने।
भिक्षायामधिकारोऽस्ति तत्पूर्वं नेति चाङ्गिराः ॥६५७॥
वर्णिने यतये कन्यादानं शास्त्रविगर्हितम्।
विशेषेण यतेस्ताम्बूलद्वयं नरकप्रदम् ॥६५८॥
अपि यत्नात् श्राद्धदिने वर्णिने देवरूपिणे।
देया स्याद्दक्षिणा तस्मै न ताम्बूलमिति श्रुतिः ॥६५९॥
व्रतिने कन्यकादानं रसदानं (तु) पुत्रिणे।
यागार्थिनेऽन्नदानं च कोटियज्ञफलप्रदम् ॥६६०॥
वैश्वदेवावसाने तु ब्राह्मणो यत्र कश्चन(कश्चन)।
क्षुधार्ता पात्रभूतस्य स्त्रियोऽन्तर्वत्न्य एव च ॥६६१॥

कन्यका विधुरा बालाः तीर्थादिव्रतचारकाः।
एडाश्च विधवास्सर्वे वर्णास्तेऽपि चतुर्विधाः॥६६२॥
न्नदानैकपात्राणि चण्डालान्तानि सूरिभिः।
धितानि महाभागैः क्षुत्क्षामापन्नपात्रता॥६६३॥
हादानानि चामूनि तुलादीन्यधुना पुनः।
द्दं कृष्णाजिनादीनि प्रायश्चित्तादिकैरपि॥६६४॥
निवर्त्यानि घोराणि ग्राहकस्यैव सर्वगा।
मात् स्वोदरपूर्त्यर्थं गुरुद्रोहादिकं स्वरम्॥६६५॥
द्देयसखिद्रोहं कुर्याद्वापदि निर्भयम्।
तुलादिमहादानद्रव्यं सर्वात्मना स्पृशेत्॥६६६॥
ब्राह्मणगोमांसं मातृमांसं सुरादिकम्।
येदापदि पुनः तत्र द्रव्यं न(सं)स्पृशेत्॥६६७॥
त्नीं च भगिनीं भ्रातृपत्नीं सुतामपि।
चित् कामतो गच्छेत् तुलाद्रव्यं तु न स्पृशेत्॥६६८॥
न्मद्यपानं वा गोमांसं वापि भक्षयेत्।
ा ब्रह्महत्यां च भ्रूणहत्यां तथा विधाम्॥६६९॥
त्यां तु वा कुर्यात् तुलाद्रव्यं तु न स्पृशेत्।
श मातरं गच्छेत् तुलाद्रव्यं तु न स्पृशेत्॥६७०॥
स्तशतैश्चापि तीर्थकोटिशतैरपि।
तिकृच्छ्रचान्द्राद्यैः तद्रव्यस्वं न नश्यति॥६७१॥
पां पुनः प्रायश्चित्तशास्त्रं वृथा भवेत्।
सति तस्यापि प्रत्युत्तरमिहोच्यते॥६७२॥

आदौ प्रतिवसन्तस्य वसन्ते सोमयाजिनः।
संकल्पकाल आद्यस्य दैवान्नष्टश्रिया पुनः ॥६७३॥
तद्विच्छित्तिर्दशायां चेद्येन केनाप्युपायतः।
कर्तव्यत्वेन चोक्तस्य सामर्थ्याकरणे तथा ॥६७४॥
तस्य प्रतिवसन्तस्य तादृशं दानमेककम्।
प्रतिगृह्य विधानेन तद्द्रव्यस्य तुरीयकम् ॥६७५॥
व्ययं कृत्वा चित्तमपि तेन द्रव्येण तत्परम्।
अनुष्ठितस्ततस्तन्तुः यदि तद्वस्तु चाखिलम् ॥६७६॥
विनियुक्तं तत्र सममात्र एवान्य तादृशः।
तद्द्रव्यं तत्प्रदं न स्यादेव यागाय यत्कृतम् ॥६७७॥
तत्सर्वं तस्य दोषाय न भवेदेव सर्वथा।
शतसंवत्सरं यावज्जीवं चैव विधानतः ॥६७८॥
संकल्पितस्य यज्ञस्य विषये ब्राह्मणस्य चेत्।
सर्वप्रतिग्रहेणापि न दोष इति सा श्रुतिः ॥६७९॥
भ्रष्टाद्वा पतिताद्वापि पाषण्डान्नास्तिकादपि।
चण्डालाद्यवनान्म्लेच्छात्प्रतिगृह्यापि सं क्रतुम् ॥६८०॥
यत्नेन विधिवद्विप्रश्चमेव वपंस्तया।
दौर्भाग्यविनाशाय विच्छित्तौ वेदिवेदयोः ॥६८१॥
अनिरासादनिम्लादनिनीचादतन्द्रितः।
मकाराद्मु संगृह्य येन केन प्रकारतः ॥६८२॥
अग्निष्टोमस्त्वनुष्ठेयः प्रथमोऽयं क्रतुर्भवेत्।
तस्यानुष्ठानमात्रेण दौर्भाग्यं विनश्यति ॥६८३॥

अत्यग्निष्टोमसुत्र्यान्तान् क्रमान् षट्स्थितः परम् ।
सद्द्रव्येणैव विधिना न्यायलब्धेन धर्मवित् ॥९८४॥
यजेतव्यं पुरोक्तेन न मार्गेण कदाचन ।
दौर्भाग्ये परिहृते येन केन प्रकारतः ॥९८५॥

तदुत्तरकर्माणां चेदनुष्ठानस्य शून्यतः ।
अभावात्प्रत्यवायस्य करणं मास्तु पूर्ववत् ॥९८६॥
कर्मणो यस्य वा लोके समनुष्ठानशून्यतः ।
प्रभवेत्प्रत्यवायोऽयं कर्मणस्तस्य केवलम् ॥९८७॥
अत्यन्तावश्यकत्वेन कर्तव्यत्वं प्रकीर्तितम् ।
तद्भिन्नानां कर्मणश्चेन् करणेऽभ्युदयं परम् ॥९८८॥
पुनस्तत्करणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ।
पञ्चपातकभिन्नानां पातकानां द्विजन्मनाम् ॥९८९॥
गायत्री जप एवास्यान्निष्कृतिः शास्त्रसंमता ।
शतं सहस्रमयुतं नियुतं न्यर्बुदं तथा ॥९९०॥
तत्तत्कार्यानुगुण्येन व्याहृतीनां जपोऽथवा ।
सोमातिरेकादिषु च महादानादिषु क्वचित् ॥९९१॥

उपनीतिः पुनरपि क्रूरकर्मसु केवलम् ।
परगर्भादिकं चापि कार्यमेवेति निष्कृतौ ॥९९२॥
प्रवदन्ति महात्मानः नदीस्नानादिकानि च ।
कृच्छ्रप्रतिनिधित्वेन केचिदाहुश्च पापिनाम् ॥९९३॥

अनुपहाय सौन्दर्यकारणाय च मार्गे।
पुष्पगृहं च नी(न)मकं शिवगंधस्तकं तथा ॥९६३॥
गौडवैष्णवसंप्रदायस्था शाक्ता नोचनियमु वा।
त्रियम्बकमिदं विष्णुराद्यकाभास्वाः स्मृताः ॥९६४॥
सर्वेष्वपि च कृत्येषु कपिलेनेदमीरितम्।
धर्मशास्त्रं महासारं सर्वलोकोपकारकम्।
पठन् भक्त्याद्विजो नित्यमश्वमेधफलं लभेत्। ९६५॥

॥ इति कपिलस्मृतिस्समाप्ता ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

॥ श्री गणेशायनमः ॥

* वाधूलस्मृतिः *



नित्यकर्मविधिवर्णनम्

वाधूलं मुनिमासीनमभिगम्य महर्षयः
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥
भगवन् ब्राह्मणादीनामाचारं वद तत्त्वतः ।
तच्छ्रुत्वा मुनि शार्दूलस्तानृषीन् प्राह धर्मवित् ॥ २ ॥
ब्राह्मान्मुहूर्तादारभ्य त्रिकाले विहितं तथा ।
नित्यनैमित्तिकं चैव प्रवक्ष्यामि यथामति ॥ ३ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते संप्राप्ते त्यक्तनिद्रः प्रसन्नधीः ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य हरिसंकीर्तनं चरेत् ॥ ४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते निद्रां च कुरुते सर्वदा तु यः ।
अशुचिं तं विजानीयादनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ५ ॥
नक्षत्रज्योतिरारभ्य सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रातः सन्ध्येति तां प्राहुः श्रुतयो मुनिसत्तमाः ॥ ६ ॥
प्रातः सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्धास्तमित भास्कराम् ॥७॥
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थो ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ ८ ॥

अवगुण्ठितसर्वाङ्गः तृणैराच्छाद्य मेदिनीम् ।
घ्राणास्ये वाससाऽऽच्छाद्य मलमूत्रं त्यजेद्बुधः ॥ ९ ॥
अप्रावृत्य शिरो यस्तु विण्मूत्रं सृजति द्विजः ।
तच्छिरः शतधा भूयादिति वेदाः शपन्ति नम् ॥१०॥
उत्थाय वामहस्तेन गृहीत्वा चोर्ध्वमेहनम् ।
शौचदेशमथाभ्येत्य कुर्याच्छौचं मृदम्बुभिः ॥११॥
अरत्निमात्रमुत्सृज्य कुर्याच्छौचमनुद्धृते ।
पश्चात्तच्छोधयेत्तीर्थमन्यथा न शुचिर्भवेत् ॥१२॥
विट्छौचं प्रथमं कुर्यान्मूत्रशौचं ततः परम् ।
पादशौचं ततः कुर्यात् करशौचं ततः परम् ॥१३॥
पञ्चधा लिङ्गशौचं स्याद्गुदशौचं त्रिवेष्टितम् ।
पादयोर्लिङ्गवच्छौचं हस्तयोस्तु चतुर्गुणम् ॥१४॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१५॥
यद्दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ।
तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ॥१६॥
विण्मूत्रकरणात्पूर्वमादद्यान्मृत्तिकां तदा ।
अदद्यानस्तु तां पश्चात्सवासा जलमाविशेत् ॥१७॥
आर्द्रामलकमात्रास्तु ग्रासा इन्दुव्रते स्मृताः ।
तथैवाहुतयः सर्वाः शौचार्थे याश्च मृत्तिकाः ॥१८॥
शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

त्रः सदा कार्यः तन्मूलो हि द्विजः स्मृतः ।
ारविहीनस्य समस्ता निष्फला क्रियाः ॥२०॥
तुः शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः ।
ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥२१॥
कृतिहस्तेन माषमग्नजलं पिबेत् ।
मधिकं पीत्वा सुरापानसमं भवेत् ॥२२॥
ङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः ।
ष्ठकनिष्ठे तु शिष्टेनाचमनं भवेत् ॥२३॥
थ शुचौ देशे प्राङ्मुखो ब्रह्मसूत्रधृत् (क) ।
ः कुशाकरो द्विजः शुचिरुपस्पृशेत् ॥२४॥
ाभिस्तु हृदयं ब्राह्मणः शुद्धतामियात् ।
ः कण्ठतालुस्पृक् वैश्यः शूद्रः तथा स्त्रियः ॥२५॥
र्णेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ।
ष्टं तत्पवित्रं तु भुक्त्वोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥२६॥
तः पिबेत्तोयं कुशाहस्तः सदाऽऽचमेत् ।
कुशाहस्तस्तु न कदाचिदुपस्पृशेत् ॥२७॥
वीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
दक्षिणे कर्णे सन्तीति मनुरब्रवीत् ॥२८॥
ोदङ्मुखो वापि समाचम्य विशुध्यति ।
पुनराचम्य याम्या स्नानेन शुध्यति ॥२९॥
ासा जले कुर्यात् तर्पणाचमनं जपम् ।
ासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥३०॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३२॥
[illegible] दन्तधावनकृन्नरः ।
स घोरं नरकं याति [illegible] ॥३३॥
प्रक्षाल्य पाणी दन्तौ च मुखं चाद्भिः समाहितः ।
आचम्य प्राङ्मुखः पश्चाद्दन्तधावनमाचरेत् ॥३४॥
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥३५॥
यस्तु गण्डूषसमये तर्जन्या च यथोपजनत् ।
कुर्वीत यदि मूढात्मा नरकं पतति द्विजः ॥३६॥
अलाभे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेष्वपि ।
अपां द्वादशगण्डूषैः मुखशुद्धिर्भविष्यति ॥३७॥
प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवमी द्वादशी तथा ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥३८॥
सुरया लिप्तदेहोऽपि प्रायश्चित्तीयते द्विजः ।
प्रातरभ्यक्तदेहस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥३९॥
तैलाभ्यङ्गं महाराज ब्राह्मणानां करोति यः ।
स स्नातोऽब्दशतं साग्रं गङ्गायां नात्र संशयः ॥४०॥
द्रव्यान्तरयुतं तैलं न कदाचन दुष्यति ।
तैलाभ्यक्तेन संसिक्तं मद्यपेऽपि न दुष्यति ॥४१॥

मन्त्यश्वपाकानां स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्।
रिंशत्पदादूर्ध्वं छायादोषो न विद्यते ॥४२॥
यस्पर्शने चैव त्रयोदशनिमज्जनम्।
म्य प्रयतः पश्चात्स्नानं विधिवदाचरेत् ॥४३॥
भिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता।
तस्या भवेच्छौचं शुध्यते केन कर्मणा ॥४४॥
ऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम्।
चैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नाप्या पुनः स्पृशेत् ॥४५॥
द्वादशकृत्वो वा ह्याचामेच्च पुनः पुनः।
च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा ॥४६॥
च्छक्तया ततो दानं पुण्याहेन विशुध्यति।
वाभिप्लुते नार्यौ संभाषेतां मिथो यदि ॥४७॥
र्सं तयोराहुरशुद्धौ शुद्धिकारणम्।
च सूतके चैव ह्यन्तरा चेदृतुर्भवेत् ॥४८॥
त्या भोजनं कुर्याद् भुक्त्वा चोपवसेदहः।
वे वासुदेवस्य यः स्नाति स्पर्शशङ्कया ॥४९॥
धाः पितरस्तस्य पतन्ति नरके क्षणात्।
रयस्पर्शने वान्तौ अश्रुपाते क्षुते भगे ॥५०॥
नैमित्तिकं ज्ञेयं देवर्षिपितृवर्जितम्।
न्यम्भः समानिस्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले ॥५१॥
धान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः।
त्रियः श्रोत्रियो वा अपात्रं पात्रमेव वा ॥५२॥

विप्रश्च्युतो वा विप्रो वा ग्रहणे दानमर्हति।
सर्वं भूमिसमं दानं सर्वो ब्रह्मसमो द्विजः ॥५३॥
सर्वं गङ्गासमं तोयं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
प्रातराचमनं कृत्वा शौचं कृत्वा यथाविधि ॥५४॥
दन्तशौचं ततः कृत्वा प्रातः स्नानं समाचरेत।
द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ॥५५॥
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।
येन तीर्थेन गृह्णीयात् तेन दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥५६॥
अन्यतीर्थेन गृह्णीयात्तत्तोयं रुधिरं भवेत्।
पूर्वाशाभिमुखो देवानुत्तराभिमुखस्तथा ऋषीन् ॥५७॥
पितॄंस्तु दक्षिणास्यस्तु जलमध्ये तु तर्पयेत्।
स्नानायमभिगच्छन्तं देवाः पितृगणैः सह ॥५८॥
वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥५९॥
निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रं ये के च इति मन्त्रतः ॥६०॥
वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य निष्पीड्य च जलाद्बहिः।
वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत् ॥६१॥
मनुष्यतर्पणे चैव स्नानवस्त्रनिपीडने।
निवीती तु भवेद्विप्रस्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥६२॥
नदीषु देवखातेषु गिरिप्रस्रवणेषु च।

ीयनिपानेषु न स्नायाद्धि कदाचन ।
नकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥६४॥
ायोपात्तवित्तस्य पतितस्य च वार्धुषेः ।
स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्यं समाचरेत् ॥६५॥
यज्ञैः खानिताः कूपाः तटाका वाप्य एव च ।
स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥६६॥
ीयनिपानेषु यदि स्नायात्कथंचन ।
पिण्डान् समुद्धृत्य तत्र स्नानं समाचरेत् ॥६७॥
ास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ।
चि तं विजानीयादनर्हः सर्वकर्मसु ॥६८॥
मूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासनमेव च ।
ाचारविहीनस्य सर्वाः स्युः निष्फलाः क्रियाः ॥६९॥
ु(षस्यु)षसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदितेऽपि वा ।
पत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥७०॥
वस्त्रेण यः कुर्याद्देहस्य परिमार्जनम् ।
लीढं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥७१॥
काले भानुवारे यो नरः स्नानमाचरेत् ।
स्नानसहस्राणि गङ्गायमुनसङ्गमे ॥७२॥
र्शे वैधृतौ पुष्ये व्यतीपाते च संक्रमे ।
यां च नदीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥७३॥
यमपि कुर्वाणो भुञ्जानोऽपि यतस्ततः ।
चिभारकं दुःस्वं प्रातःस्नायी न पश्यति ॥७४॥

विना स्नानेन यो भुङ्क्ते स मलाशी न संशयः।
अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपः पूयशोणितम् ॥७५॥
अहुताशी कृमिं भुङ्क्ते ह्यदाता विषमश्नुते।
संकल्पं सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम् ॥७६॥
देवादितर्पणं चैव स्नानं पञ्चाङ्गमिष्यते।
हिरण्यशृङ्गमित्युक्त्वा जलं समवगाहयेत् ॥७७॥
सुमित्रा इत्युदाहृत्य ह्यात्मानमभिषेचयेत्।
दुर्मित्रा इत्युदाहृत्य शून्यस्थाने जलमुत्सृजेत् ॥७८॥
योऽस्मान् द्वेष्टीत्युदाहृत्य यत्र तत्र जलं क्षिपेत्।
यं च वयं द्विष्म इति पुनस्तत्र जलं क्षिपेत् ॥७९॥
एवं त्रिर्मृत्तिकास्नाने जलमञ्जलिनोत्सृजेत्।
नमोऽग्नयेति मन्त्रेण नमस्कुर्यात् जलं ततः ॥८०॥
यदपामित्यमेध्यांशं निरस्येद्दक्षिणे जलम्।
अत्याशनादिविद्भ्यां त्रिरालोड्य तु पाणिना ॥८१॥
चतुरश्रं तीर्थपीठं पाणिनोल्लिख्य वारिषु।
नन्दिनीत्यादिनामानि बद्धाञ्जलिपुटो भवेत् ॥८२॥
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥८३॥
इमं मेगङ्ग इत्युक्त्वा पुण्यतीर्थानि च स्मरेत्।
आपो अस्मानीतिऋचामुक्त्वा मज्जनमाचरेत् ॥८४॥
आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिप्रोक्ष्य च वारिभिः।
ततो नारायणं स्मृत्वा प्रजपेदघमर्षणम् ॥८५॥

पंणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्पणः ।
ऽनुष्टुप् तथा देवो भाववृत्तोऽधिदेवता ॥८६॥
रमष्टवारं वा निमज्ज्यात्तज्जले जपेत् ।
तस्य मन्त्रेण पुनः प्रोक्षणमाचरेत् ॥८७॥
ज्वलति मन्त्रेण प्राशयेन्मन्त्रितं जलम् ।
र्वकार्यमन्त्रं तु पुनः मज्जन् जले जपेत् ॥८८॥
गोरिति मन्त्रेण मज्जेदप्सु पुनः पुनः ।
ि वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै ॥८९॥
ह्याप्रतिग्राह्य भुक्त्वा चाभक्ष्यभक्षणम् ।
गोरित्यपां मध्ये सकृज्जप्त्वा विशुध्यति ॥९०॥
ं च द्विराचम्य देवादीस्तर्पयेत्ततः ।
वहन्तीरिति च तृप्यतेति स्थले क्षिपेत् ॥९१॥
वस्त्रेणहस्तेन यो द्विजोऽङ्गं प्रमार्जति ।
भवति तत्स्नानं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥९२॥
विद्वस्त्रशेषेण नोत्तरीयेण वा शिरः ।
निर्धुनुयात्केशान्न तिष्ठन परिमार्जयेत् ॥९४॥
कुर्यादार्द्रं वस्त्रं तु ऊर्ध्वमुदा(सा)रयेद्द्विजः ।
वस्त्रमधस्ताच्चेत्पुनः स्नानेन शुध्यति ॥९५॥
सन्ध्यामुपासीत वस्त्रसंशोधपूर्विकाम् ।
य मध्यमां सन्ध्यां वस्त्रनिष्पीडनं परम् ॥९६॥
मूलाः क्रियाः सर्वाः सन्ध्योपासननेव च ।
त्सर्वप्रयत्नेन स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ॥९७॥

प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी सदा भवेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥९८॥
अन्तराच्छाद्य कौपीनं वाससी परिधाय च ।
उत्तरीयं समादद्यात् तद्विना नाचरेत्क्रियाः ॥
यज्ञोपवीतवद्धार्यमुत्तरीयं सदा द्विजैः ।
वन्दने तर्पणे चैव कट्यामेव च धारयेत् ॥९९॥
मुखजानामूर्ध्वपुण्ड्रं तिलकं बाहुजन्मनाम् ।
पद्माकारमूरुजानां त्रिपुण्ड्रं पादजन्मनाम् ॥१००॥
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमीशितारं
विष्णुं परं ध्यायति महात्मा ।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थितं
परात्परं यन्महतो महान्तम् ॥१०१॥
महोपनिषदि प्रोक्तमूर्ध्वपुण्ड्रं परं शुभम् ।
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी
नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम् ।
ज्ञात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः
संसारपाशैरिह चैति विष्णुम् ॥१०२॥
अथर्वशिरसि प्रोक्तमूर्ध्वपुण्ड्रविधिं द्विजाः ।
प्रवक्ष्यामि हितार्थं वो भवपापप्रणाशनम् ॥१०३॥
हरेः पादाकृतिं रम्यमात्मनश्च हिताय वै ।
मध्येछिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति सर्वदा ॥१०४॥

स परस्य प्रियो नित्यं पुण्यभाक् मुक्तिभाग्भवेत् ।
चतुरङ्गुलमूर्ध्वायं द्व्यङ्गुलं विस्तृतं मृदा ॥१०५॥
द्विजः पुण्ड्रमृजुं सौम्यं सान्तरालं तु धारयेत् ।
ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वं पुण्ड्रमुच्यते ॥१०६॥
ऊर्ध्वगत्यां तु देवस्य स प्राप्नोति न संशयः ।
पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णुक्षेत्रे विशेषतः ॥१०७॥
सिन्धुतीरेऽथ वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ।
मृद एतास्तु संग्राह्या वर्ज्यास्त्वन्यास्तु मृत्तिकाः ॥१०८॥
श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत् ।
श्रीकरं पीतमित्याहुर्मोक्षदं श्वेतमुच्यते ॥१०९॥
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमा पुष्करी भवेत् ।
अनामिकान्नदा नित्यं तर्जनी मुक्तिमुक्तिदा ॥११०॥
अभिषिक्तं तु यच्चूर्णं विष्णुबिम्बे तु यो नरः ।
हारिद्रं धारयेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१११॥
अनागतां तु ये पूर्वां अनतीतां तु पश्चिमाम् ।
सन्ध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥११२॥
यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां तु विकर्मस्था द्विजातयः ।
तेषां हि पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयंभुवा ॥११३॥
गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने ।
सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥११४॥
प्रतिग्रहादन्नदोषात्पातकादुपपातकात् ।
गायत्री प्रोच्यते यस्मात् गायन्तं त्रायते यतः ॥११५॥

गायत्रीगायनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता ।
जगतः प्रसवित्री च सा वाग्रूपत्वात्सरस्वती ॥११६॥
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः ।
प्रतिप्रणवसंयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥११७॥
विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वमधो यस्य प्रयाय च ।
संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति ॥११८॥
रजस्तमो मोहजातान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान् ।
वाङ्मनःकायजान् दोषान्नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥११९॥
नवप्रणवयुक्तेन आपो हिष्ठेत्यृचेन च ।
संवत्सरकृतं पापं मार्जनान्ते विनश्यति ॥१२०॥
ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात् पादान्ते वा समाहितः ।
ऋचस्यान्तेऽथवा कुर्याच्छिष्टानां मतमीदृशम् ॥१२१॥
पश्चादुभाभ्यां हस्ताभ्यां परिषिच्य यथाक्रमम् ।
सूर्यश्चेति जलं पीत्वा दधिक्राव्णेति मार्जयेत् ॥१२२॥
पश्चादुभाभ्यां हस्ताभ्यां ह्यादायापः समाहितः ।
रवेरभिमुखस्तिष्ठन् तारव्याहृति पूर्वया ॥१२३॥
गायत्र्या चाभिमन्त्र्याथ निक्षिपेद्द्विजसत्तमः ।
तिष्ठन् पादौ समीकृत्य जलेनाञ्जलिपूरणम् ॥१२४॥
गोशृङ्गमात्रमुत्सृज्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ।
सायं काले तु यो विप्रो जलेत्वर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥१२५॥
स मूढो नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।
यत्र सन्ध्यां प्रकुर्वीत तत्रैव जपमाचरेत् ॥१२६॥

अन्यत्र तु जपं कुर्वन् पुनः सन्ध्यां समाचरेत् ।
वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ॥१२७॥
स्नातकव्रतलोपे च दिनमेकमभोजनम् ।
अर्घ्यप्रदानतः पूर्वमुदयास्तमये सति ॥१२८॥
गायत्र्यष्टशतं जप्यं प्रायश्चित्तं द्विजातिभिः ।
तत्र प्रातरतिक्रामेदुपवासोऽहरुच्यते ॥१२९॥
तथा सायमतिक्रामेद्रात्रिं चोपवसेद्द्विजः ।
यद्यधकृच्छ्रं वृत्रहन् प्रातरर्घ्यमनुस्मृतः ॥१३०॥
उच्छेदभीतिमध्याह्ने प्रायश्चित्तार्घ्यं उच्यते ।
न सरयेति च सायाह्ने ततोऽन्यमुपसंहरेत् ॥१३१॥
सूतके मृतके चापि सन्ध्याकर्म न संत्यजेत् ।
मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः ॥१३२॥
प्रणवेन तु संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ।
सावित्रीं शिरसा सार्धं मनसा त्रिःपठेद्द्विजः ॥१३३॥
देवार्चने जपे होमे स्वाध्याये श्राद्धकर्मणि ।
स्नाने दाने तथा ध्याने प्राणायामास्त्रयस्त्रयः ॥१३४॥
आद्यावन्ते च गायत्र्या प्राणायामास्त्रयस्त्रयः ।
सन्ध्यायामर्घ्यदाने च प्राणायामाः सकृत्सकृत् ॥१३५॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु तथैव च कनिष्ठया ।
प्राणायामस्तु कर्तव्यः मध्यमां तर्जनीं विना ॥१३६॥
तर्जनीं मध्यमां स्पृष्ट्वा जपन् शूद्रसमो भवेत् ।
कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायंचाधोमुखौ करौ ॥१३७॥

मध्योत्कन्धमुजाभ्यां तु जप एवमुदाहृतः ।
अधोहस्तं तु पैशाचं मध्यहस्तं तु राक्षसम् ॥१३८॥
चद्धहस्तं तु गान्धर्वमूर्ध्वहस्तं तु दैवतम् ।
प्रदक्षिणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे ॥१३९॥
न कण्ठावृतवस्त्रः स्याद्दर्शने गुरुदेवयोः ।
दर्भहीना च या सन्ध्या यच्च दानं विनोदकम् ॥१४०॥
असंख्यातं च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।
जपस्य गणनां प्राहुः पद्माक्षैः भक्तिवर्धनम् ॥१४१॥
जपेत्तु तुलसीकाष्ठैः फलमक्षयमश्नुते ।
अच्छिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥१४२॥
छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
गृहस्थो ब्रह्मचारी च शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥१४३॥
वानप्रस्थो यतिश्चैव जपेदष्टसहस्रकम् ।
प्रस्थधान्यं चतुःषष्टेराहुतेः परिकीर्तितम् ॥१४४॥
तिलानां ▯ तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद्घृतस्य (?) च ।
आत्मारूढाप्सु मज्जेद्वा वदेद्वा पतितादिभिः ॥१४५॥
अथवा योषितं गच्छेदनृतौ काममोहितः ।
यदन्येषु निमित्तेषु केचिदग्निविनाशनम् ॥१४६॥
आपस्तम्बस्य तन्नेष्टमात्मारूढः सदा शुचिः ।
यस्य भार्या विदूरस्था पतिता वा रजस्वला ॥१४७॥
अनिष्टा प्रतिकूला वा यस्याः प्रतिनिधौ क्रिया ।
अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु प्रतिरूपिकाम् ॥१४८॥

केचिच्छरमयीं पत्नीं नित्यकर्मणि कारयेत् ।
होमार्थं गोघृतं ग्राह्यं तदलाभे तु माहिषम् ॥१४९॥
आजं वा तदलाभे तु साक्षात्तैलं ग्रहिष्यते ।
यः शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रं करोति चेत् ॥१५०॥
दाता तत्फलमाप्नोति कर्ता तु नरकं व्रजेत् ।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राः स्युः ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥१५१॥
मेरुमन्दरतुल्यानि वाजपेयशतानि च ।
कन्याकोटिप्रदानं च समं सामयिकाहुतेः ॥१५२॥
कृतदारो न वै तिष्ठेत् क्षणमप्यग्निना विना ।
तिष्ठेत चेद्द्विजो व्रात्यं त्यक्त्वा तु पतितो भवेत् ॥१५३॥
समिद्वात्मसमारूढो द्विकालमहुतस्तथा ।
धारणाग्निश्चतुर्वारं स वह्निर्लौकिको भवेत् ॥१५४॥
आरोपिताग्नेः समिधस्तु नाशे
सीमादिलंघे च पराग्निवेश ।
अयाश्च मन्त्रेण चतुर्गृहीत्वा
तेनैव मन्त्रेण सकृज्जुहोति ॥१५५॥
ब्रह्मयज्ञे जपेत्सूक्तं पौरुषं चिन्तयन् हरिम् ।
स सर्वान् जपते वेदान् सांगोपांगविधानतः ॥१५६॥
वेदाक्षराणि यावन्ति नियुञ्ज्यादर्थकारणात् ।
तावतीं ब्रह्महत्यां वै वेदविक्रय्यवाप्नुयात् ॥१५७॥
व्याख्यापनं प्राध्ययनं प्रश्नपूर्वं प्रतिग्रहः ।
याजनाध्यापने वादः षड्विधो वेदविक्रयः ॥१५८॥

आशौचे च शौचे च मन्वादिषु युगादिषु।
नाहरेमूलमोषधं मध्याह्नात्परमन्ततः ॥१५९॥
संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां निशिसन्ध्ययोः।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते कृन्तन्ति हरेः शिरः ॥१६०॥
मौर्ये पापं न कुर्वीत न कुर्याच्च प्रतिग्रहम्।
दुष्करं पातकं मौर्ये दुर्जरश्च प्रतिग्रहः ॥१६१॥
मृतामृताभ्यां जीवेन मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कथंचन ॥१६२॥
यो राज्ञः प्रतिगृह्यैव शोचितव्ये प्रहृष्यति।
न जानाति किलात्मानं विष्ठाकूपे निपातितम् ॥१६३॥
तृणं वा यदि वा काष्ठं मूलं वा यदि वा फलम्।
अनापृष्ट्वैव गृह्णीयाद्धस्तच्छेदनमर्हति ॥१६४॥
वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तृणानि च।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥१६५॥
भ्रूणहत्यां प्रसिद्धिं (वार्धुषिं) च तुलायां समतोलयन्
प्रतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत ॥१६६॥
अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः।
अन्यत्र कुलटा (पा) (टां) षण्डपतितेभ्यः (स्) तथा द्विषः
महापातकिनश्चोरादन्त्यजाद्विषजस्तथा।
मृगयोः (टा)पिशुनाच्चैव नादद्यादाहृतं द्विजः ॥१६७॥
कुलटा(षा) षण्डपतितवैरिभ्यः काकिणीमपि।
उद्यतामपि गृह्णीयादापद्यपि कदाचन ॥१६८॥

परार्थे तिलहोतारं परार्थे मन्त्रजापिनम् ।
मातापित्रोरपोष्टारं दृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत् ॥१६९॥
कुक्कुटश्वानमार्जारान् पोषयन्ति द्विजाधमाः ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥१७०॥
परहिंसारताः क्रूराः परदारपरायणाः ।
परद्रव्यापहारी च चण्डालो यस्तु निर्दयः ॥१७१॥
नगरे पट्टणे चापि द्वादशाब्दं तु यो वसेत् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१७२॥
राजाश्रयेण यो मर्त्यो द्वादशाब्दं वसेद्यदि ।
जीवमानो भवेच्छूद्रः नात्र कार्या विचारणा ॥१७३॥
अनृतात्यसमुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥१७४॥
यस्मिन् देशे यदा काले यन्मुहूर्तं च यद्दिने ।
हानिर्वृद्धिर्यशो लाभः तत्तथा न तदन्यथा ॥१७५॥
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ।
स्वपापं शतधा भूत्वा तद्वक्तारमधिगच्छति ॥१७६॥
चत्वारो वा त्रयो वापि यद्ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरस्तु सहस्रशः ॥१७७॥
ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये ।
त्रैलोक्यं तारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरता अपि ॥१७८॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥१७९॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनादीनां न तु शय्यासनाशनात्॥१८०॥
सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे।
नानुतिष्ठन्ति वेदोक्तं पाषण्डोपहता जनाः॥१८१॥
षष्ठ्यष्टमीहरिदिनं द्वादशी च चतुर्दशी।
पर्वद्वयं च संक्रान्तिः श्राद्धाहो जन्मतारका॥१८२॥
श्रवणव्रतकालश्च विशेषदिवसास्तथा।
एते काला निषिद्धाःस्युः भद्रे मैथुन कर्मणि॥१८३॥
कृते संभाष्य पतति त्रेतायां दर्शनेन तु।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा॥१८४॥
चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या तु पूर्णिमा।
सर्वाण्येतानि विप्रेन्द्राः रविसंक्रान्तिरेव च॥१८५॥
अर्थार्थी यानि कर्माणि करोति कृपणो जनः।
तान्येव यदि धर्मार्थं कुर्वन् को दुःखमाप्नुयात्॥१८६॥
चैत्यवृक्षं चितायूप(धूमं) चा(चा)ण्डालं वेदविक्रयम्।
अज्ञानात्स्पृशते यस्तु सचैलो जलमाविशेत्॥१८७॥
इक्षुनपः फलं मूलं ताम्बूलं पयऔषधम्।
विकर्मिण्यापि कर्तव्या स्नानदानादिका क्रिया॥१८८॥
अनिन्दनी सर्वबाधा यत्नामुद्दह्य वर्तते।
अग्न्याद्यस्तु भस्मद्रोही महत्कोऽपि न वैष्णवः॥१८९॥
विष्णुना तु पुरा गीतमेवं तत् मयेरितम्।
कर्णमूलं तु विप्राणां पश्यामि द्वे विनिर्मिते॥१९०॥

ैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः । .
न्नमक्षाणां नुनद्याक्षमरोचकम् ॥१६१॥
तदेहानां धर्मशास्त्रमरोचकम् ।
कृपाक्रीसः म(त्मा)त्मानान्मरणादिव ॥१६२॥
च च स्त्रीभ्यः सं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
न्तं जितक्रोधं जितात्मानं जितेन्द्रियम् ॥१६३॥
ब्राह्मणं मन्ये शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः ।
च देहोऽयं नोपभोगाय कल्पते ॥१६४॥
शाय महते प्रेत्यानन्तसुखाय च ।
ार्क दयाप्तुत्कथामा जलाद्वदिः ॥१६५॥
यदि तदा निराशा. पितरो गताः ।
यदे यत्र रोमस्थानेषु कुत्रचित ॥१६६॥
कृमितुल्याःस्युस्तत्तोयं रुधिरं भवेत् ।
मूले तु तिलान्निक्षिप्य तर्पयेत् ।
ग्नतुल्यास्तुास्त्तोयं सागरोपमम् ॥१६७॥
यमन्यत्र तिलैर्विमिश्रं
दत्तात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।.
कृतं तेन समा सहस्रं
ादस्यतेतत्पितरो वदन्ति ॥१६८॥
सपिण्डे च प्रतिसंवत्सरे तथा ।
मच्छ्राद्धं वासुदेवं विना कृतम् ॥१६९॥

जपस्तपः श्राद्धकर्म स्वाध्यायादिकमेव च ।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥२००॥
श्राद्धं कृत्वा परदिने न द्विजान् भोजयेद्यदि ।
तच्छ्राद्धमासुरं लोके प्रवदन्ति विपश्चितः ॥२०१॥
श्राद्धं कृत्वा परदिने ब्राह्मणान् भोजयेद्यदि ।
देवाश्च पितरस्तुष्टाः कर्तुः कुर्वन्ति संपदः ॥२०२॥
श्राद्धे पाकमुपक्रम्य नान्दीश्राद्धं विवाहके ।
व्रतं चरति संकल्पे सूतके तु न दोषकृत् ॥२०३॥
श्राद्धे तु विकिरं दत्वा नाचामेन्मतिविभ्रमात् ।
पितरस्तस्य षण्मासं चण्डालोच्छिष्टभोजनाः ॥२०४॥
सहोदराणां पुत्राणां पितुरेकदिने तथा ।
श्राद्धे निमन्त्रणं वर्ज्यं क्षौरकर्म तथैव च ॥२०५॥
विधुरं च यतिं चैव सगोत्रं ब्रह्मचारिणम् ।
देवार्थे वरयेद्विद्वान् न पित्रर्थे कदाचन ॥२०६॥
वासांसि वाससी वासो यो ददाति पितुर्दिने ।
यन्तु संख्यातवर्षेण देवलोके महीयते ॥२०७॥
अभिश्रवणहीनं तु यः श्राद्धं कुरुते नरः ।
तदन्नं मांससदृशं तद्रसं सुरया समम् ॥२०८॥
उदक्यायाः पतिं यावत्सूतिकायाः पतिं तथा ।
भाण्डस्पर्शनपर्यन्तं पैतृके वर्जयेत्सुधीः ॥२०९॥
विभक्ता भ्रातरः सर्वे स्वस्वार्जितधनाः शनैः ।
दर्शाब्दिकं तथा पित्रोः श्राद्धं कुर्यात्पृथक् पृथक् ॥२१०॥

संन्यासीबहुभक्षश्च वैद्यो वैखानसस्तथा।
गर्भधान्वेदहीनश्च दानं श्राद्धं च वर्जयेत् ॥२११॥
स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि।
देवताराधने चैव स्वाङ्ग्यदोषो न विद्यते ॥२१२॥
प्रत्याब्दिके शतं जप्यं मासिके स्यात् द्विपट्शतम्।
सपिण्डे त्रिसहस्रं स्याच्छ्राद्धं त्रिरासहस्रकम् ॥२१३॥
मासिके पक्षमेकं स्यादाब्दिके च तदर्धकम्।
एकोद्दिष्टे वत्सरं स्यात् षाण्मासं तु सपिण्डने ॥२१४॥
महालये त्रिरात्रं स्यात् श्राद्धे स्वाकालिकं भवेत्।
श्राद्धान्नं तिलहोमं च दूरयात्रा प्रतिग्रहम् ॥२१५॥
सिन्धुस्नानं गयाश्राद्धं वपनं शवधारणम्।
पर्वतारोहणं चैव गर्भकर्ता तु वर्जयेत् ॥२१६॥
गर्भकर्ता तु यो विप्रो षण्मासाभ्यन्तरे यदि।
श्राद्धाभाशीनि कुर्वाणो क्षिप्रमेव विनश्यति ॥२१७॥
मध्यंदिने द्विजश्रेष्ठो यः स्नानं स्वपस्तार्पयेद्दधिम्।
वैश्वदेवं च यः कुर्यात् स गुल्मव्याधिपीडितः ॥२१८॥
पितरस्तत्र मोदन्ते गीयन्ते(?) च पितामहाः।
प्रपितामहाश्च नृत्यन्ते श्रोत्रिये गृहमागते ॥२१९॥
देशान्तरे दुरमानी प्रायश्चित्तद्वयं स्मृतम्।
समुद्रयानदीस्नानं शिशुश्राद्धेषु भोजनम् ॥२२०॥
अनाचारस्य विप्रस्य पतितान्नं पतेत्तया।
शूद्रान्नं विधवान्नं च स्वर्गासमदर्तां भवेत् ॥२२१॥

यो मोहादथवाऽज्ञानादकृत्वा(श्री)देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं श्वानयोनिषु जायते॥८८
अन्नं मलसमं च दिवास्नानं च मैथुनम्।
पुनाति वृषलस्यान्नं मासं सन्ध्या बहिर्गते(बहिष्कृत)
स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
देवताराधनं चैव वैश्वदेवं यथाविधि।
न कुर्याद्यदि मोहेन स चाण्डालो न संशयः॥८९

॥ इति वाधूलस्मृतिः समाप्ता ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* विश्वामित्रस्मृतिः *

अथ प्रथमोऽध्याय

नित्यनैमित्तिककर्मणांवर्णनम्

सद्यस्सदलपङ्कजे सफलशीतरश्मिप्रभे ।
वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम् ॥
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं ।
स्मरेच्छिरसि पावनं सद्विधानपूर्वं गुरुम् ॥ १ ॥

आह्निकम्

चतुःपञ्चघटीमानं मुहूर्तं ब्राह्मसंज्ञितम् ।
पञ्चपञ्चघटी ज्ञेया उषःकाल इतीर्यते ॥ २ ॥
चतुष्पाणघटीमानमरुणोदयसंज्ञितम् ।
ततः पञ्चघटीमानं प्रातःकाल इति स्मृतः ॥ ३ ॥
एवं ज्ञात्वा प्रभाते तु नित्यकर्म समाचरेत् ।
नित्यनैमित्तिके काम्ये कृते काले तु सत्फलम् ॥ ४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय कृत्वा शौचं समाहितः ।
स्नानं कुर्यादुषःकाले आचम्यार्घ्यमरुणोदये ॥ ५ ॥
प्रातःकाले जपं कुर्यान्नित्यनैमित्तिकं विदुः ।
रश्मिमन्तं समालोक्य उपस्थानं समाचरेत् ॥ ६ ॥

॥ सन्ध्याया मुख्यकालातिक्रमे दोषः ॥

कालातीतं न कर्तव्यं कर्तव्यं कालसंयुतम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काले कर्म समाचरेत् ॥७॥
उत्तकाले [illegible] यत्कर्म प्रमादादकृतं यदि ॥८॥
त्रिसहस्रजपं कुर्यात्प्रायश्चित्तं विधीयते।
तथा प्रोक्तं प्राणायामद्वयत्रिकम् ॥९॥
अथवा जपमात्रेण कालातीतेन दोषभाक्।
त्रिसहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा ॥१०॥
अनुलोमविलोमाभ्यां जप्यात्पाप क्षयो भवेत्।
उत्तकाले व्यतीते तु उपाधिश्च प्रमाणकम् ॥११॥
अनुलोमविलोमाभ्यां सहस्रजपमाचरेत्।
देहस्वस्थयता(स्त्यवता)येन स्वस्थचित्तयताऽपि च ॥१२॥
कालोऽतिक्रम्यते नित्यं तस्य पापो न गण्यते।
स सर्वमार्गविभ्रष्टस्तिर्यक्त्वं समवाप्नुयात् ॥१३॥
तस्य दर्शनमात्रेण सचैलः स्नानमाचरेत्।
असम्बद्धप्रलापेन दुःसङ्गेनापि निद्रया ॥१४॥
अतिक्रामन्ति ये कालं ते नरा ब्रह्मघातिनः।
नित्यकर्माखिलं यस्तु उत्तकाले समाचरेत् ॥१५॥
जित्वा स सकलांल्लोकान् अन्ते विष्णुपुरं व्रजेत्।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नानं सन्ध्यां समाप्य(विधाय)च ॥१६॥
यथाशक्ति जपेद्विद्वान् स मुक्तो नात्र संशयः।
यामे चान्त्ये च सर्वेषां नाडीनां पञ्चकं द्विजः ॥१७॥

प्रातःकाल इति ज्ञात्वा नित्यकर्म समाचरेत्।
कर्मकालो दिनान्ते तु पादन्यूनघटीत्रयम् ॥१८॥
बिम्बं दृष्ट्वा त्यजेदर्घ्यं जपेदातारकोदये।
धर्म्येषु समाप्तेषु तत्तन्मन्त्रानुसारतः ॥१९॥
नित्यकर्माणि यः कुर्यात्कर्मसिद्धिं लभेन्नरः (त सः)।

अनुक्तकाले कृतकर्म निष्फलं
अकालवृष्टिः पतिता यथा भुवि॥
उप्तानि बीजानि विनिष्फलानि वा-
करोत्यकालः कृतकर्मनिष्फलः ॥२०॥
नियुक्तकर्माणि नियुक्तकाले
कृतानि सद्यस्सुफलसिद्धिदानि।
यथोप्तबीजानि यथा फलानि
काले हि वृष्टिर्भुवि जीवनानि ॥२१॥

सन्ध्यात्रितयलक्षणम्

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातस्सन्ध्या त्रिधा मता ॥२२॥
उत्तमा पूर्वसूर्या च मध्यमा मध्यसूर्यका।
अधमा पश्चिमादित्या मध्यसन्ध्या त्रिधा मता ॥२३॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता ॥२४॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि नित्यं कर्म न सन्त्यजेत्।
तथापि कालनियमादर्घ्यदानं विशिष्यते ॥२५॥

मन्त्राचमने पूर्वमुक्तो द्विजन्मा
त्रिर्वपुटाचमनं प्रकुर्यात्।
स्वशुभोऽपि समाचरेन्न
सदक्षिणापरिचमनो कदापि ॥२६॥
सन्ध्यास्नानं परित्यज्य विद्याभ्यासं करोति यः।
तस्य विद्याविनाशः स्यादधर्मोभवति ध्रुवम् ॥२७॥
गुरूपदेशविधिना स्नानं सन्ध्यां समाचरेत्।
वेदादिसर्वविद्यार्थज्ञानसंपत्तिसाधनम् ॥२८॥
इत्येवद्विजवर्णानां विद्याभ्यासविधिः क्रमात्।
अन्यथा योऽभ्यसेद्विद्यां तस्य विद्या न सिध्यति ॥२९॥
यस्सन्ध्यां कालतः प्राप्तां अतिक्रमति दुर्मतिः।
भ्रूणहत्यामवाप्नोति काकयोनौ प्रजायते ॥३०॥
यथाशक्त्याचरेत्सन्ध्यां कालेऽप्य(ब्ध)फलमाप्नुयात्।
काले तस्मात्प्रयत्नेन नित्यकर्म समाचरेत् ॥३१॥
आचारो द्विविधः प्रोक्तः सोपाधिरनुपाधिकः।
सोपाधिर्गौणमार्गः स्यान्मुख्यःस्यादनुपाधिकः ॥३२॥
उपाधौ समनुप्राप्ते गौणाचारं समाचरेत्।
अनुपाधौ च दुर्बुद्ध्या गौणाचारं करोति यः ॥३३॥
स दारिद्र्यमवाप्नोति महारोगः प्रजायते।
अपवादो महान् दोषो सम्भवेज्जन्मजन्मनि ॥३४॥
मुख्याचारं परित्यज्य गौणाचारं करोति यः।
तस्य कर्माणि धर्माश्च निर्जिताः स्युर्न संशयः ॥३५॥

ग्रामाद्दक्षिणदिग्भागे शतधन्वन्तरावधि।
देवाश्च ऋषयश्चैव गणनाथाश्च योगिनः ॥४७॥
गच्छन्तु देवताः सर्वा अत्र शौचं करोम्यहम्।
प्रथमं च शिरोवेष्टं निवीतं च द्वितीयकम् ॥४८॥
दिग्दर्शनं तृतीयं स्यात् अन्तर्धानं चतुर्थकम्।
मौनन्तु पञ्चकं ज्ञेयं पुरीषं षष्ठमेव च।
सप्तमं मृत्तिकापानं उदकं चाष्टमं स्मृतम् ॥४९॥
मुष्टिमात्रतृणं दत्वा रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः।
दिवाचोदङ्मुखः कुर्याच्छौचं कर्म समाहितः ॥५०॥
वामदक्षिणकर्णस्य उपवीतं च धारयेत्।
क्रमान्मूत्र पुरीषे च कुर्याच्छौचं द्विजोत्तमः ॥५१॥
यथाविध्युक्तमार्गेण कुर्यादुद्धृतवारिणा।
कूपकुल्या तटाकादिजलैः शौचं करोति यः ॥५२॥
कल्पकोटिशतैर्वापि नरकान्न निवर्तते।
एकालिङ्गे करे तिस्रः पञ्चापाने तथैव च ॥५३॥
पादद्वये चतुः संख्या एतच्छौचं विधीयते।
एतद्धर्मो गृहस्थस्य इतरेषां पृथक्पृथक् ॥५४॥
स्मार्तानां द्विगुणं कुर्यात् वनस्थस्त्रिगुणं तथा।
चतुर्गुणं यतीनां च ज्ञेयाणां भेद ईरितः ॥५५॥
दुर्गन्धत्यागपर्यन्तं कृत्वा शौचं समाहितः ॥५६॥

॥ दन्तधावनम् ॥

क्षीरकाष्टेन कुर्वीत दन्तधावनमग्रजः।
तृणपर्णैस्सदा कुर्यादमा (मे) एकादशीं विना ॥॥५७

तयोरपि च कुर्वीत जम्बूम्रश्नाम्लपणकैः।
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाःपशुवसूनि च ॥५८॥
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते।
निष्ठीवनं च गण्डूपं वायव्याभिमुखो नरः ॥५९॥
ईशानाभिमुखो भूत्वा वायव्यान्ते समुत्सृजेत्।
अङ्गारवालुकाभिश्च भस्मांगुलिनखैरपि ॥६०॥
इष्टकालोष्टपाषाणैर्न कुर्याद्दन्तधावनम्।
खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा ॥६१॥
वेणुश्चतिन्तिडीप्लक्षा वाम्रनिम्बे तथैव च।
अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा ॥६२॥
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि।
यथाशक्त्यनुसारेण दन्तधावनमाचरेत् ॥६३॥
ततो नदीं समागम्य गङ्गाध्यानपुरस्सरम्।

॥ आचमनम् ॥

स्वसूत्रोक्तविधानेन कुर्यादाचमनत्रयम्।
वामहस्ते जलं नीत्वा त्रिर्व्याहृत्याभिमन्त्रितम् ॥६४॥
आकृष्य दक्षिणे भागे रेचयेद्वाममार्गतः।
स्ववामभागमालोक्य भग्नपाषाणतस्त्यजेत् ॥६५॥
पुनः शुद्धाम्बुनाचम्य ततः स्नानं समाचरेत्।
नाभिमात्रे जलेस्थित्वा त्रिवारं स्नानमाचरेत् ॥६६॥

॥ स्नानभेदाः ॥

प्राणायामत्रयं कुर्यात् दशप्रणवसंयुतम्।
वह्लिखेन्मार्जनं यन्त्रं स्नानयन्त्रं समुल्लिखेत् ॥६७॥

मध्याह्ने मृत्तिकास्नानं कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
प्रातस्सायाह्नसमये न कुर्यान्मृत्तिकाक्रियाम् ॥८८॥

॥ वस्त्रधारणम् ॥

सूत्रेण ग्रथितं सूच्या खण्डं चित्रं तथैव च।
विचित्रपुत्तलीवर्णमन्यवस्त्रं न धारयेत् ॥८९॥
एतत्समस्तमित्युक्तं पट्टवस्त्रं न दोषभाक्।
और्णवस्त्राणि सर्वाणि न दोषो धारयेद्बुधः ॥९०॥
प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः।
यतेस्त्रिषवणं स्नानमसकृत्तु ब्रह्मचारिणाम् ॥९१॥
प्रोक्ष्य वासोपसंयोज्य प्रणवादिषडक्षरैः।
शुद्धधौतं परिमाष्टं पट्कच्छविधिधर्मकम् ॥९२॥
कच्छद्वयं वस्त्रमध्ये तच्छृंगेषु (च) चतुष्टयम्।
एवं क्रमेण बध्नीयाल्लक्षणं श्रुतिचोदितम् ॥९३॥
भौमनोत्तरनिर्माल्यं प्रक्षाल्यद्विजसत्तमः।
सायंसन्ध्यां प्रकुर्वीत अन्यथा ब्रह्मपातकः ॥९४॥
प्रातर्मध्याह्नयोः स्नात्वा पृथक्सन्ध्यां समाचरेत्।
एष धर्मो गृहस्थस्य योगिनां प्रातरेव हि ॥९५॥

॥ प्राणायामः ॥

स्नानकाले प्रशस्तं स्याद्योगिनां वायुधारणम्।
गङ्गाद्वारे स्नानमात्वा स्थित्वा ब्रह्मदिनत्रयम्।
तत्फलं समवाप्नोति द्विजो वायुनिरोधक(तः) ॥९६॥

उत्रापि कुम्भकं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ।
सूर्योदयं समारभ्य घटिकाद्वादशोपरि ॥९७॥
ब्रह्मयज्ञाङ्गस्नानं अपराह्णे तु तर्पयेत् ।
सङ्कल्प्य ब्रह्मयज्ञं च यथाशक्ति समाचरेत् ॥९८॥
माध्याह्निकं प्रकुर्वीत जपान्ते तर्पयेत्तथा ।
मन्त्रहीनं अस्नानं बीजहीनं तु यन्त्रकम् ॥९९॥
बिन्दुहीनं तु यद्धोमं वृथा स्नानं न संशयः ।
मन्त्रहीनो जले स्नात्वा सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ॥१००॥
अशुचेस्तस्यमनसो मलिनं नैव गच्छति ।
मन्त्रयन्त्रविहीनो यः स्नानं सन्ध्यां करोति चेत् ॥१०१॥
विफलं मन्त्रतेजस्तयात्सत्यं सत्यं न संशयः ।
पञ्चस्नानं विना येन सार्धं सन्ध्या कृता यदि ॥१०२॥
तस्य पापं न गच्छेत्त यथा सूर्येऽस्तगे तमः ।
परिधाय शुभं वस्त्रं तिलकं धारयेत्ततः ॥१०३॥

॥ पुण्ड्रधारणम् ॥

गुरूपदेशमार्गेण अन्यथा धर्मघातकः ।
मृद्वारिचन्दनं भस्म वामहस्ते निधापयेत् ॥१०४॥
त्रिकोणयन्त्रंसंलेख्य मध्ये मायां स बिन्दुकाम् ।
कोणाग्रे प्रणवं लेख्यं दण्डेषु व्याहृतित्रयम् ॥१०५॥
अभिमन्त्र्य तु गायत्रं मन्त्रराजं दशावधि ।
ललाटे तिलकं कुर्याद्गुरुसूत्रपुरस्सरम् ॥१०७॥

मन्त्रयन्त्रविहीनं यत्तिलकं यदि धारयेत्।
तन्मुखं शववद्भाति ब्रह्मतेजो न विद्यते ॥१०८॥
तिलकं यत्र संयुक्तं मन्त्रसंयुक्तमेव च।
ललाटे यत्र दृश्येत तत्तेजो ब्रह्मनामकम् ॥१०९॥
प्रणवं चोर्ध्वपुण्ड्रं च त्रिपदा च त्रिपुण्ड्रकम्।
ललाटे यस्य दृश्यन्ते(वर्तन्ते)तेऽजस्य (स्वो)ब्रह्मदो भवेत् ॥११०॥
ओमापोज्योतिमन्त्रेण शिखाबन्धनमाचरेत्।
स्वसूत्रोक्तविधानेन सन्ध्यावन्दनमाचरेत्।
अन्यथा यस्तु कुरुते आसुरीं तनुमाप्नुयात् ॥१११॥
मयाकृते मूत्रपुरीषशौच-
प्रक्षालयाऽऽदूषणमेहने च।
वस्त्रस्य संक्षालनके च दुष्कृतं
क्षमस्व गङ्गे मम सुप्रसन्ना ॥११२॥
त्रिकोणमध्ये ह्रींकारं कोणाग्रे प्रणवं लिखेत्।
दण्डेषु व्याहृतिश्चैव बहिर्लेदुदके तथा ॥११३॥
प्रणवेनाद्रिवेष्ट्य जले पीत्वाऽथ मार्जयेत्।
तथैवविन्यसेत्संन्ध्या अन्यथा शूद्रवद्भवेत् ॥११४॥

इति श्रीविश्वामित्रसंहितायां आह्निकविधियोगोनाम प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्याय

आचमनविधिवर्णनम्

जलमध्ये वामकरे दक्षिणे कर्णवत्कृतौ ।
आदौ गुरुं नमस्कृत्य पश्चादाचमनं चरेत् ॥ १ ॥
प्राणायामैरसूत्रसंस्थान सोम्यायां सोमपाभवेत् ।
पश्चान्मुखोरुपास्यात् सुरापां(पी)दक्षिणामुख. ॥ २ ॥
चतुर्विंशतिनामानि तत्तदंगानि संस्पृशेत् ।
विन्यसेत्केशवादीनि पौराणाचमनं भवेत् ॥ ३ ॥
तकारादियकारान्तैः चतुर्विंशति वर्णकैः ।
संस्पृशेत्तत्तदंगानि स्मार्तमाचमनं चरेत् ॥ ४ ॥
द्व्यापादैस्त्रिराचम्य अब्लिंगैर्नवभिः स्पृशेत् ।
सप्तव्याहृतिगायत्री शिरस्तुर्यस्तदागमम्(?) ॥ ५ ॥
त्रिधाचाचमनं प्रोक्तं पौराणं स्मार्तमागमं ।
श्रौतं च मानसं चेति पंचधा प्रोच्यते पुनः ॥ ६ ॥
संध्याप्रारम्भकालेषु कुर्यादाचमनत्रयं ।
संहताङ्गुलिहस्तेन ब्रह्मतीर्थे पिबेज्जलं ॥ ७ ॥
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं भवेत् ।
गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ ८ ॥
न्यूनातिरिक्तमात्रेण तज्जलं सुरयासमं ।
आदौचान्ते च मंत्रैश्च क्रमादाचमनं चरेत् ॥ ९ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानि पर्यायेणविलोमतः ।
अङ्गुलित्रयसंयुक्तं मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठकं ॥१०॥

गोकर्णाङ्गुलिविन्यासः न्यासकर्म प्रकीर्तितं ।
हस्तसंन्यासं मन्त्रजं धीमतां न संशयः ॥११॥
केशवनाम्नं कनिष्ठान्तं कुर्यादङ्गुष्ठयोर्विदुः ।
नारायणत्रियोगात्तो माधवं विन्यसेत्क्रमात् ॥१२॥
गोविन्दमथमोन्याम्य गौडुमौ विष्णुमेव च ।
मधुसूदनमादिष्ट्वं सुपाशौ च त्रिविक्रमं ॥१३॥
अमतो वामनं चैव श्रीधरं हस्तयोस्तथा ।
हृषीकेशं पद्मनाभं उभयोः पादयोर्न्यसेत् ॥१४॥
दामोदरं ब्रह्मरन्ध्रे नामसंकर्षणस्य च ।
न्यसेद्वा नासिकामध्ये भ्राम्यान्ते वा विनिर्दिशेत् ॥१५॥
विन्यसेद्दक्षनासायां वासुदेवं तथैव च ।
प्रद्युम्नं विन्यसेद्वामे अनिरुद्धं तु दक्षिणे ॥१६॥
पुरुषोत्तमं वामनेत्रे दक्षकर्णे(श्र) अधोक्षजम् ।
नारसिंहं वामकर्णे नाभावच्युतमेव वा ॥१७॥
जनार्दनं हृदि न्यस्य ब्रह्मरंध्रेत्वुपेन्द्रकं ।
विन्यसेच्च हरिं कृष्णं भुजे दक्षे च वामके ॥१८॥
पौराणं स्मार्तमित्येतत् क्षत्रियाणां विधीयते ॥१९॥
परित्वागिर्वणोगिर इमा भवन्तु विश्वतो ।
वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टाभवन्तु जुष्टयः ॥२०॥
पुण्यस्त्रीणां तथा ज्ञेयं शूद्राणां नाममात्रकं ।
शुद्धाचमानां त्रिविधं प्रकारं
कुर्यात्त्रिसंध्यापि(सु) समस्तकर्मसु ।

आरम्भणं केशवनाम युक्तं

श्रुति स्मृतिभ्या द्विविधं तथोच्यते ॥२१॥

देवतीर्थेन संगृह्य ब्रह्मतीर्थे जलं पिबेत्।

मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां गोकर्णाकृति कथ्यते ॥२२॥

वर्तमादौ विधिपूर्वकर्मनित्य त्रिकालं प्रयतैश्च नित्यं ।

श्रुतिस्मृतिप्रोक्त पुराणमार्गं तत्माच्छ्रिशुद्धाचमनं विशिष्टं ।२३

नाम्नामादौ च वर्णानां पादादौ ॐ समुच्चरेत्।

नमोऽन्तं विन्यसेन्मंत्रं कुर्याच्छुद्धो भवेत्त्रिधा ॥२४॥

चतुर्विंशति पादानि चतुर्विंशतिवर्णकं।

चतुर्विंशति नामानि प्रणवादिनमोऽन्तकं ॥२५॥

वैश्यानां तु नमोन्तस्य अन्येषां वर्णमात्रकं।

पुण्यस्त्रीणां नमोऽन्तंस्यात् विशेषात्केशवादिषु ॥२६॥

शूद्राणां विधवानां च नाममात्रं जलक्रिया।

सुवासिन्यां नमोन्तं च द्विराचम्य विशुद्ध्यति ॥२७॥

नमोंतं त्रिविधं ज्ञेयं प्रणवं त्रिविधं तथा।

एवमेव त्रिराचम्य कर्मादौ तत्समाचरेत् ॥२८॥

अन्यथा हि कृतं यत्तु आचमनं तु निष्फलं।

कराग्रपर्वांगुलि पूर्णं मुद्रा सकेशवाद्यै स्तुवर्तनीया।

निष्ठीवने (तथा) प्रसुप्ते च परिधानेऽश्रुपातने।

पञ्चश्रोत्रेपुचाचामेच्छ्रोत्रं वा दक्षिणं स्पृशेत् ॥२९॥

भोजनादौ च भुक्त्यन्ते गोकर्णाकृतिपाणिना।

आपोऽशनं पिबेन्नित्यमन्यथा(?) चेन्नदर्भकम् ॥३०॥

नासापुटे (द्व) अक्षकर्णे प्रजपद्व्याहृतित्रयम्।
विसृष्टेच्छ्रोत्रमानं च इत्येवं श्रुतिचोदितम् ॥३१॥
ह्रस्वदीर्घप्लुतैर्युक्ता प्रणवं मनसा स्मरेत्।
मानसाचमनं कुर्यान्मनोद्देशविधिक्रमात् ॥३२॥
त्रिभिः पादैरपः पीत्वा आपोहिष्ठामतोन्यसेत्।

॥ मार्जनम् ॥

ता न ऊर्जे च सौधुम्ने रदन्महेरणाय च।
यो वः शिवतमस्सोमे तस्य भाजयतोऽग्रतः ॥३३॥
उशतीर्हस्तयोरेव वक्षे तस्माअरंन्यसेत्।
यस्यक्षयार्य वामे वा ह्यापो जनयथा शिरः ॥३४॥
नासान्ते भूपदं न्यस्य भुवः पादं तु दक्षिणे।
सुवः पादं वामभागे महः पादं तु दक्षिणे ॥३५॥
जनः पादं वामनेत्रे तपः पादं तु दक्षिणे।
सत्यं पादं वामकरे नाभौ देव्यादिपादकम् ॥३६॥
न्यसेद्द्वितीयं हृदये ब्रह्मरन्ध्रे तृतीयकम्।
विन्यसेद्दक्षिणभुजे स्वमापो ज्योतिरेव च ॥३७॥
तुर्यपादं न्यसेद्वामे भुजे मृत्युमतः क्रमात्।
मृत्याचमनमेभिर्यो हरेः कुर्याद्द्विजोत्तमः ॥३८॥
स सर्वपापमुक्तःस्यात्पुनरावृत्तिर्न विद्यते।
पादत्रयं नवपदं सनल्लोकान्तमेव च ॥३९॥
पुनः पादत्रयं शीर्षं तुर्यं मौनमिमीरितम्।
तुर्यपादं शिरः पादं गायत्री त्रिपदा स्मृता ॥४०॥

सप्तव्याहृतयश्चैव नवपादं त्रिपादकम् ।
चतुर्विंशतिपादानि न तत्स्थानेषु विन्यसेत् ॥४१॥
त्रीण्यदो नव सप्तधा त्रीणिद्वे च श्रुतीरितम् ।
गायत्री(मुच्चरन्)चद्भ्यापोहिष्ठा नवभिः स्पृशेत् ॥४२॥
सप्तव्याहृतिभिश्चैव गायत्रीत्रिपदैः स्पृशेत् ।
शिरः पदा तु द्यपदा चतुर्विंशतिभिः स्पृशेत् ॥४३॥
श्रुत्याचमनमेतद्धि विश्वामित्रादिभिः स्मृतम् ।
नाम वर्णं च पादं च भूर्भुवः (स्व) रोमिति ॥४४॥
पश्चाचमनं चैतानि प्रोक्तं स्वच्छन्दसां गणैः ।
तिसृभिश्च व्याहृतिभिः शिरश्चक्षूंषि नासिके ॥४५॥
श्रोत्रद्वयं च हृदये संस्पृशेचाथ वारिणा ।
॥ आचमनम् ॥
त्रिराचामेदिति त्रेधा परिमृद्धेति च त्रिधा ।
एकः सकृदुपस्पृशेदित्येवं श्रुतिचोदितम् ॥४६॥
मन्त्रयज्ञे त्रिधाचामेच्छ्रुतिस्मृतिपुराणकैः ।
द्विर्मेधा परिमृज्यात्र ताल्वोर्हस्तेन मार्जयेत् ॥४७॥
सकृज्जलं तु प्रणवेनांगुष्ठे नोपस्पृशेत् ।
अन्याः कुल्योपर्संस्पृष्टाः निष्फलं कर्म तद्भवेत् ॥४८॥
चतुर्विंशति पादानि चतुर्विंशति वर्णकम् ।
चतुर्विंशतिनामानि त्रिधाचामेद्यथाविधि ॥४९॥
तथा द्विः परिमृज्येति चन्द्रसूर्यौ स्वरौ स्पृशेत् ।
उपस्पृशेत्सुषुम्ना च मन्त्रयज्ञे सकृज्जलैः ॥५०॥

मध्ययज्ञे त्रिराचामेच्छ्रौतं स्मार्तं पुराणकम्।
परिमृज्य त्रिवारालयोष्ठेन परिमार्जने ॥६१॥

उपाङ्गेन्द्रियाणाञ्च स्पर्शेन सकृन्नरैः।
भोजने शयने दाने स्नाने दाने प्रतिग्रहे ॥६२॥
सन्ध्यात्रये च निद्रायां तथा वस्त्रस्य धारणे।
पूर्वैः (म) पञ्चभिराचामेत् तथा रथ्योपसर्पणे ॥६३॥

आदौ श्रौतं तथाचामे ततः स्मार्ताचमनकम्।
ततः पौराणमाचामे नित्यं श्राद्धे विधीयते ॥६४॥
पुराणं श्राद्धकाले च श्राद्धान्ते स्मार्तमुच्यते।
पार्वणि श्रौतमाचामे न्यासः श्राद्धे विलोमतः ॥६५॥

पुरश्चर्यां च दीक्षायां मूलमन्त्रेण केवलम्।
दुर्दानं दुष्प्रतिग्राहं दुरन्नं दुष्टभाषणम् ॥६६॥
दुरालापादिकथनं दुष्टस्त्रीभिश्च सङ्गमम्।
चाण्डालजातिसंस्पर्शं मलिनीकरणादिकम् ॥६७॥
सद्यो हरति सर्वं च विधानाचान्तमात्रतः।

इति विश्वामित्र स्मृतौ शुद्धाचमनयोगोनाम
द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्राणायामविधिवर्णनम्

॥ प्राणायामः ॥

हिनां चैव सर्वेषां देहे ध्यानं समंन्यसेत् ।
ापि द्विजवर्णानां प्राणायामं समं न्यसेत् ॥ १ ॥
णायामत्रयं प्रातः सन्ध्याकाले समाचरेत् ।
णापानसमायुक्तं प्राणायाम इति स्मृतम् ॥ २ ॥
तमं नवधा चैव षोढा मध्यममुच्यते ।
भिमन्त्रीयमित्याहुः प्राणायामस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥
नव्याहृतिभिश्चापि प्रणवादिरनुक्रमात् ।
ायत्र्या शिरसा चैव प्राणायामो विधीयते ॥ ४ ॥
न्दुप्राणविसर्गेस्थं गायत्रं विन्दुसंहितम् ।
ारोव्याहृतिसंयुक्तं प्राणायामे स्मृतोत्तथा(त्रिशाखिया) ॥५॥
ादौ कुम्भकमाश्रित्य रेचपूरकवर्जितम् ।
ाहृत्यादिशिरोऽन्तं च प्राणायामं समाचरेत् ॥ ६ ॥
ात्ये नैमित्तिके काम्ये सर्वदा सर्वकर्मसु ।
ादौ कुम्भकमाश्रित्य रेचपूरे विसर्जयेत् ॥ ७ ॥
न्ध्याकाले होमकाले ब्रह्मयज्ञे तथैव च ।
ादौ कुम्भकविज्ञेयं(माश्रित्य)प्राणायामं समाचरेत् ॥८॥
णापानसमानविन्दुसहितं वन्धत्रये संयुतं ।
ातव्याहृतिविन्दु संपुटपरं देवादिपादत्रयम् ॥ ९ ॥

महायज्ञे त्रिराचामेच्छ्रौतं स्मार्तं पुराणकम्।
परिमृज्य त्रिधाताल्वोर्हस्तेन परिमार्जने ॥५१॥

उपस्पृशेत्प्रधानाङ्गं प्रणवेन सकृज्जपेत्।
भोजने भवने दाने स्नाने दाने प्रतिग्रहे ॥५२॥
सन्ध्यात्रये च निद्रायां तथा वस्त्रस्य धारणे।
पूर्वः (म्) पञ्चभिराचामेत् तथा रथ्योपसर्पणे ॥५३॥
आदौ श्रौतं तथाचामे ततः स्मार्ताचमानकम्।
ततः पौराणमाचामे नित्यं श्राद्धे विधीयते ॥५४॥
पुराणं श्राद्धकाले च श्राद्धान्ते स्मार्तमुच्यते।
पार्वणि श्रौतमाचामे न्यासः श्राद्धे विलोमतः ॥५५॥
पुरश्चर्यां च दीक्षायां मूलमन्त्रेण केवलम्।
दुर्दानं दुष्प्रतिग्राहं दुरन्नं दुष्टभाषणम् ॥५६॥
दुरालापादिकथनं दुष्टस्त्रीभिश्च सङ्गमम्।
चाण्डालप्राणिसंस्पर्शं मलिनीकरणादिकम् ॥५७॥
सर्वं हरति सद्यं च विधानाचान्तमात्रतः।

इति विश्वामित्र स्मृतौ शुद्धाचमनयोगोनाम
द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्राणायामविधिवर्णनम्

॥ प्राणायामः ॥

हिनां चैव सर्वेषां देहे ध्यानं समंन्यसेत्।
रापि द्विजवर्णानां प्राणायामं समं न्यसेत् ॥ १ ॥
णायामत्रयं प्रातः सन्ध्याकाले समाचरेत् ।
णापानसमायुक्तं प्राणायाम इति स्मृतम् ॥ २ ॥
तमं नवघा चैव षोढा मध्यमसुच्यते।
भिमन्त्रीयमित्याहुः प्राणायामस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥
सव्याहृतिभिश्चापि प्रणवादिरनुक्रमात् ।
पत्न्या शिरसा चैव प्राणायामो विधीयते ॥ ४ ॥

न्दुप्राणविसर्गैश्च गायत्रं बिन्दुसंहितम्।
रोऽव्याहृतिसंयुक्तं प्राणायामे स्मृतेत्तथा(त्रिशस्त्रिधा) ॥५॥
ादौ कुम्भकमाश्रित्य रेचपूरकवर्जितम्।
ाहृत्यादिशिरोऽन्तं च प्राणायामं समाचरेत् ॥ ६ ॥
त्ये नैमित्तिके काम्ये सर्वदा सर्वकर्मसु।
ादौ कुम्भकमाश्रित्य रेचपूरे विसर्जयेत् ॥ ७ ॥
न्ध्याकाले होमकाले मन्त्रयज्ञे तथैव च।
ादौ कुम्भकविज्ञेयं(माश्रित्य)प्राणायामं समाचरेत् ॥८॥
णापानसमानबिन्दुसहितं बन्धत्रये संयुतं।
तव्याहृतिबिन्दु संपुटपरं देवादिपादत्रयम् ॥ ९ ॥

गायत्रीं शिरसा त्रिनाडिसहितामूढाद्वयर्द्धं परं।
शुद्धं केवल(ने चल) कुम्भकं प्रतिदिनं ध्यायामि वर्त्तं
परम् (पदम्)॥१०॥

दश प्रणवगायत्र्या इडा पिङ्गलवर्जितम्।
कुम्भं सुषुम्नया कुर्यान्मन्त्रस्मरणपूर्वकम् ॥११॥
अधमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामविधिः स्मृतः ॥१२॥
आयासो रेचकः पूरो ह्यनायासस्तु कुम्भकः।
अनभ्यासे विषं शास्त्रं अभ्यासे त्वमृतं भवेत् ॥१३॥
उत्तमं त्रिगुणं प्रोक्तं मध्यमं द्विगुणं तथा।
अधमं न वदेत्यार्यैः (?) प्राणायाम इतीरितः ॥१४॥
प्रणवादि नमोऽन्तं च मात्रा चेत्यभिधीयते।
पञ्चद्वादशसंयुक्ता मात्रा मात्राविदो विदुः ॥१५॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु प्राणायामं यतिश्चरेत्।
नासिकं वदनं चैव वानप्रस्थस्य तथैव हि ॥१६॥
यकार इति पञ्चैते वर्णाः पञ्च च नोदिताः।
लं पृथिव्यात्मने गन्धान् हमाकाशात्मने सुमम् ॥१७॥
यं वाय्वात्मने धूपं दीप मग्न्यात्मने नमः।
निवेदयेच नैवेद्यं यकारममृतात्मने ॥१८॥
पञ्चभूतात्मिकामेतां पूजां मानसिकीं यजेत्।
सिद्धमन्त्रसमं नास्ति न कुम्भकेवलात्परम् ॥१९॥

नन्द दृष्टि समानास्ति प्राणवायुनिरोधने ।
अन्तश्चक्षुर्बहिस्तेजो अधस्थाप्य सुखासनं ।
कृत्वा(शा)साम्यं शरीरस्य प्राणायामं समाचरेत् ॥२०॥
सर्वेषामेव जन्तूनां कर्तव्यं सुखमासनम् ।
तत्रापि मानसः श्रेष्ठ स्तत्रापि द्विज उच्यते ॥२१॥
सन्ध्या प्राचैव ध्येया च वनस्थस्य तथैव हि ।
सम्यक्पञ्चांगुलीभिश्च बद्ध्वा नासापुटं गृही ।
शनैश्शनैश्च निश्शब्दं प्राणायामं समाचरेत् ॥२२॥
पञ्चांगुलीभिर्नासां च बद्ध्वा वायुं निरुध्य च ।
आकृष्यधारयेद्वह्नि प्राणायामं समभ्यसेत् ॥२३॥
प्राणायामं तथा ज्ञात्वा स्नापयेच्चिन्मयं शिवम् ।
तदादौ मानसं कुर्यात्तस्यक्केवलकुम्भकम् ॥२४॥
पञ्चभूतात्मिकां चैव पूजांमानसिकीं स्मरेत् ।
पूजामानससंयुक्तः प्राणायामफलं लभेत् ॥२५॥
पञ्चपूजां विना यस्तु प्राणायामं करोति चेत् ।
तस्य निष्फलितं कर्म विश्वामित्रेण भाषितम् ॥२६॥
लकारश्चभकारश्च(हकारश्च)यकारो रेफ एव च ।
वकार(षकार)इति पञ्चैते वर्णाः पञ्चार्थनोदिताः ॥२७॥
लं पृथिव्यात्मने गन्धान् हमाकाशात्मने सुमम् ।
यं वाय्वात्मने धूपं दीपमग्न्यात्मने चरम् ॥२८॥
निवेदयेच्च नैवेद्यं वकारममृतात्मने ।
पञ्चभूतात्मिकामेतां पूजां मानसिकीं यजेत् ॥२९॥

प्राणायामं विना यस्तु सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ।
सर्वधर्मपरित्यागी स महापातकी भवेत् ॥४०॥
निगमागममन्त्राणां प्राणायाममनु साधकम् ।
निगमागममन्त्रेषु मूलमन्त्रश्च केवलम् ॥४१॥
मनसा गगनापूर्णं प्राणायामविदो विदुः ।
स्थूलसूक्ष्मादिवर्गं च सूक्ष्मसूक्ष्मादिवर्णकम् ॥४२॥
प्राणापानादिसंयुक्तं प्राणायामं समभ्यसेत् ।
महाविद्या महाविद्या सनकोऽस्यमुना भुवि ॥४३॥
यत्रैर्मूलमनुभिः प्राणायामो विधीयते ।
मूलादिव्याहृतिसमस्त(प्रजल्पं सर्व)प्रजल्पसार्वधर्मना ॥४४॥
यथा विलोममार्गेण प्राणायामं समाचरेत् ।
व्याहृति.ससमगायत्री शिरसा शिखयायुताम् ॥४५
अनुलोमविलोमाख्यां प्राणायामं जपेद्द्विजः ।
ओं तुव सुंव भूं ह्म तं मृ सो र ती ज्यो पो मा
ओं त्यादचोप्र नः यो यो धि । हि म धी स्य
य दे र्गो भ यं णी रे वं तु वि सत् व (?)। स्यं स
ओं पः त ओं नः ज ओं हः म ओं हं म ओं
वः भु ओं यः मृः ओं भूः ओम ।
मन्त्रराजं महातत्त्वमनुलोमविलोमतः ।
प्राणायामं प्रकुर्वीत महापातकनाशनम् ॥४६॥
महापातकनाशाय महारोगहराय (क्षयाय) च
दुःखदारिद्र्यनाशाय प्राणायामफलं विदुः ॥४७॥

दशप्रणवगायत्रीमनुलोमविलोमतः ।
स्मरन् शतद्वयं सम्यक्प्राणायामं समाचरेत् ॥४८॥

अविहितकृतदोषं राजसेवादिदोषं
करकृतमपिदोषं क्रूरकर्मादिदोषम् ।
हृदिकृतपरदोषं पापसंसर्गदोषं
हरति सकलदोषं मन्त्रराजं(जो)विलोमम्(मः)॥४९॥

ब्रह्महत्यादिपापानि अगम्यागमनादिकम् ।
अभोज्यभोजनादीनि अग्राह्यग्रहणादिकम् ॥५०॥

तत्सर्वं नाशमाप्नोति पूर्वोक्तैर्वायुरोधनैः ।
किमत्र बहुनोक्तेन मन्त्रराजोऽमितप्रदः ॥५१॥

दशप्रणवगायत्र्या विनियोगरतो(हतो)द्विजः ।
प्राणायाममकुर्वाणो अवकीर्णी भवेत्तु सः ॥५२॥

सर्वाण्यसंभावितानि विपरीतान्यनेकशः ।
नियमेन शनैः काले प्राणायामैर्व्यपोहति ॥५३॥

मन्त्रराजं चतुष्षष्टि द्वात्रिंशत्तदर्धकम् ।
तदर्धमधमं ज्ञेयं प्राणायामं समाचरेत् ॥५४॥

मन्त्रराजं परार्धं च प्राणायामं करोति यः ।
तस्य निष्फलितं मन्त्रं पुनस्संस्कारमर्हति ॥५५॥

षट्त्रिंशद्वर्णात्मकं मन्त्रं परार्धं यो निरोधयेत् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं जन्मन्यपि वियोनिजः ॥५६॥

अनुक्तविधिनामन्त्रं प्राणायामं करोति यः ।
तस्यायुःपुण्यविनाशाय जन्मनीह दरिद्रता ॥५७॥

तत्तन्मूलं विनामन्त्रं प्राणायामं चरेद्यदि ।
सङ्कल्पा निष्फलं यान्ति विघ्नं कुर्वन्ति देवताः ॥५८॥
उपक्रमोपसंहारकारिपादो द्विधाकृतः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं निष्फलं भवेत् ॥५९॥
प्राणायामं स्मरेदन्यं जपमन्यद्वृथा क्रिया ।
यः करोति सभूढात्मा द्विविधे निष्फलो मनुः ॥६०॥
पादार्धं पादमात्रं च द्विपादं च त्रिपादकम् ।
चतुः पादं(पदं)पञ्चपादं(पदं)षट्पादं(पदं) सप्तपादकम् ॥६१
अष्टपादं(अष्टा पदं)नवपदमशीतिं च शतं तथा ।
तत्तन्मूलं समाश्रित्य प्राणायामो विधीयते ॥६२॥
निगमादिषु सर्वेषु आगमादौ तथैव च ।
तत्तन्मूलं प्रतिमाद्यं प्राणायामं प्रकल्पयेत् ॥६३॥
एकाक्षरं द्व्यक्षरं च त्र्यक्षरं चाधिकं च वा ।
सर्वथा मूलमन्त्रेण प्राणायामं समाचरेत् ॥६४॥
चार्वाकशैवगाणेश (सौर) वैष्णवशाक्तिकाः ।
तेषां जपे तन्मूलैश्च प्राणायामान् समाचरेत् ॥६५॥
श्रौतहोमे दशावृत्तिः सायं प्रातस्तथैव च ।
पक्षहोमे पञ्चदश पशुबन्धे च विंशतिः ॥६६॥
प्रायश्चित्ते चतुर्विंशद्द्विजस्त्वैकविंशतिः ।
यत्र कुत्र प्रमादश्च प्राणायामास्त्रयोदशः ॥६७॥
औपासनद्वये चैव प्राणायामाश्चतुर्दश ।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने प्राणायामास्तु षोडश ॥६८॥

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत दशावृत्तीन दशावरान्।
यत्र यत्रैव सङ्कल्पः तत्र तत्र दशान्वितम् ॥६९॥

प्राणायामं प्रकुर्वीत दशावृत्तीन दशावरान्।
गर्भाधानं समारभ्य आधानान्तं विधीयते ॥७०॥

विप्रीणीते परार्थं यो जपं वै दैवतार्पणम्।
परार्थं प्रनिधानं च कुर्याद्दुर्मार्गं विदुः ॥७१॥

प्रमादेनाप्रयत्नेन कदाचिन्नक्षिप्यते यदि।
अनुलोमविलोमाभ्यां मन्त्रराजं शतावधि ॥७२॥

दशप्रणवगायत्री द्विपदूर्कं प्राणरोधनम्।
वर्णमालां जपेन्मन्त्रं शान्तिपाठं समाचरेत् ॥७३॥

अनृतवचनदोषं दुष्टसंसर्गदोषं
अविहितकृतदोषं दुर्दुराभ्रादिदोषम्।
अहमिति दुरहं चासद्द्विज्ञानामयूर्यं(धं)
हरति सकलदोषं मन्त्रराजो विलोमः ॥७४॥

स्नानं सन्ध्या भुक्तकाले द्विजो यः
कुर्यान्नित्यं सर्वदोषं निहन्यात्।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेव प्रभावः
तेनावश्यं प्राप्यते सद्विवेकः ॥७५॥

शतं त्रिलोकं त्रिशतं त्रिलोकं
पादं त्रिलोकं त्रिपदं त्रिलोकम्।

तारं त्रिलोकं त्रिशतं तुरीयं
सव्यापमव्यावदनाय रोपम ॥७६॥

इति विश्वामित्रस्मृतौ प्राणायामविधानं (विधियोगे) नाम तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मार्जनम्

पादं पादं क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रीतिप्रणवसंयुताम् ।
निक्षिपेदष्टपादं तु अधो यस्य क्षयाय च ॥ १ ॥
अष्टाक्षरं नवपदं पादादौ ब्रह्महा भवेत् ।
पादान्तं मार्जनं कुर्यादश्वमेधफलं लभेत् ॥ २ ॥
यस्य क्षयाय पादं तु आपस्तुन्धन्तु यत्पदम् ।
भूमौ पदो विनिक्षिप्य इतरं मूर्ध्नि धारयेत् ॥ ३ ॥
पादादौ प्रणवं चोक्त्वा पादान्ते मार्जनं भवेत् ।
ऋगादौ प्रणवं चोक्त्वा ऋगन्तं(न्ते) मार्जनं भवेत् ॥४॥
आपोहीति द्विनवकं दधिमात्रे द्विमार्जनम् ।
अङ्गुष्ठेनोदकं स्पृष्ट्वा पादमात्रेण मार्जयेत् ॥ ५ ॥
अर्धमन्त्रं पूर्णमन्त्रं मार्जनं द्विविधं विदुः ।
रजस्सत्त्वतमोजातान् मनोवाक्कायजांस्तथा ॥ ६ ॥

जातकल्पगुरुस्थाय नवैनाअरभिर्हेत ।
इति त्रिमार्जनं मन्त्रं हिरण्यादिचतुष्टयम् ॥७॥
कामक्रोधादिषड्वर्गं पवमानं विनाशनम् ।
पादमन्त्रं सार्धमन्त्रं पूर्णमन्त्रं विशेषतः ॥८॥
सर्वेषामेव वर्णानां त्रिविधं मार्जनं चरेत् ।
चतुर्विंशति गायत्री वर्णसंख्यानुसारतः ॥९॥
ऋक्शाखोक्तेन मार्गेण मार्जनानि समाचरेत् ।
ऋग्यजुःसामशाखानामेवं मार्जनलक्षणम् ॥१०॥
आश्वलायनशाखानां मार्जनक्रम उच्यते ।
आपो हिष्ठादिनवकं शंनोदेवी द्विमार्जनम् ॥११॥
अप्सुमे त्रीणि चोक्तानि ऋतं चेत्येवमेव हि ।
त्र्यृचस्य च नवर्चस्य अब्लिङ्गं द्विविधं भवेत् ॥१२॥
पादादौ प्रणवं चोक्त्वा पादान्ते मार्जयेद्द्विजः ।
ऋतं च मन्त्रस्यादौ च मार्जनानि समाचरेत् ॥१३॥
शन्नो देवी समारभ्य गायत्री शिरसः क्रमात् ।
ऋगादौ प्रणवञ्चोक्त्वा मार्जनम्परिकल्पयेत् ॥१४॥
अप्सुमे च समारभ्य सुवैन्तं मार्जनत्रयम् ।
तत्रापि प्रणवं चोक्त्वा मार्जनानि समाचरेत् ॥१६॥
सुरान्तं मार्जयेद्भूमौ चतुर्विंशतिमार्जनम् ।
पादशोऽष्टादशोक्तानि त्रिपदाभ्यां द्विमार्जने ॥१७॥
षड्विधं क्रमशस्त्रीणि ऋक्त्रयेणैव मार्जनम् ।
यस्य क्षयाय च पदोअधोऽर्ध्वं भुवि निक्षिपेत् ॥१८॥

एकविंशति मूर्ध्नित्यात् त्रि(पादौ)भुवि मार्जयेत् ।
अङ्गुष्ठाज्जलमादाय मन्त्रान्ते मार्जनं यजेत् ॥१८॥

पादौ भूमौ त्रिवारं स्यान्मूर्ध्नि स्यादेकविंशतिः ।
अष्टाक्षरं नवपदं पादादौ ब्रह्महा भवेत् ॥१९॥
पादान्ते मार्जनं कुर्यादश्वमेधफलं लभेत् ।
रजस्सत्त्वं तमोजातं मनोवाक्कायजं तथा ॥२०॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यर्थं नवैतान्नवभिर्दहेत् ।
नवप्रणवयुक्तेन आपोहीतिऋचेन च ॥२१॥
संवत्सरकृतं पापं पुनर्मार्जनतो दहेत् ।
शन्नोदेवी समारभ्य षड्भिश्चाथोसुखोऽन्तकैः ॥२२॥
अरिषड्वर्गपापानि नाशयेन्मार्जनानि च ।
अप्सुमे च समारभ्य ज्योक्चसूर्यान्तमार्जनम् ॥२३॥
इदमापस्समारभ्य ऋषभं मेहान्तमार्जनम् ।
पयस्वानग्न आरभ्य(भुवे) हुवेऽन्तं मार्जनं तथा ॥२४॥
ऋतं च सत्यमारभ्य अन्तरिक्षमथो सुवः ।
पर्यन्तं मार्जयेद्भूमौ गृह्योक्तविधिना द्विजः ॥२५॥
इत्येवं मार्जनं कृत्वा सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ।
मन्त्रलिङ्गं विना प्रोक्तं(पूर्वं)मार्जनं यः करोति हि ॥२६॥
तस्य पापमगण्यं स्यान्मार्जनं निष्फलं भवेत् ।
मन्त्रलिङ्गं यथाशास्त्रं मार्जनं परिकल्पयेत् ॥२७॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्पृष्ट्वा (स्पृष्टा) स्पृष्टिर्न विद्यते ।

इति विश्वामित्रस्मृतौ मार्जनयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सार्घ्यदानगायत्रीमाहात्म्यवर्णनम्

॥ अर्घ्यदानम् ॥

सन्ध्यावन्दनवेलायां दद्यादर्घ्यत्रयं द्विजः ।
सायंप्रातः समासंस्थान्मध्याह्ने तु पृथक्क्रिया ॥१॥
एकं मध्याह्नकाले च सायंप्रातस्त्रयस्त्रयः ।
एवं ज्ञात्वा त्यजेदर्घ्यं गुरुनक्षत्रपूर्वकम् ॥२॥
एकं शस्त्रास्त्रनाशाय चिरं वाहननाशने ।
असुराणां वधार्थं दद्यादर्घ्यत्रयं क्रमात् ॥३॥
असुराणां वधादूर्ध्वं प्रायश्चित्तार्थकं परम् ।
पृथ्वीप्रदक्षिणं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥
सन्ध्यावन्दनवेलायां प्रायश्चित्तार्घ्यमीरितम् ।
[illegible] मूढो ह्यर्घ्यं तु यो द्विजः ॥५॥
स वै दुर्ब्राह्मणो नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ।
[illegible] यो न जानाति स विप्रशूद्र एव हि ॥६॥

तस्य कर्मादिकं ज्ञानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।
बीजमन्त्रं [redacted] गायत्र्याः प्राण इत्यभिधीयते ॥७॥
देहस्तु पिण्ड इत्युक्तो संज्ञाकवच एव हि।
सर्वाङ्गानि पदो मन्त्रः सर्वमन्त्रेष्वयं विधिः ॥८॥
अस्त्रं धृष्टिरिति प्रोक्तं गायत्रीन्यासिरुच्यते।
एतत्पञ्चमन्त्रकं ज्ञात्वा दद्यादर्घ्यं विधानतः ॥९॥
प्रणवो बीजमन्त्रः स्याद् गायत्र्यास्सर्वदा मतः।
पिण्डमन्त्रं तुरीयं स्याद्गायत्रीसंज्ञितं परम् ॥१०॥
नारायणं मूलमन्त्रं संज्ञामन्त्रं भवेत्सदा।
ओमापो ज्योतिरित्येतत्पदमन्त्रमितीरितम् ॥११॥
ओं तत्सवितुरित्येषा गायत्रीहृन्महामुने।
एतदेव हि गायत्री विप्राणां मुक्तिदायिनी ॥१२॥
ब्रह्मास्त्रं बीजमित्याहुः शर्म स्याद्ब्रह्मदण्डकम्।
कीलकं ब्रह्मशीर्षं स्यात्पञ्चादिन्यासपूर्वकम् ॥१३॥
भान्तं वह्निसमायुक्तं व्योमानलसमन्वितम्।
मेषद्वयं दन्तयुक्तं हालाहलमतः परम् ॥१४॥
सनाथं वायुपूर्वं स्याद्धस्तयुग्ममथापरम्।
सरसामक्षपर्यायहान्तं भूर्भुवस्त मतः परम् ॥१५॥
अम्बरं वायुसंयुक्तं अरिं मर्दय मर्दय।
प्रज्वलेति द्विरुच्चार्य परमेतत्परं ततः ॥१६॥
तत्त्रिपादं प्रयोक्तव्यं गायत्रीमध्यमन्त्रतः।
पदत्रयं प्रयोक्तव्यमेतद्ब्रह्मस्मृतीरितम् ॥१७॥

असुराणां वधार्थाय अर्घ्यकाले द्विजन्मनाम्।
प्रोक्तं ब्रह्मास्त्रमेतद्वै सन्ध्यावन्दनकर्मसु ॥१८॥
धर्मार्थं काममोक्षादि ब्रह्मास्त्रेणैव लभ्यते।
ब्रह्मदण्डं तथा वक्ष्ये सर्वशस्त्रास्त्रनाशनम् ॥१९॥
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य परोरजसि संयुतम्।
एतद्वै ब्रह्मदण्डं स्यात्सर्वशस्त्रास्त्रभक्षणम् ॥२०॥
सर्वव्याहननाशार्थं वक्ष्याम्यस्त्रं ब्रह्मशीर्षकम्।
गायत्रीं पूर्णमुच्चार्य मूलमन्त्रं ततो वदेत् ॥२१॥
ब्रह्मशीर्षकमेतद्धि सर्वव्याहननाशनम्।
आधारादि समुद्धृत्य सुषुम्नामार्गनिर्गमे ॥२२॥
सम्यगाचम्य तां देवं ब्रह्मब्रह्माण्डभेदिनीम्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥२३॥
परमात्मेति गायत्रीमनुलोमक्रमान्न्यसेत्।
अघोरास्त्राय शार्ङ्गाय नाराचाय सुदर्शन ॥२४॥
प्रतिलोमक्रमान्न्यसेत्।

॥ प्रायश्चित्तार्घ्यम् ॥

एकं मध्याह्नकाले च प्रायश्चित्तार्घ्यमुच्यते।
अर्घ्यद्वयं तु मध्याह्ने तथ्यमेतन्महामुने. ॥२५॥
अर्घ्यत्रयप्रयोगार्थं प्रायश्चित्तं चतुष्टयम्।
सायंप्रातर्द्विजातीनामेवमेव विधिः क्रमात् ॥२६॥
ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मदण्डं च ब्रह्मशीर्षं तथैव च।
अर्घ्यत्रयप्रयोगार्थमेवमेतदुदाहृतम् ॥२७॥

शीर्षयन्ति मनुत्रयम्।
...चेन मनुत्रयं पिबेदञ्जलिना जलम्।
...मेन च गायत्री बीजयुक्ता मनुत्रयाम् ॥२८॥
...मा शिरसा युक्तं चतुर्थांश्यं विनिक्षिपेत्।
...स्त्रशिरोयुक्तं हंसमन्त्रं समुच्चरेत् ॥२९॥
...ाहनरक्षोघ्नं एकाञ्जलिजलं क्षिपेत्।
...क्षितद्वितीयार्घ्यंमसुराणां वधाय च ॥३०॥
...र्णं चरेत्कृत्स्नाः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
...चेति मनुं विप्रो ब्रह्मदत्तं समाचरेत् ॥३१॥
...दण्डास्त्र(सं)युक्तं निक्षिपेद्रविमंसुरे।
...न्त्रं वदन पूर्वमास्त्रदण्डंशिरस्तथा ॥३२॥
...न्त्रं सम्यगुच्चार्यं अर्घ्यमेकं विनिक्षिपेत्।
...त्रं समुच्चार्य शिरोऽन्तं श्रेयसंयुतम् ॥३३॥
...र्कं तु मध्याह्ने सत्ययुक्तं महामुने।
...द्गुष्ठसंयोगो राक्षसी मुद्रिका भवेत् ॥३४॥
...ीमुद्रिकादत्तं तत्तोयं रुधिरं भवेत्।
...त्यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३५॥
...ङ्गुष्ठायया तोयं देवतामुद्रिका भवेत्।
...करणेन लोकस्य) सर्वपापक्षयो भवेत्।
...क्षाय यो दद्यादर्घ्यं सम्यक्सुधीरितम् ॥३६॥
...क्षमयो स्वाहा आपश्शुन्धन्तु मैनसः।
...मन्त्रेण यो भागे मार्जयित्वाचमेत् ॥३७॥

वायव्यास्त्रेण नववारं प्राणायामं कुर्यात् ।
उत्तमं नववारं स्यान्मध्यमं ऋतुसंख्यकम् ॥३
अधमं त्रयमित्याहुः प्राणायामस्य लक्षणम् ।
प्राणायामबलोपेतमुपसंहारमाचरेत् ॥३९॥
ततस्सर्वप्रयत्नेन प्राणायामं समाचरेत् ।
अस्य श्रीवायव्यास्त्रमन्त्रस्य, ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः महाभूतवायुर्देवता । यं बीजं, स्वाहा शक्तिः जगत्सृष्टिरिति कीलकम् । महास्त्रप्रयोगार्थं वायव्यास्त्रप्रयोगे विनियोगः । यामङ्गुष्ठाभ्यां नमः यीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । यूं मध्यमाभ्यां वषट् । यैं अनामिकाभ्यां हुम् । यः (यौं) ओं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । यः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिन्यासः । लोकत्रयेण दिग्बन्धः ॥

ध्यानम्

पश्चात्करं कृष्णमृगाधिरूढं
बाणेषुधी चापगदे दधानम् ।
शुभैश्चतुर्भिर्भगदादिकारणं
चैतन्यमन्यं प्रणमामि वायुम् ॥४०॥

आवायव्यया वायव्योर्वा वायया या हन हन हुं फट् स्वाहा इति त्रिवारं जपेत् । पुनर्मन्त्रं यदि नय वा प्राणानायम्य पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य श्रीसूर्यनारायणदैवत्यं अर्घ्यप्रदानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य अर्घ्यं-

प्रदानमन्त्रस्य सवितृ भगवानृषिः अनुष्टुपछन्दः, श्रीसूर्यनारायणो देवता ब्रह्मास्त्रं बीजं, ब्रह्मदण्डं शक्तिः। ब्रह्मशीर्षं कीलकं, श्रीसूर्यनारायणप्रीत्यर्थे अर्घ्यप्रदाने विनियोगः। तत्सवितुः ब्रह्मात्मनेऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः। वरेण्यं विष्ण्वात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा भर्गोदेवस्यरुद्रात्मनेमध्यमाभ्यां वषट्। धीमहि ईश्वरात्मने अनामिकाभ्या हुम्। धियो योनस्सदाशिवात्मने कनिष्ठिकाभ्या वौषट्। प्रचोदयात् परमात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। लोकत्रयेणेति दिग्बन्धः। ध्यानम्—

सर्वतोरणमध्यस्थं मण्डलान्तर्व्यवस्थितम्।
ब्रह्मायुतसहस्रस्य तत्सन्तानकारणम् ॥४१॥
चिन्तयेत्परमात्मानमिव(वो)ऊर्ध्वं न च निक्षिपेत्।
उत्तिष्ठ देवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च ॥४२॥

अञ्जलिना जलमादाय गायत्री मात्रादारभ्य नासापुटे वा उत्तीर्याञ्जलौ निक्षिप्यार्घ्यप्रयोगं कुर्यात्। धाम्नो धाम्नो राजन्नितो—व ह्रोऽसि पाप्मानं मे विद्धि आश्वलायनं यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्यं सर्वन्तदिन्द्र ते वशेइति प्रातः। आपस्तम्बस्य हिरण्यगर्भस्स—म इति प्रातः। गर्भोऽसि पाप्मानं मे विद्धि। आश्वलायनस्य प्रातःदेवीमदितिं जोहयामि मध्यंदिन "उदिता सूर्यस्य राये मित्रवारुणा

सर्वंगाते शं मोक्षाय तनयाय शंयोः। आपन्नस्यास्य यः प्राणतो—मेति मध्याह्ने। उक्तं तद्भगुन्। मध्यं वृषभं सूर्यार्पनं अस्तारमेपि सूर्यं। आपस्तम्बस्य च आत्मदामेति। सायाह्ने। पुनर्नयवारं प्राणानायम्य पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य असुरवधप्रायश्चित्तार्थं चतुर्थार्घ्यप्रदानं करिष्ये इति सङ्कल्प्य वाग्भवकामराजशक्तिबीजसहितं विलोमगायत्रीसहितं शिरःशिखासहितं सतुरीयं चतुर्थार्घ्यं दद्यात्। पुनर्नववारं प्राणानायम्य पञ्चोपचारमभ्यर्च्य। अस्य श्री अस्त्रोपसंहारमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीछन्दः विलोमगायत्री देवता ब्रह्म बीजं ह्रीं शक्तिः हूं कीलकम् अस्त्रोपसंहरणार्थे विनियोगः। अघोरास्त्राय शार्ङ्गाय नाराचाय सुदर्शनाय ह्रां धियो यो नः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। अघोरादि चतुष्टय परियुक्तं तर्जनीभ्यां शिरसे स्वाहा। अघोरादिचतुष्टयसहितं हूं मध्यमाभ्यां वषट्। अघोरादिचतुष्टयसहितं हैं भर्गो देवस्य ओं अनामिकाभ्यां हुम्। अघोरादिचतुष्टय सहितं हैं वरेण्यं ह्रीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। अघोरादिचतुष्टयसहितं तत्सवितुरौं करतलकरपृष्ठाभ्यां हुं फट्। एवं हृदयादिन्यासः। ओं भूर्भुवःसुवरोमिति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

सोऽहमर्कमहं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ।
आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसो महिम् (ऽमृतम्) ४३॥
आगत्य देवि तिष्ठ त्वं प्रविश्य हृदयंमम ।
अङ्कुशं मुद्रया नासा पुटं हृदयेनाभिस्पृशेत् ।
विलोमगायत्री त्रिवारं जपेत् । असावादित्यो
ब्रह्म पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुनर्वायव्यास्त्रं न्यसेत् ।
इति त्रिकाले समानमन्त्रं अघोरास्त्राय शार्ङ्गाय
नाराचाय सुदर्शनम् ।
मायापदद्वीर्यगायत्री प्रतिलोम न्यसेत् क्रमात् ।
लकारं च हकारं च यकारं रेफसंज्ञकं ॥४४॥
वकारमिति विख्यातं पञ्चभूतात्मकं यजेत् ।
इति पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

द्विविधजपलक्षणम्

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मन्यासध्यानपुरस्सरम् ।
यथाशक्ति जपं कुर्यात्सन्ध्याङ्गो जपईरितः ॥ १ ॥
नदीतीरे सरित्कोष्ठे पर्वताग्रे विशेषतः ।
शिवविष्णुसमं देवा गायत्रीजपमाचरेत् ॥ २ ॥
नैमित्तिकं च काम्यं च द्विविधं जपलक्षणम् ।

॥ भूशुद्धिः ॥

भूशुद्ध्याधारशुद्धिं च विलिखेद्गुरुमार्गतः ।
शुद्धे भूमौ लिखेन्मन्त्रं प्रणवादिषडक्षरैः ॥ ३ ॥
आधाराख्यं च संप्रोक्ष्य धारयेत्पृथिवीमिमाम् ।
अपसर्पन्तु ये भूता ये भूता दिवि संस्थिताः ॥ ४
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।
पृथिवि(थ्वि)त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ।
प्रणवाद्यैश्च षड्वर्णैर्दशवाराभिमन्त्रितम् ॥ ६ ॥
शुद्धभूमौ जलं प्रोक्ष्य विलिखेन्मन्त्रमुत्तमम् ।
त्रिकोणाग्रे वह्निबीजं मध्ये मायां सबिन्दुकम् ॥ ७ ॥
युतं मन्त्रं जपस्थाने लिखेत्क्रमात् ।
चतुरस्रं हस्तमानं सुदृढं मृदु निर्मलम् ।
तस्योपरि समासीनो गायत्रीजपमाचरेत् ॥ ८ ॥
कृत्वा मूलेन भूशुद्धिं भूतशुद्धिं समाचरेत् ।
शोषदाहप्लवं कुर्यात् प्रणवादिषडक्षरैः ॥ ९ ॥
पार्थिवं शतमेकं च वकारं द्विशतं तथा ।
त्रिशतं वह्निबीजं च वायुबीजं चतुश्शतम् ॥१०॥
आकाशं पञ्चशतकं भूतशुद्धिरिति क्रमात् ।
प्रणवादि नमोऽन्तं च वृद्धिरेकोत्तरं शतम् ॥११॥
प्राणायामं च पञ्चार्णैः कुर्याद्भूतशोधनम् ।
मूलाधारं समारभ्य गायत्री तुर्यया सह ॥१२॥

ऊर्ध्वनास्यां(सां)समायोज्य गायत्रीं तत्र विन्यसेत् ।
अस्त्रमन्त्रेण कुर्वीत रक्षादिग्बन्धनं दिशाम् ॥१३॥
उपपातकरो(गा)णां महापातकनाशनम् ।
कामक्रोधादिषड्वर्गं पापं कुक्षौ विचिन्तयेत् ॥१४॥
खड्गचर्मधरं कृष्णं पिङ्गलश्मश्रुलोचनम् ।
उकारान्तःस्थितद्वीपं ज्वालाकारं हुताशनम् ॥१५॥
प्रतिष्ठाप्य ततः कामं शक्तिना वायुना (सह) ।
शक्तिबीजात्मकं ज्वाला त्रितयेन विनिर्दहेत् ॥१६॥
कर्पूरमिव सुज्वालाशेषं कुर्यात्समाहितः ।
ओं यं नमः शोषणं कुर्यात् । ओं इं नमः इत्यग्निबीजेन दहनं कृत्वा । ओं वं नमः इत्यमृतबीजेन प्लावनं कृत्वा लं नमः इति पञ्चवरयङ्गुलप्रमाणेनाथयथादिकं त्यक्त्वा । ओं हं नमः इत्याकाशबीजेन सर्वसंज्ञाभासप्रतिष्ठापनं कुर्यात् ।
पादादिजानुपर्यन्तं पृथ्वीमण्डलसंस्थि(स्थ)क(त)म् ।
जान्वादिकटिपर्यन्तं जलमण्डलसंस्थि(स्थ)क(त)म् ॥१७॥
कश(क्ष)दिकटिपर्यन्तं वह्निमण्डल संस्थि(स्थ) (त) कम् ।
हृदादिकर्णपर्यन्तं वायुमण्डलसंस्थि(स्थ)(त)कम् ॥१८॥
कर्णादिब्रह्मरन्ध्रान्तं नभोमण्डलसंस्थि(स्थ) (त) कम् ।
पाञ्चभौतिकमित्येतच्छोधनं समुदाहृतम् ॥१९॥
गुदादिद्व्यङ्गुलादूर्ध्वं(मे)ढ्या(ढ्रा)दिद्व्यङ्गुलादतः ।
सुषुम्नामूलमन्त्रेण वा (?) दि चतुरक्षरैः ॥२०॥

विलसितकनकप्रभं पद्मं ध्यात्वा तत्र त्रिगुणतायां
कुलकुण्डलिनीं सुषुम्णावर्त्मषट्पद्मभेदक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं
नीत्वा तत्र सहस्रदलकर्णिकामध्यगतसंपूर्ण-
गायत्रीं ओङ्कारस्वरूपपरमात्मनि शिवे लीनां कुर्यात्।

पाशमायाङ्कुशीबीजप्रणवादिनमोऽन्तकैः।
प्राणायामं प्रकुर्वीत एवमष्टोत्तरं शतम् ॥२१॥
पञ्चपूजां प्रकुर्वीत स्वात्मनो हंसरूपिणः।
सोऽहं भावेन युञ्जीयादाकाशाद्रविमंडले ॥२२॥
आकृष्य धारयेद्देवीं(प्राणस्थापन) प्राणस्थापनमाचरेत्।
हृदिस्थजीवं चैतन्यं हंस इत्यक्षरद्वयम् ॥२३॥
सोऽहं भावेन संपूज्य पञ्चपूजानुसारतः।
उक्तसंख्याप्रकारेण प्राणायामं समाचरेत् ॥२४॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
ऋषयः कथितास्तस्य छन्दांसि निगमत्रयम् ॥२५॥
देवता प्राणशक्तिःस्याद्बीजं शक्तिश्च कीलकम्।
पाशादित्रितयं प्राणस्थापने विनियुज्यते ॥२६॥
बीजराजं पाशबीजं चैतन्यं चाङ्कुशं तथा।
हंसद्वयं ततः पश्चात्पञ्चाशद्वर्णमन्त्रतः ॥२७॥
नादैःसंपुटितैः क्रमात्।
वर्गैश्च यादिक्षान्तार्णैः(स)र्नत्याभ्यां संपुटीकृतैः।
पञ्चविंशतितत्त्वैश्च कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥२८॥

प्रणवं प्राणशक्तिं च पाशमायाङ्कुशानि च।
तृतीयस्वरसंयुक्तं यादिहान्तं समुच्चरन् ॥२६॥
मम प्राणा इहेत्यादि वह्निजायान्तमुच्चरेत्।
पाशादित्रितयं प्राणशक्तिं तारं समुच्चरन् ॥३०॥
इमं मन्त्रं सकृज्जप्त्वा प्राणस्थापनमाचरेत्।

॥ अङ्गन्यासः ॥

करेण हृदयं स्पृष्ट्वा गुरोराज्ञानुसारतः।
जपेन्मन्त्रमिदं सम्यग्दशवारं यथाविधि ॥३१॥
स्वस्य शास्त्रोदितं प्राणसूक्तं वारत्रयं जपेत्।
प्राणसूक्तं त्रिरावृत्त्या आद्यन्तं प्रणवं युतम् ॥३२॥
प्राणायामं प्रकुर्वीत पिण्डब्रह्माण्डसंयमे।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं प्रवालपद्मरागमयदण्डानुकारिणीम् अखण्डमुञ्चवल्तीं सविसयां अखिलदुरिततिमिरनिरस्तपटीयसी ज्योतिर्मयी त्रिपदां सतुरीयमन्त्रराजानुवर्तितेजः पुञ्जपञ्जरीकृतज्योतिर्मयस्वरूपिणीं यावच्छ्वासस्फुरशरीरदृशासनं कुर्यात्।

इकारं प्रणवो ज्ञेयः सकारं प्रकृतिस्तथा ॥३३॥
प्राणायामं प्रकुर्वीत मातृकावर्णकैः क्रमात्।
करशुद्धिश्च कर्तव्या षड्दीर्घस्वरसंयुतैः ॥३४॥
ऋष्यादिषट्कं विन्यस्य कराङ्गन्यासमाचरेत्।
ऋषिं मूर्ध्नि न्यसेत्पूर्वं मुखे छन्द उदीरितम् ॥३५॥

देवता हृदि विन्यस्य नाभौ बीजमिति स्मृतम्।
आधारे विन्यसेच्छक्तिं कीलकं पादयोर्न्यसेत् ॥३६॥
ऋषिर्ब्रह्मा समाख्यातो गायत्री छन्द उच्यते।
देवो वह्निर्मातृका स्याद्धलो बीजानि च स्वराः ॥३७॥
शक्तयश्च समाख्याता नमः कीलकमुच्यते।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां हकारादिवर्णाभ्यां संपुटीकृतैः ॥३८॥
कादिवर्णैस्तत्त्वयुक्तैः कराङ्गन्यासमाचरेत्।
त्रिलोकैर्दन्धनं ध्यानं योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥३९॥

पञ्चाशदक्षरविनिर्मितदेहयष्टिं
फालेक्षणां इतहिमांशुकलाभिरामाम्।
मुद्राक्षसूत्रमणिपुस्तकयोनि(ग)हस्तां
वर्णेश्वरीं नमत कुन्दहिमांशुगौरीम् ॥४०॥

केशान्ते मुखमण्डले नयनयोः श्रोत्रद्वये नासयोः।
दन्तोष्ठद्वयदन्तपङ्क्तियुगले मूर्ध्न्यासने तु स्वरान् ॥४१॥
दोः पत्सन्धिषदमपादयुगले पृष्ठे च नाभ्यन्तरे।
याद्यर्णानपि सप्तधातुषु तथा प्राणेषु जातानि तु ॥४२॥
ततोऽन्तर्मातृकान्यासं कुर्याद्विष्णुमार्गतः।
तारत्रयेण कुर्वीत प्राणायामं समाहितः ॥४३॥
ऋषिश्छन्दो देवता च बीजं शक्तिश्च कीलकम्।
ब्रह्मा च लिपिर्गायत्री ततोऽन्तर्मातृका मता ॥४४॥
वाग्भवं शक्तिबीजं च श्रीबीजं च त्रयं तथा।
तत्त्वत्रयमिति ख्यातं ज्ञात्वा न्यासं समाचरेत् ॥४५॥

करन्यासं हृदिन्यासं कुर्यात्तत्त्रयेण च ।
अनुलोमविलोमाभ्यां त्रिलोकैर्बन्धनं दिशाम् ॥४६॥

॥ मुद्राः ॥

कृत्वा ध्यात्वा महायोनिमुद्रां सन्दर्शयेत्ततः ।
पञ्चाशन्निजदेहजाक्षर भवैर्नानाविधैः कर्मभिः ॥४७॥
वह्र्यैः पदवाक्य(दा)नजनकैरङ्गैश्च संभाविताः ।
साभिप्रायचिदर्थकर्मफलदानन्तैरसङ्गैरिदं ॥४८॥
विश्वव्याप्यचिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके ।
एवमुक्तविधानेन विन्यसेन्मातृकाद्वयम् ॥४९॥
आवाहनादिभेदैश्च दश मुद्राः प्रदर्शयेत् ।
आवाहनासने यो जुहुयाद्धविष्यं घृतसंयुतम् ॥५०॥
अथवा तण्डुलेनापि नित्यकर्म समाचरेत् ।
अनाशात्त्रयं कृत्वा गायत्रीदशकं जपेत् ॥५१॥
प्रणवाद्यन्तमध्यस्थं होमान्ते च विधीयते ।
चतुर्विंशतिवर्णानि जपेत् पारायणे मनुः(म्) ॥५२॥
जपे पारायणे चैव युक्तं च विरलं क्रमात् ।
चतुरक्षरसंयुक्तं कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥५३॥
तुर्यपादं विनान्यासमाद्यन्तं प्रणवैस्सह ।
व्याहृतित्रयमुच्चार्यगायत्रीचतुरक्षरम् ॥५४॥
पुनर्व्याहृतिमुच्चार्य कराङ्गन्यासमाचरेत् ।
पादं पादं द्विभागं च प्रतिप्रणवसंपुटम् ॥५५॥

कराङ्गन्यासमसंयोगे षट्पदा त्रिपदा भवेत्।
अङ्गुष्ठादिचतुर्वर्णमनुलोमक्रमेण च ॥८६॥
हृदयादिचतुर्वर्णं क्रमेणैव विलोमता।
चतुर्वर्णं विना यस्तु विपर्यासं न्यसेद्यदि ॥८७॥
स विपत्तिं समाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः।
अस्त्राय फडिति न्यासमापादतलमस्तकम् ॥८८॥
पञ्चावयवात्मके देहे प्रकाशार्थं प्रचोदयात्।
लोकत्रयेण दिग्बन्धं ततो मुद्राः(न्)प्रदर्शयेत् ॥८९॥
हंससिंहासनं वह्निर्विश्वयोनिस्तथैव च।
खेचरी कुण्डलीकुण्डं सप्तव्याहृतिमुद्रिका ॥९०॥
सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपञ्चमुखं तथा ॥९१॥
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं(चोन्मु)सम्मुखोन्मुखम् ॥९२॥
प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यकूर्मवराहकौ।
सिंहाक्रान्तां महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥९३॥
एते मुद्राश्चतुर्विंशा गायत्री सुप्रतिष्ठिता।
इति मुद्रां न जानाति गायत्री निष्फला भवेत् ॥९४॥
ध्यानं मुक्ताविद्रुम हेमनीलधवलच्छायैर्मुखैः—भजे।
तारं तुर्यपादं चोक्त्वा बीजशक्तिं च कीलकम् ॥९५॥
त्रीणि त्रीणि त्रिधाप्रोक्तं क्रमादृष्यादिकं न्यसेत्।
पूर्णगायत्रिया देव्याः प्रसादे विनियुज्यते ॥९६॥

बीजशक्त्यादिकीलानां अनुलोमविलोमतः ।
आदौ प्रणवसंयुक्तं कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥६७॥
प्रणवान्तस्त्रिलोकैश्च कुर्याद्दिग्बन्धनं ततः ।
ध्यानं – यद्देवासुरपूजितारुणनिभं हेमार्कतारागणैः
पुन्नागाम्बुजनागपुष्पवकुलैः (वासा) दिभिः पूजितम् ।
नित्यं धातृसमस्तदीप्तिकरणं कालाग्निरुद्रोपमं,
तत्संहारकरं नमामि सततं पातालपद्मं मुखम् ।
शिखायोनिर्महायोगी सुरभ्याप्युपमस्तनि (के) ।
लिङ्गमुद्रामहामुद्राञ्जलिरित्यष्टमुद्रिका ॥६८॥
प्रातर्मध्याह्नकाले तु तुर्यपादं दशांशकम् ।
सायंकाले चतुष्पादसहितं जपमाचरेत् ॥६९॥
सुरभिज्ञानवैराग्ये योनिः शङ्खोऽथपङ्कजम् ।
लिङ्गं निर्वाणमुद्राऽष्टौ जपान्ते परिकल्पयेत् ॥७०॥

चक्रे – अत्र मन्त्रपातः क्रमात् ।

अङ्कुशास्त्रोक्तेन विधिना योगे तु विलोमतः ।
विना प्रयोगजाप्ये तु अनुलोम न विद्यते ॥७१॥

इति [illegible]
नामषष्ठोऽध्यायः [illegible]

अथ सप्तमोऽध्यायः

उपस्थानविधिवर्णनम्

॥ उपस्थानम् ॥

अथातस्संप्रवक्ष्यामि उपस्थानविधिं क्रमात्।
ऋक्शाखोक्तेन विधिना जातवेदस इत्यृचम् ॥ १ ॥
प्रातःकाले च सायाह्ने जपेच्चेत्युत्तमार्गतः।
मध्याह्ने च पृथक्सन्ध्या योदित्यं जातवेदसम् ॥ २ ॥
सहस्रपरमां देवीं मध्याह्ने च जले द्विजः।
सूर्यावलोकनं कुर्वन् दुर्गोपस्थानमाचरेत् ॥ ३ ॥
सायाह्न सूर्यमालोक्य दद्यादर्घ्यचतुष्टयम्।
ऋक्षप्रकाशपर्यन्तं जपेदेवं चतुष्पदाम् ॥ ४ ॥
जातवेदस इत्येषां प्रातस्सायमृचं जपेत्।
जलान्ते विधिवत्कुर्यात् उपस्थानं समाहितः ॥ ५ ॥
हंसमन्त्रं समुच्चार्य गायत्रीं त्रिपदां वदन्।
अर्घ्यमेकं तु मध्याह्ने ऋग्यजुस्सामवेदिनाम् ॥ ६ ॥
प्रायश्चित्तं द्वितीयार्घ्यं असुराणां वधाय च।
अर्घ्यद्वयं तु मध्याह्ने सर्वेषामेवमेव हि ॥ ७ ॥
अर्घ्यप्रदानात्परतो गायत्रीं पूर्ववज्जपेत्।
आवर्तनं गते सूर्ये उपस्थानं समाचरेत् ॥ ८ ॥
उदित्यमिति मन्त्रेण ऋक्शाखोक्तविधिक्रमात्।
मध्यंदिने रविध्याने प्रातस्सायाह्नवज्जपेत् ॥ ९ ॥

कृत्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यां त्रयोदशघटीपरम्।
आवर्तनान्तं प्रजपेदुपस्थानं ततः परम् ॥१०॥
नित्यं जाप्यं विना यस्तु उपस्थानं करोति चेत्।
सौरमन्त्रैश्च सकलैः गायत्रीजपपूर्वकम् ॥११॥
प्रत्यगास्सूर्यमालोक्य उपस्थानं समाचरेत्।
उदयेऽस्तमये जप्त्वा दुर्गोपस्थानमाचरेत् ॥१२॥
मध्यन्दिने जपान्ते च सूर्योपस्थानमाचरेत्।
आश्वलायनगृह्योक्तमृग्यजुस्सामशाखिनाम् ॥१३॥
जपोपस्थानयोरन्ते सौरं पञ्चार्चनं यजेत्।

प्रभान्समुद्यन्तिभास्यमानो
बिम्बं समालोक्य कृतोदितो वदेत्।
मन्त्रस्य चार्पादिकृत्यं च याजुषैः
शाखान्तरोक्तास्तु(सम्) उपासनीयाः ॥१४॥

त्रिपदाजपसादृगुण्यं तुर्याजाप्यं दशांशकम्।
तुर्यपादं विना जाप्यं कुरुते निष्फलं भवेत् ॥१५॥
मित्रस्य चर्षणीमन्त्रं याजुषोपासनक्रमात्।
प्रातर्जपान्ते गायत्र्याः सूर्योपस्थानमाचरेत् ॥१६॥
आसत्येनेति मन्त्रेण पङ्क्त्योक्तविधानतः।
मध्यन्दिने रविं ध्यायेज्जपान्ते विधिवत्क्रमात् ॥१७॥
सायं भानोरस्तमयाद्द्विघटी कर्मसंयमे।
नक्षत्रप्रकाशपर्यन्तं जपन् देवीं मनोहराम् ॥१८॥

सूक्तं सूक्तं समालोक्य त्रिगुणध्यानमाचरेत्।
सूक्तं पावमानस्तेन इमंमादि पठेन्मनुम् ॥१६॥
प्रियासूक्तं समुचार्य देवीं ध्यायेच्चतुर्भुजाम्।
पश्चोपचारैरभ्यर्च्य गायत्रीं तुर्यया सह ॥२०॥

इति विश्वामित्रस्मृतौ उपस्थानंनाम सप्तमोऽध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

देवयज्ञादिविधानवर्णनम्

॥ वैश्वदेवम् ॥

देवयज्ञादिकं वक्ष्ये गृह्योक्तविधिना ततः।
कोद्रवान्मासुरान्माषान् मसूरांश्चकुलुत्थजान् ॥१
लवणं च कटुद्रव्यं वैश्वदेवे विवर्जयेत्।
नीवारान्वंशजं धान्यं गोधूमान् तण्डुलांस्तदा ॥ २
कन्दमूलफलादीनि दधिक्षीरघृतादिकम्।
प्रत्यहं वैश्वदेवार्थं कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ ३
गृहस्थो वैश्वदेवस्य कर्म प्रारभते यदा।
गृहे सिद्धान्नमादाय दधिक्षीरघृतान्वितम् ॥ ४।
जपासने स्वकार्यार्थं सर्वेभ्यः पचने द्विजः।
यो हि यत्तद्धुनेदग्नौ गायत्रीमंत्रपूर्वकम् ॥ ५॥

दिवा सूर्याय रात्रौ चेदग्नये च हुवेद्धविः।
प्रजापतय इत्येकामुभयोराहुतिं हुनेत्(?) ॥ ६ ॥
प्रणवव्याहृतिभिश्च हुत्वामन्त्रैः स्वशाखिभिः।
भूतेभ्यश्चबलिंदद्यात् ॥ ७ ॥
आयुष्कामो दिवारात्रौ शूपाकारं बलिं हरेत्
मृत्युरोगविनाशार्थं नराकारं बलिं हरेत् ॥ ८ ॥
काम्ये कर्मणि वायवे च बलिं वल्मीकवद्धरेत्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रान्पौत्रान्पशूंश्च यः ॥ ९ ॥
काङ्क्षते स च मोक्षार्थी चक्राकारं बलिं हरेत्।
धर्मार्थकाममोक्षार्थं व्यजने च बलिं हरेत् ॥१०॥
पञ्चवैतेषु विप्राणां मुख्यमेतच्चतुर्थकम्।
प्रथमं चोपवीतं स्याद्द्वितीयं च निवीतिकम् ॥११॥
तृतीयं पितृमेधार्थं वैश्वदेवे विधीयते।
तण्डुलोदकसंयुक्तं पाकं कुर्याद्विशेषतः ॥१२॥
तप्तोदकस्य मध्ये तु तण्डुलं नैव पाचयेत्।
तप्तोदकस्य मध्ये तु तण्डुलं पाचयेद्यदि ॥१३॥
तण्डुलं गरलं ज्ञेयं तुल्यं गोमांसभक्षणम्।
अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् ॥१४॥
अस्नेहा अपि गोधूमा यवा गोरसमिश्रिताः।
पाकमध्ये घृतं दत्वा पाकादुत्तार्य यत्नतः ॥१५॥
तस्योपरि घृतं क्षिप्त्वा भागान् कुर्याद्विशेषतः।
यज्ञार्थे देवपूजार्थे विप्रार्थे बलिकर्मणि ॥१६॥

पृथक्पाकं न कुर्वीत वैश्वदेवे विशेषतः।
हविष्यान्नं शुचीः कामं पञ्चभागान्विभाजितम् ॥१७
अभिघार्य च मान भागान पूर्वं पश्चाद्घृतेन च।
प्राणायामान्प्रकुर्वीत पञ्चसूक्तानुगम्यम् ॥१८॥
देशकालौ च संकीर्त्य ततः कर्म समाचरेत्।
षड्भिराद्यैः प्रतिमन्त्रं हस्तेन जुहुयात्ततः ॥१९॥
मनःस्था(स्थानि)स्थिरां कृत्वा स्वयं ज्ञानाभितापयेत्।
स्वधर्मनिरतो यस्तु स्वयंपाकी स उच्यते ॥२०॥
अमन्त्रं वा समन्त्रं वा वैश्वदेवं न सन्त्यजेत्।
वैश्वदेवस्य करणादन्नदोषैर्न लिप्यते ॥२१॥
प्रातर्मध्याह्नकाले च होमं कुर्याद्यथाविधि।
सायंकाले तथा कुर्याद्धविष्यं तण्डुलं द्विधा ॥२२॥
विधाय प्रत्यहं पाकं हुत्वा देवार्पणं हविः।
हुत्वा दत्वा च यो भुङ्क्ते स्वयंपाकी स उच्यते ॥२३॥
पञ्चसूनापनुत्त्यर्थं प्रायश्चित्ते हुनेद्धविः।
पवित्रमन्यं (न्नं) तज्जातं नास्ति चेदपवित्रता ॥२४
एकपार्श्वेद्विधा होमौ न कुर्याद्वैश्वदैविकम्।
कदाचित्कुरुते यस्तु उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥२५
परेऽहनि समुत्थाय स्नानं कृत्वा यथाविधि।
पाकं कुर्याद्विधानेन होमं कुर्यात्षडक्षरैः ॥२६
भूर्भुवस्सुवरित्येतैः हुनेत्प्रणवपूर्वकम्।
अष्टोत्तरशतं चैव स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥२७

वैश्वदेवं ततः कुर्यात्क्रमेणैव यथाविधि।
बलिदानं ततः कुर्यात्प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२८॥
सूतकद्वयसंप्राप्तौ नित्यहोमं परित्यजेत्।
पारायणं प्रकुर्वीत वाचकोपाकुर्वर्जितम् ॥२९॥
एकादशेऽह्नि संप्राप्ते पृथक्पाकं प्रकल्पयेत्।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत बलिकर्म यथाविधि ॥३०॥
प्रेतश्राद्धे पृथक्पाकं वैश्वदेवं समाचरेत्।
क्षये दर्शे च पक्षे च एकपाको विधीयते ॥३१॥
प्रेतश्राद्धे विना येन पृथक्पाकः कृतो यदि।
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति पाककर्ता पतत्यधः ॥३२॥
वैश्वदेवप्र(करणस्य) कालस्यात्र विनिर्णयम्।
सूर्योदयं समारभ्य घटिका स्युश्चतुर्दश ॥३३॥
घटिका पञ्चदश च षोडश स्युः ततः परम्।
ततस्सप्तदश प्रोक्ताः ततश्चाष्टादश स्मृताः ॥३४॥
सङ्गमान्ते ब्रह्मयज्ञं कुर्यात्तत्पुरस्सरम्।
मध्यसन्ध्यां तर्पणं च वैश्वदेवमिति क्रमात् ॥३५॥
मध्यकाले ▮ मध्याह्ने दक्षिणायनगे रवौ।
वश्वदेवं प्रकुर्वीत मध्यकालाच्च पूर्वतः ॥३६॥
मध्याह्नान्ते वैश्वदेवं घटिकानवकात्परम्।
उत्तरायणगे सूर्ये वैश्वदेवं समाचरेत् ॥३७॥
चतुर्दशघटीभ्यस्तु मार्तण्डस्योदयावधि।
परतस्तर्पणं कृत्वा वैश्वदेवं समाचरेत् ॥३८॥

श्रुतश्राम्नविधिना दक्षिणोत्तरमार्गयोः ।
गृह्यादर्शं समारभ्य पत्रिकाद्यष्टहायनम् ॥३९॥
गार्ग्यान्तेऽत्र विधिना वैश्वदेवं समाचरेत् ।
योगिनो वैश्वदेवस्य कालनिर्णय उच्यते ॥४०॥
यामद्वये च होतव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् ।
योगिनो वैश्वदेवस्य काल एष उदाहृतः ॥४१॥
अन्यथा यस्तु कुरुते योगी भ्रष्टोऽभिजायते ।
योगिनो वैश्वदेवस्य मुख्यो विधिरुदाहृतः ॥४२॥
बलिक्रियां समुत्सृज्य कुर्यान्नित्यं पञ्चाहुतिम् ।
नान्तर्बलिक्रिया कुर्याद्वाह्य एको बलिः स्मृतः ॥४३॥
षड्भिराद्यैर्हुनेदन्नं इति कौषीतकिस्मृतः ।
तस्माद्धुनेद्विधानेन वैश्वदेवं श्रुतीरितम् ॥४४॥
वैश्वदेवस्याकरणाद्दोषं भिक्षुर्व्यपोहति ।
भिक्षोर्निदानं दोषं तु वैश्वदेवं व्यपोहति ॥४५॥
अकृत्वा वैश्वदेवं तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥४६॥
काष्ठभारशतेनापि घृतकुम्भशतेन च ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥४७॥
दूरादतिथयो यस्य गृहं प्राप्य सुतोषिताः ।
सद्गृहस्थ इति प्रोक्तस्शेषाः स्युर्गृहरक्षकाः ॥४८॥
वैश्वदेवं विना पाको यस्तु सप्रत्यनामकः ।
तं पाकं ब्राह्मणो भुङ्क्ते स सद्यः पतितो भवेत् ॥४९॥

वैश्वदेवाकृतादोषाच्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम्।
पादुकायोगपट्टं च पवित्रं चित्रकम्बलम् ॥५०॥
स्वाहां स्वधां वैश्वदेवे वर्जन्यां रजतं तथा।
वर्जयेज्जीवपितृकः कुर्यान्नित्यं षडाहुतीः ॥५१॥
यदि पित्रा समाज्ञप्तो वैश्वदेवं समाचरेत्।
असंस्कृतान्ननैवेद्यं स्थावरेषु गृहेषु च ॥५२॥
स्वाहाकारं विना यस्तु कुरुते ब्रह्मराक्षसः।
चराचरादिदेवानां हविष्यान्नं निवेदयेत् ॥५३॥
पञ्चसूनापनुत्त्यर्थं वैश्वदेवं विधाय च।
पञ्चसूनापनुत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं हुनेद्धविः ॥५४॥
तत्परं देवताभ्यस्तु नैवेद्यं परिकल्पयेत्।
वैश्वदेवार्पणं येन द्विजदेवार्पणं हविः ॥५५॥
कुर्वन्ति ते महापापात्तद्धविः क्रिमिसङ्कुलम्।
रण्डायन्थ्याकृतः पाको बधिरामूकयोस्तथा ॥५६॥
निष्फलायाश्च गुर्विण्या न भोक्तव्यं कदाचन।
रण्डापञ्चविधं ज्ञात्वा प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥५७॥
श्मशाने चितिसंयुक्ते प्रज्वाल्याभीष्टकाष्ठवत्।
कन्या वैधव्यमापन्ना वीरेत्याचक्षते बुधैः ॥५८॥
रोहिणी विधवा भर्ता सा रण्डेत्यभिधीयते।
दुर्भगा दशवर्षा या सा कन्या समुदीरिता ॥५९॥
रजसः परतस्सा तु यातुकी विधवा भवेत्।
असन्ततिश्च या नारी सा रण्डेत्यभिधीयते ॥६०॥

नानाभावैः प्रयत्नेन रण्डापाकं परित्यजेत् ।
वीररण्डा कुण्डरण्डा बालपुत्राह्यपुत्रिणी ॥६१॥
तासां पाको न भोक्तव्यो भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
अस्नाता विधवा चण्डी पक्वाशी मासस्रूतकी ॥६२॥
पञ्चपक्वान्त्यजेद्विप्रः तत्प्रेष्यं च परित्यजेत् ।
पाकं कृत्वा प्रयत्नेन ह्यभुक्त्वा भोजने विषम् ॥६३॥
रण्डापाकं महापापं वैश्वदेवे परित्यजेत् ।
नाहुतं पाकमश्नीयादन्नंवेद्यं स मन्यते ॥६४॥
रण्डापाकं विषं क्रूरं अहुत्यान्नं तथा विषम् ।
द्विविधं यन्त्रसंयुक्तं तदन्नं कालकूटकम्
नाना भावैः प्रयत्नेन रण्डापाकं परित्यजेत् ।
प्रमादात्प्राप्यते चान्नं प्राणायामांश्चतुर्दश ॥६५॥
कुर्यात्कुम्भकमार्गेण न्यासध्यानपुरस्सरम् ।
मन्त्रराजद्विभागं प्रथमं वैश्वदेविकम् ॥६६॥
कृत्वा श्राद्धं प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकं चरेत् ।
श्राद्धाग्नौ करणात्पूर्वं वैश्वदेवं विधाय च ॥६७॥
तनोऽग्नौ करणं कुर्यादन्यथा श्राद्धघातकः ।
वैश्वदेवं विना यस्तु श्राद्धकर्म समाचरेत् ॥६९॥
वृथा श्राद्धं भवेत्तस्य रौरवं नरकं व्रजेत् ।
नित्यनैमित्तिके श्राद्धे पचन्यः चान्नं प्रयत्नतः ॥७०॥
ततो होमं प्रकुर्वीत ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
यत्राग्नौ करणं कुर्याद्वैश्वदेवपुरस्सरम् ॥७१॥

ब्रह्मार्पणं हविस्तस्यापितॄणां दत्तमक्षयम् ।
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च ऋषिभ्यश्च तथा हविः ॥७२॥
आदौ वह्निमुखे दत्तं तृप्त्यै भवति नान्यथा ।
यस्त्वग्नौ न हुतं चान्नं देवे पित्र्ये प्रयच्छति ॥७३॥
गोत्रपान्नं भवत्येव वृथा श्राद्धं न संशयः ।
नित्यश्राद्धे गयाश्राद्धे तीर्थश्राद्धे तथैव च ॥७४॥
वैश्वदेवं हुनेदादौ ततः श्राद्धं समाचरेत् ।
स्वाहाकारेण हुत्वादौ स्वधाकारेण वै ततः ॥७५॥
एवं होमत्रयं कृत्वा ततः श्राद्धं समाचरेत् ।
वैश्वदेवविषये :—

हविष्यमन्नं घृतसङ्कुलं च
वह्नौ समांशं जुहुयात्त्रियामम् ।
द्वयोत्तरं त्रिजति(?) युग्मसंज्ञं
ओंकारमादौ प्रतिमन्त्रयुक्तम् ॥७६॥

रसयुक्तं हविष्यं स्याद्घृतयुक्तं तथो(थौ)दनम् ।
ब्राह्मणो वैश्वदेवार्थं कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥७७॥
अन्यस्य चेद्रसं त्यक्त्वा वैश्वदेवं करोति यः ।
देवेभ्यश्शापमाप्नोति दरिद्रो भवति ध्रुवम् ॥७८॥
सुपक्वं रससंयुक्तं राजान्नं घृतसंयुतम् ।
तद्धविष्यमिति ख्यातं सुप्रोक्ताखिलशारदाः ॥७९॥
पर्वद्वये समायोगे ।
श्राद्धान्ते वैश्वदेवार्थं पाकं कृत्वाप्रयत्नतः ॥८०॥

हुत्वा दत्वा च भुक्त्वा च द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।
देवानां च ऋषीणां च पितॄणां च विशेषतः ॥८१॥
पर्यायेण प्रदातव्यं श्राद्धकाले हविर्द्विजैः।
देवर्षिपितृतुष्ट्यर्थमेकपाको विधीयते ॥८२॥
पृथक्पाको न कर्तव्यः कुर्यश्चेत्पतितो भवेत्।
अकृत्वान्नं तु नैवेद्यं यः कुर्यात्किमिसङ्कुलम् ॥८३॥
होमं कृत्वा प्रयत्नेन वैश्वदेवं प्रकल्पयेत्।

इति विश्वामित्रस्मृतौ वैश्वदेव प्रकरणंनाम
सप्तमोऽध्यायः समाप्त।

वटुभार्यस्यौपासनादौ विशेषः ॥

तृशिरसा यस्मात्समुत्पद्यत ।
सैव लोके कथिता त्वसमा च सा ॥ ९ ॥
तैरा च सर्वधर्मसमाश्रया ।
मुद्भूतो यद्भिर्निखिलकर्मणाम् ॥ १० ॥
वेदजन्यः सर्वयागैकसाधकः ।
हि प्रधानाग्निः ब्राह्मणस्यमहात्मनः ॥ ११ ॥
मयः शिष्टाः दुर्बलास्तत्समान तु ।
दिककृत्यस्य तूष्णीका एव केवलम् ॥ १२ ॥
तिहोत्रे स्मार्तं कर्माखिलं चरेत् ।
न्यग्निषु चेत्तूष्णीकं कृत्स्नकर्म तत् ॥ १३ ॥
तन्त्राणि न भवेयुः कदाचन ।
यत्नेन सायं प्रातस्समाहितः ॥ १४ ॥
रखिलैः कुर्यादौपासनं बुधः ।
बलाग्नीनां नित्यमौपासनं न तत् ॥ १५ ॥
तु कर्तव्यं व्रीहिभिर्न तु तण्डुलैः ।
सनं तु ब्राह्मणेन विपश्चिता ॥ १६ ॥
कं नित्यं कर्तव्यमिति काश्यपः ।
ब्राह्मणस्य स्वजातो धर्मतो मताः ॥ १७ ॥
मयोश्चापि स्वजातावेव वै तथा ।
॥ १८ ॥

वैदिकानि प्रचालयेत् ।
प्रथमेष्वेव पञ्चसु ॥१९॥
विशेषोऽयमथोच्यते ।
मन्त्रवत्तद्विधानतः ॥२०॥
हुनेदिति मनोर्मतम् ।
प्रथमाग्नौ सुतेन वै ॥२१॥
ः तन्मन्त्रैरखिलैरपि ।
ष्णीकं ताः सु वाहुतीः ॥२२॥
तत्रस्युस्सर्वथैव हि ।
कियास्तन्त्राणि सूरिभिः ॥२३॥
न्यत्वेन चोदिताः ।
येऽस्यतेऽभवन् ॥२४॥
न् क्रमात्तूष्णीं तु निर्वपेत् ।
यज्ञोवं विधानतः ॥२५॥
चौपासनमुखान्यपि ।
दौपासनमात्रकम् ॥२६॥
स्थालीपाकं तथैव च ।
द्वा नैमित्तिकं भवेत् ॥२७॥
ग्नौ समन्वकम् ।
देवं यथारुचि ॥२८॥
रच तथाविधः ।
औपासनं सदा ॥२९॥

क्रमेणैनरकर्माणि वा व्यत्यासेन तचरेत्।
पृथक् नित्यं तथा कर्म्ममशक्तश्चेद्विचक्षणः ॥३०॥

॥ अनेकाग्निसंसर्गः ॥

सर्वेषामपि वह्नीनां संसर्गं विधिनाचरेत्।
संसर्गे तु कृते होमे चैको वह्निस्ततो भवेत् ॥३१॥
ततो होमे कृते तावन्मात्रेणैव समन्त्रकम्।
सर्वत्रापि हुतं सम्यग्भवत्येव न संशयः ॥३२॥
धर्मपत्नीवीतिहोत्रे प्रधानेऽस्मिन्यथाविधि।
क्रमेणैव स्थापयित्वा हुत्वामन्त्रैस्तुतैरति(पि) ॥३३॥
योजयेत्तेन विधिना नान्यावह्नौ कदाचन।
प्राधान्येन प्रधानाग्निं कृत्वा तस्मिन् परानशुचीन् ॥३४॥
योजयेत्समिताद्यैस्तु चरुधर्मेण धर्मवित्।
कदाचिन्मोहतो यो वा द्वितीयाद्यनलेषु चेत् ॥३५॥
संसर्गं कुरुते मूढः प्रधानमितरास्तु वा।
सर्वे नष्टाश्चमयास्ते लौकिकत्वं भजन्ति हि ॥३६॥
तद्दोपशमनायाथ पुनरग्निं यथाविधि।
प्रतिष्ठाप्याखिलैर्दारैरुपविश्य यथाक्रमम् ॥३७॥
प्रधानहोमं कुर्वीत लाजहोमं च पूर्ववत्।
पत्नीसंख्याविधानेन पश्चात्तत्सिद्धिरीरिता ॥३८॥
अन्यथा दोषमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
श्रौताग्नौ विद्यमाने स्वायतने तु तदान्वहम् ॥३९॥

धर्मपत्न्यास्सदैव हि ।
सद्योऽग्निर्लौकिको भवेत् ॥४०॥
ह्निस्तथा तस्मात्प्रयत्नतः ।
नः तत्कालोद्वहनं यथा ॥४१॥
ग्नात्तथा यत्नेन बोधयेत् ।
मोहादवशाद्दुःखपीडनैः ॥४२॥
यात्पुनस्सन्धानमाचरेत् ।
चेदभिभूतावशा भवेत् ॥४३॥
तो चेदग्निस्तु लौकिकः ।

तां च ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्यविचारः ॥
द्वितीया वयसाधिका ॥४४॥
ज्यैष्ठ्यमर्हति कर्मसु ।
सदा कानिष्ठ्यभागिनी ॥४५॥
आहुस्ते ब्रह्मवादिनः ।
वयसा कर्मशीलतः ॥४६॥
जातपुत्रो बहुश्रुतः ।
स्त्रीविरहितादपि ॥४७॥
: सोऽयमेवौरसः परः ।
द्वितीयादिसुतास्तु ते ॥४८॥
: श्रुतिस्मृत्यर्थदर्शिभिः ।
तृतीया तुर्यकादयः ॥४९॥

ज्येष्ठ्यकानिष्ठ्यधर्मेषु न्यूनाधिक्येष्वपि ध्रुवम् ।
धर्मपत्नीसुतेनैव स दत्तो भिन्नगोत्रजः ॥५०॥
तुर्यभागीति कथितः न द्वितीयादिसूनुना ।
विशेषोऽत्रापि भूपस्य पालको यस्त्वकिञ्चनः ॥५१॥
महाचार्यिप्रयन्धुत्वशुश्रूषाद्यनुवर्तनैः ।
श्रीमन्मामतितुष्टाभ्यां पितृभ्यां प्रीतिपूर्वकम् ॥५२॥

॥ दत्तपुत्रविषयः ॥

कृपया दत्तपुत्रः श्रीभूमिक्षेत्रादि भाग्यवान् ।
बहुलो जातपुत्रश्च शनैः कालेन वै तदा ॥५३॥
वृद्धिं तां परमां प्राप्तस्तत्सून्वोश्च ततः परम् ।
तुल्यो भागः प्रकथितो न विवादः कदात्र वै ॥५४॥
तत्रापि ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्ये मात्रीयात्मजहेतुतः ।
विवदन् चात्र यः पापी राष्ट्रात्सद्यस्स एव हि ॥५५॥
निर्वास्यस्ताडनीयश्च राज्ञा वै धर्मभीरुणा ।
एतेन सर्वदत्तानां पुत्राणामयमेव वै ॥५६॥
न्यायः प्रकथितस्सद्भिः एवं सत्यत्र केवलम् ।
एवं हि निश्चयो ज्ञेयः यो वा लोके त्वकिञ्चनः ॥५७॥
परश्रियं समुद्वीक्ष्य महिमानं च पूज्यताम् ।
तत्साम्यप्राप्तयेऽतीव कालमुद्वीक्ष्य केवलम् ॥५८॥
परापुत्रत्वदु.सञ्ज्ञो भूत्वा पश्चात्स्वयं शनैः ।
युवाभ्यां तनयं स्वीयं प्रदास्यामीति तौ चराम् ॥५९॥

समाश्रित्य च बन्धुभिः ।
तदीयैर्ज्ञातिसज्जनैः   ॥६०॥
अपुत्राभ्यां तदिच्छया ।
मोक्तस्तुर्यभागौरसेन वै ॥६१॥
हेयापुत्रस्तुतात्यशः ? ।
य नयेद्दत्तः पुनर्यदि ॥६२॥
समो वाभ्यधिकोऽथ वा ।
हितः पुष्कलात्मवान् ॥६३॥
धर्मैकवर्त्मना ।
माहयामास केवलम् ॥६४॥
न्ध्वादिजल्पितैः ।
रिक्थद्रव्यक्षमादिषु ? ॥६५॥
दौरसान्न तु तत्कृतौ ।
ष्ठोऽयं वयसा तराम् ॥६६॥
समोऽभ्यधिक एव वा ।
ज्यैष्ठ्यं कथंचन ॥६७॥
भागादिषु तादृशः ।
तादृशो यदि वा पुनः ॥६८॥
नताधनशेवधेः ।
नदानादिषु केवलम् ॥६९॥
तत्कर्तृत्वं तदीशताम् ।
ते किल केवलम् ॥७०॥

किं तु तज्जन्मजनकक्रियाभिः पूर्वसंविदैः ।
ग्राहकस्यावश्यकत्वनावश्यत्वमुखैः परैः ॥७१॥
अन्यैश्चरित्रैः सुस्पष्टं प्रभवेत्स्वयमेव वै ।
विद्वद्दत्तसुतोपायसंपादितमहाधने ॥७२॥
किमौरसस्य समता तुर्यता वेति वै जगुः ।
तत्राग्नु यन्धर्मपरा महान्तो ब्रह्मवादिनः ॥७३॥
दत्तः स्वप्रार्थनापूर्वप्राप्तपुत्रत्ववान्यदि ।
भिन्नगोत्रः पुनश्चापि तुर्यभाक् तु स एव हि ॥७४॥
औरसेन समोनायं स्वयमेवागतो यतः ।
पालकप्रार्थनाधिक्य या च सा शपथादिभिः ॥७५॥
प्रदानशपथप्रोक्तिमर्यादाधावयसूक्तिभिः ।
स्वगोत्रसद्गृहीतो यः प्रत्यासन्नोऽति सुन्दरः ॥७६॥
कापेयरहितस्सूनुः तत्समत्वेन कल्पितः ।
विद्वद्दत्तसुतोपायसंपादितमहाधने ॥७७॥
विभागेच्छा पालकौरसस्यजाता तदाकिल ।
संपादकेच्छनियता साम्यंशश्च विधीरितः ॥७८॥
अथौरसः प्रकथितः धर्मपत्नीसमुद्भवः ।
द्वितीयादिसुतास्सर्वे सूनुपुत्रादिशब्दिताः ॥७९॥
भवन्त्येवात्र सततमौरसत्वं न तेषु तु ।
एतादृशीयं मर्यादा धर्मपत्नीस्थितौ तदा ॥८०॥
द्वितीयादिसमुद्भूतपुत्राणामिति निर्णयः ।
धर्मपत्न्यां तु नष्टायां पश्चात्स्याधा विवाहिता ॥८१॥

सा चापि धर्मपत्नीत्वं प्राप्नोत्येवाचिरात्खलु।
तस्यामपि च नष्टायां पुनर्यास्याद्विवाहिता ॥८२॥
कुले समाने सा चापि धर्मपत्नीत्वमर्हति।
ज्येष्ठायां विद्यमानायां या द्वितीया विवाहिता ॥८३॥
पुत्रार्थं सापि काले न पुत्रिणी चेत्तथा भवेत्।
यथा न चेद्रोगिनी स्यात्प्राप्नोति पुत्रप्रसूः ॥८४॥
यत्नेन धर्मपत्नीत्वमनयाप्यंसुनिर्मलम्।
बहुकालसुता भावद्धर्मपत्नी द्वितीययोः ॥८५॥
पुत्रसङ्ग्रहणे जाते द्वितीया पुत्रिणी यदि।
तदापि तनयस्सोऽयं औरसो न भवेदपि ॥८६॥
आत्मजत्वं दत्तपुत्रे अङ्गादङ्गेति मन्त्रतः।
यतो निक्षिप्तवान् तातः परसंजातविग्रहे ॥८७॥
ततो द्वितीयासंभूतः तनयस्तादृशो न तु।
किं त्वयं कामजः कोऽपि सुतपुत्रादिवाच्यता ॥८८॥
तस्मिन् तिष्ठति यार्द्ध सा नौरसत्वं प्रतिष्ठति।
आत्मजत्वं च मुख्येन गौणत्वेनाखिलं [redacted] तत् ॥८९॥
प्रतिष्ठत्येव किं तेन नौरसेन समो भवेत्।
ज्येष्ठाद्वितीययोरारात्पित्रापुत्रकृताः परः ॥९०॥
उपनीतस्ततोज्येष्ठा मृता तस्याः क्रियां च सः।
अकरोद्दत्तपुत्रस्तु ततः कालेन सा परा ॥९१॥
पुत्रं प्रासूत सोऽयंचेद्दत्तोऽन्यकुलजोऽपि सन्।
तत्समांशी भवेदेव नात्रकार्या विचारणा ॥९२॥

ज्येष्ठाद्वितीययोराद्यजातेन च स्त्रीकृतः सुतः।
सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा कृतमौञ्ज्यादिसत्क्रियः ॥९३॥
मृता द्वितीया तस्यास्तु चकार प्रेतकृत्यकम्।
दत्तोऽयं स्वेन धर्मेण मृताया मातुरेव हि ॥९४॥
पश्चात्कालेन सा ज्येष्ठा प्रासूत यदि पुत्रकम्।
सोऽपिपुत्रोऽपि ते नैव तुल्य इत्येव सूरिभिः ॥९५॥
कथितो हि महाभागैः तस्मात्कर्म तथाविधम्।
तादृक्कर्मकरो मुख्यो भवत्येव तु तादृशं ॥९६॥
कर्म सद्भिः प्रकथितं तत्कर्तादुर्बलोऽप्ययम्।
प्रबलः सच एव स्यादौरसेन समोऽप्यतः ॥९७॥
एवं सत्यत्र भूयश्च निश्चयं वच्मिचैककम्।
दत्तपुत्राद्दत्तपुत्रसन्निधाने पितृक्रिया ॥९८॥
अदत्तपुत्रेणैव स्यात्कर्तव्याऽन्येन नैव हि।

॥ धर्मपत्न्याः प्राबल्यम् ॥

ज्येष्ठपत्न्येव सा पत्नी धर्मपत्न्यपि सा परा ॥९९॥
मुख्योवैदिककृत्यानां नान्या तत्सदृशी भवेत्।
धर्मपत्नीसमुद्भूत औरसश्चात्मजश्च सः ॥१००॥
वंशोद्धरणकर्तृत्वसर्वधर्मसमाश्रयः।
न तत्समः परस्त्वात्तु तदन्ये कामजाः स्मृताः ॥१०१॥
सर्वे धर्मा धर्मपत्न्याः सकाशात्संभवन्ति हि।
पाकयज्ञाः सप्त तेऽपि हविर्यज्ञास्तथैव च ॥१०२॥

सोमसंस्थास्सप्तसंस्थाः नित्यनैमित्तिकास्सवाः ।
सहस्रसंख्याः काम्याश्च यज्ञेष्टिपशुकादयः ॥१०३॥
अहीनाः क्रतवश्चापि सत्रास्ते त्रिविधाः पुनः ।
धर्मपत्न्यनलाज्जातास्तेषामौपासनस्य तु ॥१०४॥
प्रथमः कथितस्सद्भिः मुख्यं प्रवर उत्तमः ।
तत्समो विद्यते भूमौ मूलभूतश्चकारणम् ॥१०५॥
तादृशस्यास्य करणं धर्मपत्न्येव मुख्यभूः ।
तदधीना वह्नयः स्युस्तस्मात्सा सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥१०६॥
सीमासन्धिप्रदेशेषु न गच्छेदेव सर्वथा ।
नदीपाथः परंपारं न गच्छेदेव सर्वथा ॥१०७॥
यदि मोहेन सा गच्छेद्वह्नयस्तस्य एव वै ।
लौकिकत्वं प्राप्नुवन्ति तस्मात्तु सरितं नदीम् ॥१०८॥
महानदीमल्पनदीं यत्नान्नातिक्रमेत वै ।
नद्युत्तरणमात्रेण धर्मपत्न्या विशेषतः ॥१०९॥
पत्नीमात्रस्य सामान्यात्सजातेरपि केवलम् ।
पक्षयन्तो वह्नयस्ते मद्रयन्त्याशु तत्क्षणात् ॥११०॥
तस्मादल्पल्पसलिलकुल्यागोष्पदमात्रकाः ।
सरित्स्नानाय गन्तव्या न भवेत्तु तया किल ॥१११॥
यदि मोहेन सा पत्नी अत्यल्पसलिलामपि ।
कुल्यारूपामतिस्वल्पविशालां पादमात्रतः ॥११२
सुसन्तरेयां हेलार्थं लङ्घयेन्नतु सर्वदा ।
स्रवन्त्या अपि तादृश्याः परे पारेऽतिवाल्यतः ॥११३॥

अप्येकपादं पूर्वं वा निक्षिपेत्तावतैव हि।
पुनस्सन्धानमित्युक्तं वह्नेरस्येति तज्ज्ञगुः ॥११४॥
धर्मपत्न्यतिरिक्तानां तादृशो नियमो न हि।
संसर्गहोमात्परतः पत्नीनामिति निश्चयः ॥११५॥
संसर्गहोमो यावत्तु न कृतः स्यात्तदा पुनः।
तावत्तु तासां स्वामीनां अवनायायमेव वै ॥११६॥
नियमः कथितस्सद्भिः संसर्गात्परतः पुनः।
एतादृशस्तु नियमः त्वत्यन्तावश्यको न तु ॥११७॥
तस्माद्द्वितीयादि भार्या विशेषाणां च सानिराम्।
शरणं विश्रमस्थानं सर्ववैदिककर्मणः ॥११८॥
यदि सा स्यात्समीचीना धर्मपत्नी सती शिवा।
तया समुत्सारिताः स्युः सर्वाभार्याः परास्तुयाः ॥११९॥
यदि सा स्यादप्रगल्भा कर्माक्षा कर्मनाशनी।
धर्मस्य सिद्धिर्नास्यस्यादित्येवं धर्ममानसम् ॥१२०॥
अथापि तस्य यो वह्निः सदा रक्ष्यश्च सूक्ष्मतः।
स हि प्रधानो धर्मस्य मुख्यश्चोपासनः शिवः ॥१२१॥
तस्मिन्नेवौपासनेऽन्यपक्षयस्याग्न्यधर्मनाः।
संयोग्यासनदभावे तु द्वितीयाग्नावेऽल्पकं ॥१२२॥
स्थालीपाकं पितृश्राद्धं आधानं सोम एव वा।
कर्तुं न शक्यतेऽत्रैव इत्थं यथाग्नं भवेत् ॥१२३॥
धर्मभार्या धर्मपत्न्या दूरगायां कदाचन।
कुर्वीत सत्कर्मेषु मगग्न्यन्धानकर्मं तत् ॥१२४॥

कृत्वा तस्मिन्प्रीतिहोत्रे तानि कर्माणि चाचरेत् ।
द्वितीयाद्यनलेष्वेवं विद्यमानेषु चेत्पुनः ॥१२५॥
अमन्त्रकेण होतव्यं अन्यथा कर्म नश्यति ।
कंचित्कालं धर्मपत्नी स्वधर्मेणस्थिता ततः ॥१२६॥
चित्तव्यामोहरुक्क्रोधोऽपस्मारादिकुबुद्धिभिः ।
भर्तारमपि संलङ्घ्य भ्रष्टा तुच्छातिचारिणी ॥१२७॥
जाता यदि तदा तस्यास्तमपि धार्यं धर्मतः ।
विद्यमानं समिध्निप्रमथवात्मनि संस्थितम् ॥१२८॥
तत्तत्कालेषु संप्रमथाद्धेषु च तथा पुनः ।
पित्रोरच मातामह्योर्दर्शादिषु च कृत्स्नशः ॥१२९॥
नित्यनैमित्तिकेष्वेवं स्थालीपाकेषु मन्त्रवः ।
हुत्वाज्यं व्याहृतीभिर्वै सर्वचित्तप्रपूर्वकम् ॥१३०॥
तस्मिन्नेव प्रधानाग्नौ तानि कर्माणि चाचरेत् ।
अतिदुष्टेति या पत्नी त्यज्यते मन्त्रसंस्कृता ॥१३१॥
ते नैव वह्निना दाहं प्राप्यते घटताडनात् ।
तावत्तस्मिन् पावके तद्वर्तो पितुराब्दिकम् ॥१३२॥
स्थालीपाकं तथा धानं यद्वान्यदपि वैदिकम् ।
संप्राप्तमखिलं कुर्याद्विवाहो यदि वा पुनः ॥१३३॥
घटप्रहरणाभावे कर्तव्यत्वेन निश्चितः ।
तस्मिन्वह्नौ विद्यमाने समिध्यात्मनि वा सदा ॥१३४॥
विद्यमानं मन्त्रमुखात् पुनस्सन्धाय वा ततः ।
तस्मिन्वह्नौ विवाहोऽयं द्वितीयो मन्त्रपूर्वकः ॥१३५॥

कर्त्रन्तरेण विहितो न भेदानन्तरं पुनः।
तस्मिन्नेव च संसर्गहोमं कुर्याद्यथाविधि ॥१३६॥
द्वितीयमेवमिति चेत्स्यात् व्यापितनुद्भवः।
यद्विदिशायां न संस्थाप्यः आत्मगाश्रेय वै यतः ॥१३७॥
सोऽयमेव प्रधानोऽग्निः यजमानस्य केवलम्।
गार्हपत्यस्थापकः श्रीमान् ब्रह्मचर्यनिवारकः ॥१३८॥
प्रयत्नस्तेन कथितस्तस्मिन् सति ततः शिवे।
मुख्याभावात्मनि परे तमनादृत्य केवलम् ॥१३९॥
यद्धि गार्हपत्यं द्वितीयं पत्नीमद्वपत्नी जडः।
यदा पत्नी गता भ्रष्टा तदा सोऽपि विभावसुः ॥१४०॥
नष्ट एवेति निश्चित्य बुद्ध्वा शास्त्रवर्त्म तत्।
अज्ञानेनैव जडो जाड्यं प्राप्य दुष्टधिया वृथा ॥१४१॥
द्वितीयाग्निमुखाद्यत्कर्म भ्रान्त्या करोति चेत्।
व्यर्थमेव भवेन्नूनं फलदं न भवेदपि ॥१४२॥
श्राद्धादित्यागदोषाय पात्रमेव भवेद्ध्रुवम्।
सति तस्मिन्प्रधानाग्नौ वात्मन्यग्नाशुशुक्षणौ ॥१४३॥
द्वितीयाद्यनले लौकिकत्वेनैव समे स्थिते।
अमन्त्रेणैव होतव्ये समन्त्रेण कृतं तु चेत् ॥१४४॥
व्यत्यासेन कृतं तच्च तूष्णीकं प्रभविष्यति।
पित्रोः श्राद्धे तथा व्यर्थे जाते तत्परमेव वै ॥१४५॥
सद्यश्चण्डालता सा स्यादनिवार्या सुरैरपि।
पुनर्मोहेन तस्मिन्वै द्वितीयाद्यनलेऽल्पके ॥१४६॥

प्राधान्येनैव निश्चित्य तानि कर्माणि मोहतः ।
कृतानि चेद्वैदिकानि का वा तस्य गतिर्भवेत् ॥१४७॥
आदावेकां गतिं कृत्वा पूर्वाग्नेश्शास्त्रवर्त्मना ।
स्वीकारं वा नचेत्त्यागं पश्चात्कुर्यात्सवादिकम् ॥१४८॥
इत्येवं केचन प्राहुराचार्या ब्रह्मवादिनः ।
वस्तुतस्त्वत्र निष्कर्षं प्रवदामि सुखाय वै ॥१४९॥
आत्मस्थं वैदिकाग्निं तं भ्रष्टायै न कदाचन ।
दातुं वै शक्यते तूष्णीं दत्तश्चेदाशुशुक्षणिः ॥१५०॥
वाडवायै शपत्येनं घटध्वंसात्परं क्रुधा ।
समाणां पतिता भार्यां समुद्दिश्यैव पावकम् ॥१५१॥
शुद्धमात्मैकशरणं बुद्धिपूर्वं कथं शुचिम् ।
दातुमिच्छत्ययं मूढः मामित्येवं सुदुःखितः ॥१५२॥
भवत्ययं वायुसखा तस्मात्तां घटताडने ।
लौकिकेन दहेद्वैश्वानरेणैव न चान्यतः ॥१५३॥
पश्चात्पूर्वोत्थिते वह्नौ स्वात्मन्येवस्थितेशिवे ।
द्वितीयासंभवं वह्निं संसृज्य विधिवत्ततः ॥१५४॥
तस्मिन्नेवानले सर्वं कर्मजातं तु वैदिकम् ।
कुर्यादेव विधानेन न चेद्दोषो महान् भवेत् ॥१५५॥
दुश्चरित्रात्पूर्वमेव समुद्भूतस्सुतः शुभः ।
निर्दोष एव स्वीकार्यः सैव त्याज्या मनीषिभिः ॥१५६॥
तदूर्ध्वं चेत्समुद्भूतः तस्या गर्भात्तु शावकः ।
सतां माह्यस्तु न भवेदिति वेदान्तशासनम् ॥१५७॥

घटप्रहारात्परतः तत्प्रकृत्या च तां ततः।
दग्ध्वाश्राद्धं च निर्वर्त्य सकृदेव स्वयं ततः ॥१५८॥
शुद्धो भवेन्नचेत्तूष्णीं स्थितेऽस्मिन्वै तथा किल।
श्रौतस्मार्तादिकृत्यानां नाधिकारी भवेदयम् ॥१५९॥
भ्रष्टायां पतितायां वा स्वैरिण्यां यदि दैवतः।
जातायामपि तत्पत्न्यां त्यागं कुर्यादतन्द्रितः ॥१६०॥
शास्त्रमार्गेण विधिना तमग्निं परिगृह्य वै।
त्यक्त्वा तां विधिना पश्चाद्भूयो धर्मार्थमेव वै ॥१६१॥
आहरेद्विधिवद्दारान् अग्नींश्चैवाविलम्बयन्।
पश्चाग्नयो ब्राह्मणस्य पञ्चदाराश्चशास्त्रतः ॥१६२॥
स्वजातौ विहितास्सद्भिः तेषु दारेषुधर्मतः।
ऋतुगाम्येव भवेत्तादृशेन हि कर्मणा ॥१६३॥
अयं भवेद्ब्रह्मचारी सदा नित्यविशेषणः।
प्रजार्थं मैथुनं कुर्वन् ताभिस्संप्रार्थयन्नपि ॥१६४॥
पुनः कुर्वंस्तथा नापि च्यवते ब्रह्मचर्यतः।
ब्रह्मचर्यैकसंसिद्धिः पत्नीपञ्चकसंस्थितौ ॥१६५॥
सिध्यते ब्राह्मणस्यैव ऋतुकालाभिगामितः।
धर्मकामपूर्तिकरणाद्ब्रह्मचर्यं फलप्रदम् ॥१६६॥
सोऽ(ध)प्याग्नीनि नैनेति ते प्रादुर्भावयाग्निनः।
पञ्चानां करणं प्रोक्तं पञ्चानां स्यात्कलौ युगे ॥१६७॥
सम्पूर्णं सर्वस्यापि मांसेन श्राद्धसत्क्रिया।
अपवादको गवादकः भार्यान्तरपरिग्रहः ॥१६८॥

देवरादिसुतोत्पत्तिः विधवागर्भधारणम् ।
एवमादीनि चान्यानि कर्माणि न कलौ क्षितौ ॥१६९॥

॥ द्वादशविधपुत्राः ॥

प्रशस्तानीति नोचुर्हि तथा द्वादशपुत्रकान् ।
तत्रादौ क्षेत्रजो दुष्टः स्वपत्न्यामन्यसंभवः ॥१७०॥
सगोत्रेणेतरेणापि तावुभौ शास्त्रनिन्दितौ ।
स्वस्मिन्व्याध्यादिना ग्रस्ते सति सान्येन सङ्गता ॥१७१॥
येन केनचिदज्ञाता गर्भं धृत्वा रहस्यति ।
प्रसूते यं सुतं सोऽयं सुतो गूढजनामकः ॥१७२॥
पितृमात्रेण संज्ञातजननो व्यभिचारजः ।
पितृणां सर्वनरकप्रदः पापालयः खलः ॥१७३॥
वन्ध्यवन्ध्युप्रभेदेन द्विविधोऽयं च कथ्यते ।
या विवाहात्पूर्वमेव जारसङ्गतितः किल ॥१७४॥
गर्भधृतेऽथ तद्विज्ञैर्ज्ञात्वा सत्वरमेव वै ।
विवाहितात्पितृभ्यां हि दत्वा वै यस्य कस्यचित् ॥१७५॥
अकीर्त्यैकभयात्सद्यः सा प्रसूते तु यं सुतम् ।
कानीन इति विख्यातः पुनश्चायं तथा परः ॥१७६॥
प्रकारान्तरतः प्रोक्तः सूते कन्यैव यं सुतम् ।
सोऽयं तथाविधस्यापि अधिकस्तेन दुर्जनैः ॥१७७॥
तन्माता पतिता पश्चाद्यस्य कस्य विवाहिता ।
कुलघ्नी सच्चरित्रेव गुह्यपापातिनिन्दिता ॥१७८॥

गुप्तेन येनकेनापि भर्तृरूपेण सङ्गता ।
तत्रापापतिभावं च पश्यता धारयन्त्यपि ॥१७९॥
तं चापि तनयं स्वीकृत्य च ततः पुनः ।
पालयन्त्यपि निर्दुष्टपुत्रवत्पृथिवीतले ॥१८०॥
मान्यासु च सतीष्वेवाहं काचिदिति वादिनी ।
स्वसुतानां सत्कुलेषु बहुकाले गते शनैः ॥१८१॥
दूरदेशस्थितैर्बन्धुजातैर्बन्ध्यमायया ।
विद्यमानातिचपला तेन पुत्रेण सत्कुलान् ॥१८२॥
महात्मनो नाशयन्ती तत्सुतस्तादृशो ह्ययम् ।
कानीनस्त्वपरः पापी निन्दितो ब्राह्मणोत्तमैः ॥१८३॥
अक्षतायां क्षतायां च जातौ···भंगौ भवौ ।
तौ चापि निन्दितौ पापौ पुत्रबाह्यौ प्रकीर्तितौ ॥१८४॥
अकीर्तिकारकौ बन्धुजनानां दूषितौ खलौ ।
अतिनैच्यं गतौ हेयौ धर्मशास्त्रप्रदूषितौ ॥१८५॥
पितृदोषैकजननौ न योग्यौ यस्य कस्यचित् ।

॥ दत्तस्यौरससमभागः ॥

दत्तः पितृभ्यां दत्ताख्यः सापेक्षाभ्यां च सद्विधः ।
तथैव निरपेक्षाभ्यां तत्राद्यस्तु तुरीयभाक् ।
दत्तो यो निरपेक्षाभ्यां सकाशात्पालकस्य वै ॥१८६॥
सोऽयं वै समभागी स्यात्पश्चाज्जातौ रसेन वै ।
दम्पत्योरेव तद्दानेऽधिकारस्तत्प्रतिग्रहे ॥१८७॥

दम्पत्योरेव नान्यस्य यतेर्वा ब्रह्मचारिणः।
अकलत्रस्थतत्सामीप्याकलत्रस्य वा तथा ॥१८८॥
विधवाया नाधिकारः प्रदानग्रहणेऽपि वा।
वानप्रस्थस्याशुचेर्वानुपनीतेः कदाचन ॥१८९॥
तद्वत्सूतकिनश्चापि व्रतिनोनाधिकारता।
विक्रीतः कथितश्चैवं पितृभ्यां तादृशैरपि ॥१९०॥
निर्वाहकेण ज्येष्ठेन पितृव्येण तथैव च।
पितामहेन तत्पत्न्या तथा मातामहेन च ॥१९१॥
स्वयं क्रीतश्च कथितः पुत्रः कृत्रिमसंज्ञिकः।
स्वयंदत्तस्तु दत्तात्मा स्वपोषणपरः खलः ॥१९२॥
सहोढजस्तथाप्यन्यः पुत्रः शास्त्रैकनिन्दितः।
गर्भेविप्रोन्यबहेतुः पितॄणां नरकप्रदः ॥१९३॥
स कानीनः पुनरपि स्वगोत्रेण समुद्भवः।
अतिपापी स चण्डालादधिकोऽप्रचाच्य एव सः ॥१९४॥
स्मरणीयो न वाच्योऽयं वंशमङ्गलकारकः।
अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितस्सुतः ॥१९५॥
उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः।
ईन्धनयज्ञैकनिलयः पुत्रोऽयं कश्चनस्मृतः ॥१९६॥
पितृभ्यां यस्समुत्सृष्टः महादोषसमुद्भवः।
ग्राहकेण स्वीकृतो यः सोपविद्ध ईरितः ॥१९७॥
त एते निखिलाः पुत्राः सूत्रकारैर्महात्मभिः।
दुःखादनङ्गीकृता स्युः महान्यायैकसंभवाः ॥१९८॥

चरमस्त्वपविद्धस्तु कृताकृत इतीरितः।
तस्माद्द्वावेव तौ प्रोक्तौ तनयौ शास्त्रविश्रुतौ ॥१९९॥
नरकोत्तारकौ सद्यो जन्मनैव न कर्मणा।
आत्मजश्चापिदौहित्रः समानौ पैतृकेऽनिशम् ॥२००॥
कदाचिदधिकश्चापि दौहित्रस्तनयादति।
दौहित्रात्तनयस्तद्वदधिकः केषु कर्मसु ॥२०१॥
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः।
पुत्रभावोयस्य वा स्यात्कदाचित्केन कारणात् ॥२०२॥
पुत्रसङ्ग्रहणं सद्यः कर्तुमाशु न शक्यते।
चिरकालप्रतीक्षावौ तत्पित्रोः कामपूरणम् ॥२०३॥
तत्प्रार्थितप्रदानस्य शपथोक्त्यादिकं ततः।
जनानां पुरतो होमः पश्चाच्छपथवाचनम् ॥२०४॥
तस्यैतस्य तु कृत्स्नस्य तत्तत्काले शनैः शनैः।
अत्यन्तदुःखं गुरुतरमनुभूय स भार्यकः ॥२०५॥
तं सङ्गृह्य विधानेन जातकर्मादिकं च तत्।
कृत्वोत्सव तु भूय तस्य मौञ्ज्यादिमुत्सवम् ॥२०६॥
पश्चाज्जाते धर्मपत्न्यां तनये या तथैव वै।
द्वितीयायां तृतीयायां स्वकीयोत्पत्तिमात्रतः ॥२०७॥
पूर्वं सङ्गृहीतं तं कुमारं शुद्धचेतसम्।
अपि तूष्णीं द्वेष्टि किल तस्मादन्यमुतं ह्यदात् ॥२०८॥
सङ्ग्रहश्चोभयत्रापि भ्रष्टं कृत्वा स्वयं ततः।
अत्यन्तपातकावाममिथ्यावाक्यविशेषकान् ॥२०९॥

तमुद्दिश्य दिवारात्रं प्रलपन् दुर्मनाः परम् ।
राजाज्ञापालनभूतश्च सज्जनैरतिदूषितः ॥२१०॥
संलंघयन् मित्रवाक्यानि बन्धुवाक्यानि भूरिशः ।
तृणीकुर्वन् दुष्टवाक्यसहस्रेणायमल्पकः ॥२११॥
तुच्छो दृश्यः प्रभवति जनमध्ये च पुनः पुनः ।
ताडितो धिक्कृतो राजकीयैः पुंभिः प्रदूषितः ॥२१२॥
हेयभूतश्च भवति तस्मात्पुत्रस्य सङ्ग्रहम् ।
प्रकुर्वन्त्येव विद्वांसः पुत्राभावे तु मुख्यतः ॥२१३॥
दौहित्रे सति सोऽयं स्यात्पुत्रतुल्यस्ततोऽधिकः ।
न तस्य होमः कर्तव्यो ग्रहणं न च मन्त्रतः ॥२१४॥
क्रियाः काश्चिन्न सन्त्यत्र जातकर्मादिकाः पराः ।
तनयोत्पत्तिसमयेस्वर्णदानादिकं परम् ॥२१५॥
यद्यत्तदेतदखिलं यत्नसाध्यं न विद्यते ।
स वा नूनं कुते किञ्चित् पुनरुत्पत्तिबाधके ॥२१६॥
अस्यैव पुरतो दैवात्पुत्रे जातेऽथवा तदा ।
जातं तमेनं दौहित्रो मातुलो मम संप्रति ॥२१७॥
संजातइति सन्तोषपूर्वकं तोषयिष्यति ।
तयोश्चित्तं स्वबन्धूनां पश्चाज्जातोऽप्ययं शिशुः ॥२१८॥
संजातमात्रः परमः सर्वप्राणेन सन्ततम् ।
प्रपालयति स्वप्राणाधिकतो मानयन्नति ॥२१९॥
मानितः पालितः सम्यक्तेनैवं सति सोऽप्यति ।
प्रीत्यैव सततं [illegible] ॥

१

भवमस्त्वपि तदस्तु कृत्वाऽत्र द्विजोत्तमः।
मातामहस्य तौ पौत्रौ तनयौ श्राद्धविद्युतौ ॥१९९॥
नरकोत्तारकौ यस्मा जन्मनैव न कर्मणा।
अत्मजस्यापि दौहित्रः समानो पैतृकं निरन् ॥२००॥
कदाचिदभिकमापि दौहित्रस्तनयादपि।
दौहित्रात्तनयस्त्वादरधिकः पैतृ कर्मसु ॥२०१॥
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः।
पुत्रभावोयस्य वा स्यात्कदाचित्केन कारणात् ॥२०२॥
पुत्रसङ्ग्रहणं सद्यः कर्तुमाशु न शक्यते।
चिरकालप्रतीक्षादौ तत्स्त्रियोः कामपूरणम् ॥२०३॥
तत्प्रार्थितप्रदानाय शपथोत्तयादिकं ततः।
जनानां पुरतो होमः पश्चाच्छपथवाचनम् ॥२०४॥
तस्यैतस्य तु कृत्स्नस्य तत्तत्काले शनैः शनैः।
अत्यन्तदुःखं सुक्रूरमनुभूय स भार्यकः ॥२०५॥
तं सङ्गृह्य विधानेन जातकर्मादिकं च तत्।
कृत्वोत्सव तु भूय तस्य मौञ्ज्यादिपुत्सवम् ॥२०६॥
पश्चाज्जाते धर्मपत्न्यां तनये वा तदैव वै।
द्वितीयायां तृतीयायां स्वकीयोत्पत्तिमात्रतः ॥२०७॥
पूर्वकालगृहीतं तं कुमारं शुद्धचेतसम्।
अपि तूष्णीं द्वेष्टि किल तस्मादन्यसुतं हठात् ॥२०८॥
सङ्गृह्यचोभयत्रापि भ्रष्टं कृत्वा स्वयं ततः।
अत्यन्तपातकावासमिथ्यावाक्यविशेषकान् ॥२०९॥

तमुद्दिश्यदिवारात्रं प्रलपन् दुर्मनाः परम् ।
राजाज्ञापात्रभूतश्च सज्जनैरतिदूषितः ॥२१०॥
संलंघयन् मित्रवाक्यानि बन्धुवाक्यानि भूरिशः ।
तृणीकुर्वन् दुष्टवाक्यसहस्रेणायमल्पकः ॥२११॥
तुच्छो दृष्यः प्रभवति तन्मध्ये च पुनः पुनः ।
ताडितो धिक्कृतो राजकीयैः पुंभिः प्रदूषितः ॥२१२॥
हेयभूतश्च भवति तस्मात्पुत्रस्य संग्रहम् ।
प्रकुर्वन्त्येव विद्वांसः पुत्राभावे तु मुख्यतः ॥२१३॥
दौहित्रे सति सोऽयं स्यात्पुत्रतुल्यस्ततोऽधिकः ।
न तस्य होमः कर्तव्यो ग्रहणं न च मन्त्रतः ॥२१४॥
क्रियाः काश्चिन्न सन्त्यत्र जातकर्मादिकाः पराः ।
तनयोत्पत्तिसमयेस्वर्णदानादिकं परम् ॥२१५॥
यत्तत्तदेतदखिलं यत्नसाध्यं न विद्यते ।
स वा नूनं कृते किञ्चित् पुनस्त्वतिवर्धके ॥२१६॥
अस्यैव पुरतो दैवात्पुत्रे जातेऽथवा वरा ।
जातं तमेनं दौहित्रो मातुलो मम संप्रति ॥२१७॥
संजातइति सन्तोषपूर्वकं सोपयिष्यति ।
तयोरिथत्वं स्वबन्धूना पश्चाज्जातोऽप्ययं शिशुः ॥२१८॥
संजातमात्रः परमः सर्वप्राणेन सन्ततम् ।
प्रपालयति स्वमाताधिकतो मानयन्नति ॥२१९॥
मानितः पालितः सम्यक्तेनैवं सति सोऽप्यति ।
प्रीत्यैव सततं पश्यन्प्रतिष्ठत्येव सर्वदा ॥२२०॥

तस्माद्दौहित्रतुल्यो नास्ति पुत्रो जगत्त्रये।

॥ दौहित्रेसति पुत्रप्रतिग्रहाभावः ॥

दौहित्रोत्पत्तिमात्रेण तत्कुलद्वयसंभवाः ॥२२१॥
उत्तारितास्सद्य एव भवेयुर्नात्र संशयः।
तामभ्यनुज्ञां भार्यायाः पुत्रसङ्ग्रहहेतवे ॥२२२॥
न दद्यात्सति दौहित्रे म्रियमाणः स्वयंपतिः।
आपन्निवारकस्सोऽयं आपत्सापुत्रशून्यता ॥२२३॥
एक एव भवेन्नूनं दुहितातनयोऽखिलैः।
दौहित्रे सति पुत्रस्य ग्रहणं न समाचरेत् ॥२२४॥
अजातपुत्रस्तेनैव पुत्र्ययं धर्मतो मतः।
अविभक्तो ज्ञातिभिर्यस्त्वपुत्रो दैवयोगतः ॥२२५॥
मृतश्चेत्तस्य ते सर्वे तन्मुखेनैव सत्क्रियाः।
मन्त्रैः कारयितव्याः स्युरन्यथा पापभागिनः ॥२२६॥
ज्ञातयः प्रभवन्त्येव तत्क्रियामात्रतोऽस्य वै।
तद्द्रव्यभाक्त्वं न भवेत् अविभक्ता यतस्तु ते ॥२२७॥
विभक्तास्ते खलु तदा भवेयुर्यदि तेन वै।
एवं मृते न चेत्तेषां ज्ञातीनां तु न किञ्चन ॥२२८॥
लेशमात्रं हि किमपि धर्मतो न भवेद्ध्रुवम्।
द्रव्यं मृतस्य यद्वा तत्सर्वं पुत्रीसुतस्य वै ॥२२९॥
स्वीयमेव भवेन्नूनं तस्माज्जातेऽखिला भुवि।
दौहित्रे भग्नमनसः नष्टकामा गतश्रियः ॥२३०॥

भवन्ति किल भूयोऽपि केचिद्दुष्टजनास्तराम् ।
परद्रव्यापहर्तारः नित्यचौर्यैकवृत्तयः ॥२३१॥
कथं ज्ञातेर्विभक्तस्य धनं तूष्णीं दुराशयाः ।
कथा केन हरिष्याम इतिचिन्ता समन्विताः ॥२३२॥
अनृतानि च वाक्यानि प्रलपन्तस्ततस्ततः ।
सदा मद्द्वेषिणोऽतीव वर्तन्ते पापिनो जडाः ॥२३३॥
तानित्थं धार्मिको राजा विचार्य शठबुद्धिकान् ।
धर्मेण चारमुखतः तथा व्याभाषणादिना ॥२३४॥
तेषां परेषां विदुषां धर्मज्ञानां मिथोक्तितः ।
विचार सूक्ष्मयाबुद्ध्या समालोच्य ततः परम ॥२३५॥
वीक्षत्य दण्डयित्वा च व्रीलत्य च सदा सदा ।
राष्ट्रात्प्रवासयेद्दुष्टान सन्तस्तान्यक्प्रपूजयेत् ॥२३६॥
दानमानादिना नित्यं तेनास्य सुमहात्मनः ।
भूतिर्यशो भगभ्रायुर्वर्धन्तेऽन्वहमञ्जसा ॥२३७॥
अपुत्रधनमात्रे स्युर्ज्ञातयो निलमेव वै ।
दौहित्राजनने यस्मात्तु यस्या भवन्ति वै ॥२३८॥
दौहित्रजनने सद्यो नष्टकामास्तथा पुनः ।
निराशानित्यदुःखाश्च फलमलं प्राप्नुवन्ति च ॥२३९॥
श्वभूश्वशुरयोः पित्रोः पत्यभावे ततः पुनः ।
अभ्यनुज्ञामदानेऽस्या अपुत्रिण्या विपद्यपि ॥२४०॥
सकृच्छते कदाचित्तु पुत्रमहणकर्मणः ।
अधिकारो मनुप्रोक्तः आपत्स्वपुत्रयन्यथा ॥२४१॥

आपत्निवारकस्सोऽयं दौहित्रस्तस्य चोदितः।
विधवा या पितृभ्रातृकृता पुत्रमहे तु या ॥२४२॥
अभ्यनुज्ञा ह्यभिमता चेद्बन्धूनां च ग्रामिणाम्।
जनानामपि शिष्याणां श्रोतृणामपि कृत्स्नशः ॥२४३॥
युगपद्येनैककण्ठ्याच्च तथास्त्विति मनोर्मतम्।
तदा तु ग्रहणं ज्ञातेनान्यस्य तु कथंचन ॥२४४॥
कदाचिदपि पुत्रस्य ग्रहणे समुपस्थिते।
अपुत्रिणोस्तदा भ्रातृमध्येज्येष्ठान्त्ययोः किल ॥२४५॥
एकस्य ग्रहणं कार्यं धर्मतो यस्य कस्य वा।
ग्रहणं त्वेकपुत्रस्य सर्वेषामप्यसम्मतम् ॥२४६॥
न ज्येष्ठस्य कनिष्ठस्य पङ्गोर्मूकस्यरोगिणः।
अन्धस्य बधिरस्यापि क्लीबस्य श्वित्रिणोऽपि वा ॥२४७॥
ग्रहणं नैव कुर्वीत कुर्याद्यदि वृथैव सः।
औरसैरपि तैः पुत्रैः पङ्गुमूकादिभिर्जडैः ॥२४८॥
निरंशैर्वेदमन्त्रैकन (?) धिकारनिदानकैः।
निष्प्रयोजनकैः तुच्छैः नाममात्रैकभाजनैः ॥२४९॥
भरणीयैरन्नपानप्रदानमुखतस्तराम्।
प्रयोजनं किमप्यस्ति तदुत्पन्नैः कथंचन ॥२५०॥
वर्गत्रयात्परं तेषां मूकाद्यौरससन्ततौ।
भवेद्ब्राह्मण्यपौष्कल्यं तत्पूर्वं तस्य सर्वथा ॥२५१॥
मन्त्राद्युच्चारणाभावात्तत्क्रियाणां च लोपतः।
तथा तावत्प्रकथितं धर्मज्ञैस्तैर्महात्मभिः ॥२५२॥

ातिमत्या कृता बन्धुसामन्तजनसम्मता।
ा चेद्दत्तं कृतानुज्ञा पुत्रग्रहणहेतवे ॥२५३॥
ल्स्येवेति धर्मज्ञा न चेत्तु न तु सिध्यति।
ातिमत्या कृतं यत्तु पुत्रसङ्ग्रहणादिकम् ॥२५४॥
ादानक्रयाद्येवं वैश्वस्तं तत्तु सिध्यति।
र्वज्ञातिमतं यत्तद्दानं विश्वस्तया कृतम् ॥२५५॥
ारं धाराकृतं चेत्तु सिध्यत्यत्र न चेन्न तु।
ानकालनिषिद्धं यद्दानं धारं रहः कृतम् ॥२५६॥
ाान्तरकृतं चापि न सिध्यत्येव सर्वथा।
ण्डान्यदेशरचितभूमिदानं महात्मभिः ॥२५७॥
च्छौर्यकृत्यमित्येव निश्चितं शास्त्रवर्त्मना।
पुत्रपुत्रग्रहणं दौहित्राजनने भवेत् ॥२५८॥
ौहित्रजननादूर्ध्वं तदप्रामाणिकं भवेत्।
ावन्तूणां विभक्तानां दौहित्रोत्पत्तियोग्यता ॥२५९॥
ावत्तु तस्य स्वीकारे योग्यतापि न जायते।
ातेन्द्रियाणां दौर्बल्ये दौहित्रे सति सङ्कटे ॥२६०॥
भयथावसुसन्देहे पुत्रग्रहणमिष्यते।
कस्य पञ्चपेष्वस्य ग्रहणं ज्येष्ठसर्वयोः ॥२६१॥
विहितो यस्य कस्यापि मध्य एकस्य सङ्ग्रहः।
र तत्र ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्यनियमो मनुना स्मृतः ॥२६२॥
ग्रहणं त्रिषु मध्यस्य त्रयाणां पञ्चसु स्मृतम्।
त्रयाणां षट्सु सर्वो वा ज्येष्ठो वा नियमो न हि ॥२६३॥

त्रिषु पञ्चसु षट्स्वेवं भ्रातृष्वाद्यान्त्ययोश्च न।
मध्य एकः त्रयश्चत्वारः स्युरत्रेति वै जगुः ॥२६४॥

सद्ग्राह्येष्वाद्य एकः स्याद्ग्राह्यो ज्येष्ठो द्वितीयकः।
तृतीयो वा विधानेन न द्वौ सर्वात्मना स्मृतौ ॥२६५॥

आद्यान्त्यावेव संत्याज्यौ बहुभ्रातृषु वस्तुतौ।
मध्ये ज्येष्ठद्वितीयादि नियमो नेति घोषिरे ॥२६६॥

यदि मोहाज्ज्येष्ठपुत्रो दत्तस्त्याद्यः ततः स्वयम्।
कृतमौञ्जीविवाहोऽपि जनकस्य सुतो भवेत् ॥२६७॥

न पालकक्रियायोग्यो न गृह्णीयाद्दत्तस्त्विमम्।
यः कृतो दत्तहोमस्स तूष्णीकं स्यान्न संशयः ॥२६८॥

दत्तोऽयं वालिशो भ्रष्टो ग्राहकस्य सुतो न तु।
जनकस्य सुतस्सोऽयं इत्युक्तं तं प्रवच्म्यपि ॥२६९॥

न कर्मयोग्यस्तस्यापि किं तु तूष्णीं ततः परम्।
क्रयक्रीतद्रव्यसमः तृणकाष्ठमृदादिभिः ॥२७०॥

तुलितो न क्रियायोग्यो यतस्त्यक्तश्च तेन वै।
अनेकजायासञ्जातपुत्रानेकस्य चेदपि ॥२७१॥

जायानामग्रजस्त्याज्यः कनिष्ठोऽपि तथैव हि।
ज्येष्ठान्त्ययोस्तु ये मध्याः संजातास्तनयास्तु ते ॥२७२॥

ग्राह्यास्तत्र विशेषेण ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्यसंभवः।
नियमोनेति यत्र स्यादिति सर्वमतं वराम् ॥२७३॥

॥ एकपुत्रस्य स्वीकरणनिषेधः ॥

यद्येकपुत्रो दत्तश्चेदात्मानं ग्राहकं ततम् ।
मातृद्वयं तत्क्षणेन नरके पातयिष्यति ॥२७४॥
उभयोस्तातयोश्चापि जनन्योरपि कर्मणि ।
नाधिकारी भवेत्तस्मादुभयभ्रष्ट ईरितः ॥२७५॥
प्रदानसमये स्वस्य सन्तु भ्रातृषु तत्परम् ।
नष्टेषु तेषु चेदवशिष्टो यदि भवेदयम् ॥२७६॥
उभयोः कर्मकर्ता स्यात्तदा तद्रिक्थभाग्यपि ।
एकपुत्रोऽहमित्येवं वदन् दत्तश्च साम्प्रतम् ॥२७७॥
सभायां व्यवहारेषु बहिष्कार्यो विचक्षणैः ।
विधवासङ्गृहीतोऽहमिति जल्पन् सभासु चेत् ॥२७८॥
(च)क्षपेटिकाप्रदानेन स्त्री(भिक्)ःकार्यस्सदा एव वै ।
विधुरेण प्रदत्तोऽस्मि दूरभार्येण वै सदा ॥२७९॥
तथैव सङ्गृहीतोऽहं वदन्नेवं तु निर्भयम् ।
स दूरीकरणीयः स्यान्नीरवस्तु विशेषतः ॥२८०॥
वर्णिना यतिनापस्तु दत्तोऽहं मातृमात्रतः ।
पितृमात्रेण दत्तोऽस्मि सङ्गृहीतोऽहमित्यपि ॥२८१॥
सद्भिस्सभासु विवदन् दुश्चरित्रः परस्वहृत् ।
निर्लज्जया त्यङ्गहीनः सज्जनाकृतिमावहन् ॥२८२॥
पूर्वोत्तरविरुद्धं तद्विवदन्प्रलपन्नपि ।
तस्य तत्प्रविवादेषु यो वै तं निग्रहं शनैः ॥२८३॥

विराधान्विविभाग सम्यक् संगृह्यैव ततः पुनः।
प्रदूष्येति गरहस्य देशात्तु बाडवेऽपि ॥२८४॥
दुष्टनिग्रहमात्रेण तद्देशस्य महीपतेः।
तत्रस्थानां च सर्वेषां सर्वथा महद्भयेत् ॥२८५॥
ज्येष्ठोऽहमेकतनयः पितृभ्यां पुनरेव वै।
दत्तोऽन्याभ्यामिति च वै वियत्नपररिक्थके ॥२८६॥
पुत्रत्वहेतुना सोऽयं प्रसिद्धस्तस्करो मतः।
कुतस्तथेति सन्देहे तत्रसम्यङ्निरूप्यते ॥२८७॥
न दानार्हो ज्येष्ठपुत्रः कदाचिदपि वा भवेत्।
तत्रापि चैकरसुतरां तत्क्रियानधिकार्यपि ॥२८८॥
एवमेव परे चापि तनयाः पररिक्थके।
विवादमतिकुर्वन्तो दौहित्रादिषु तासु च ॥२८९॥

॥ विधवास्वीकृतपुत्र (दण्डं) ॥

तनयासु विभक्तानां प्रत्तासु विधवासु च।
दत्तपुत्रोऽहमस्मीति सपिण्डोऽहं सगोत्र्यति ॥२९०॥
सम्बन्धो भवतां को वा भिन्नगोत्रिधनेऽति वै।
प्रलपन्तः केन दत्त इत्युक्ते निर्भयान्विताः ॥२९१॥
निर्लज्जा मातृदत्ताः स्मः विश्वस्ताः स्वीकृताः खराः।
अभ्यनुज्ञाकृतस्वीकारा वै तद्भर्तृवाक्यतः ॥२९२॥
वयं तद्गोत्रसंभूता अस्माकं तद्धनं महत्।
न्यायेन निखिलं स्याद्धि सुतादौहित्रयोः कथम् ॥२९३॥

स्थितयोः परगोत्रत्वे तद्वनं तु भविष्यति ।
इति शास्त्रविरुद्धानि वाक्यान्यन्यानि वा पुनः ॥२६४॥
सभासु वै प्रलपतो राष्ट्रोदेशात्प्रवासयेत् ।
पुत्रभिन्नात्स्वगोत्रस्थसाहस्त्रकात्परम् ॥२६५॥
अधिको दुहितासूनुः सर्वशास्त्रैस्तथोदितः ।
कुतस्तथेति चोक्ते तु प्रवदामि च तत्स्फु(त्स्फु)टम् ॥२६६॥

॥ दौहित्रप्रशंसा ॥

दुहिता(तृ)तनयो लोके सर्वेषां सर्वकर्मसु ।
नित्यं मातामहादीनां तत्पत्नीनां च पुत्रवत् ॥२६७॥
करोति हि स्वपितृभिस्समत्वेन समन्वयः ।
दर्शादीन्यपि नित्यानि तथा नैमित्तिकान्यपि ॥२६८॥
सर्वश्राद्धानि काम्यानि मासिश्राद्धादिकान्यपि ।
श्राद्धप्रतिनिधित्वेन क्रियमाणेषु कर्मसु ॥२६९॥
तर्पणेष्वपि सर्वेषु नित्यस्नानादिकर्मसु ।
पितृवर्गसमत्वेन वर्गं मातामहस्य वै ॥३००॥
मातृवर्गेण तुलितं तत्पत्नीनां त्रिकं तथा ।
को वा सपिण्डो यजते को वा भ्राता च तत्समः ॥३०१॥
स्वसुतः तस्य पौत्रो वा कदाचित्तस्य कर्मणि ।
कृते कार्यवशात्पश्चात्प्रतिसंवत्सरं ततः ॥३०२॥
लौकिकाग्नौ श्राद्धमात्रं तद्दिने स्वागते तदा ।
श्राद्धमात्रं तु तत्पत्न्याः अपि तूष्णीं करोति हि ॥३०३॥

अकृते वा तस्य दोषः शास्त्रतो नास्ति केवलम् ।
मृताद्विशेषलाभश्चैतस्य तेन पश्यताम् ॥३०४॥
सता चित्तसमाधानकार्याय किल तत्तथा ।
अकीर्तिभीत्या न प्रीत्या तथाप्य करणं पम् ॥३०५॥
दौहित्रमात्रस्य चैल्लोके सर्वत्र केवलम् ।
तत्कर्मण्यकृतेऽनेन मुख्यकर्त्रा कृतेऽपि च ॥३०६॥
सर्वशास्त्रोक्तमार्गेण यथा पुत्रस्य सन्ततम् ।
सर्वश्राद्धैककरणमौपासनशुचौ हितः ॥३०७॥
तथास्यापि स्मृतं तूष्णीं तदीयव्रविपादिके ।
स्वल्पेकस्मिन्नभावेऽपि किञ्चिद्वा विहितेन वै ॥३०८॥
तदीयसर्वश्राद्धानि गयातीर्थाष्टकादिषु ।
नान्दीदधिघृतारण्यकक्षेष्विभतृणादिषु ॥३०९॥
तान्यजन्नेव विधिना तत्पत्नीरपि तत्समम् ।
वर्तते राजते तस्मादपिकिञ्चिद्धनं विना ॥३१०॥
तमजानन्नपि तदा शास्त्रमर्यादया वशात् ।
तत्किं वेत्यविचार्यैव तादृशानेन कः समः ॥३११॥
कर्मकर्ता भकथितो नैतेनान्यो महीतले ।
तुलितस्तनयस्सद्भिर्विचार्य च पुनः पुनः ॥३१२॥
नास्ति सूनोश्शतगुणो दौहित्रो गयनामकः ।
खड्गपात्रं तिलादर्भास्तथा नैपालकम्बलः ॥३१३॥
गोधूमाः कण्टकिफलं माषामुद्गायवा जलम् ।
गव्यं वद्रजतं गाङ्गं शिवनिर्माल्यमच्युतम् ॥३१४॥

कुतपः श्रोत्रियो वीरोऽन्नं णोमद्य सनातनम् ।
उपमारहितास्सर्वे त एते पितृवल्लभाः ॥३१५॥

पुत्रदत्ताच्छतगुणा विनापात्त्रलयो नृणाम् ।
वदौहित्रेणसंत्यक्ता अक्षय्याः प्रीतिकारकाः ॥३१६॥
मृतानां कथितास्सद्भिर्नित्यनैमित्तिकादिषु ।
ततः प्रत्यब्दभिन्नेषु सर्वश्राद्धेषु सन्ततम् ॥३१७॥

स्वपितुर्वर्गसाम्येन जननीपितृवर्गके ।
स्वामातृवर्गसाम्येन तन्मातृत्रयकस्य च ॥३१८॥
समर्चनं प्रकुरुते दौहित्रोऽयं सुताधिकः ।
कश्चिद्गीतः प्रसिद्धोऽत्र ताल्च्यपत्न्या पुरास्फुटः ॥३१९॥

सपत्नीतनयं दृष्ट्वा विवादे तनयं प्रति ।
अयं तवानुजो महांद्व्यञ्जलीदो हि तर्पणे ॥३२०॥
महायज्ञेन दर्शादिश्राद्धेषु तु न किञ्चन ।
भागिनेयस्तु ते वत्स वत्सोऽयं सर्वकर्मसु ॥३२१॥

पंक्तेषु प्रसक्तेषु स्वमातृकुलसाम्यतः ।
मद्वर्गस्य समप्रस्य ष्यञ्जलीदो हि कोऽत्रमे ॥३२२॥

आवयोः प्रवरः प्रोक्तः को वा त्वं वद मे स्फुटम् ।
इति मातुर्वचः श्रुत्वा वत्सस्तु सुमहानृषिः ॥३२३॥
सपत्नीतनयात्तस्या दौहित्रमधिकं तराम् ।

॥ दौहित्रत्रैविध्यम् ॥

शास्त्रविन्मन्यते नूनं समालोच्य स्वचेतसा ॥३२४॥

तन्मातामहगोत्र्येकः दौहित्रोऽन्यस्ततः परः।
निर्णीयस्त्रिविधोऽयं यः तमेनं प्रवदामि च ॥२२५॥
कन्याप्रदानसमये तेन मातामहेन वै।
प्रोक्त एवं यदि तदा सोऽयमाद्योऽयमीरितः ॥२२६॥
अपुत्रोऽहं प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥२२७॥
एवं द्वितीयो विषयः कालेऽस्मिन्नेव केवलम्।
भङ्ग्यन्तरेणचेत्प्रोक्तः दौहित्रः कोऽपिकथ्यते ॥२२८॥
अपुत्रोऽहं प्रदास्यामि तुभ्यं कन्या भवानपि।
पुत्रार्थी चेदिहोत्पन्नः स नौ पुत्रो भविष्यति ॥२२९॥
अस्य गोत्रद्वयं ज्ञेयं तद्वंशस्य ततः परम्।
गोत्रद्वयं च सङ्ग्राह्यं विवाहादिषु कर्मसु ॥२३०॥
एतादृगभिसन्ध्येकरहितेन यदि स्वसौ।
कन्यकायाः प्रदत्तायाः तनयो दुहितुः पुनः ॥२३१॥
तातगोत्र्येव विज्ञेय एवं स त्रिविधो मतः।
त्रिविधोऽपि समो ज्ञेयो दौहित्रोऽयमकल्मषः ॥२३२॥
वर्गद्वयोद्धारकश्च सर्ववर्णैकसम्मतः।
तमेवं वीक्ष्य दौहित्रं विभक्तज्ञातिसञ्चयः ॥२३३॥
वर्द्धमानं श्रिया दीप्त्या वर्चसा भ्राजसौजसा।
यशसा कान्तिदाक्षिण्यसौजन्यादिगुणादिभिः ॥२३४॥
निष्कारणं वृथा मोहात्प्रकुप्यति हि केवलम्।
प्रतिग्रहो वा होमो वा दौहित्रस्य विधीयते ॥२३५॥

अननादेव दौहित्रः (स) तत्कुलद्वयतारकः।
रौरवस्सर्वभूतानां पितॄणामतितृप्तिकृत् ॥३३६॥
निवारको दुर्गतेश्च तारकस्तनयस्स च।
द्रव्याभावे क्रियाभावे मन्त्राभावे तथैव च ॥३३७॥
विप्राभावे धनाभावे शक्त्यभावेऽथवा पुनः।
सर्वाभावेऽपि यत्नेन दौहित्रस्य सुमेधसः ॥३३८॥
श्रोत्रियस्यास्य तत्राग्रिममात्रेणैव च तत्क्षणात्।
पितॄणां नित्यतृप्तिस्स्यादक्षय्या नात्र संशयः ॥३३९॥
वस्त्राद्देवतानां या श्राद्धकर्तुस्तथापि वा।
दौहित्र इति विज्ञेयः कर्तृणामस्य वा पुनः ॥३४०॥
अमादिकानां श्राद्धानां प्रकृतित्वेन केवलम्।
प्रोक्तानां पुनरन्येषा मनुभाटस्य तत्परम् ॥३४१॥
युगाद्यानां तथा पश्चान्महालयपक्षस्य च।
अष्टकान्वष्टकानां च द्वादशानां तथैव च ॥३४२॥
गजच्छायातीर्थदधिघृतानामेकमेव वै।
उपायः कश्चिदस्सद्भिर्दौहित्रस्यास्य भोजनम् ॥३४३॥
स्वधद्रव्येण लघुना येन केन यथा तथा।
सर्वाभावे तस्यभुक्तिमात्रेणैव परं कृतम् ॥३४४॥
सम्यग्भवति नास्त्यत्र संशयस्त्वणुमात्रकः।
प्रत्यब्दमात्रमेकं तद्विध्युक्तेन परं स्मृतम् ॥३४५॥
कर्तव्यत्वेन विद्वद्भिः निश्चितं ब्रह्मवादिभिः।
अन्नेनैव दक्षिणया होमेन ब्राह्मणैस्सह ॥३४६॥

अग्नौ करणतो वापि पिण्डदानेन धर्मतः ।
तदन्नतर्पणेनेयं पित्रोः प्रत्यब्दमेककम् ॥३४७॥
अत्यन्तावश्यकत्वेन कर्तव्यत्वेन चोदितम् ।
अत्यन्तापदि च त्याज्यं न भवेदेव सर्वदा ॥३४८॥

॥ प्रत्याब्दिकाकरणेप्रत्यवायः ॥

यदि त्यक्तं तद्भवते तत्क्षणादेव केवलम् ।
पतितः स्यान्न सन्देहः तस्मात्तत्तु विधानतः ॥३४९॥
सर्वप्राणेन कुर्याद्वै ब्राह्मण्यस्यास्य सिद्धये ।
यदलभ्यं वस्तु तस्य प्राप्तये मासपक्षयोः ॥३५०॥
पूर्वमेव यतन् बाढं येन येन प्रकारतः ।
तत्संपाद्य प्रयत्नेन गोपयेत्तस्य कर्मणः ॥३५१॥
जलानि तण्डुलामाषा मुद्गाश्शाकद्वयं कृतम् ।
पत्राणि दक्षिणा शक्त्या पात्राण्येतानि बाडवाः ॥३५२॥
मन्त्रज्ञाः श्राद्धकार्याय दशप्रोक्ता मनीषिभिः ।
एतेषामेकलोपेऽपि [illegible] श्राद्धं सुकृतं भवेत् ॥३५३॥
जलाभावे किमपि तन् न सिध्यत्येव सर्वदा ।
तानि यत्र समृद्धानि तत्र श्राद्धं हि सिध्यति ॥३५४॥
तथैव तण्डुलाभावे न प्रत्यब्दकथा भवेत् ।
तण्डुलाश्चहिरण्यं च प्रधानद्रव्यमुच्यते ॥३५५॥
कार्यमात्रस्य कृत्स्नस्य किमुत श्राद्धकर्मणः ।

वक्तव्यं यत्र तत्र मृतेऽह्न्येव नान्यतः।
तदभावे लोपएव भवेदेव तु तत्पुनः ॥३५७॥
मुद्गाभावे माषमात्रैः कर्तुं सूपाय शक्यते।
माषाभावे त्वङ्गलोपो भवेदेव न संशयः ॥३५८॥
महापदि कदाचित्तु तेन लोपेन वस्तुनः।
शक्यते हि तथा कर्तुं न त्याज्यं तत्तु तेन वै ॥३५९॥
एषा हि चोदनाप्रोक्ता सुमहाचार्यधर्मना।
शाकारशाको तथा शाकः पृथक्त्वेन मनीषिभिः ॥३६०॥
कीकटादिषु तच्छ्रन्ये न त्याज्यं श्राद्धकर्म तत्।
पयोदधिघृतक्षीरसूपभक्ष्यादिसंभवे ॥३६१॥
शाकाभावे विशेषेण बाधकं न भवेदिति।
लौकिकाना वैदिकानां च महदुक्तिर्महत्तरा ॥३६२॥
लौकिकोक्तिर्वैदिकोक्तिः स्वीकार्ये वैदिकेऽपि च।
भविष्यति कदाचित्तु चापत्कल्पं तदुच्यते ॥३६३॥

॥ श्राद्धद्रव्याभावे अनुकल्पः ॥

घृतस्य दुर्लभे जाते कदाचित्सङ्कटे खरे।
देशनाशे राष्ट्रनाशे महावर्षादिदुर्घटे ॥३६४॥
तैलं प्रतिनिधिस्तस्य दुर्लभे तस्य चागते।
तस्य प्रतिनिधिस्त्वाज्यं दुर्लभे तु द्वयोरवि(पि) ॥३६५॥
पयः प्रतिनिधिः प्रोक्तं तस्य प्रतिनिधिर्दधि।
सर्वेषामपि चैतेषां दुर्लभे किं [illegible]

एवं चिन्तयमानोऽत्र महादेवः प्रजापतिः ।
स्वयमागत्य चोवाच सर्वलोकहिताय वै ॥३६७॥
पिष्टं जलेन संयोज्य लोडयित्वा विशेषतः ।
तेन पिष्टजलेनैव होमकार्यादिकं चरेत् ॥३६८॥
लब्धेन मधुना चापि सर्वकार्याणि साधयेत् ।
फलपत्रादिसुद्रव्यैरन्नेन च तदा किल ॥३६९॥
श्राद्धादीन्यपि कार्याणि न त्याज्यानि मनीषिभिः ।
मासमध्यमतुर्लभ्ये तदा कुर्याद्यथा तथा ॥३७०॥
मृष्टानां शुक्तिपत्राणां दुर्लभे सति सत्वरम् ।
श्राद्धकार्याय मृत्पात्रं कथितं यत्तु तत्सदा ॥३७१॥
संलब्धं कथितं श्रीमन् तेन तत्साधयेत्तराम् ।
आपत्सु पत्रालाभे तु लभ्यते यत्तु तेन तत् ॥३७२॥
साधयेदिति सर्वेषां संमतिः परमा स्मृता ।
विप्राभावे तु सर्वत्र दर्भमुष्टिषु तत्पितॄन् ॥३७३॥
सुरानपि विधानेन मन्त्रैरावाह्य भूतले ।
कृत्वा तां निखिलामर्चां अग्नौ करणमेव च ॥३७४॥
अन्नत्यागं च तत्कृत्वा सर्वं तत्परिषेचनम् ।
आपोशनादिकां कृत्वा मन्त्रमात्रेण चाहुतीः ॥३७५॥
पश्चादपि जप्त्वा विधिना चाभिश्रवणमेव च ।
उत्तरापोशनं(णं) कृत्वा मन्त्रैः पूर्ववदेव वै ॥३७६॥
पिण्डप्रदानं निर्वर्त्य तत्सर्वं सलिले क्षिपेत् ।

कुर्यादेव विधानेन दक्षिणां तां ततः परम् ।
यामे कस्मैचिद्विप्राय दद्यादिति हि सा श्रुतिः ॥३७८॥
अस्वाधीनानि पात्राणि परेषां पूर्वमेव वै ।
निर्दिनादेव स्वाधीना न कृत्वा तैः ततः परम् ॥३७९॥
तैः श्राद्धं तु ततः कुर्यात्सद्यो लब्ध्वाऽथवाऽऽपदि ।
यथाकथंचित्कुर्याच्च तेन चापि विधानतः ॥३८०॥
कृतमेव भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा ।
मृत्पात्राणि तु चेत्तानि पात्राभावेऽथवा पुनः ॥३८१॥
कवलं कवलं हस्ते यावद्द्वात्रिंशदाहुतीः ।
प्राणायेत्यादिभिस्सर्वैः पञ्चावृत्या ततः पुनः ॥३८२॥
तृतीयपञ्चमाभ्यां च सप्तमावृत्ति कर्मणि ।
पूरयित्वावृत्तिभेदं तां वृत्तिं तत्रकर्मणि ॥३८३॥
श्राद्धाख्ये कारयेद्विद्वान् ब्राह्मणानामनापदि ।
एवं कृत्वा सद्य एव सर्वभ्रष्टो भवेदपि ॥३८४॥
वेदहन्ता शास्त्रहन्ता मर्यादामारकश्च सः ।
पितृघ्नो विप्रहन्ता च भवेदेव न संशयः ॥३८५॥
आपत्कल्पोक्तमर्यादाः शास्त्राणि विविधान्यपि ।
अनापत्सु न गृह्णीयात् गृह्णन् तानि पतेदधः ॥३८६॥
येन केन प्रकारेण पित्रोः श्राद्धं विधानतः ।
अन्नेनैव प्रकुर्वीत नान्येन तु कदाचन ॥३८७॥
तदन्नमतिशुद्धं यद्योग्यं तच्छ्राद्धकर्मणि ।
अतिशुद्धत्वमन्नस्य सद्द्रव्येणैव केवलम् ॥३८८॥

संपादितस्य भवति नासद् द्रव्येण तद्भवेत् ।
न्यायार्जितस्य द्रव्यस्य सत्त्वं प्रकथितं बुधैः ॥३८९॥
तदन्यायार्जितं द्रव्यं असदित्येव सूरिभिः ।
कथितं सत्कर्मजालायोग्यं(?) निरयभीतिदम् ॥३९०॥
तत्सद्द्रव्यं ब्राह्मणस्य याजनाध्यापनादिभिः ।
सम्प्राप्तं यद्विशेषेण स्त्रीयोर्वीसंभवं च यत् ॥३९१॥
धान्यादिकं शाकमूलशालाटुफलमूलकम् ।
न्यायार्जितमितिप्रोक्तं योग्यं सत्कर्मणां सदा ॥३९२॥
महादानादिसंप्राप्तं गजदानादिनागतम् ।
कुमा(ला)ध्यस्थ्यादिनाप्राप्तं मासमासान्यजादिकम् ॥३९३॥
शौद्रं सौतं राथकारं तार्क्ष्यं त्वाष्ट्रं तथैणकम् ।
मालाकारीयमाम्बष्ठं तौन्नवायं(तान्तुवायं)च सौचिकम् ॥३९४॥
कौलकं सौचिकं नाटं शैलूषं भारतं तथा ।
पामरं जालमकं गाधं चाण्डालं यावनं तथा ॥३९५॥
म्लेच्छं हीणं कौक्कुणं वा भृतकाध्यापनादिभिः ।
आद्यश्राद्धादिसंप्राप्तं स्वामिद्रोहादिनागतम् ॥३९६॥
चौर्यानृतसमुद्भूतं दुष्टयाजनसङ्गतम् ।
अहीनक्रतुसंलब्धं कन्यकाविक्रयोत्थितम् ॥३९७॥
निक्षेपवार्धुष्यगतं यदन्यच्छास्त्रनिन्दितम् ।
तदेवदखिलं द्रव्यमसमीचीनमुच्यते ॥३९८॥
समीचीनं तदेव स्यात् मच्छ्रोत्रियमुखागतम् ।
एकविंशतिमंदयाक्रतुदक्षिणया तथा ॥३९९॥

प्रीतिदत्तं श्राद्धकाले महसंभावनादितः ।
संप्राप्तं यान्यथा श्राद्धं शनकैश्शनकैरपि ॥४००॥
दुर्लभ्यसुधोत्थश्रुतिपुराणस्मृतिपाठकैः ।
पठन्तैरपि यत्नोत्था संप्राप्तमवशात्तदा ॥४०१॥
दक्षिणादानरूपेण सदस्यादिमुखेन च ।
सोमप्रपाकादिमुखादुत्सवादिमुखेन च ॥४०२॥
संप्राप्तमवशाद्दैवात्संप्राप्तं न्यायवत्संततः ।
मधुपर्कादिरूपेण समागतमनीश्वरात् ॥४०३॥
यथान्यदखिलं भूयस्सद्द्रव्यमिति तद्विदुः ।
असद्द्रव्यकृतं श्राद्धं पितॄणां निरयप्रदम् ॥४०४॥
ततोऽल्पेनापि सद्द्रव्यसमानीतैकवस्तुभिः ।
स्वपत्नीहस्तरचितपाकैरत्यन्तपावनैः ॥४०५॥
भावशुद्धेन मनसा तादृशेनान्धसा च यत् ।
निर्वर्त्यमेकं प्रत्यब्दं मन्त्रपूतं च तातयोः ॥४०६॥

॥ श्राद्धे पाककर्तारः ॥

तत्राद्धे पाककर्त्र्येका धर्मपत्नी तथापराः ।
कुलपत्न्योऽनन्यजाति संभवाः स्युः प्रजावती ॥४०७॥
मातरो ज्ञातिपत्न्यश्च पितृष्वस्रादिकाः पराः ।
भार्याः स्वसारःश्वश्रूश्च मातुलान्यस्तथैव च ॥४०८॥
अत्याप्तबन्धुपत्न्यश्च गुरुपत्न्यस्तथाविधाः ।
आनुकूल्येन निर्दिष्टास्सर्वाभावे स्वयं वरः ॥४०९॥

पाककर्माणि संप्रोक्तानि तेषु सर्वेषु वस्तुतः।
न तत्कर्माणि निर्दिष्टो यजमानोऽपि तत्र च ॥४१०॥
यदि कर्ता ब्रह्मचारी तदा पाकं प्रयत्नतः।
न कुर्यादेव विधिना तस्य पाकं कदाचन ॥४११॥
अधिकारोऽस्ति धर्मेण वनस्थस्य यतेरपि।
ब्रह्मचारी यतिर्वापि यस्मिन्देशे यदा तदा ॥४१२॥
पचनं कुरुते मोहात्तद्राष्ट्रं तत्क्षणात्परम्।
श्रियादिरहितं सर्वैर्धर्मैरसुरद्विषैः ॥४१३॥
तीर्थैः पुण्यैः पवित्रैश्च समतन्तुमुखादिभिः।
प्रवर्जितं विशेषेण भवेद्दूरीकृतं तथा ॥४१४॥
नष्टं भ्रष्टं प्रभग्नं च भ्रान्तनष्टमृगद्विजम्।
निर्मानुष्यं शुष्कजलं आशावान्द्राद्भविष्यति ॥४१५॥
पाकभिन्नानि कार्याणि सर्वाण्येवाविशेषतः।
गुरोर्नित्यं ब्रह्मचारी कर्तुं शक्नोति सन्ततम् ॥४१६॥
विना पाकं तमेकं कार्याण्यन्यानि यानि वा।
तदुक्तानि प्रकुर्वीत यतिश्चापि तथैव हि ॥४१७॥
वर्णिना यतिना पाके कृता भूमिस्तथा तराम्।
भीता दग्धा प्रणष्टा च कम्पितास्यान्न संशयः ॥४१८॥
तस्मात्तु यदि वर्णीस्याच्छ्राद्धकर्ता तदा किल।
तन्माता तस्य भगिनी याश्चकाश्चन चा वै ॥४१९॥
बन्धुपत्न्योमित्रपत्न्यः गुरुपत्न्यादिकाः स्मृताः।
पाककर्त्र्यो नराः स्वीयाः कीर्तिता न स्वयं कदा ॥४२०॥

सर्वश्राद्धेषु सर्वत्र रण्डापाको विशेषतः ।
गर्हितः स्यात्तथा वन्ध्यापाकोऽपि परिकीर्तितः ॥४२१॥
स्वसा माता तथा श्वश्रूर्मातुलानीसुता पिता ।
पितृव्यपत्नी वा भार्या भगिनी वा तथाविधा ॥४२२॥
कर्त्रीणां [illegible] पुरोक्तानामभावे विधवा अपि ।
एता ग्राह्याः पाककार्ये श्राद्धकर्मणि सङ्कटे ॥४२३॥
ज्ञातिभार्याश्च निखिलाः प्रत्यासन्नास्तथाविधाः ।
सपिण्डभार्यास्ताश्चेद्ग्राह्या एवेति शण्डिलः ॥४२४॥
श्राद्धपाकक्रियायास्ताः प्राह श्रीमानसौ महान् ।
पुत्रिणीनां न रण्डात्वं निखिलैर्निश्चितं पुरा ॥४२५॥
वन्ध्यात्वं जातपुत्राणां न कदाचन विद्यते ।
कन्यकानुपनीतानां न कर्मार्हत्वमूचिरे ॥४२६॥

॥ मृतकार्येकर्तुरनुकल्पनिषेधः ॥

सति कर्त्रन्तरेभूयो न चेत्तेषां तु कर्तृता ।
अस्त्येवेति तदा प्राह मृतकार्ये विशेषतः ॥४२७॥
स्वधानिनयनादेव मन्त्रकार्याखिलामता ।
अथवा तद्गतःकक्षान्तरनिष्ठस्तु कश्चन ॥४२८॥
तत्कार्यमखिलं कुर्यात्तेन तत्सुकृतं भवेत् ।
विनैव वरणं तूष्णीं कर्तुःस्वस्य स्वयं यदि ॥४२९॥
तत्कर्तव्यत्वेन कुर्यात्कर्म तत्स्यान्निरर्थकम् ।
यस्य कस्यापि [illegible]

एवं तु [illegible] [illegible]।
अनाथा इव [illegible] न तु [illegible] ॥४५१॥
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] ॥४५२॥
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] जायते हि [illegible] ॥४५३॥
[illegible] [illegible]।
[illegible] च [illegible] विशेषतः ॥४५४॥
[illegible] [illegible]।
समुत्थितो [illegible] मिथयोः पश्यतां पुरः ॥४५५॥
किं कार्यमिति तैः प्रोक्ते [illegible] वै।
तत्परं दीयते चेति प्रतिज्ञाप्य ततः परम् ॥४५६॥
यच्छास्त्रेणैव विहितं तावन्मात्रं सदा तदा।
अस्माभिर्दीयते चेति नान्यत्किमपि क्षुल्लकम् ॥४५७॥
धर्मतोऽस्यास्तु रण्डाया गच्छाह्वेऽन्यदह्मेव वै।
सार्धत्रिकरसंपूर्णास्तण्डुला लवणं समित् ॥४५८॥
वसनं त्रिपणक्रीतं त्रिमासानां तथैव च।
एतावदेव साध्वीनां चोदितं विधवाशनम् ॥४५९॥
प्रदेयं शास्त्रमार्गेण चैतस्मादधिकं न हि।
[illegible]वमुक्त्वा वचनं तावन्मात्रे ततः पुनः ॥४६०॥
(ध) नालमेतन्मे चेति रोदनपूर्वकम्।
द्वारे निरुद्धे ज्ञातेस्तु तत्र सन्तस्तु केचन ॥४६१॥

छिन्नेवदिति तूष्णीकं सन्तमं पश्यतो पुरः।
उभयैः क्रियते चेति हन्तसम्प्रतिभास्थिति ॥४६२॥
तत्कोष्ठपूरणे यावत्तावदयमिति क या।
गच्छेदियमिति प्रोक्त्वा चैतावद्भत्सरस्य रा:(?)॥४६३॥
देया भवद्भिरित्येवं भूमिरूपेण वा पुनः।
निधन्यद्रव्यरूपेण धान्यरूपेण वाथवा ॥४६४॥
भवेत्कालेन निष्कर्षः एवं सत्यत्र केवलम्।
तस्यानिकृष्टता घोरा प्रसिद्धा जगतीतले ॥४६५॥
सिद्धापि नात्र विशयः तस्मिन् भर्तृकुलेऽन्वहम्।
संप्राप्तजीवनाशायाः एवं यत्नेन कालतः ॥४६६॥
पश्चान्निवासो भवने परेषां चेद्भवेद्यदि।
अयशो महदेवस्याद्भ्रात्रादीनां गृहेष्वपि ॥४६७॥
तत्कलत्रादिजनताप्रद्वेषः पुनरेकक:।
परगेहनिवासोत्थप्रत्यवायो महानपि ॥४६८॥
जायते हि विशेषेण विश्वस्ताया व्रतं [illegible] सः।
सन्त्यक्तभर्तृगेहाया निवासो भर्तृमन्दिरे ॥४६९॥
अन्वहं कृच्छ्रफलदं ज्ञातिचित्तानुवर्तनात्।
स्वभर्तृशयनस्थानपालनान्वेषणादितः ॥४७०॥
ब्रह्मचर्यं महत्त्वं च सौजन्यमति वर्धते।
तत्पुण्यतीर्थनिखिलसर्वकृच्छ्रव्रतान्यपि ॥४७१॥
प्राप्तान्येव भवन्त्यस्यास्तस्मात्तत्रैव भक्तितः।
येन केनाप्युपायेन ...

नामान्येतानि तुच्छानि चैतासां कर्ममात्रके ।
सन्नामके नाधिकारस्तथाप्यासां विधेर्वशात् ॥४९४॥
सद्वृत्तिर्वसुधारूपा निबन्धादिस्वरूपका ।
संप्राप्तापि पितुर्भर्तुर्बन्धूनामथवा पुनः ॥४९५॥
सकाशात्तु तया पश्चात् श्रियं सुमहतीं पराम् ।
संप्राप्ता अपि यद्येताः सततं परतन्त्रकाः ॥४९६॥
स्वपात्रस्थोर्णकवलप्राशनेऽपि स्वतन्त्रतः ।
अत्यन्तशक्तिविकलाः सर्वशास्त्रैकधर्मतः ॥४९७॥
तथा हि तासां सर्वासां वनितानां महत्कुले ।
संजातानां विवाहस्य पश्चात्संवसरात्परम् ॥४९८॥
कार्तिकगौरीपूजायाः तद्दोषाराधनात्परम् ।
श्रियुद्धिमत्स्तम्भमहानिकटे तद्व्रते तदा ॥४९९॥
महासुमङ्गलीवृन्दगीतवाक्यविशेषतः ।
प्राप्ताया अप्यनुज्ञायाः तत्पूर्तिकरणाय वै ॥५००॥
नित्यं भुक्तिक्रियाकाले यां काश्चिद्यं च कं च वा ।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा भोजनस्याभ्यनुज्ञां तदनन्तरम् ॥५०१॥
तया वा तेन वोक्ते वाऽभ्यनुज्ञानविशेषके ।
सा भुक्तिः क्रियते तस्मात् वनितामात्रया भुवि ॥५०२॥
अभ्यनुज्ञानदेवास्ते प्रथमं स्याद्गणाधिपः ।
... ततः पश्चाद्गुरुस्ताक्ष्योऽथ वा स्मृतौ ॥५०३॥
विकल्पत्वेन निर्दिष्टौ पूर्ववत्कालनिर्णयः ।
पुष्पवन्तौ च निर्दिष्टौ पश्चान्मोघेजगद्गुरू ॥५०४॥

उमामहेश्वरौ पश्चाल्लक्ष्मीनारायणौ ततः ।
उभयोरेतयोः कालो देवयोः परिकीर्तितः ॥५०५॥
ततोऽपि द्विगुणस्तस्मात् वनितामात्रतः स्मृताः ।
अष्टादशासुवर्षास्ताः भोजने नियतास्सदा ॥५०६॥
अभ्यनुज्ञाव्रतस्यास्य चैतावदिति लेखनम् ।
जातं ममेति कारयित्वा कृत्वा भक्त्या ततः परम् ॥५०७॥
तां देवतां नमस्कृत्य पश्चाद्भोजनमुच्यते ।
अपि पात्रगते चान्ने हस्तेनादातुमप्यलम् ॥५०८॥
विनाऽभ्यनुज्ञां तूष्णीकं न युक्तमिति हि श्रुतिः ।
सुमङ्गलीनां धर्मोऽयं मृते भर्तरि सद्मते ॥५०९॥
तदेयतेयं विधवा तदधीनैव सर्वदा ।
भवेत्तेनैवास्वतन्त्र्या(न्त्रा) परमाध्यवशा भवेत् ॥५१०॥
व्रतकाले तादृशे तु व्यतीतेऽस्यामहस्त्वकम् ।
स्वातन्त्र्यभर्तृवाक्येन शनैस्तन्मुक्तो भवेत् ॥५११॥
एवं सत्यत्र जगति वनितानां विशेषतः ।
विवाहात्परतोऽत्यन्तमस्वातन्त्र्यं श्रुति-पुष्टम् ॥५१२॥
स्वपात्रगतभिक्षैकमहणाणुस्वतन्त्रकम् (?) ।
अत्यन्तकपराधीनं अतो नारीजनस्य वै ॥५१३॥
तादृशस्य कथंदानेऽधिकारः स्वस्य वा पुनः ।
वस्तुनः स्थावरादेर्वाऽभ्यनुज्ञां वा विनैव हि ॥५१४॥
ज्ञातीनामभ्यनुज्ञा चेत् ज्ञातिप्राप्तक्षितेस्तथा ।
पितृप्राप्तक्षितेस्त्वस्य ह्यत्यन्तावश्यकीति नु ॥५१५॥

॥ रण्डाया अस्वातन्त्र्यम् ॥

इत्थं मयैव निगमैरुक्ताशाप्यनुगृह्य तान्।
मयैव मरणे येषु गङ्गातीरमुपैति वा ॥४७३॥
भेदत्वो ऋषिणा मद्भिः सामयोनीह तत्क्षणात्।
तेषामनुग्रहनिमित्तं न्यासंतारितवस्तु (वस्तू) नाम ॥४७४॥
समर्पणं यत्र कुत्र स्वकस्मा तत्रार्पणं जगुः।
वृत्ताशायास्तु रण्डायाः यानि वस्तूनि सन्ति वै ॥४७५॥
भूषणाच्छादनादीनि पात्रधान्यधनान्यपि।
येभ्यः केभ्यः परेभ्यो वा स्वेभ्यो वा दातुमुत्तमः ॥४७६॥
अधिकारोऽस्ति सततं यथेच्छं शास्त्रवर्त्मना।
पितृभ्रातृपतिमात्रधरणी यदि संस्थिता ॥४७७॥
तत्तत्कुलप्रसूतानां विनानुज्ञां तां हठात्।
दद्यादेवविधिनाऽन्यस्मै स्वच्छन्दतो ननु ॥४७८॥
स्वीयानामेव वस्तूनां दानं शास्त्रैकसम्मतम्।
सामान्यानां धनादीनां दानं शास्त्रैकनिन्दितम् ॥४७९॥
न सामान्यं धनं देयं परभोज्यं विवादतः।
स्पष्टेतरं भावदुष्टं निषिद्धं स्वैः परैरपि ॥४८०॥
नियमोऽयं सर्वधर्मः पितृभ्रातृमतां सताम्।
पुत्रिणामपि दानेषु तदनुज्ञां विना क्वचित् ॥४८१॥
कर्तुं न शक्यतेऽत्तीव भूमिदाने तु किं पुनः।
स्वतन्त्रस्यापि शक्तस्य पुंसस्संपादकस्य च ॥४८२॥

सगोत्रज्ञातिदायादसामन्तानुमतिः परा।
अपेक्षिताधरादाने हिरण्यमुदकं तथा ॥४८३॥
एवं सति पुनर्नार्या अधिकारस्तथाविधे।
कथं भवेद्धतं पुत्रपौत्रवत्याः प्रदानके ॥४८४॥
पितृयस्तायास्सनाथायाः तस्मिन्दानेऽतिसङ्कटे।
तथापि सुतरां दूरं अनाथायास्तु का कथा ॥४८५॥
दाने तु तादृशेधारे ह्राख्ये येन केनचित्।
कर्तुं प्रयत्नशतकादधिकारो भविष्यति ॥४८६॥
कथं चेदयत्र देवेशो जानात्यन्येन चैव हि।
अष्टवर्षा तु विधवा विवाहात्परतो यदि ॥४८७॥
चितिरग्निसदृशी प्रोक्ता प्रथमेयं स्मृताखला।
रोहिणीविधवाचेत्तु चितिधूमसमातिशम् ॥४८८॥
अवीरेत्युच्यते नाम्ना महापापैकसंभवा।
गौरीदशायां वैधव्यमापन्ना तापिता स्मृता ॥४८९॥
धित्युल्मूकैव सा ज्ञेया रजसोऽर्वागितीव च।
पुरोदिताभी रण्डाभिस्साकं भूयः पराहृताः ॥४९०॥
सन्ति ताश्च प्रवक्ष्यामि स्पष्टार्थं वै प्रसङ्गतः।
दुर्भगाकुटिलाकाष्ठा चरमा चटुला वशा ॥४९१॥
वीररण्डा कुण्डरण्डा बाधारण्डा तथा परा।
दशानामपि चैतासां दशमाब्दात्परं तथा ॥४९२॥
ऐकादशाब्दप्रभृतिर्वैधव्यं क्रमशो यदि।
रजसः परतो भूयो भवेयुस्तानि शून्यतः ॥४९३॥

नामान्येतानि तुच्छानि चैतासां कर्ममात्रके।
तन्नामके नाधिकारस्तथाप्यासां विधेर्वशात् ॥४६४॥
सद्वृत्तिर्वसुधारूपा नियन्धादिस्वरूपका।
संप्राप्तापि पितुर्भर्तुर्बन्धूनामथवा पुनः ॥४६५॥
सकाशात्तु तथा पश्चात् श्रियं सुमहतीं पराम्।
संप्राप्ता अपि यद्येताः सततं परतन्त्रकाः ॥४६६॥
स्वपात्रस्थोर्णकचलप्राशनेऽपि स्वतन्त्रतः।
अत्यन्तशक्तिविकलाः सर्वशास्त्रैकधर्मतः ॥४६७॥
तथा हि तासां सर्वासां वनितानां महत्कुले।
संजातानां विवाहस्य पश्चात्संवत्सरात्परम् ॥४६८॥
कार्त्तिकगौरीपूजायाः तद्दीपाराधनात्परम्।
श्रियुद्धिमूलस्तम्भमहानिकटे तदूषते तदा ॥४६९॥
महासुमङ्गलीवृन्दगीतवाक्यविशेषतः।
प्राप्ताया अप्यनुज्ञायाः तत्पूर्तिकरणाय वै ॥५००॥
नित्यं भुक्तिक्रियाकाले यां काञ्चिद्वं च कं च या।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा भोजनस्याभ्यनुज्ञां तदनन्तरम् ॥५०१॥
तथा वा तेन योक्ते वाऽभ्यनुज्ञानविशेषके।
सा भुक्तिः क्रियते तस्मात् वनितामात्रया भुवि ॥५०२॥
अभ्यनुज्ञानदेवास्ते प्रथमं स्याद्गणाधिपः।
वर्षत्रयं ततः पश्चाद्गुरुस्ताक्ष्योऽथ वा स्मृतौ ॥५०३॥
विकल्पत्वेननिर्दिष्टौ पूर्ववत्कालनिर्णयः।
तुल्यवन्तौ च निर्दिष्टौ पश्चाद्योषेजगद्गुरू ॥५०४॥

उमामहेश्वरौ पश्चाल्लक्ष्मीनारायणौ ततः ।
उभयोरेतयोः कालो देवयोः परिकीर्तितः ॥५०५॥
ततोऽपिद्विगुणस्तस्मात् वनितामात्रतः स्मृताः ।
अष्टादशास्युर्वर्षास्ताः भोजने नियतास्सदा ॥५०६॥
अभ्यनुज्ञाग्रतस्यास्य चैतावदिति ईरणम् ।
जातं ममेति कारयन्त्यां कृत्वा भक्त्या ततः परम् ॥५०७॥
तां देवतां नमस्कृत्य पश्चाद्भोजनमुच्यते ।
अपि पात्रगते चान्ने हस्तेनादातुमप्यलम् ॥५०८॥
विनाभ्यनुज्ञां तूष्णीकं न युक्तमिति हि श्रुतिः ।
सुमङ्गलीनां धर्मोऽयं मृते भर्तरि तद्व्रते ॥५०९॥
तद्धतेयं विधवा तदधीनैव सर्वदा ।
भवेत्तेनैवास्यतन्त्र्या(न्त्रा) परमाप्यवशा भवेत् ॥५१०॥
व्रतकाले तादृशे तु क्वचीतेऽस्यामहत्त्वकम् ।
स्वातन्त्र्यभर्गवाक्येन शनैस्तन्मुखतो भवेत् ॥५११॥
एवं सत्यत्र जगति वनितानां विशेषतः ।
विवाहत्परतोऽत्यन्तमस्वातन्त्र्यं श्रुति-पुटम् ॥५१२॥
स्वपात्रगतभिस्सैकग्रहणाणुस्वतन्त्रकम् (?) ।
अत्यन्तकपराधीनं अतो नारीजनस्य वै ॥५१३॥
तादृशस्य कथंदानेऽधिकारः स्वस्य वा पुनः ।
वसुनः स्थावरादेर्वाऽभ्यनुज्ञां तां विनैव हि ॥५१४॥
ज्ञातीनामभ्यनुज्ञा चेत् ज्ञातिप्राप्तक्षितेस्तथा ।
पितृप्राप्तक्षितेरस्य ह्यत्यन्तावश्यकीति नु ॥५१५॥

गुरुत्वेनैव गृह्णन्ति लोके शन्तमुमेशसः।
कृतेऽपिनादरो दाने कथाञ्चिन्मूढगोपिका ? ॥५१६॥
रामागनो गवांमूलः स्थास्त्रो वनितालादरः।
यथा वा तद्गतं भूयः तथाकुर्यान्नचेद्वृथा ॥५१७॥
स्वगोत्रेकदत्तं भूमिदानंस्यादुत्तमोत्तमम्।
भिन्नगोत्रदत्तं तत्तु सर्वंफलं विदुः ॥५१८॥
सत्सु साधुषु निष्ठत्सु स्वकीयेषु जनेषु वत्।
आहिताग्निषु विद्वत्सु वह्वृचधिकारिषु ॥५१९॥
विधयानाहिताग्नीनां जनानां तादृशी धराम्।
न दद्यादेव सहसा दत्ताप्येषा कथञ्चन ॥५२०॥
न सिध्यत्येव तेषां सा पुरोडाशः शुनामिव।
भूरस्माकमिदं मन्त्रं आहिताग्नेः प्रतीष्टिके ॥५२१॥
अध्वर्यौ सति जपति स्वीया सा भूमिरुत्तमा।
तदीयपूर्वकोपात्ता कथमन्यत्र गच्छति ॥५२२॥
गता विना न्यायवत्मद्वारा तस्य [illegible] सा ततः।
वृद्धित्तान भवत्येव वृद्धिदाप्यपि केवलम् ॥५२३॥
सधस्ततरसर्ववंशमूलोन्मथनकारिणी।
भवेदेव न सन्देहः हरिपत्न्यखिलाश्रया ॥५२४॥
कालेन महता तस्मान्न कुर्यात्कर्म तादृशम्।
नारीनरो वा मेधावी समालोच्य चिरंस्थिताम् ॥५२५॥
स्ववंशेऽस्याधिकारं च तदागमनकारणम्।
देशं कालंयुक्तपात्रं युक्तं चायुक्तमेव च ॥५२६॥

दृष्ट्या समालोच्य पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ।
नित्याधिकारः स्यात्तद्द्वारा तनयस्य वा ॥५२७॥
ः श्वसुरयोर्भर्तुरनुज्ञानास्त्रियस्य तु ।
ः शतगुणन्यूना वनिता सा सभर्तृका ॥५२८॥
हस्रगुणन्यूना विश्वस्ता नष्टपुत्रका ।
हस्रगुणन्यूना रण्डा सर्वं विवर्जिता ॥५२९॥
यग्निधूमकाष्ठोल्मूकसमानाऽतिगर्हिता ।
दृशीचेति वाक्यप्रलापनपरा खला ॥५३०॥
ण्डा तत्र भूदानं महद्दानं च नैष्कुटम् ।
ादानं कूपदानं वापीदानं च गाहनम् ॥५३१॥
दानं पुष्टिदानं सेतुदानं च वार्क्षिकम् ।
ान्यं माण्डपं सौधं प्रासादं गैहवं तथा ॥५३२॥
करोत्तथैवाहं करिष्यामीति मामकम् ।
स्येवं निर्भयेन निर्लज्जं जनतापुरः ॥५३३॥
ादनुमतिं श्वश्र्वोः ज्ञातीनां चेत्तु सामगम् ।
िवेति पुनस्तज्ञमजनानां विशेषतः ॥५३४॥
काद्भ्रानुमतिश्चाथाधिकोमम तु सांप्रतम् ।
ज्ञातीननुसृत्य स्वान् तत्सम्मत्या चकार हि ॥५३५॥
के चेन्मामकानां जनानां परया ततः ।
स्यैव करिष्यामि पश्यतां तद्विरोधिनाम् ॥५३६॥
रोधे कथं त्वं वै करिष्यसि नयो न नु ।
युक्तमेवं करणमित्युक्ते तत्र सज्जनैः ॥५३७॥

परगाद्गतिर्भूमेर्यो मामकं क्षितिमात्रकं ।
अहं वै प्रवरा कर्त्री संवाते व्यवहारतः ॥५३८॥
मध्विरोभाग सम्बन्धः को याचेत्स्वयमेव वै ।
पूर्वोपरनिबद्धानि पत्रनानि प्रमाणतः ॥५३९॥
उत्सुदेतुं मुन्नाग्न ज्ञातेरत्वेनि (उल्पतोय) वादिनाम् ।
दुरुक्त्य दूषयित्वैव भर्त्संयित्वा विशेषतः ॥५४०॥
तत्सहायानधर्मज्ञान् पामरान्धर्मविद्विषः ।
दानप्रतिग्रहव्याजान् मर्यादामात्रदूषकान् ॥५४१॥
भ्रंशयित्वा बहिष्कृत्य निरोधनमुखेन च ।
धिक्कृत्य वेदवित्तुगस्ताडयित्वाप्यभीक्ष्णशः ॥५४२॥
अपराधानुगुणेन द्रव्यान्न्यूनकान्पणान् ।
तेभ्यः स्वीकृत्य तां गेहचरमांपणरसादिकम् ॥५४३॥
स्थावरं न्यायमार्गेण दापयेत्पृथिवीपतिः ।
तत्स्वामिने यथापूर्वं तेन स्वर्गो जितो भवेत् ॥५४४॥
जीवनाशीकसंलब्धभूमिका यातिदुर्मतिः ।
अहो देवरपुत्रेण पुत्रिणीति ततो मया ॥५४५॥
प्रदीयतेऽस्मै भर्त्तातसंलब्धा धरणीति वै ।
संवलब्धमनाथानां विधवानां कदाचन ॥५४६॥
न भूदानेऽधिकारोऽस्तीत्युक्त्वा वाक्यं ततश्च ताम् ।
दूरतः प्रेषयेद्दुष्टां दत्तामपि तां धराम् ॥५४७॥
तत्स्वामिने दापयेच्च तेन क्रतुफलं भवेत् ।
पुत्रिणी सैव संप्राप्ता या प्रसूयेत जीविनः ॥५४८॥

पुत्रो वा पुत्रिका वापि यस्यास्साऽस्ति ह्यपुत्रिणी ।
पुत्रसंग्रहणेनापि भर्त्रा साकं च पुत्रिणी ॥५४९॥
वन्ध्याऽपि प्रभवेदेव शास्त्रेण रचितेन चेत् ।
अनेकवारं पुत्रस्य ग्रहणं शास्त्रनिन्दितम् ॥५५०॥
नष्टेऽपि दत्ततनये न पुनस्तच्चरेदपि ।
सकृद्गृह्णीयादेकमेव न द्वौत्रीन् चतुरोऽपि वा ॥५५१॥
असकृद्वा सकृद्वापि पुमान् स्त्री वा पृथङ्न तु ।
मिलित्वैवाऽतियत्नेन कुर्यात्तद्ग्रहणं मुदा ॥५५२॥
सहस्रदः सहस्राढ्यो ब्रह्मनिष्ठोऽन्नदस्त्वति ।
बहुशिष्यधनज्ञातिग्रामभूमिविशेषवान् ॥५५३॥
प्रथितस्त्वग्निचिन्नष्टपुत्रो दौहित्रवानपि ।
नष्टभार्यो मित्रशिष्यज्ञातिप्रार्थनया तदा ॥५५४॥
स्वीयसन्ततिविच्छित्तौ सर्वमत्या विधानतः ।
तद्गृह्णीयाज्ज्ञातिपुत्रं दौहित्रस्य मतेन चेत् ॥५५५॥
अपि पत्नी तादृशस्य विधवा नष्टपुत्रका ।
...ल्लशिष्यज्ञातिधनबन्धुग्रामहिताय च ॥५५६॥
...षां वाक्येन दौहित्रमत्या पुत्र्याश्च तादृशे ।
...ङ्कटे महति प्राप्ते प्रकुर्यात्पुत्रसङ्ग्रहम् ॥५५७॥
... पुत्रो देवरसुतो भवितव्यो न हीतरः ।
...यमदश्च सर्वेषाममात्यानां च मध्यमे ॥५५८॥
...वरा एव विख्याता, ज्ञातिभ्यो न्यायवर्त्मना ।
...वरेष्वपि, भूयश्च सर्वेषामन्त्य एव चेत् ॥५५९॥

उत्तमः कथितस्तद्भिन्नमस्य तु मध्यमः।
ज्येष्ठस्य [illegible] गुणास्सर्वे चाधमाः परिकीर्तिताः ॥२६०॥

तद्भिन्ना ज्ञातिगुणारण्यमाधमसंज्ञकाः।
एतेन त्वन्तु सर्वत्र दौहित्रे सति सङ्कटे ॥२६१॥

पुत्रस्यग्रहणं दुष्टं शास्त्रज्ञैर्हरिसंयकैः।
इतियत्तस्य दौहित्रग्रहणं यदि वा तदा(?) ॥२६२॥

न कार्यमेव तन्नो चेन्मतेनास्य मुदादिना।
सम्पत्तु शक्यते हि तस्मिश्चेत्यदि दुःखिते ॥२६३॥

सङ्गृहीतस्स [illegible] शिशुः पुत्रत्वेन न वर्तते।
तत्संमतिश्च परमा नास्त्यस्तीति ततः परम् ॥२६४॥

कालेन महता पश्चात्कल्प्या फलयलेन हि।
तादृशस्य च तादृश्याः विधुरस्य विपश्चितः ॥२६५॥

तत्पत्न्या विधवाया वा स एषः पुत्रसङ्ग्रहः।
उभयोरेतयोरेव पृथक्त्वेन तथाविधम् ॥२६६॥

संगच्छते कर्म कर्तुं नैताभ्यां भिन्नयोर्नतु।
सर्वथा शक्यते कर्तुं नान्यस्य [illegible] कथंचन ॥२६७॥

अन्याया विधवाया वै सोऽयं पुत्रपरिग्रहः।
उपमारहितश्लोकः मिथिलोत्पत्तिसन्निभः ॥२६८॥

एतादृक्पुत्रकरणे गुणा ह्यावश्यकाः स्मृताः।
तेऽत्यन्तदुर्लभा दिव्या ते सन्ति यदि वै तदा ॥२६९॥

कर्म कर्तुं तादृशं चालं युक्तं शास्त्रसंमतम् ।
ते गुणाश्चापि सुव्यक्तं निरूप्यन्तेऽधुना क्रमात् ॥५७०॥
वंशद्वयविशुद्धत्वं अत्यन्तावश्यकं स्मृतम् ।
सहस्रदक्षिणादत्वं सहस्रधनवत्त्वकम् ॥५७१॥
पण्डितत्वं शताधिक्यशिष्यवत्त्वं महोन्नतम् ।
महाग्रामाधिकारित्वं महानिष्ठत्वमप्यति ॥५७२॥
अन्नदत्वं ब्रह्मवित्त्वं शान्तिदान्त्यादिपात्रता ।
अग्निचित्त्वं धराधीशपूज्यता सर्वसम्मता ॥५७३॥
यस्यैते निखिलादिव्याः सन्ति तस्यैव तादृशे ।
समये कर्म तत्कर्तुं तत्कलत्रस्य शक्यते ॥५७४॥
विधवायास्तादृशस्य विधुरस्यैवि विश्वसृट् ।
पुत्रसंग्रहणे शास्त्रं कल्पयामास सूक्ष्मतः ॥५७५॥
अतिगुह्यमिदं शास्त्रं सर्वसाधारणं न तु ।
तादृशानां तु या काचिज्जन्मान्तरतपःफलात् ॥५७६॥

॥ समीचीनरण्डा ॥

मृते भर्तरि तूष्णीकं सर्वं निश्चित्य केवलम् ।
नश्वरं दुःखजनकं अज्ञानस्पदमध्रुवम् ॥५७७॥
सद्वाक्येन विनिश्चित्य किमे न वो ।
क्षान्तिशान्तिशमादीनां आलया सद्गुणाश्रया ॥५७८॥
वेदान्तवाक्यश्रवणं कुर्वन्ती महतां सताम् ।
वसन्ती निकटे नित्यं जगदेतच्चराचरम् ॥५७९॥

कं खं भूर्द्यौस्तथा वायुः पुष्पवन्तौ सुरासुरान्।
वृकं खरं खगं छागं पश्यन्ती ब्रह्म शाश्वतम् ॥५८०॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दलक्षणम्।
सर्वोपनिषदां सारं सर्वोपनिषदीरितम् ॥५८१॥
भेदं सर्वं परित्यज्य सोऽहं भावनयैव हि।
विभावयन्ती सततं स्वात्मत्वेन समस्ततः ॥५८२॥
सुखं दुःखं भवं भावं भावाभावौ तथैव च।
विपत्तिमविपत्तिं च द्वन्द्वाद्वन्द्वे लयालयौ ॥५८३॥
शत्रुं मित्रं तथानुष्णमुष्णं तेजस्तमस्तथा।
सिद्धान्तपूर्वपक्षौ च भेदराहित्यतोऽनिशम् ॥५८४॥
समदृष्ट्या प्रपश्यन्ती परत्वमपरत्वकम्।
कामं क्रोधादिकं चापि रागद्वेषादिकं परम् ॥५८५॥
लाभालाभौ च सततं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम्।
एकमेवेति मन्वाना द्वितीयं नेति सूक्ष्मतः ॥५८६॥
मन्यमाना महाभागा महती ब्रह्मवादिनी।
जातिं मानं च गर्वं च जन्मवर्णाश्रमादिकम् ॥५८७॥
अहं भावं स्वकीयत्वं त्यक्त्वा विस्मृत्य सत्वरम्।
विमर्शमात्रमाणैव सर्ववस्तुषु केवलम् ॥५८८॥
कामभिक्षान्नि नात्यन्ताग्रहया येन केनचित्।
लब्धेन प्राणवृत्तिं तां कुर्वन्ती च सुसंस्थिता ॥५८९॥
नित्यतुष्टा नष्टदुःखा पूर्णकामा च मन्त्रतम्।
अदः पूर्णमिदं पूर्णं पूर्णात्पूर्णं वदिस्तथा ॥५९०॥

अन्तः पूर्णमधः पूर्णमूर्ध्वं पूर्णं च तेन हि।
परेण ब्रह्मणा तेन स्वयं तद्ब्रह्म किं कस्तौ ॥५६१॥
नेतःपरमहं स्यस्मिन्वेति बुद्धिः परा दृढा।
रण्डापि सा सर्वधन्या सदा शास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥५६२॥
यस्याः स्यात्काङ्क्षितं वस्तु परमिष्टं ममेति न।
सैवं साक्षात्परं ब्रह्म सर्वं(च) ह्यप्रयोजकम् ॥५६३॥
तच्चर्याकालनिष्ठाद्याः सर्वधन्याः सदा शनैः।
स्वीकार्याः स्युर्विशेषेण तस्यां बुद्धिं तु मानुषीम् ॥५६४॥
न कुर्यादेव धर्मेण सा ब्रह्मैव न संशयः।
न यस्याः स्वं परं चेति परमाणोऽप्यहङ्कृतिः ॥५६५॥
देहे दुःखसुखे न स्तः सेयमव्याकुला स्मृता।
सर्वप्राणिसमा दुःखसुखतुल्या निराकुला ॥५६६॥
निराशा निर्ममा साध्वी रण्डाऽपीथं विशिष्यते।
दुर्व्यापारमकृत्वैव परेषां स्वहिताय वै ॥५६७॥
[illegible]सिक्षेत्रगृहक्षोणी विषये निस्पृहा च या।
[illegible]ापि रण्डा समीचीना प्राकृताभिः समा न तु ॥५६८॥
[illegible]दं कृत्यमिदं कार्यमिदं शास्त्रमिदं परम्।
[illegible]दं युक्तमिदं न्याय्यं इदं धर्म्यं सनातनम् ॥५६९॥
[illegible]प्रदेयं देयमिदं अवाच्यं वाच्यमेव च।
[illegible]नुष्ठेयं च तद्भिन्नं क्रेयमक्रेयमेव च ॥६००॥
[illegible]श्राव्यं श्राव्यमित्येतज्ज्ञानं वस्य निरीक्षणम्।
[illegible]नुष्ठानं विशेषेण यस्याः स्युः साप्यकाल्मषः ॥६०१॥

इयं रण्डाप्यरण्डेव ज्ञात्री धर्मपरा सती।
सर्वज्ञात्र्यपि या नूनं दुर्बुद्ध्या सततं कलिम् ॥६०२॥
स्वजनैः ज्ञातिभिस्सद्भिः पितृभ्यां बान्धवैः परैः।
कुर्वंती सततं पीडां तद्द्रव्यहरणेच्छया ॥६०३॥
दुर्व्यापारादिना तेषां मृत्युस्सा सार्वकालिकी।
तादृशी धार्मिको राजा स्वदेशादन्यतो नयेत् ॥६०४॥
तत्कृता दुष्क्रियास्सर्वा मार्जयित्वाऽथ सत्क्रियाः।
कारयेदेव विधिना सद्धर्मस्थापनाय वै ॥६०५॥
असत्क्रियैककर्तारं असद्वाक्यैकवादिनम्।
सद्दूषकं दुष्कर्मबोधकं राष्ट्रतो नयेत् ॥६०६॥
निष्ठीवन्तं सभामध्यात्सभायां निर्भयेन वै।
ताम्बूलचर्वणपरं वाक्येनोद्वासयेत्ततः ॥६०७॥
कल्याणराजसदसि रागेण यदि वा क्षुतन्।
अपानयन्त्वा दुर्बुद्धिं तूष्णीकं हि ततस्तु तम् ॥६०८॥
सद्यस्स्थापयित्वैव तत्रदर्भैर्भुवं दहेत्।

॥ सभायां एकस्मिन् अन्यस्यपतने ॥

सभानृपवने जाते निद्रया यस्य कस्य वा ॥६०९॥
तद्वस्त्रं सहसाच्छित्वा वेष्टयित्वा शिरोऽस्य वै।
विसर्जयित्वा दूरेऽथ तं दूरीकृत्य तत्परम् ॥६१०॥
मद्भस्य पृष्ठे हस्तेन तां भूमिं च ततः परम्।
प्रोक्ष्योद्धृत्याथवान्पांसून् बहिर्गेहाद्विसर्जयेत् ॥६११॥

मृदन्तरेण भूयश्च पूरयेत्तां भुवं यथा।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥६१२॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छक्त्याचित्रान्नपड्रसैः।
आगामिसूतकं ज्ञात्वा गत्वा देशान्तरं त्वरन् ॥६१३॥
लौकिकं वैदिकं तत्र नित्यं नैमित्तिकं तु वा।
परस्य स्वस्य वा कर्म संप्राप्तं कुरुते यदि ॥६१४॥
कारयेद्वा विशेषेण यद्यद्देवाखिलं परम्।
तत्सूतककृतं नूनं भवेदेव न चान्यथा ॥६१५॥
कृतस्य सूतके यत्तु प्रायश्चित्तमुदीरितम्।
तथैवेहास्य कथितं कर्मणो ब्रह्मवादिभिः ॥६१६॥
तादृशं तमिमं राजा बलादाहृत्य सत्वरम्।
उत्तमेनैव दण्डेन दण्डयेद्धर्मसिद्धये ॥६१७॥
परप्रयोजनवशाद्वा प्राप्तायां (तु) नृपाच्छलात्।
चिराद्देशान्तरगतसूतकं नेति वै वदन् ॥६१८॥
दाप्यस्स्वातपणान्सद्यः तत्सत्यं चेत् तत्पुनः।
स्वयेदं दुष्कृतं दुष्टं किं कृतं तद्वठाद्यथा ॥६१९॥
न युक्तमेवं करणं तदिदानीं सहिष्णुना।
तदाद्य तावत्पर्यन्तकालह्यते विगर्हितम् ॥६२०॥
एवं जनानां पुरतो लज्जयेत्तं विगर्हयेत्।
सूतकी सन्परे देशे श्राद्धभुक् शुभकर्मणः ॥६२१॥
आर्त्विज्यं वैदिकस्यापि कुर्वन्यो वर्तते नराम्।
तमेनं वाल्लिशं मूढं सद्यो राजा विशेषतः ॥६२२॥

ग्राहयित्वा रोधयित्वा मासं वा पक्षमेव वा।
तमेवं पूर्ववत्कृत्वा लज्जयित्वा ततः पुनः ॥६३॥
तस्य स्वार्थधनं सम्यग्धृत्वा राष्ट्रात्प्रवासयेत्।
पत्न्यां रजस्वलायां यः श्राद्धं भुङ्क्तेऽतिकामतः ॥६४॥
स्वायोग्यतां लोपयित्वा जनानां सोऽयमल्पकः।
निष्कासितो धिक्कृतश्च मोचनीयः स्वकाद्गृहात् ॥६५॥
चतुर्विंशतिपणान्वापि दाप्यस्सर्वोऽथ वा भवेत्।
अमन्त्रनिपुणो मन्त्रैः कुग्रामेषु द्विजन्मनाम् ॥६६॥
वसतां कर्म सम्यग्वः कारयिष्यामि सन्ततम्।
संमन्त्र्यैवं प्रतिज्ञाप्य तथा कुर्वंश्च शाठ्यतः ॥६७॥
व्यामोहयन्वाक्यजालैः नित्यानुसरणादिना।
सेवया संचरन्नित्यं शास्त्रमार्गं विनाशयन् ॥६८॥
मन्त्रक्रियापरिज्ञानविकलो नटवच्चराम्।
तत्क्रियाभिनयान् कुर्वन् वैदिकोऽहमिति ब्रुवन् ॥६९॥
दुष्टोऽयमसतां मुख्यः सद्दूषणपरः पुनः।
अज्ञातशब्दार्थभयरहितः पामरो जडः ॥७०॥
ज्ञातो विप्रमुखाद्राजा सद्यस्तं भटवर्त्मना।
आनाययित्वा सन्ताड्य किं कृतं च त्वयाऽनिशम् ॥७१॥
विधानं न हि पुरतो कर्मणां विप्रसन्निधौ।
तूष्णीकं लोकविप्रत्वं नाशयिष्यसि केवलम् ॥७२॥
सर्वं वः कारयिष्यामीत्युक्तिमात्रेण तान् जडान्।
व्यामोहयित्वा पापात्मन् एवमुक्त्वा पुनश्च तम् ॥७३॥

कपोलयोस्ताडयित्वा तत्तद्ग्रामनिवासिनाम् ।
कार्याय कर्मजालस्य दक्षमेकं नियुज्य च ॥६३४॥
पश्चात्तस्यापि सर्वस्वं हृत्वा राष्ट्रात्प्रवासयेत् ।
विधवास्तामशिरस्नातां शिर स्नातां सुवासिनीम् ॥६३५॥
कदाचिदवशाद्दृष्ट्वा कुर्यात्सूर्यावलोकनम् ।
शिरःस्नानं पत्युः पित्रोः कृतश्राद्धदिनेषु सत् ॥६३६॥
पाकस्य हेतवे हि स्यात् न चेन्नास्त्येव किच तत् ।
प्रत्यब्दमात्रे भवति तदभावेऽपि केवलम् ॥६३७॥
शिरःस्नानं ग्रहणयोः पूर्वं चाप्यपरं परम् ।
द्विवारमपि यत्नेन तथा बन्धुमृतावृतौ ॥६३८॥
चतुर्थेऽहनि तद्धर्मनियमेन समासतः ।
तथैवापूर्वतीर्थेषु चण्डालस्पर्शनादिषु ॥६३९॥
अभ्यङ्गकालनैयत्यं आर्थिकं प्रभवेद्धि वै ।
अध्वराधन्तयोरेवं नान्यत्रासां तु मास्तकम् ॥६४०॥

॥ सुवासिनीनां शिरःस्नाननिषेधः ॥

सुमङ्गलीनां तत्स्नानं हरिद्रावर्जनेन चेत् ।
जलं श्मशानगर्तस्थं सत्यं स्याद्धरणीगतम् ॥६४१॥
यद्युद्धृतं भाण्डगतं चण्डालश्वपकस्थितम् ।
तत्क्षणादेव भवति तदा तस्मात्तथैव हि ॥६४२॥

॥ हरिद्रास्नानविधिः ॥

तथा स्नानं प्रकर्तव्यं अजस्रं तद्धरिद्रया ।
अजस्रं विहितं स्नानं रात्रौ चेत्तज्जले पुनः ॥६४३॥

दैवाकोर्ध्वैकचणकगतमेव न संशयः।
नासामाकण्ठमेव स्यादास्यस्य क्षालनं च तत् ॥६४४॥
भर्त्रा स्नानं नित्यमेव न मध्येऽह्नि(मध्यान्हे) विधीयते।
भर्तुः स्नानात्परं प्रातः होमकार्याय नव हि ॥६४५॥
होमाभावे यथेच्छं स्यात्सद्भवे पाकहेतवे।
पाकाभावेऽपि कालोऽयं सद्भवो वाथ तत्परः ॥६४६॥
मध्याह्नो नापराह्नः स्यात्सदा कुर्याद्धरिद्रया।
हरिद्रालेपने नित्यं वर्जन्या विदिशा दिशाम् ॥६४७॥
सर्वासां देवपत्नीनां तस्यादानं च धर्मतः।
कर्तव्यत्वेन विहितं हरिद्राया निरन्तरम् ॥६४८॥
विदिशां देवपत्नीनां चतसृणां दिशामपि।
हरिद्राकल्कलेशांस्तान् अक्षिप्स्वेवातिगर्वतः ॥६४९॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि नमस्कारप्रपूर्वकम्।
या स्नाति विधवा नूनं सत्यमेव भविष्यति ॥६५०॥
या करोति शिरःस्नानं जीवभर्त्री सुमङ्गली।
पतिघ्नी सा प्रकथिता तथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥६५१॥
विनाभ्यनुज्ञां भर्तुर्या चौपवस्तं करोति वै।
भर्तुरायुष्यमश्नाति सैषा पापालया स्मृता ॥६५२॥

॥ पतिव्रताधर्माः ॥

भर्तृशुश्रूषणं नार्याः परमो धर्म उच्यते।
नैतस्मादधिको धर्मो नैतस्मादधिको जपः ॥६५३॥

नैतस्मादधिकं दानं नैतस्मादधिकं तपः।
नैतस्मादधिकं तीर्थं नैतस्मादधिकं दमः ॥६५४॥
नैतस्मादधिकाः कृच्छ्राः नैतस्मादधिकास्सवाः।
मुक्त्वा तत्पतिशुश्रूषां तस्मादन्यन्न किंचन ॥६५५॥
धर्मं चरेदप्रयत्नेन साध्वी नारी पतिव्रता।
नैनमुच्चैः प्रभाषेत प्रियमेवास्य यच्चरेत् ॥६५६॥
अप्येनं कुपितं रोषात् प्रतिकुप्येत्कथंचन।
कठोरं निर्दयं क्रूरं निरनुक्रोशमक्षमम ॥६५७॥
ताडयन्तमहोरात्रं शपन्तमपि दुर्हृदम्।
न दूषयेन्न चाक्रोशेन्न क्रुध्येन्नशपेदपि ॥६५८॥
छायानुवर्तिनी नित्यं दुःखिते दुःखिता भवेत्।
सुखिते सुखिता तस्मिन् हृष्टे हृष्टा स्थिते स्थिता ॥६५९
शयिते शयिता सुप्ते पश्चात्सुप्ता स्वयं भवेत्।
आहूताऽतित्वरा गच्छेदपि कार्यं विहाय च ॥६६०॥
शस्तं सहस्तं गोप्यं वा गुह्यमावश्यकं तु वा।
ताम्बूलचर्वणं नित्यं अक्ष्णोरञ्जनमेव च ॥६६१॥
कुङ्कुमं चापि सिन्दूरं कज्जलं कञ्चुकं कचः।
कबरी च प्रशस्तं स्यात्सुगन्धं सकुसुमादिकम् ॥६६२॥
नित्यमावश्यकं स्त्रीणां सतीनां विधिचोदनात्।
भर्तरि प्रोषिते स्त्रीणां नालङ्कारो विधीयते ॥६६३॥
पतिव्रतानां धर्मोऽयं तत्पुरोऽलङ्कृतिः परा।
अन्वहं निरायास्नानं सिन्दूरं कुङ्कुमं शुभम् ॥६६४॥

घोषयित्वा विशेषेण यद्यत्तत्तस्य सञ्चितम्।
शनैः शनैरुपायेन समादायातिकौशलात् ॥८७॥
त्वां वयं मोचयिष्याम इत्युक्त्वा तत्कृताः पुरा।
यत्र तत्र क्रियास्तास्ता ज्ञात्वा तन्मुखतः पुनः ॥८८॥
चो(चौ)रान्तरादिदुष्टौघान् विज्ञाय तदनन्तरम्।
निगलेन पुनस्सम्यक् बन्धयित्वा यदा तदा ॥८९॥
ताडयित्वा स्थापयित्वा बन्धयित्वातिनिष्ठुरम्।
अखिलं तावक कृत्यं सम्यग्वदसि चेत्तदा ॥९०॥
निश्चयान्मोचयिष्यामो न चेन्मुचिस्तु तेन हि।
विचारमेवं संशोध्य पश्चाल्लब्धानि तन्मुखात् ॥९१॥
द्रव्याणि धर्मकृत्येषु योजयित्वा ततश्च तम्।
करमेकं पादमेकं खण्डयित्वा विमोचयेत् ॥९२॥
गजघोरं महाघोरे पल्वले गजसङ्कटे।
पुराकृते मादृशेऽस्मिन् कृतेऽथापि घने तथा ॥९३॥
पातयित्वा मनित्वैनं भ्रष्टाशस्तम्भमूलके।
काष्ठैर्निशातैः स्थूलैः हन्यादेवाविचारयन् ॥९४॥
पदूत्कोटने दुर्ग तत्काले समसि स्थिते।
नैपुण्यधावनपरं महणायागतान् जनान् ॥९५॥
[illegible] खड्गेन गृहीतभयशास्त्रजनैः।
घोरं [illegible] [illegible] प्रवासयेत् ॥९६॥
यदि [illegible] [illegible] कोऽपि तस्मिन्काले विशेषतः।
[illegible] [illegible] प्रवासयेत्[illegible]

यदि चेद् ब्राह्मणो दुष्टश्चोरस्तत्रापि हिंसकः।
तस्मिन्काले विशेषेण खण्डदण्डादिभिर्जनात् ॥६९८॥
गृहीतोऽयं हतान्कृत्वा तमेनं निगलेन वै।
बन्धयित्वा पीडयित्वा शोधयित्वा सदा तदा ॥६९९॥
संवत्सरात्परं यत्नात्कृत्वैवाक्षतमव्रणम्।
सर्वाङ्गवपनं कृत्वा घोषयित्वा पुरे स्वके ॥७००॥
गर्दभारोहणेनाथ राष्ट्रादस्माद्विसर्जयेत्।
सर्वेष्वपि च कार्येषु चातिक्रूरेषु केवलम् ॥७०१॥
कृतेष्वपि तथा तेन त्वक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत्।
स्त्रीणां न हिंसाविहिता चातिक्रूरेषु कर्मसु ॥७०२॥
बालघ्नीनां तु रागेण परेषां स्वस्य वा पुनः।
क्षुरशूलशिलावह्निविमर्दैकप्रदाहकैः ॥७०३॥
प्रघातनं प्रकथितं ब्राह्मणीनां [redacted] केवलम्।
केशानां लुञ्चनं कृत्वा छिन्नं कृत्वा यथातथम् ॥७०४॥
खदण्डध्वजशूलापस्मारचक्रादिभिः सदा।
गर्दभारोहणादेव देशादुच्चाटनं स्मृतम् ॥७०५॥
अजितोऽस्मीति वक्तारं जितं न्याये न शास्त्रतः।
सभायां [redacted] पराजित्य दूषयित्वा प्रवासयेत् ॥७०६॥
दुष्टं सतो दूषयन्तं स्वकार्यायान्वहं खलम्।
स्वधककापट्यकौटिल्यान्मोहयन्तमभीक्ष्णशः ॥७०७॥
भेदयन्तं भीषयन्तं हेतुवाक्यादिभीषणैः।
तत्सञ्जनाकारभाग्रं सज्जनद्वेषिणं तराम् ॥७०८॥

सत्क्रियाचरणव्याजदुष्टकार्यैककारिणम् ।
कोपेयं कर्कशं क्रूरं सामान्यद्रव्यहारिणम् ॥७०९॥
ग्रामद्रोहजनद्रोहसर्वद्रोहैकलोलुपम् ।
विद्याविहीनं पिशुनं पामरं पापचेतसम् ॥७१०॥
यत्नेन राजा निश्चित्य कालेन महता शनैः ।
जनवाक्येन महतां चर्यया भाषणे न च ॥७११॥
पूर्वोक्तान् शिक्षयेत्सम्यक् सत्पथे विनिवेशयेत् ।
तस्योपायांश्च वक्ष्यामि स्पष्टाय विशदाय च ॥७१२॥
स्वामिना स्वामिनं कार्यकाले तस्मिन्समागते ।
विवदन्तं समत्वेन सद्यस्सम्यक्प्रताडयेत् ॥७१३॥
अज्ञं सभायां विदुषा समत्वेनैव निर्भयम् ।
विवदन्तं धराधीशः सन्ताड्योद्वासयेद्बहिः ॥७१४॥
अश्रोत्रियं श्रोत्रियेण विवदन्तं सभास्वपि ।
तूष्णीं विनैव मर्यादां दमं कुर्यात्तु दुष्कृतेः ॥७१५॥
ग्रामे राष्ट्रे च सर्वत्र प्राधान्येन चिरास्सितान् ।
महात्मनो महाभागान् दुष्टान् केचन सद्वराः ॥७१६॥
मिलित्वा नक्रियाः पौर्वापर्यमर्यादया कृताः ।
यथादन्यथयन्तो वै नास्माकं सम्मतिः परा ॥७१७॥
इयमित्येव ये दुष्टा तान्सर्वान्निर्दयं नृपः ।
एकदा भीषयेच्चैव दण्डसङ्ग्रहमात्परम् ॥७१८॥

अनया निखिलाश्चापि सद्यश्शान्ता भवन्ति हि।
अनयानामभावे तु लोकोऽयं सुखमश्नुते ॥७१९॥
लोको यदा सुखी राजा तदा सर्वान्मनोरथान्।
अवशादेव लभते नात्र कार्या विचारणा ॥७२०॥
इतीदं कथितं शास्त्रं लोहितेन महात्मना।
हिताय सर्वलोकानां सारमुद्धृत्य शास्त्रतः ॥७२१॥

श्रीलोहितस्मृतिः समाप्ता।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ नारायणस्मृतिः ॥

प्रथमोऽध्यायः

नारायणदुर्वाससो सम्वादः

एकदा नैमिषारण्ये महर्षिगणसेविते ।
नारायणो महायोगी दुर्वासमसमपृच्छत ॥ १ ॥
भगवन् मुनिशार्दूल सर्वधर्मभृतावर ।
काले कलियुगे पुण्यधर्मे लुप्ते भुवस्थले ॥ २ ॥
सर्वपापप्रशमनी प्रायश्चित्तविधिः कथम् ।
पापाः कतिविधाः प्रोक्ता विस्तरेण वदस्व मे ॥ ३ ॥

दुर्वासा उवाच ।

नारायण महायोगिन शृणु विस्तरतो मम ।
कृते युगे चतुष्पादो धर्मो वर्द्धति वर्द्धति(ते) ॥ ४ ॥
त्रेतायुगे तु सम्प्राप्ते पादहीनो भवेद्वृषः ।
द्वापरे समनुप्राप्ते द्विपादाभ्यां वृषस्थितः ॥ ५ ॥
ततः कलियुगे प्राप्ते पादेनैकेन तिष्ठति ।
ततः कृतो युगःश्रेष्ठो मध्यमस्तदनन्तरम् ॥ ६ ॥

अधमो द्वापर[illegible]गः कलिस्स्यादधमाधमः।
कृते कृते युगे पापे तद्देशं संपरित्यजेत् ॥ ७ ॥
त्रेतायां ग्राममात्रं तु द्वापरे कुलमुत्सृजेत्।
कलौ युगे विशेषेण कर्तारं [illegible] परित्यजेत् ॥ ८ ॥
कृतत्रेताद्वापरे (षु) तु मरणान्तादिनिष्कृतिः।
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते मरणान्ता [illegible] निष्कृतिः ॥ ९ ॥
पापा नवविधाः प्रोक्ताः सावधानतया शृणु।
ब्रह्महत्या [illegible]रापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥१०॥
य एते (स्सह) संयोगी महापातकिनस्त्विमे।
अतिदेशात्समीपा यदातिदेशिकमुच्यते ॥११॥
एतत्प्रकाशपापानां रहस्यानां तथैव च।
गोवधादिक्रमेणोयदुपातकमुच्यते ॥१२॥
यच्चान्तं तिलधान्यादि विक्रयात्पापमात्मनः।
सङ्करीकरणं प्राहुः कन्यापहरणादिकम् ॥१३॥
मलिनीकरणं चैव चण्डालीगमनादिकम्।
अपात्रीकरणं प्राहुः दुरन्नादेस्तु भोजनम् ॥१४॥
जातिभ्रंशकरं प्राहुस्तथा दुर्मरणादिकम्।
प्रकीर्णकमिति प्रोक्तं पापानि नवधा क्रमात् ॥१५॥
महतां पातकानान्तु प्रायश्चित्तं कलौ युगे।
द्वयुतैरेव गोदानैर्मत्या विप्रवधे कृते ॥१६॥
अमत्यायुतगोदानैर्निष्कृतिः परिकीर्तिता।
सुरापानं द्विजः कृत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१७॥

स्वर्णस्तेयेऽपि तद्वत्स्यान्मातृगन्तुस्तथैव च।
अभ्यासे द्विगुणादीनि कल्पनीयानि सत्तम ॥१८॥
गोवधे च कृते विप्रैरमत्या तु पराकम्।
मत्या चान्द्रायणं कार्यं नान्यथा मुच्यते त्वघात् ॥१९॥
तिलविक्रयणे चान्द्रं सम्यं तण्डुलविक्रये।
निक्षेपहरणे विप्रश्चान्द्रायणमथाचरेत् ॥२०॥
चण्डालीगमने विप्रस्त्वज्ञानान्मासमात्रतः।
सेतुस्नानं ततः कृत्वा शुद्धिमाप्नोत्यसंशयः ॥२१॥
मत्या द्विमासमभ्यासे वत्सरं सेतुमज्जनम्।
व्यतिपातादिदुष्टान्नभोजने न कृते यदि ॥२२॥
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा शुद्धिमाप्नोत्यसंशयः।
विद्युदग्न्यादिभिर्विप्रो मत्या प्राणैर्वियुज्यते ॥२३॥
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं तत्पुत्रादिर्यथाविधि।
मत्या त्वशीतिकृच्छ्राणि कृत्वा संस्कारमाचरेत् ॥२४॥
अमत्या चत्वारिंशत्कृच्छ्राणीत्येवमाहुर्महर्षयः।
तुलाप्रतिग्रहे लक्षगायत्रीजपमाचरेत् ॥२५॥
हिरण्यगर्भग्रहणे त्वष्टलक्षं जपेद्बुधः।
प्रतिग्रहे कल्पतरोरष्टलक्षजपं चरेत् ॥२६॥
गवां चैव सहस्रं तु प्रतिगृह्य द्विजाधमः।
नवलक्षं जपं देव्याः प्रातस्स्नात्वा समाचरेत् ॥२७॥
हिरण्यकामधेनुं तु प्रतिगृह्य द्विजाधमः।
अष्टलक्षं जपेद्देवीं मन्त्रात्तस्यापनुत्तये ॥२८॥

हिरण्याश्वस्य च तथा ग्रहणे भूसुराधमः ।
अष्टलक्षजपं कृत्वा शुद्धिमाप्नोति पूर्वजः ॥२९॥
हिरण्याश्वरथं गृह्य वसुलक्षजपं चरेत् ।
हेमस्तम्भेरमं गृह्य वसुलक्षजपाच्छुचिः ॥३०॥
हेमहस्तिरथस्यैव ग्रहणे मुनिनन्दन ।
कूष्माण्डलक्षहोमेन शुद्धोभवति पूर्ववत् ॥३१॥
पञ्चलाङ्गलदानस्य ग्रहणे विप्रनन्दनः ।
दशलक्षजपाद्देव्याः सम्यगेव समाचरेत् ॥३२॥
प्रतिगृह्य धरादानं दशलक्षजपं चरेत् ।
विश्वचक्रस्य ग्रहणे तत्पापप्रशमाय च ॥३३॥
प्रयुतेनाभिषेकेण शम्भोश्शुद्धिमवाप्नुयात् ।
लतायाः कल्पसंज्ञायाः ग्रहणे विप्रनन्दन ॥३४॥
लक्षद्वादशवारं तु गायत्रीजपमाचरेत् ।
सप्तसागरसंज्ञस्य दानस्यैव प्रतिग्रहे ॥३५॥
देव्या द्वादशलक्षं तु जपं विप्रस्समाचरेत् ।
प्रतिग्रहे धर्मधेनोस्तत्पापस्य विशुद्धये ॥३६॥
देवीद्वादशलक्षं तु जपं विप्रस्समाचरेत् ।
महाभूतघटस्यैव ग्रहणे विप्रनन्दन ॥३७॥
लक्षमात्रं जपेद्देवीं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
एवमादिमहापापान्यनेकानि च सन्ति हि ॥३८॥
यो विप्रो धनलोभेन प्रतिगृह्णाति कामतः ।
नरके नियतं वासः कल्पान्तं परिकीर्तितः ॥३९॥

[illegible] विकरम्।
[illegible] ॥४॥
पापान्यनेकान्युक्तानि तत्र तत्र महर्षिभिः।
निष्कृतिश्चापि कथिता [illegible] ॥५॥
यच्च ते परमं गुह्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥

इति श्रीनारायणस्मृतौ पापविवरणं नाम
प्रथमोऽध्यायः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

बुद्धिकृताभ्यासकृतपापानां प्रायश्चित्तवर्णनम्

नारायणउवाच।

भगवन्मुनिनाथ त्वं मयि वात्सल्यगौरवात्।
पुनर्वदस्व गुह्यं मे शरणं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥१॥
मत्यामत्या तथा पापान् अत्यन्ताभ्यासतस्तथा।
बहुकालाभ्यासतश्च यत्पापं मनुजैः कृतम् ॥२॥
तत्तत्कालानुगुण्येन प्रायश्चित्तं वदस्व मे॥

दुर्वासा उवाच।

नारायण महायोगिन् प्रायश्चित्तं यदीरितम्।
तदबुद्धिकृते पापे द्विगुणं बुद्धिपूर्वतः ॥३॥
अभ्यासे त्रिगुणं चैवमत्यन्ताभ्यासतस्तथा।
चतुर्गुणं बहोः कालात् षड्गुणं परिकीर्तितम् ॥४॥

एतद्वर्षात्पुराज्ञेयं वर्षादूर्ध्वं न निष्कृतिः ॥ ५ ॥
तस्मात्पापं न कर्तव्यं नरैर्नरकभीरुभिः ।
वर्षात्परं [redacted] सामान्यपापाभ्यासात्पतत्यसौ ॥ ६ ॥
तस्मात् त्रिवर्षपर्यन्तं द्विगुणत्रिगुणादिकम् ।
कल्पनीयं प्रयत्नेन प्रायश्चित्तं मनीषिभिः ॥ ७ ॥
ततः परन्तु तद्भावमधिगच्छत्यसंशयः ।

इति श्रीनारायणस्मृतौ प्रायश्चित्तवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

नानाविधदुष्कृतिनिस्तारोपायवर्णनम्

नारायण उवाच ।

दुर्मांसभक्षणेनैव दुस्संसर्गविशेषतः ।
दुष्कृत्यशतसाहस्रात् दुराचारसहस्रतः ॥ १ ॥
अत्यन्तमलिने काये बहुकालं गतेऽपि च ।
नानाबन्धुविनिन्दाभिस्त्यागादात्मजनैरपि ॥ २ ॥
परैरपि च संत्यागात् धनहान्या विशेषतः ।
अतिनिर्वेदमापन्नः काले बहुदिने गते ॥ ३ ॥
प्रपन्नश्शरणं कश्चित् कथं निष्कृतिरीरिता ।

दुर्वासा उवाच ।

वास्तवाद्वाऽवास्तवाद्वा यः पुमान् शरणं व्रजेत् ॥ ४ ॥

तं त्यजेच्छक्तिमान्सोऽयमाब्रह्मं नरके वसेत्।
शरणागतसंत्राणमवश्यं कार्यमेव हि ॥५॥
यावत्त्रिवर्षं पतितोऽप्यात्मभावं न मुञ्चति।
अभ्यासस्यानुसारेण कल्प्यं निष्क्रयणं भवेत् ॥६॥
आत्मभावविहीनस्स्याद्वत्सः परमनातुरः।
चतुर्थवर्षपर्यन्तं कथंचित्पूर्वनिष्कृतिः ॥७॥
ततः परं न कर्मार्हः कृतनिष्क्रयणोऽप्ययम्।
तथाऽपि पापबाहुल्यात् नालं पूर्वोक्तनिष्कृतिः ॥८॥
द्वितीयाब्दं समारभ्य सप्तमाब्दावधि द्विजः।
प्राजापत्यद्वयं तस्य नित्यं स्याद्दिनसंख्यया ॥९॥
सौदर्शिनीं तु संस्थाप्य कलशाद्विशतेन तु।
कूष्माण्डशतहोमेन गणहोमशतेन च ॥१०॥
पाद्मियोद्रयाणां च होमानां शतसंख्यया।
तथैव विरजाहोमशतेन जुहुयाच्छुचिः ॥११॥
भूगोगर्भविधानेन पटगर्भविधानतः।
स्वयं पितावाथान्यो वा जातकर्मादि भावयेत् ॥१२॥
प्राप्योऽशीप्यागमहितं प्रायश्चित्तमिदं चरेत्।
नान्यथा शुद्धिमाप्नोति यथा भुवि सुराघटः ॥१३॥
एवमेव नवाब्दान्तं प्रायश्चित्तविनिर्णयः।
दशमाब्दं समारभ्य यावद्विंशतिवर्षकम् ॥१४॥
अघमर्षणमाध्यैर्दर्भिस्स्नानमज्जनैः।
सहस्रकलशस्नानैः ...... प्रणवेन च ॥१५॥

ततः पूर्वोक्तहोमैश्च प्राच्योदीच्याङ्गसंयुतां ।
पूर्ववन्निष्कृतिं कृत्वा पञ्चगव्यं विशेषतः ॥१६॥
दशदानं भूरिदानं सहस्रब्रह्मभोजनम् ।
ततो गङ्गाजले स्नानं सेतुदर्शनमेव वा ॥१७॥
एवं कृते विशुद्धोऽभूत् पूर्ववद्द्विजनन्दनः ।
स्वकर्मपरकर्मार्हो भवेदेव न संशयः ॥१८॥
विंशतेर्वर्षतः पश्चात् आर्त्तो वाऽनार्त्त एव वा ।
नात्यन्तमलिनस्याहुः प्राजापत्यं महर्षयः ॥१९॥
इति श्रीनारायणस्मृतौ नानाप्रायश्चित्तवर्णननाम
तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारायण उवाच ।
योगिनाथर मत्स्वामिन् सर्वज्ञ करुणानिधे ।
यदस्य तपतां श्रेष्ठ मयि वात्सल्यगौरवात् ॥ १ ॥
विंशतिवर्षतः पश्चात् अवीवार्तस्समागतः ।
नैष्कृतिं कथं तस्य स्यादित्येवं ब्रवीषि मे ॥ २ ॥
दुर्वासा उवाच ।
रोषसंरक्तनयनः कुटिलभ्रूलतायुतः ।
पुरस्तोद्रयोऽग्नीव विस्फुलिङ्गितलोचनः ॥ ३ ॥

नारायणमिदं प्राह वाक्यानि क्रूरया भृशम् ।
किमरे मूढ दुष्टात्मन् उपर्युपरि पृच्छसि ॥४॥
परिहासो भवेत्किंवा न सहे कोपमुल्बणम् ।
पुनरेवं न प्रष्टव्यं यदि पृच्छसि दुर्मते ॥५॥
मत्कोपजातकालाग्नौ मूर्धा ते व्यपतिष्यति ।
इति ब्रुवन्तं कोपेन दुर्वाससमनन्यधीः ॥६॥
उत्प्रवेपितसर्वाङ्गो भयविह्वललोचनः ।
पपात पादयोस्तस्य शस्त्रच्छिन्न इव द्रुमः ॥७॥
ततः करुणया दृष्ट्वा दुर्वासास्तु महामुनिः ।
पाणिभ्यां तं समुद्धृत्य ममार्ज मुखमञ्जसा ॥८॥
ततो धैर्यं समालम्ब्य नारायणमुनौ स्थिते ।
प्रीत्योवाच स दुष्टात्मा नारायणमहामुनिम् ॥९॥
तात वत्स न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ।
कुटिलं पृच्छमानं त्वां मत्वा कोपो महानभूत् ॥१०॥
त्वदुक्तिं संपरिज्ञाय मम चित्तं सुनिर्मलम् ।
सञ्जातमिह निश्शंकं पृच्छ मां यद्यदिच्छसि ॥११॥

इति श्रीनारायणस्मृतौ प्रायश्चित्तवर्णनं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

दुष्प्रतिग्रहादिप्रायश्चित्तवर्णनम्

नारायणः उवाच ।

भगवन्मुनिशार्दूल नमस्ते रुद्रमूर्तये ।
कालाग्निसदृशप्रख्य कोपनाय नमोनमः ॥ १ ॥
प्रसीद मे महर्षे त्वं पाहि मां शरणागतं ।
न कौटिल्यादहं पृच्छे नाहङ्कारान्महामुने ॥ २ ॥
हिताय सर्वलोकानां पृष्टवानस्मि साम्प्रतम् ।
प्रसन्नो यदि वात्सल्यात् प्रष्टव्यं किंचिदस्ति मे ॥ ३ ॥
कोपो न स्याद्यदि पुनः मामनुज्ञापय प्रभो ।

दुर्वासा उवाच ।

तात मां पितरं विद्धि गुरुमाचार्यमेव वा ॥ ४ ॥
मम कोपः प्रशमितः तव वास्तवदर्शनात् ।
अतस्त्वं भयमुत्सृज्य पृच्छ मां यद्यदिच्छसि ॥ ५ ॥

नारायण उवाच ।

पृच्छन्तं मामतीवार्तं उत्तरं दातुमर्हसि ।
सर्वपापप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ ६ ॥
चिराभ्यस्तमहापापदूषितानां दुरात्मनाम् ।
दुर्देशगमनेनैव दुष्प्रतिग्रहकोटिभिः ॥ ७ ॥
म्लेच्छान्त्यश्वपचस्त्रीभिः संसर्गाच्चिरकालजः ।
अपेयमद्यपानाद्यैर्दुष्टमांसादिभक्षणैः ॥ ८ ॥

आर्त्तानां का गतिर्ब्रह्मन् वदस्व करुणानिधे।

दुर्वासाः उवाच।

शृणुष्व सारः पृष्टोऽद्य लोकानां हितकाम्यया ॥९॥
संग्रहेण प्रवक्ष्येऽद्य सावधानतया शृणु।
युगेष्वपि च सर्वेषु सत्त्वराजसतामसाः ॥१०॥
नित्यं गुणाः प्रवर्द्धन्ते तत्प्रभावं वदामि ते।
सत्त्वप्रवर्त्तका भूयः प्रवर्द्धन्ति(न्ते)कृते युगे ॥११॥
सात्त्विकानान्तु वक्ष्यामि गुणानां कृत्यमद्भुतम्।
स्त्रीपुंसंयोगमात्रेण स्त्रिया गर्भः प्रजायते ॥१२॥
तस्मिन्निविशते जीवः कर्मपाशवशंगतः।
तस्य प्रवेशकालेतु सात्त्विको यदि वै भवेत् ॥१३॥
जातमात्रस्य तस्यैव सात्त्विकत्वं भवेद्ध्रुवम्।
ततः कतिपये काले बुद्धिस्सत्त्वे प्रवर्त्तते ॥१४॥
सत्त्वप्रवर्त्तनात्सोऽयं सत्कृत्यमनुतिष्ठति।
स्नानं सन्ध्या जपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥१५॥
अतिथ्याराधनादीनि प्रवृध्यन्ति (प्रवर्धन्ते) हि नित्यशः।
नैव पापसमाचारे प्रवृत्तिस्स्यात्कदाचन ॥१६॥
कालधर्मं गते तस्मिन मुक्त्यैश्वर्यं भवेद्ध्रुवम्।
तस्य प्रवेशकालेतु राजसो यदि वै भवेत् ॥१७॥
रजोगुणवशीतात्मा जायते भुवि मानवः।
पशुपुत्रान्नकामः कामभोगसुखानि च ॥१८॥

त्वान्ते दिवमासाद्य स्वर्गादिसुखमेष्यति ।
यंकालो मिश्रसत्त्वराजसो यदि वै भवेत् ॥१६॥
धराजससम्मिश्रो जायते भुवि मानवः ।
ासक्तः कंचित्काले कचित्सात्त्विककृत्यवान् ॥२०॥
ते स्वर्गसुखं भुक्त्वा ब्रह्मणा सह मुच्यते ।
प्रवेशकालस्तु तामसो यदि वै भवेत् ॥२१॥
सा मूढचित्तस्तु जायते भुवि मानवः ।
यं कलहकारी च नित्यं द्रोहैकतत्परः ॥२२॥
ारपरद्रव्यपरिग्रहपरायणः ।
यं पापसमाचारः परत्रेह न शर्मकृत् ॥२३॥
न्ते नरकं भुक्त्वा जायते भुवि कुत्सितः ।
लिस्तु तामसाचारः प्रायेणात्र तु तामसाः ॥२४॥
निष्यन्ति विशेषेण सत्त्वोद्रिक्ताः कचित्कचित् ।
शशिक्षयकरः कलिर्दोषनिधिस्ततः ॥२५॥
ादव्रतोपवासाद्यं कलौ नैव समाचरेत् ।
याज्ञायादिरूपेण प्राजापत्यादिकं चरेत् ॥२६॥
तीयवर्षमारभ्य यावद्विंशतिवत्सरम् ।
ापापोपपापादि युक्तस्त्वार्तो भवेद्यदि ॥२७॥
ीतिहोमसंयुक्तमघमर्षणमेव च ।
इसकस्त्रस्नानमच्छिद्रशतमज्जनम् ॥२८॥
चगव्यप्राशनं च सर्वं कृत्वा विशुद्ध्यति ।
ं यः कुरुते सम्यक् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२९॥

नारायण उवाच ।

सहस्रकलशानां स्थापनं कथमुच्यते ।
कथं मण्डलसंस्थानं विस्तरेण वदस्व मे ॥३०॥

दुर्वासा उवाच ।

शृणु मे विस्तरेणेह नारायण महामुने ।
सहस्रकलशानां स्थापनस्य विधिक्रमम् ॥३१॥
यत्कृत्वा सर्वतापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।
नद्यास्तीरे तटाकस्य तीरे वा सुमनोहरे ॥३२॥
शालां विशालां विधिवत् षट्त्रिंशत्पदसंमिताम् ।
षोडशस्तम्भसंयुक्तां प्रपां तत्र प्रकल्पयेत् ॥३३॥
कदलीस्तम्भपूगालिमिश्रितां सुमनोहराम् ।
कृत्वा ततो वितानाद्यैस्तोरणाद्यैश्च भूषयेत् ॥३४॥
चतुरश्रां मध्यदेशे दशपादयुतां भुवम् ।
वेदिकां कल्पयेत्सम्यक् चतुरङ्गुलमुन्नताम् ॥३५॥
ईशान्यादि चतुर्दिक्षु तथैव परिकल्पयेत् ।
गोमयेन समालिप्य निम्नोन्नतविवर्जिताम् ॥३६॥
पञ्चरङ्गगणैरलंकृत्य व्रीहिभारैस्ततस्तरेत् ।
सुधूपितान् सूत्रवस्त्रवेष्टितान् सुमनोहरान् ॥३७॥
कलशान् द्विशतं सम्यक् कलशाक्षतशोभितान् ।
पञ्चत्वक्पल्लवैर्मिश्रान् नालिकेराम्रपल्लवैः ॥३८॥
सुकूर्चैश्च शुचौ देशे स्थापयित्वाऽथ देशिकः ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा संप्रोक्ष्य कलशानथ ॥३९॥

एकं कलशमादाय स्थापयेद्व्रीहिमध्यतः।
परितश्चाष्टकलशान् विरलान् परिकल्पयेत् ॥४०॥
ततो विंशतिसङ्ख्याकान् द्वात्रिंशत्सङ्ख्यकांस्ततः।
चत्वारिंशच्च कलशान् चक्राकारान्यथाक्रमम् ॥४१॥
ततः शिरःप्रदेशे तु प्राच्यादिचतुरोन्यसेत्।
मध्ये त्वेकं तु संस्थाप्य पार्श्वयोरुभयोरपि ॥४२॥
कलशत्रितयं दक्षे वामे च कलशत्रयम्।
चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे कलशानां तु पञ्चकम् ॥४३॥
विन्यस्य मध्यमे त्वेकं तथैकं शिरसि न्यसेत्।
ततस्त्वधः प्रदेशे तु रेखाद्वयसमाकृतीन् ॥४४॥
कलशान्दश विन्यस्य तथैवोत्तरतश्चरेत्।
चक्रस्याधः प्रदेशे तु स्थाप्यैकं कलशं ततः ॥४५॥
परितः परिकल्प्याथ कलशान्यष्टथाक्रमम्।
पार्श्वयोरुभयोस्तद्वत् प्रत्येकं कलशद्वयम् ॥४६॥
अधस्तात्कलशानां तु षट्कस्य त्रितयं तथा।
अधस्तात्कलशद्वन्द्वं स्थापयेद्विप्रसत्तमः ॥४७॥
एवं कृते भवेत्पद्मं साक्षाच्चक्राकृतिः क्रमात्।
ईशान्यादिचतुर्दिक्षु कल्पयेदेवमेव हि ॥४८॥
पञ्चचक्राकृतिरियं महापापप्रणाशिनी।
उपपातकदोषघ्नी अतिपातकवारिणी ॥४९॥
दुर्देशगमने चैव दुःस्त्रीसङ्गमे(मके)षु च।
समुद्रलङ्घने चैव नौयानमवलम्ब्य च ॥५०॥

द्वीपान्तरगतौ चैव चण्डालस्त्रीनिषेवणे।
सन्ध्यादिकर्मणां चैव श्राद्धादीनां च लोपने ॥१
म्लेच्छादिसहावासे तुलुष्कादिसमागमे।
सर्वेषामपि पापानामियमेका हि निष्कृतिः ॥१
भक्त्या परमया युक्त इमां निष्कृतिमाचरेत्।
पराकमप्यकुर्वाणः पञ्चविंशतिसङ्ख्यया ॥१
तमत्रिंशतपूर्वं तु भूगर्भं प्रथमं चरेत्।
गोगर्भं घटगर्भं च सर्वं साङ्गं समाचरेत् ॥१
मानवः पूर्ववच्छुद्धो जायते स्फटिकोपमः।
स्वकर्म परकर्माहो जायते तदनन्तरम् ॥१

इति श्रीनारायणस्मृतौ विशेषविधानंनाम पञ्चमोऽध्यायः।



अथ षष्ठोऽध्यायः

नारायण उवाच।

भग्नभाण्डस्नानं कथं कार्यं महामुने।

दुर्वासा उवाच।

स्वर्णराजतताम्रैश्च मृण्मयान्वा विशेषतः ॥१॥
सम्पूर्णघटान् भग्नछिद्रान् साल्पद्वारान्युपूरितान्।
उदयगन्धपान् घटस्थान् तण्डुलादिपरिप्लुते ॥२॥

दिश्यैशान्यां तथाऽऽग्नेय्यां निर्ऋत्या मरुतो दिशि ।
मध्ये च स्थापयेद्विप्रः कलशान् द्विशतं क्रमात् ॥ ३ ॥
शुद्धोदकैस्समापूर्य नालिकेराम्रपल्लवैः ।
समलङ्कृत्य विधिवत् वरुणं च प्रचेतसम् ॥ ४ ॥
आवाह्यापां पतिं चैव सुरूपिणमथार्चयेत् ।
नैवेद्यान्तैस्तमभ्यर्च्य ऋत्विग्भिस्सहदेशिकः ॥ ५ ॥
शन्नोदेवीस्त्वापो वा द्रुपदादिव इत्यपि ।
आपोहिष्ठाहिरण्याद्यैर्मन्त्रैस्सम्मन्त्र्य मन्त्रवित् ॥ ६ ॥
गायत्र्या प्रणवेनैव त्ववरोहणमार्गतः ।
सकूर्चैःश्च (?) स्थानं प्रोक्षणमेव वा ।
कारयेत् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ [illegible] ॥

इति श्रीनारायणस्मृतौ सहस्रकलशाभिषेको नाम षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच ।
कलौ [illegible] कानि कर्माणि वर्ज्यानि परिचक्ष्व मे ।
दुर्वासा उवाच ।
शृणु नारायण ब्रह्मन् सावधानतयाऽद्य मे ॥ १ ॥
कलौ तु पापबाहुल्यात् वर्जनीयानि मानवैः ।
विधवापुनरुद्वाहो नौयात्रा तु समुद्रगः ॥ २ ॥

आतिश्य (? प्राशनस) करणार्थं तु मधुपर्के पशोर्वधः।
शूद्रान्नभोज्यता विप्रैः तीर्थसेवी च दूरतः ॥ ३॥
सर्ववर्णेषु भिक्षूणां भैक्षाचर्यं विधानतः।
ब्राह्मणादिषु गेहेषु शूद्रस्य पचनक्रिया ॥ ४॥
भृग्वग्निपतनं चाष्टौ कर्माण्येतानि वर्जयेत्।
अवर्जयित्वात्वेतानि शास्त्रोक्तमिति बुद्धितः ॥ ५॥
कलौ युगे विशेषेण पतितस्स्यान्न संशयः।
कृतादौ तु महीपालो वेनो नाम नृपोत्तमः ॥ ६॥
शशास पृथिवीं सर्वां सकुलाद्रिमहार्णवाम्।
दुरात्मा स तु कृत्स्नेन ब्राह्मणानन्वशासत ॥ ७॥
यूयमद्यप्रभृति वै समुद्रे यानमार्गतः।
द्वीपाद्द्वीपान्तरं गत्वा कुरुध्वं सर्वविक्रयम् ॥ ८॥
विधवापुनरुद्वाहं यथेच्छं न विचारणा।
पशुभक्षमातिथ्यव्याजेनाचरथ द्विजाः ॥ ९॥
गृहे पचन्तु युष्माकं शूद्रा श्राद्धेऽपि नित्यशः।
तीर्थसेवाव्याजमात्रात् त्यजध्वं श्रौतकर्म च ॥१०॥
यतयस्सर्ववर्णेषु भिक्षां कुर्वन्तु कामतः।
ब्राह्मणादिशूद्रगेहेषु भुञ्जन्तु च यथेच्छया ॥११॥
कालाग्निहविषो वृद्धाः भृगुपातं चरन्तु भोः।
यो मच्छासनमत्युग्रमन्यथाकर्तुमिच्छति ॥१२॥
असिना तीक्ष्णधारेण वध्य एव न संशयः।
इति वेन वचश्श्रुत्वा पर्यतप्यन्त पंडिताः ॥१३॥

नो यदि भवेदेष राज्यं भूयादनायकम् ।
शतश्चेद्भवेत्पीडा कथं कार्यमितः परम् ॥१४॥
ति चिन्त्य (?) महात्मानः सङ्घीभूय सभान्तरे ।
ं महीपतिं ब्रूयुः विप्राः प्राणपरीप्सवः ॥१५॥
ो भो वेन महीपाल किमर्थं नः प्रबाधसे ।
शास्त्रीयानिमान् कृत्वाऽमहर्षिकथितान् प्रभो ॥१६॥
पातयसि नो घोरे निरये किं फलं तव ।
पिभाषितमेवाद्य करिष्यामो महीपते ॥१७॥
न्यत् किञ्चित् करिष्यामः प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
श्रुत्वाऽथ भूपालो वेनः क्रोधपरिप्लुतः ॥१८॥
ष्टादशसहस्रं तु ऋषीनानाय्य सत्वरम् ।
म्भेषु पट्टिशो बद्ध्वा केशैरभिहनत्स्वयं ॥१९॥
न संपीड्यमानास्ते घोषयाचक्रिरे नृपम् ।
ो भो राजन् महीपाल किमर्थं नः प्रबाधसे ॥२०॥

॥ वेनउवाच ॥

मनोरञ्जकान्यद्य शास्त्राणि (रचितानि) हि ।
ञ्जकान्येव सर्वेषु यदध्वं तत्प्रियं मम ॥२१॥
नादेशेषु विप्राद्याः नौयानात्प्रचरन्तु भोः ।
धवापुनरुद्वाहं चरन्तु पृथिवीतले ॥२२॥
चरन्तु पशोर्हिंसां मधुपर्के द्विजातयः ।
ूद्रगेहेषु भुंजन्तु द्विजगेहे पचन्तु वै ॥२३॥

भिक्षवस्सर्ववर्णेषु भैक्षाचर्यं चरन्तु च।
दीर्घकालासह्या वृद्धाश्चरन्तु भृगुपातनम् ॥२४॥
काममभोन् परित्यज्य तीर्थसेवां चरन्तु च।
इत्याकर्ण्य च तद्वाक्यं वेपमाना महर्षयः ॥२५॥
नौयात्राद्यष्टकर्मह्यनुजानन्ति दुःखिताः।
ततो विसृज्य भूपालो महर्षीनमितौजसः ॥२६॥
शशास पूर्ववत् पृथ्वीं परिपूर्णमनोरथः।
ततः प्रभृति विप्राद्याः नौयात्राद्यष्टकर्मणि ॥२७॥
प्रवृत्ता ऋषिवाक्येन धर्मबुद्ध्या च मोहिताः।
युगत्रयेषु यातेषु ततः प्राप्ते कलौ युगे ॥२८॥
बदरीवनमासाद्य सङ्घीभूय महर्षयः।
विचिन्त्य विधियोगेन कृत्यान्येतान्यवारयन् ॥२९॥
तस्मात् कलौ त्विमान् धर्मान् वर्ज्यानाहुर्महर्षयः।
कलौयुगे तु संप्राप्ते नौयात्रादि करोति यः ॥३०॥
पतित्वा निरये घोरे दुःखमेति महत्तरम्।
तस्मादिमान् कलौधर्मान् वर्ज्यानाहुर्महर्षयः ॥३१॥
इमान् कृत्वा कलियुगे निष्कृतिर्न विधीयते।
यदि निष्कृतिमापन्नः सेतुस्नानादिना कचित् ॥३२॥
तथाऽपि न परिमोक्षः पापबाहुल्यकं यतः।
किमन्यच्छ्रोतु कामोऽसि वदस्व द्विजनन्दन ॥३३॥
इति श्रीनारायणस्मृतौ नौयात्राद्यष्टकर्मणांनिषेधोनाम

सप्तमोऽध्यायः।

अथाष्टमोऽध्यायः

अष्टनिषिद्धकर्मणां प्रायश्चित्तवर्णनम्

नारायण उवाच ।

भो भो महान् वदस्वाद्य विस्तरेण ममाधुना ।
अबुद्ध्या बुद्धिपूर्वं वा कलिवर्ज्यानिमान्द्विजः ॥ १ ॥
कृत्वा ततः परंभूयः पश्चात्पापपरायणः ।
शरणं यदि संप्राप्तः कथं निष्कृतिरुच्यते ॥ २ ॥
केनैव विधिना सम्यग् बन्धुमध्ये प्रवेशनम् ।
किं कृत्वा मुच्यते पापात् कथं कर्मार्हता भवेत् ॥ ३ ॥
एतदाचक्ष्व भगवन् संशयो जायते महान् ।

दुर्वासा उवाच ।

शृणु नारायण श्रीमन् गदतो मम विस्तरात् ॥ ४ ॥
गङ्गास्नानं वर्षमात्रं मासं सेतुनिमज्जनम् ।
साङ्गं च विधिवत्कृत्वा व्यवहार्यो भवेदिह ॥ ५ ॥
भवेत्स्वकर्ममात्रस्य भविता त्वर्हता द्विज ।
परकर्मणि नैवार्हः भवेदेव न संशयः ॥ ६ ॥
तस्मादिमान् कलियुगे वर्ज्यानष्टौ मुनयन्ति हि ।
असाध्यत्वात्कलौ काले द्रव्यव्ययविशेषतः ॥ ७ ॥
यदि सर्वस्वदानेन चित्तं चरितुमिच्छति ।
तदाऽसौ सर्वकर्मार्हो भवेदेव न संशयः ॥ ८ ॥

तदृश तव वक्ष्यामि रहस्यमिदमुत्तमम्।
यदा प्रवृत्तस्तस्मिन् तद्दिनं परिगण्य च ॥९॥
चान्द्रायणद्वयं नित्यं कर्तव्यमविशङ्कया।
पूर्वोत्तराङ्गसंयुक्तं अच्छिद्रशतमन्वितम् ॥१०॥
सहस्रकलशस्नानं पञ्चवारुणहोमकम्।
कूश्मा(ष्म)ण्डगणहोमानां शतं पाहि त्रयोदशीः ॥११॥
शतं विरजाहोमं गायत्रीशतहोमकम्।
तिलहोमसहस्रं च गर्भं च यदभूगवाम् ॥१२॥
मज्जनं गोमयह्रदे गोदानं द्वादशाचरेत्।
दशदानं भूरिदानं सहस्रब्रह्मभोजनम् ॥१३॥
एवमादि यथाशास्त्रं धनव्ययमचिन्त्य तु।
सन्तुष्टचित्तः कृत्वा (सततं)शुद्धिमाप्नोत्यसंशयः ॥१४॥
स्वकर्मपरकार्मार्हो भवेदेव न संशयः।

इति श्रीनारायणस्मृतौ कलावष्टविधवर्ज्यकर्म प्रायश्चित्तवर्णनं अष्टमोऽध्यायः।

अथ नवमोऽध्यायः

धनहीनाय प्रायश्चित्तवर्णनम्

नारायण उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ शरणागतवत्सल ।
अकिञ्चनानामार्त्तानां कलिवर्ज्यकृतां नृणाम् ॥ १ ॥
कथं निष्कृतिरादिष्टा वद मे शिष्यवत्सल ।

दुर्वासा उवाच ।

तात ते कथयाम्यद्य शृणु वात्सल्यगौरवात् ॥ २ ॥
अत्यन्तार्त्तो यदि भवेन् अधनः कलिवर्ज्यकृत् ।
शरणं यदि संप्राप्तः प्रायश्चित्तमिदं चरेत् ॥ ३ ॥
सशिखं वपनं कृत्वा नित्यकर्मपरायणः ।
पुण्यतीर्थे ह्रदे वाऽपि पुष्करिण्यामथाऽपिवा ॥ ४ ॥
आकण्ठजलसम्मग्नः प्राङ्मुखस्त्वघमर्षणम् ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय जप्त्वा स्नानं समाचरेत् ॥ ५ ॥
पुनर्जप्त्वा पुनस्स्नात्वा पुनर्जपमथाचरेत् ।
एवं मध्याह्नपर्यन्तं प्राङ्मुखस्स्नानमाचरेत् ॥ ६ ॥
माध्याह्निकं ततः कृत्वा समाराध्येष्टदेवताम् ।
ततः प्रत्यङ्मुखो भूत्वा पूर्ववत्स्नानमाचरेत् ॥ ७ ॥
सायाह्ने समनुप्राप्ते तटमुत्तीर्य वाग्यतः ।
न संमृजेच्छरीराणि वाससा वाऽपिपाणिना ॥ ८ ॥

तदद्य तव वक्ष्यामि
यदा प्रवृत्तस्त्वेतस्मिन् तद्दि
चान्द्रायणद्वयं नित्यं क
पूर्वोत्तराङ्गसंयुक्तं अब्लिङ्ग
सहस्रकलशस्नानं पञ्चवार
कूश्मा(ष्म)ण्डगणहोमानां शतं
शतं तु विरजाहोमं गा
तिलहोमसहस्रं च गर्भं च
मज्जनं गोमयह्रदे गोदानं
दशदानं भूरिदानं सहस्र
एवमादि यथाशास्त्रं धनव्य
सन्तुष्टचित्तः कृत्वा (सततं)शुद्धि
स्वकर्मपरकामार्हो भवेदेव न

इति श्रीनारायणस्मृतौ कलावपुविधवर्जं
अष्टमोऽध्यायः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* शाण्डिल्यस्मृति *



अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीमद्यादवगिरेर्मूर्ध्नि श्रीमत्यायतने हरेः ।
शाण्डिल्यऋषिमासीनं प्रणम्य मुनयोऽब्रुवन् ॥ १ ॥
श्रीमदेकायनं शास्त्रं श्रुतं गुह्यं सनातनम् ।
ज्ञातं च सर्ववेदानां अन्तस्सारमिदं स्थिति ॥ २ ॥
निवृत्तं वैदिकं कर्म यत्प्रोक्तं भवभेषजम् ।
पञ्चकालात्मकं ज्ञानं तत्र मह्यैकदैवतम् ॥ ३ ॥
कुटुम्बाश्रमनिष्ठानां पञ्चकालनिषेविणाम् ।
आचारं त्वन्मुखाम्भोजाच्छ्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ४ ॥
शाण्डिल्योऽपि नमस्कृत्य मङ्गलायतनं हरिम् ।
अब्रवीत्समुनिश्रेष्ठान् श्रेष्ठकर्मा महामुनिः ॥ ५ ॥
बहुशः पूर्वमेवायं समाचारो मयेरितः ।
पदार्थानधिकृत्यैव शास्त्रे सप्त संस्थितान् ॥ ६ ॥
महाविस्तररूपोऽयमाचारः पञ्चकालिनाम् ।
संक्षेपात्प्रब्रवीम्यद्य यथाशास्त्रं यथामति ॥ ७ ॥

फलाष्टकप्रमाणेन तण्डुलेनहविः पचेत्।
गोमूत्रे विनिवेद्यैव हरये परमात्मने ॥९॥
तदेव भुक्त्वा सायाह्ने स्वपेद्वै दक्षिणाशिरः।
एवं षण्मासकृद्भिमः पूर्ववत्तच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥१०॥
ततो गङ्गाजले स्नात्वा सेतुदर्शनमेव वा।
कृत्वा ततः पुनः कर्म कृत्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥११॥
स्वकर्मपरकर्माहो भवेदेव न संशयः।
एवं सम्यक् समादिष्टं श्रुत्वा नारायणो मुनिः ॥१२॥
विच्छिन्नसंशयो भूत्वा परमानन्दनिर्भरः।
मेरुपृष्ठमुपागम्य तपश्चर्तुं ययौ मुनिः ॥१३॥

इति श्रीनारायणस्मृतौ कलौवर्ज्यकर्मप्रायश्चित्तवर्णनं
नवमोऽध्यायः।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* शाण्डिल्यस्मृति *

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीमत्तोद्रगिरेर्मूर्द्ध्नि श्रीमत्यायतने हरेः ।
शाण्डिल्यमृषिमासीनं प्रणम्य मुनयोऽब्रुवन् ॥ १ ॥
श्रीमदेकायनं शास्त्रं श्रुतं गुह्यं सनातनम् ।
शतं च सर्ववेदानां अन्तस्सारमिदं त्विति ॥ २ ॥
निपुणं वैदिकं कर्म यत्प्रोक्तं भवभेषजम् ।
पञ्चकालात्मकं ज्ञानं तत्र ब्रह्मैकदैवतम् ॥ ३ ॥
कुटुम्बाश्रमनिष्ठानां पञ्चकालनिषेविणाम् ।
आचारं त्वन्मुखाम्भोजाच्छ्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ४ ॥
शाण्डिल्योऽपि नमस्कृत्य मङ्गलायतनं हरिम् ।
अब्रवीत्समुनिश्रेष्ठान् श्रेष्ठकर्मा महामुनिः ॥ ५ ॥
चतुरः पूर्वमेवायं समाचारो मयेरितः ।
पदार्थानधिकृत्यैव शास्त्रे सप्त संस्थितान् ॥ ६ ॥
महाविस्तररूपोऽयमाचारः पञ्चकालिनाम् ।
संक्षेपात्प्रब्रवीम्यद्य यथाशास्त्रं यथामति ॥ ७ ॥

रहस्यमेतद्विज्ञानं भक्तानां हितमेव च।
अतः प्रमाणं भक्तानां सारं सर्वागमेषु च ॥८॥
कुटुम्बाश्रममाश्रित्य तथा कालक्रमेण च।
वक्ष्याम्येव समाचारान् मुख्यास्ते हि कुटुम्बिनः ॥९॥
आचारं मंगलोपेतं संक्षेपात्प्रब्रवीमि वः।
अनन्यमनसस्सर्वे शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥१०॥
पञ्चेन्द्रियस्य देहस्य बुद्धेश्च मनसस्तथा।
द्रव्यदेशक्रियाणां च शुद्धिराचार इष्यते ॥११॥
वक्ष्यमाणस्य सूत्रं हि श्लोके श्लोकोऽयमीरितः।
संक्षेपविस्तराभ्यां च व्याख्यानमिदमुच्यते ॥१२॥
प्रतिषिद्धेष्वसक्तं हि यस्सक्तं शुद्धेषु साधुषु।
भगवद्विषयेष्वेव शुद्धं तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥१३॥
स्पृश्यमस्पृश्यान्स्येवास्पृश्यं स्पृश्यमेव च।
तथाप्यलोलुपा सद्भिः स्पर्शशुद्धेति निगद्यते ॥१४॥
पाषण्डपतितादिषु न पतन्ति कदाचन।
अलुब्धा संपतन्ती दृक्शुद्धा भागवतादिषु ॥१५॥
भागवानेव रसाञ्चरवाञ्चात्यन्द्ध च पक्षरसे।
काले मितं तु मा जिह्वा परिशुद्धेति कीर्त्यते ॥१६॥
अमेध्य गन्धाद्राश्रिता मेध्यगन्धेषु योजिता।
पुण्येष्वलोलुपानामा सेह शुद्धेति कीर्त्यते ॥१७॥
द्विविधा देहशुद्धिश्च कर्मेन्द्रियवशास्तथा।
सर्वाङ्गीना च तत्सुखं विविध्यायानुमन्यते ॥१८॥

परापवादं पारुष्यं विवादमनृतं तथा ।
अतिबन्धप्रलापं च निजपूजानुवर्णनम् ॥१९॥
असह्यं मर्मवचनं आक्षेपवचनं तथा ।
असच्छास्त्रानुपठनमसद्भिस्सह भाषणम् ॥२०॥
इत्यादि दुर्वचो हित्वा स्वाध्यायजपतत्पराः ।
मोक्षधर्मार्थपठने निरता प्रियवादिता ॥२१॥
सत्यैः परहितैस्सार्थैर्जप्तैर्लक्षणसङ्गतैः ।
युक्ताक्षरैस्सुपूता वाङ्मौनरत्नेन मुद्रिता ॥२२॥
केशकीटानुसरणा नखरोमास्यकृन्तनम् ।
तृणमृच्छेदनं वृक्षगुल्मानां छेदनं तथा ॥२३॥
स्त्रीबालवृद्धातुराणामन्येषां ताडनं क्रुधा ।
परदारपरद्रव्यपरामर्शं त्वकामतः ॥२४॥
अङ्गुल्यास्फोटनं लीला पाणितालादि हेलनम् ।
तर्जनं चैवमादीनि यहिष्कार्या शुभानि वै ॥२५॥
अभ्यञ्जनादिव्यापारे युक्तः पित्रोर्गुरोस्तथा ।
धारकः पुण्यशीलानां वृद्धानां रोगिणामपि ॥२६॥
अर्थिनामिष्टदानेन सर्वदार्द्रीकृताङ्गुलिः ।
मल्लिकाजातितुलसीबद्धनादवकुण्ठितः ॥२७॥
भगवन्मन्दिरे नित्यं मार्जनादिक्रियापरः ।
अलङ्कारादिकरणे कुशलश्च जगद्गुरोः ॥२८॥
भगवत्पादपूजायां चरन् तालवने तथा ।
प्रसन्नशुभशाखाणां संस्कारादिक्रियापरः ॥२९॥

जपमन्त्रानुगननव्यापारेण पवित्रतः।
युग्मथा शुभैर्न्यैरशुद्धः पाणितलो मतः ॥३०॥
भगवन्मन्दिरं गच्छन् पुष्पानन्यांश्च मङ्गलान्।
प्रतिप्रसारणं मोहान् भूमिघातं पलायनम् ॥३१॥
सर्वोपकरणानां च सर्वेषां प्राणिनां तथा।
स्पर्शनं छेदनं चापि तथान्या अपि दुष्क्रियाः ॥३२॥
विसृज्य भगवत्कर्म सिद्ध्यर्थं गमने रतम्।
तथा भागवतस्यार्थं सिद्ध्यर्थं च विशेषतः ॥३३॥
प्रदक्षिणक्रियासक्तः तीर्थयात्रापरं तथा।
दर्शनार्थं तथा नित्यं कर्मयानुभवाय च ॥३४॥
दिव्यायतनयात्रायामभियुक्तं मृदुक्रमम्।
महाभागवतानां च करसंस्पर्शवर्जितम् ॥३५॥
सद्भक्तानामनन्यानां पूजार्थं दर्शनाय च।
सत्वरं चैवमादीनि कुर्वन् पादद्वयं शुभम् ॥३६॥
उत्सारं प्रसनं कुर्वन् कालएव च नान्यथा।
गुप्तं च सर्वदा शुद्धं पायुस्थानं विदुर्बुधाः ॥३७॥
काले निजस्त्रीसंसर्गरसयोगानुवृत्तिमान्।
अन्यदानुद्धणं शुभमुपस्थं शुद्धमूत्रितम् ॥३८॥
शिरःकण्ठाक्षिनासादिमलनिर्हरणेऽनया।
शुद्धिर्देहस्य सा सद्भिस्सर्वाङ्गीणेति कीर्त्यते ॥३९॥
धर्महानिर्न कर्तव्या कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः।
धर्माधर्मौ हि सर्वेषां सुखदुःखोपपातकौ ॥४०॥

इदमेव सच्छास्त्रमयं धर्मःसनातनः ।
अन्यानि सर्वशास्त्राणि मोहनानि क्रियास्तथा ॥४१॥
भ्रमन्ति सर्वभूतानि न च गच्छन्ति सत्पथम् ।
तामसं राजसं चान्यमेतत्सात्त्विकमुच्यते ॥४२॥
इदं हेयमिदं हेयमुपादेयमिदं परम् ।
एवमुक्तं पुराणेषु वेदेषूपनिषत्स्वपि ॥४३॥
एवं साधुभिराचीर्णमेवमन्याप्यकारिभिः ।
साक्षाद्ब्रह्म परं धाम सर्वकारणमव्ययम् ॥४४॥
देवकीपुत्र एवान्ये सर्वे तत्कार्यकारिणः ।
देवा मनुष्याः पशवः मृगपक्षिसरीसृपाः ॥४५॥
सर्वमेतज्जगद्धातुर्वासुदेवस्य विस्तृतिः ।
प्रवृत्तेश्च निवृत्तेश्च स्वर्गदेर्मोक्षदेरपि ॥४६॥
आराध्यो भगवानेव वेदधर्मैः सनातनैः ।
स एव सर्वथोपास्यो नान्ये संसारतारणाः ॥४७॥
उभाभ्यां ज्ञानकर्मभ्यां आराध्यो भगवान् प्रभुः ।
तज्ज्ञानमेव विज्ञानं तत्कर्म परमं शुभम् ॥४८॥
उभावपि विभक्तौ तौ न तु संप्राप्तिकारकौ ।
युक्ताभ्यां भगवत्प्राप्तिः संसारफलमन्यथा ॥४९॥
सच्छास्त्रमेव सच्छास्त्रं तदीया एव पण्डिताः ।
शोच्या हि भगवत्पादपरिचर्याविधिं विना ॥५०॥
कृतकृत्यभिया मूढाः अहो हतमिदं जगत् ।
इत्यादिसात्त्विकज्ञाननिश्चयेन दृढीकृताः ॥५१॥

अभेद्या परमा बुद्धिश्शुद्धेति परिकीर्त्यते।
परदारपरद्रव्यपरहिंसानुचिन्तनम् ॥५२॥
वैरानुबन्धनं धैर्यमलभ्यस्यानुचिन्तनम्।
सुदूरं यद्गुधायातं भोक्तव्यमितिचिन्तनम् ॥५३॥
असत्कथानुसरणमसत्कार्यनिरूपणम्।
इत्यादिदोषरूपाणि हित्वा कर्मणि निश्चलम् ॥५४॥
भगवत्कर्मसिद्ध्यर्थं व्यापृतं भगवत्परम्।
अविषण्णमनायस्तमहङ्कारविवर्जितम् ॥५५॥
असद्विषयसक्तानामिन्द्रियाणामहर्निशम्।
दमकं सर्वयत्नेन बाह्यारंभं विनिस्स्पृहम् ॥५६॥
सर्वदा भगवद्ध्यानं संसर्गविगतज्वरम्।
भगवद्भक्तसद्वाक्यगङ्गाजलपवित्रितम् ॥५७॥
सदर्थग्राहकं सूक्ष्मज्ञानरूपविचारकम्।
समर्थमप्रधृष्यं च धृष्टं शुद्धमसङ्गि च ॥५८॥
एवमादिगुणोपेतं निर्मलं मन इष्यते।
इन्द्रियाणां सदेहानां बुद्धेश्चमनसस्तथा ॥५९॥
आख्याता शुद्धिरेषाऽत्र द्रव्याणामधुनोच्यते।
इच्छया देवदेवस्य प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥६०॥
जगत्कारणभूतान्वा विद्येत्याहुर्मनीषिणः।
तद्विकारं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६१॥
तस्याः स्वरूपं सत्त्वं तु तदोपावितरौ गुणौ।
अतएव विकारोऽयमभवत् त्रिगुणात्मकः ॥६२॥

ाया: पञ्चभूतानि जायन्ते प्रकृते: किल।
भूतान्यधिष्ठाय वर्ज(र्त)येच्छास्त्रवर्त्मना ॥६३॥
सं तामसं चैव तज्ज्ञेयं पण्डितैर्वरै:।
ं रजस्तमोध्वस्तं वैष्णवै: कर्मवर्त्मनि ॥६४॥
जयति यो मोहात् तस्य साऽपि फलक्रिया:।
ं तदश्नीयात् निषिद्धो मुग्धचेतन: ॥६५॥
ानन् हृदयान्त:स्थं भोक्तारं न स सात्त्विक:।
रां द्रव्यमभाति तामसं सात्त्विकं [illegible] वा ॥६६॥
रां रूपमाप्नोति तत: क्षयेति (भवे) तथा।
ुद्धं भोज्यमुद्दिष्टं अघोप्यैव कर्म स: ॥६७॥
भाति स्वयं मोहात् साक्षात्स्तेन: स पापकृत्।
पिद्धवस्तुवद्रौद्रं रक्षाप्रेतादिसम्मतम् ॥६८॥
क्षाद्द्रव्यविशुद्धं यत् सात्त्विकं सद्गुणोज्ज्वलम्।
पिद्धवर्जनादेव वर्द्धते सात्त्विकं परम् ॥६९॥
त्त्विकस्य विशुद्धस्यैव ज्ञानं भवति निर्मलम्।
स्वदृष्टि समीक्ष्यैव शुद्धानां द्रव्यसम्पदम् ॥७०॥
स्तु सम्प्रहे सद्भि: द्रव्यशुद्धिरपीष्यते।
यामि देशशुद्धिं च संक्षेपेण यथागमम् ॥७१॥
सत्रा(त्ता)मुपकाराय भवेत्सद्गतिकाङ्क्षिणाम्।
च्छपापण्डरहितधार्मिकेश्वरपाठितम् ॥७२॥
र्मिकैस्सेवितं शश्वद् व्याघ्रसिंहादि वर्जितम्।
हन्यदस्युरहितं सारंगशिखिसेवितम् ॥७३॥

अभेद्या परमा बुद्धिरशुद्धेति परिकीर्त्यते ।
परदारपरद्रव्यपरहिंसानुचिन्तनम् ॥५२॥
वैरानुबन्धनं चौर्यमलभ्यस्यानुचिन्तनम् ।
सुदूरं बहुधायातं भोक्तव्यमिति चिन्तनम् ॥५३॥
असत्कथानुसरणमसत्कार्यनिरूपणम् ।
इत्यादिदोषरूपाणि हित्वा कर्माणि निश्चलम् ॥५४॥
भगवत्कर्मसिद्ध्यर्थं व्यापृतं भगवत्परम् ।
अविषण्णमनायस्तमहङ्कारविवर्जितम् ॥५५॥
असद्विषयसक्तानामिन्द्रियाणामहर्निशम् ।
दमकं सर्वयत्नेन बाह्यारंभं विनिस्पृहम् ॥५६॥
सर्वदा भगवद्ध्यानं संसर्गविगतज्वरम् ।
भगवद्भक्तसद्वाक्यगङ्गाजलपवित्रितम् ॥५७॥
सदर्थग्राहकं सूक्ष्मज्ञानरूपविचारकम् ।
समर्थमप्रधृष्यं च धृष्टं तुष्टमसक्ति च ॥५८॥
एवमादिगुणोपेतं निर्मलं मन इष्यते ।
इन्द्रियाणां सदेहानां बुद्धेश्चमनसस्तथा ॥५९॥
आख्याता शुद्धिरेषाऽत्र द्रव्याणामधुनोच्यते ।
इच्छया देवदेवस्य प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥६०॥
जगत्कारणभूतान्ता विधेयाहुर्मनीषिणः ।
तद्विकारं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६१॥
तस्याः स्वरूपं सत्त्वं तत् तदोषावितरौ गुणौ ।
अतएव विकारोऽयमभवत् त्रिगुणात्मकः ॥६२॥

विधायाः पञ्चभूतानि जायन्ते प्रकृतेः किल।
पञ्चभूतान्यधिष्ठाय वर्ज(न)येच्छास्त्रवर्त्मना ॥६३॥
राजसं तामसं चैव तज्ज्ञेयं पण्डितैर्वरैः।
द्रव्यं रजस्तमोऽयन्नं वैष्णवे कर्मवर्त्मनि ॥६४॥
संयोजयति यो मोहात् तस्य साऽपि फलक्रियाः।
स्वयं तदश्नीयात् निषिद्धा मुग्धचेतनः ॥६५॥
अजानन् हृदयान्तःस्थं भोक्तारं न स सात्त्विकः।
यादृशं द्रव्यमश्नाति तामसं सात्त्विकं तु वा ॥६६॥
तादृशं रूपमाप्नोति ततः क्षमेति (भवे) तथा।
विशुद्धं भोज्यमुद्दिश्य अचोऽप्येव कर्म सः ॥६७॥
यदश्नाति स्वयं मोहात् साक्षात्स्तेनः स पापकृत्।
निषिद्धवस्तुदर्शी रक्षाप्रेताग्निसम्भवम् ॥६८॥
साक्षाद्द्रव्यविशुद्धं यत् सात्त्विकं सद्गुणोज्ज्वलम्।
निषिद्धवर्जनादेव वर्द्धते सात्त्विकं परम् ॥६९॥
सात्त्विकस्य विशुद्धयैव ज्ञानं भवति निर्मलम्।
शास्त्रदृष्टिं समीक्ष्यैव शुद्धानां
यत्नात् ...

अभेशा परमा शुद्धिरशुद्धेति परिकीर्त्यते ।
परदारपरद्रव्यपरहिंसानुचिन्तनम् ॥५२॥
वैरानुबन्धनं चैवमलब्धस्यानुचिन्तनम् ।
सुदूरं बहुधायातं भोक्तव्यमिति चिन्तनम् ॥५३॥
असत्कथानुसरणमसत्कार्यनिरूपणम् ।
इत्यादिदोषरूपाणि हित्वा कर्मणि निश्चलम् ॥५४॥
भगवत्कर्मसिद्ध्यर्थं व्यापृतं भगवत्परम् ।
अविषण्णमनायस्तमहङ्कारविवर्जितम् ॥५५॥
असद्विषयसक्तानामिन्द्रियाणामहर्निशम् ।
दमकं सर्वयत्नेन बाह्यारंभं विनिस्स्पृहम् ॥५६॥
सर्वदा भगवद्ध्यानं संसर्गविगतज्वरम् ।
भगवद्भक्तसद्वाक्यगङ्गाजलपवित्रितम् ॥५७॥
सदर्थग्राहकं सूक्ष्मज्ञानरूपविचारकम् ।
समर्थमप्रधृष्यं च धृष्टं दुष्टमसङ्गि च ॥५८॥
एवमादिगुणोपेतं निर्मलं मन इष्यते ।
इन्द्रियाणां सदेहानां शुद्धेश्चमनसस्तथा ॥५९॥
आख्याता शुद्धिरेषाऽत्र द्रव्याणामधुनोच्यते ।
इच्छया देवदेवस्य प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥६०॥
जगत्करणभूतान्ता विद्येत्याहुर्मनीषिणः ।
तद्विकारं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६१॥
तस्याः स्वरूपं सत्त्वं तत् तद्दोषाविति तौ गुणौ ।
अतएव विकारोऽयमभवत् त्रिगुणात्मकः ॥६२

पूर्वमन्त्राक्षरं मन्त्रन्तु त्वयरूपसमाप्ति च।
रसाद्युत्तरविषये भोगमोक्षमहासुखम् ॥८५॥
एवमादिगुणोपेतं भक्तिज्ञानोज्ज्वलं कृतम्।
इष्टमन्येण द्रव्यं च परमं कर्म मङ्गलम् ॥८६॥
देहेन्द्रियान्तःकरणबुद्धिभूम्यर्थसिद्धिकम्।
अथोक्तलक्षणोपेतकर्मभागमतः परम् ॥८७॥
मनसंशुद्धिसंयुक्ता परिपूर्णा भवेत्क्रिया।
सप्तैते विमला भावा श्रद्धावान् प्रारभेत्क्रियाम् ॥८८॥
आधानादविशुद्धा या संस्कारैः पञ्चकालिनाम्।
कुर्याद् ब्राह्मण एवैतत् त्रैविद्यो वा विशुद्धधीः ॥८९॥
श्रद्धावान् भगवद्धर्मे रागादिरहितेन्द्रियः।
ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं पञ्चकालपरायणान् ॥९०॥
वस्त्रगोभूमिदानेन धनधान्यादिभिस्तथा।
तोषयेत्परया भक्त्या नित्यं भागवतान्नरान् ॥९१॥
सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्।
न संशयोऽत्र तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम् ॥९२॥
केवलं भगवत्पादसेवया विमलं मनः।
नरायते यथा नित्यं सद्भक्तचरणार्चनात् ॥९३॥
विशिष्टकुलसंजातसंस्कारैसंस्कृतो निजैः।
त्वदितो यदि सिद्धिमें चरेत्कृच्छ्राणि दान्तधीः ॥९४॥
तपश्चर्तुमशक्तश्चेद् धनवान्दानमाचरेत्।
उभयोरप्यशक्तस्सन् नामसंकीर्तनं चरेत् ॥९५॥

मोक्षभूमिरितिख्यातमलाभे साधुसम्मतम् ।
दिव्यापगा देवखातवाप्यादिविमलोदकम् ॥७३॥
प्रभूतकदलीपूगनालिकेरादिमण्डितम् ।
सुसमृद्धसमित्काष्ठसम्पत्कुसुमोदकम् ॥७४॥
आसन्नधोजलं स्वच्छपलाशतुलसीकुशम् ।
गोसहस्रसमाकीर्णं सपुष्पं सोत्पलाम्बुजम् ॥७५॥
एवमादिगुणोपेतं भूतलं यदि लभ्यते ।
विविक्तदेशभूभागे हृद्दोषविवर्जिते ॥७७॥
प्रासादं पर्णशालां वा कृत्वा निजबलान्वितम् ।
अविस्तृतमनियधं परितोऽपि मनोहरम् ॥७८॥
तत्राप्युच्छिष्टमूत्रासृक् केशकीटादिवर्जितम् ।
करीषमृज्जलालिप्ते काष्ठताम्रेण चेतसः ॥७९॥
संप्रीतिजनके स्थित्वा भूतले भगवत्क्रिया ।
कर्त्तव्यमिति यत्नेन या शुद्धिर्भूतिगोचरा ॥८०
देहशुद्धिरितिख्याता सेयं सच्छास्त्रवर्त्मनि ।
अनार्यजनसंरोधवीक्षणादिविवर्जितम् ॥८१॥
श्रद्धातिरेकसंयुक्त दम्भलोभविवर्जितम् ।
आत्मार्थं त्यक्तसंसिद्धि रूपालोकन तत्परम् ॥८२॥
अचञ्चला विपण्णान्तः करणायत्प्रीति संयुतम् ।
संकल्पपूर्वकं ध्येयं पदाब्जन्यास योगि च ॥८३॥
द्रव्यमन्त्रे च मन्त्रेषु समाहितमहामति ।
गुप्तसंसाररहितं शुद्धमौनमविवथम् ॥८४॥

एवमादिगुणोपेतमाचार्यं वरयेद्द्विजः।
आचार्यचित्तानुगुणं सिद्धान्तानुगुणा प्रिया ॥१०७॥
अन्यत्र शृणुयाज्ज्ञेयमनुज्ञाप्यैव जीवति।
यस्मिन् परमविद्यायानघं सिद्धिरबोधतः ॥१०८॥
गुरोर्वाऽप्यन्यतो ग्राह्या परा विद्या गुणान्वितात्।
परिशुद्धकुलोद्भूतं विशुद्धाचारतत्परम् ॥१०९॥
विरतं च महापापात् पितृदारादिपालकम्।
दान्तं शान्तं मृदुं सौम्यं प्रणतं भगवत्परम् ॥११०॥
सन्तप्तहृदयं भक्त्या शक्त्या सर्वार्थसाधकम्।
विप्रवाक्यं महाबुद्धिं सत्यं कुशलपाणिकम् ११११॥
एवमादिगुणोपेतं शिष्यभावेन संगतम्।
संवत्सरं तदर्द्धं वा मासत्रयमथापि वा ॥११२॥
परीक्ष्य विविधोपायैः कृपया निःस्पृहो भवेत्।
ब्रह्मविद्याप्रदानस्य देवैरपि न शक्यते ॥११३॥
प्रतिप्रदानमपि वा दद्यात् शक्तित आदरात्।
न प्रमाद्येद् गुरोश्शिष्यो वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥११४॥
अपि भक्त्यात्मनाचार्यं वर्त्तेवास्मिन्यथोच्यते।
आक्रोशकं दुष्टभावं पिशुनं सत्वरक्रियम् ॥११५॥
नर्थैकसाधकं लुब्धमलसं सर्वकर्मसु।
स्वाचारपरिवादाद्यैर्बहुभाषितमुद्धतम् ॥११६॥
अवमानिनं सर्वश्रेष्ठं वा परिवर्जयेत्।
...ैः पापरतैः क्रूरैः सदागमपराङ्मुखैः ॥११७॥

यथाशक्ति तपः कृत्वा दत्त्वा चैव यथाबलम् ।
तथाऽध्यात्मस्थि(तो)ध्यात्वा जपेत्सर्वाघशान्तये ॥९६॥
उपवासात्तथादानात् सद्भक्तानां च सेवनात् ।
सङ्कीर्तनाज्जपात्तापाच्छ्रद्धया शुद्धिमृच्छति ॥९७॥
उपासीत निरस्तोऽपि पञ्चकालपरायणान् ।
यदीच्छेद्भगवद्धर्मं सेवया भवशान्तये ॥९८॥
पूर्वोक्ताचारसम्पन्नं युवानं गृहमेधिनम् ।
उत्तमैर्वृद्धसख्यं च भवसेवाविवर्जितम् ॥९९॥
प्रख्यातशुद्धचरितं सद्ब्रह्मैकपरायणम् ।
भगवद्धर्मसंयुक्तमर्थसन्देहनोदकम् ॥१००॥
प्रतिपादनसामर्थ्यं युक्त्यवस्तुप्रपातिकम् ।
उदारं भक्तिविवशं वशीकृतजगज्जनम् ॥१०१॥
दयाकार्यं कृतज्ञं च दयार्द्रीकृतमानसम् ।
अशूद्रशिष्यशुश्रूषणा ज्ञानदानेष्वनादृतम् ॥१०२॥
अकोपनमनुद्विग्नमतिषण्णं विपत्स्वपि ।
भगवद्भक्तियुक्तेषु दृष्टमात्रेण सुप्रियम् ॥१०३॥
सा(न्)नाग्रुपकाराय ध्यातुं क्लेशावर्जितम् ।
अ(भ)न्यू(न्न)नानन्तरस्याङ्गं विषयमार्दवेन्द्रियम् ।
सौम्यरेखप्रशान्तं च पापरोगविवर्जितम् ।
अदुष्टं ब्रह्मसाध्येयं अच्छद्माभिमानिनम् ॥१०४॥
शिष्याणां मदपहारेण प्रतिज्ञापनकर्मणि ।
शान्तिके पौष्टिके भोगे गुरुशुश्रूषणे रतम् ॥१०५॥

मुनिरुवाच ।

सहाभिगमनेनैव प्रातःकालानुयायिना ।
वक्ष्यामि योगादूर्ध्वं यत् कर्तव्यं स्नानपूर्वकम् ॥ २ ॥
उच्चैस्स्वरेण योगान्ते स्तुत्वा स्तोत्रैरनन्यधीः ।
वासुदेवादिदिव्यानां नाम्नां संकीर्तनं चरेत् ॥ ३ ॥
प्रादुर्भावगुणं चापि संस्मरेत्सर्वसिद्धये ।
कीर्तयेत्तद्गुणान्भक्त्या परमाद्भुतचेष्टितान् ॥ ४ ॥
अतन्द्रितस्य स्वाध्याये योगे युक्तात्मनस्सदा ।
सद्भक्त्या स्विन्नदेहस्यावश्यं नाम(नु)कीर्तनम् ॥५॥
आदाय वस्त्रदण्डादि गृहीत्वा च कमण्डलुम् ।
प्रवृतप्रच्छन्नमूर्द्धा च कर्मारंभपरो व्रजेत् ॥ ६ ॥
ग्रामाद्बहिर्विनिर्गत्य विसृजेत्सहचारिणः ।
अपरिग्रहदेशेषु कुर्यान्मलविसर्जनम् ॥ ७ ॥
मेहने मैथुने स्नाने भोजने दन्तधावने ।
इज्यया सह होमे च जपेन्मौनं समाचरेत् ॥ ८ ॥
स्वदक्षिणश्रुतिन्यस्य ब्रह्मसूत्रस्समाहितः ।
न श्मशाने न कृष्टेषु न मार्गे न च भस्मनि ॥ ९ ॥
नोपरे न च सस्येषु न गुल्मेषु न च सैकते ।
न वृक्षमूले नामेध्ये न कीटेषु न चत्वरे ॥१०॥
नोदकान्ते न गोवासे न ह्रदे न गृहाङ्गणे ।
न देवालयपार्श्वेषु न नद्यां नाप्यसन्निधौ ॥११॥

संबन्धं नाचरेद्भक्ति र्नश्यते तैस्तु सङ्गमे ।
भगवत्कथानिरतैस्स्तोत्रपूजाजपादिभिः ॥११८॥
अव्रतमाद्यकैस्त्यक्तविवादाद्यभयवर्जितैः ।
सुशीलैस्स्नानशीलैश्च बाह्यान्तस्तुल्यचेष्टितैः ॥११९॥
हृद्यैर्पविशुद्धान्तै र्भगवद्गुणमेलनैः ।
सत्यवाग्भिर्दयासारै स्सदा संगं वसेद्बुधः ॥१२०॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
कृपया श्रमिणस्सर्वे धर्मं ब्रूयुस्स्वराङ्गने ॥१२१॥
गृहस्थो वाऽपि सर्वेभ्यो धर्मं ब्रूयान्महामतिः ।
परिव्राडपि वा ब्रूयात् सर्वश्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१२२॥

इति श्री शाण्डिल्य धर्मशास्त्रे भगवत्पूजाविधिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अथ प्रातःकृत्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः ।

स्नानं प्रधानं भक्तानां सम्यक् शुद्ध्युपपादकम् ।
श्रोतुकामा विधिं तस्य सक्षाभिगमनेन च ॥ १ ॥

मुनिरुवाच ।

सहाभिगमनेनैव प्रातःकालानुयायिना ।
वक्ष्यामि योगादूर्ध्वं यत् कर्तव्यं स्नानपूर्वकम् ॥ २ ॥
उच्चैस्स्वरेण योगान्ते स्तुत्वा स्तोत्रैरनन्यधीः ।
वासुदेवादिदिव्यानां नाम्नां संकीर्तनं चरेत् ॥ ३ ॥
प्रादुर्भावगुणं चापि संस्मरेत्सर्वसिद्धये ।
कीर्तयेत्तद्गुणान्भक्त्या परमाद्भुतचेष्टितान् ॥ ४ ॥
अतन्द्रितस्य स्वाध्याये योगे युक्तात्मनस्सदा ।
सङ्कल्पा क्लिन्नदेहस्यावश्यं नाम(नु)कीर्तनम् ॥५॥
आदाय वस्त्रदण्डादि गृहीत्वा च कमण्डलुम् ।
प्रावृत्यच्छन्नमूर्द्धा च कर्मारंभपरो व्रजेत् ॥ ६ ॥
ग्रामाद्बहिर्विनिर्गत्य विसृजेत्सहचारिणः ।
अपरिग्रहदेशेषु कुर्यान्मलविसर्जनम् ॥ ७ ॥
मेहने मैथुने स्नाने भोजने दन्तधावने ।
इज्यया सह होमे च जपेन्मौनं समाचरेत् ॥ ८ ॥
स्वदक्षिणश्रुतिन्यस्य ब्रह्मसूत्रस्समाहितः ।
न श्मशाने न कृष्टेषु न मार्गे न च भस्मनि ॥ ९ ॥
नोषरे न च सस्येषु न गुल्मेषु न च संकटे ।
न वृक्षमूले नामेध्ये न कीटेषु न चत्वरे ॥१०॥
नोदकान्ते न गोवासे न ह्रदे न गृहाङ्गणे ।
न देवालयपार्श्वेषु न नद्यां नाप्यसन्निधौ ॥११॥

न वल्मीके न रन्ध्रेषु न करीषे न चोपले।
न देववारिशिष्याग्निगुरुवृद्धाङ्गनामुखः ॥१२॥
नग्नो गगनदिक्तारागृहामेध्यावलोककः।
न जल्पन्नस्पृशन्मौनी नचानावृतमस्तकः ॥१३॥
चिरन्नोपविशन्नाति पीडयन्नार्द्धवेशसम्।
एकाकी मुक्तपश्चाक्षो यतसर्वेन्द्रियक्रियः ॥१४॥
मेहनादि क्रियां कुर्यान्नवाच्छादितनासिकः।
उदङ्मुखो दिवानक्तं दक्षिणामुखसंस्थितः ॥१५॥
दिवेव सन्ध्ययोः कुर्यान्मेहनाद्यं विचक्षणः।
वल्मीककृष्णभूतोयकीटाशुद्ध्यादियोगिनम् ॥१६॥
वर्जयित्वा मृदाशौचं कुर्यादुद्धृतवारिणा।
पञ्चधा लिङ्गशौचं स्यात् गुदशौचं त्रिवेष्टितम् ॥१७॥
मनःप्रसादनं कुर्यात् शक्तुं मूत्रविलोपनम्।
पादयोर्लिङ्गवच्छौचं हस्तयोस्तु चतुर्गुणम् ॥१८॥
दन्तान्तुशोधयेत्प्रातः पलाशवटपिप्पलान्।
विहाय स्वशुभैराम्रपूर्वैर्विधिवदत्वरः ॥१९॥
उत्पादयन्नरक्तं च न पश्यन्सर्वतो दिशम्।
समुद्रगापगादेवखाततवापीह्रदाश्रये ॥२०॥
स्नायाज्जलेन देवानां संसर्गपरिवर्जिते।
सरसे सेविते सद्भिश्छिद्रोपविवर्जिते ॥२१॥
विशुद्धतीरभूभागे स्नायाद्बहुनि वारिणि।
अम्बु न क्षोभयेदङ्गैः पादेनोत्सादयेन्न च ॥२२॥

नाचरेज्जलक्रीडां न गण्डूषं जले क्षिपेत् ।
अन्योन्यं नोक्षिपेत्तोयं न देहमलमुत्सृजेत् ॥२३॥
न कुत्सयेदम्बुतीर्थमन्यत्तत्र न कीर्तयेत् ।
शोधयित्वा धृताम्भोभिर्देहं तीरे पुनर्जलैः ॥२४॥
प्रक्षाल्य भूमिं कर्मार्थमवतारं च शोधयेत् ।
न स्नायात्सहशूद्रेण न स्त्रीभिर्नच नास्तिकैः ॥२५॥
न पाषण्डैर्नशठैश्च न रोगार्शोर्थिभिर्नरैः ।
चण्डालं शास्त्रपतितं शास्त्रनिन्दापरायणम् ॥२६॥
परित्रस्तं च नष्टं च दूरतः परिवर्जयेत् ।
शरीरं निर्मलीकृत्य कर्मारम्भपुरस्सरम् ॥२७॥
शुद्धावगाहनं कृत्वा समाचामेद्यथाविधि ।
जान्वोरन्तः करौ कृत्वा प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः ॥२८॥
पाणिं च संस्थाप्याद्भिः प्रकृतिस्थाभिरेव च ।
आदाय विमलं तोयं ब्रह्मतीर्थेन वाग्यतः ॥२९॥
द्विगनं चतुःप्राश्य न शब्दमवतारयन् ।
तत्कालमार्जनं कृत्वा पाणिपादाववेक्ष्य च ॥३०॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुषी संस्पृशेत्ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन श्रोत्रे चैव समालभेत् ॥३१॥
सर्वाभिरङ्गुलीभिश्च बाहुमूले उपस्पृशेत् ।
हृदयं च मूर्ध्नि जलं स्पृष्ट्वान्तरान्तरा ॥३२॥
न तिष्ठन्नैकहस्तेन न शूद्रावर्जितेन च ।
शुद्धां मृदं समादाय जप्त्वा मन्त्रचतुष्टयम् ॥३३॥

चतुर्धा विभजेत्ता तु वामपाणितलोदरे।
चतुर्मन्त्रैः परामृश्य मुखबाहुकलेवरान् ॥३४॥
पदौ यथाक्रमं लिंपेत् चतुर्मन्त्रेण मन्त्रवित्।
सप्तस्थं भावयेद्देवं समर्थैर्भोगराशिभिः ॥३५॥
आसनाद्यैर्यथाशक्ति समभ्यर्च्य जगद्गुरुम्।
ध्यात्वा गङ्गां हरेः पादात्पतमानां स्वमूर्द्धनि ॥३६॥
पवित्राद्यन्तकाभिख्याः मन्त्रैरसिञ्चेत्करात्करान्।
ध्यायन्देवं परं ब्रह्म यथाशक्ति निमज्य च ॥३७॥
चतुर्निमज्य विधिवद् आचम्यादाय वाससा।
खण्डद्वयं शिरश्चाङ्गं प्रत्येकं परिमर्द्दयेत् ॥३८॥
अन्तराच्छाद्य कौपीनं वाससी परिधाय च।
ध्यानमौनपरो मन्त्री सम्यगाचमनं चरेत् ॥३९॥
भोजनाद्यं तयोर्मूत्रशौचान्तेयज्ञकर्मणि।
द्विर्द्विराचमनं कार्यं वाससा परिवर्तते ॥४०॥
पुण्यक्षेत्रे समुद्भूता मृदमादाय वैष्णवीम्।
प्रणवाद्यैव (श्च) मूलेन कर्मारम्भं पुनर्जपेत् ॥४१॥
आहृत्याम्बु पवित्रेण कृत्वा सव्यकरोदरे।
कर्मारम्भेण मन्त्रेण मृदमालोडयेद्वशी ॥४२॥
ब्रह्मणा तत्समीकृत्य ध्यायेद्देवं सनातनम्।
प्रदेशिन्या समादाय किञ्चिच्छिरसि धारयेत् ॥४३॥
ललाटबाहुहृदयेष्वार्जवेन प्रदीपवत्।
कृत्वोर्द्ध्वपुण्ड्रं नाम्ना च चतुर्नाम्ना समाचरेत् ॥४४॥

पाठयेद्द्वादशनाम्ना तत्तत्स्थानेषु यो द्विजः ।
भवेत्स्नानफलं तस्य मृदा तत्र दिने दिने ॥४५॥
तत आचम्य विधिवदद्भिश्चाभिश्च तर्पयेत् ।
नमोऽन्तः प्रणवाद्यै श्च पितृणां केवलं स्वकैः ॥४६॥
चक्षुर्मंत्रेण संप्रोक्ष्य पीत्वा तेनाभिमन्त्रितम् ।
जलमाचम्य मूलेन दद्यादर्घ्यं परात्मने ॥४७॥
मर्त्ये स्वान्तपि वा स्नायाद्वापद्युद्धृत्य तन्मृदम् ।
ध्यात्वा क्षीरो नवं तत्र नित्यशिष्टनिषेविते ॥४८॥
कूप तोयैरपि स्नायात् सर्वालाभे समुद्धृतैः ।
स्नानन्तु न घटैः कार्यं नासान्छिद्रविवर्जितैः ॥४९॥
आरनालं न सेवेत कदाचिद्भगवत्पर. ।
सुराकल्पं हि तज्ज्ञेयं तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ॥५०॥
सप्तमीदशमी(चैव)त्रयोदश्यष्टमीषु च ।
द्वितीयायां नवम्यां च स्नायान्नामलकोदकैः ॥५१॥
म्लेच्छादिसेविते कृच्छ्रे नीचावाससमीपगे ।
श्मशानपार्श्वके ज्ञाते न स्नायान्नोपरोधतः ॥५२॥
न भुक्त्वा नातुरो जीर्णो नान्यकामी न कामतः
न निशायां तथैकाकी न चिरं तोयमध्यतः ॥५३॥
अज्ञानाच्चरिते पापे दृष्ट्वा च शवसूत्रके ।
वमने च व्यवाये च दुःस्वप्ने स्नानमाचरेत् ॥५४॥
मुक्ता श्रूशोकाच्छ्रुत्वा च न्यस्ताङ्गं पाञ्चकालिकम् ।
स्पृष्ट्वा विकारं चर्मस्थं स्नायाद्रोगिणमेव च ॥५५॥

उत्क्रामर्मगनं वार्य्य स्वद्वारागमने गुरौ ।
विवादं च जपस्नाननमस्कारैः पुनःशुचिः ॥५६॥
शिरो विवर्ज्य न स्नायान्निमज्जेतामुना सह ।
न स्नानशाटी पाणिभ्याम्मर्द्दयेदपि वा शिरः ॥५७॥
न कुर्य्यादार्द्रवस्त्रेण कर्म भागवतं बुधः ।
न दक्षिणामुखो शुद्धः पैशाचं तदुदाहृतम् ॥५८॥
प्रक्षाल्याजानुचरणौ मृज्जलैः कूर्परावधि ।
हस्तौ विमृज्य वदनं विद्वानाचमनं चरेत् ॥५९॥
सुप्त्वा क्षिप्त्वा च निष्ठीव्य स्पृष्ट्वा नासापुटादिकम् ।
पादोदरं च भक्ष्यांश्च संभक्ष्याचमनं चरेत् ॥६०॥
स्नात्वा संप्रोक्ष्य पतितांश्चण्डालाद्यांश्च गर्हितान् ।
पाषण्डिनश्च स्वाचान्तः पवित्रं ध्यानवान् जपेत् ॥६१॥
पूजायां स्नानकाले च भोजने जपकर्मणि ।
अवैष्णवानां जन्तूनां दर्शनाद्यं विवर्जयेत् ॥६२॥
नित्यं तीर्थोदकस्नायी तर्पयंस्तत्र तज्जलैः ।
श्रद्धया भगवन्मन्त्रैः सिद्धस्स्यादचिराद्द्विजः ॥६३॥
कर्मारम्भेण मन्त्रेण सर्वं कर्म समारभेत् ।
पवित्रीकरणञ्चापि पवित्रेणैव सर्वतः ॥६४॥
अभिगच्छेच्च देवेशं सुस्नातस्सोर्द्ध्वपुण्ड्रकः ।
सुप्रक्षालितपादश्च स्वाचान्तस्संयतेन्द्रियः ॥६५॥
सन्ध्ययोरुभयोर्नित्यं यावदर्कक्षदर्शनम् ।
ध्यायेद् ब्रह्म जपेन्मौनी तत्राभिगमनक्रियाः ॥६६॥

नैकवस्त्रो न खिन्नश्च न क्रुद्धो मलिनोऽपि वा।
नाक्षालिताङ्घ्रिर्नाभ्यक्तो नातुरो न वदन्बहु ॥६७॥
न रक्तकृष्णमलिनं वासोऽपि परिधाय च।
न च शून्यकच्छस्शाखी न यायाद्भगवद्गृहम् ॥६८॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ उत्थायोत्थाय सन्मनाः।
स्वाध्यायवदनः कुर्याद् अष्टाङ्गेन नमस्क्रियाम् ॥६९॥
नमस्कुर्वन् प्रतिदिशं वाग्यतो ध्यानतत्परः।
असंसक्तकरैः कैश्चिन्मन्दं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥७०॥
द्विचतुष्पड् दशाष्टाद्यैः कुर्यादेव प्रदक्षिणम्।
देवस्य निकटे कार्यं सम्यग्जानुप्रदक्षिणम् ॥७१॥
चक्रवद्भ्रमयेन्नाङ्गं पृष्ठभागं न दर्शयेत्।
सन्निधौ देवदेवस्य नचोच्चैः प्रलपेत्तथा ॥७२॥
निधाय दण्डवद्देहं प्रसार्य चरणौ करौ।
बद्ध्वा मुकुलवत्पाणि प्रणामो दण्डसंज्ञितः ॥७३॥
पादौ शिरस्तथा हस्तौ निकुञ्च्य मुकुलाकृतिः।
मनोबुद्ध्यभिमानैश्च प्रणामोऽष्टाङ्गसंज्ञितः ॥७४॥
मस्तकं संपुटं चैव प्रह्वादं च त्रयं बुधैः।
कृतयोरन्ययोः कार्यमन्यथा विफलो भवेत् ॥७५॥
सर्वत्र दृष्ट्वा देवेशं जितं त इति मन्त्रकम्।
द्वादशार्णं जपेन्मन्त्रो भीतवत्पूर्वमानतः ॥७६॥
मत्कृतानि च कर्माणि मदीयमहमप्युत।
तथैव नममेतीष्टं नमो भगवतेरिह ॥७७॥

प्रदक्षिणानमस्कारं जपध्यानार्चनास्तुतिम् ।
मत्कर्मतद्गुणोद्घोषैर्विना नात्रान्यदाचरेत् ॥७८॥
पादप्रक्षालनं व्याविष्टरं चावकुण्ठनम् ।
न कुर्याद् भगवद् गेहे भासं कण्ठध्वनिं तथा ॥७९॥
भोजनं स्वापमुद्घोषं ताम्बूलं केशशोधनम् ।
छत्राद्यं च तथान्यांश्च न कुर्यान्मुल्बणक्रियाः ॥८०॥
प्रदक्षिणे प्रणामे च पूजायां हसने तथा ।
न कण्ठगतवस्त्रस्यात् दर्शने गुरुदेवयोः ॥८१॥
भगवन्मन्दिरे वृद्धान् पूज्यानपि विशेषतः ।
विना भागवतश्रेष्ठं प्रणामाद्यैर्नचार्चयेत् ॥८२॥
गुरोर्गृहे देवगृहे पु(ण्य)व्यवाट्यां गवां कुले ।
क्षपणं चोल्बणं कर्म वर्जयेदपि संसदि ॥८३॥
जपश्चाभिगमनं मन्त्रा वर्जयित्वा यथाविधि ।
आसनाद्यर्घादिभिर्भोगैर्भक्त्या परमपावनैः ॥८४॥
अभिगम्य जगन्नाथं ध्यायन्नेव सनातनम् ।
जपेद्यथाबलं प्रातः सहस्रशतसङ्ख्यया ॥८५॥
चनिशादि समारभ्य दर्शपर्वपरात्परः ।
पञ्चाशैस्त्र्यष्टदिकैर्वाऽपि जपेदुक्तादिभिस्तदा ॥८६॥
आचार्यं देवभक्तं च भगवन्मन्दिरं जलम् ।
अग्निर्कं च मीमं च प्रदक्ष्य जपेन्न च ॥८७॥
यत्पादाम्भोऽक्षिपयेन्नं पश्यतः पुरतोऽथम् ।
अतः पावकान्यासु नश्यन्ति गाढ्याः क्रियाः ॥८८॥

भिमुख्यं जपादीनां प्रशस्तं सर्वकर्मणि ।
इङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्याद्भागवतः क्रियाम् ॥८९॥
ग्नींश्च जुहुयात्प्रातः मेध्यैरेव समिद्गणैः ।
पिकं च जुहुयान्नित्यं वा पापशान्तये ॥९०॥
मुहूर्तात्तु यै ब्राह्मादूर्ध्वं प्रहरात्सुधीः ।
नार्चन जपस्तोत्रपाठैः कालं विनोदयान् ॥९१॥

ति श्री शाण्डिल्यधर्मशास्त्रे प्रातःकृत्यवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

उपादानविधिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः ।

पादानविधिं सम्यक् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
ोग्यायोग्यविभागेन भगवत्कर्मसिद्धये ॥ १ ॥

मुनिरुवाच ।

पादानविधिं वक्ष्ये योग्यायोग्यविभागशः ।
द्वितीयकालकर्तव्यं कर्म यन्मुनिपुङ्गवाः ॥ २ ॥

वक्ष्यामि यत्समासेन कथम शाना शुद्धिमृच्छति।
कर्मण्यमेवोपादाय वर्जयित्वा तथेतरत् ॥ ३॥
क्रियमाणानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि।
स्वकीयारामजातानि वन्यान्यन्यानिवादरात् ॥ ४॥
पुष्पपत्रोदकादीनि प्रातरेव समाहरेत्।
स्वयेण वा हरेत्सर्वमपक्वं योगसाधनम् ॥ ५॥
फलपुष्पाम्बुकाष्ठानि विक्रीणीयं न किञ्चन।
विक्रीणान्ब्राह्मणो द्रव्यं क्रीणान्वाशुद्धिकाक्षया ॥ ६॥
छिन्नवृत्तिर्विकर्मस्थस्सत्पथाश्च्यवते (श्च्यवते) पुनः।
वार्धुष्यमुपजीवन्ति ये द्विजा लोभमोहिताः ॥ ७॥
अभोज्यान्नानपाङ्क्तेयाः क्रियास्तेषां च निष्फलाः।
पुष्पपत्रफलादीनि शाकानि विविधानि च ॥ ८॥
स्वेषु स्वेषु च कालेषु श्रद्धया वर्द्धयेद् गृही।
मण्ट(ण्ड)पानि सरम्याणि पद्मोत्पलवनानि च ॥ ९॥
क्रीडार्थं देवकीसूनो श्रद्धा भक्त्या प्रकल्पयेत्।
तुलसीवाटिका यत्र यत्र वा कमलाकरा ॥१०॥
पश्चकालपरा यत्र तत्रासौ भगवान्हरिः।
सदूर्वैरक्षतैर्नित्यं अश्य(?)र्च्यंकुसुमद्रुमान् ॥११॥
तुलसीं चाहरेत्पत्रपुष्पाद्यं वाग्यतश्शुचिः।
स्वयं संवर्द्ध्य तुलसीं द्वादशाक्षरचिन्तया ॥१२॥
अर्चयन्ति जगन्नाथं श्वेतद्वीपं प्रयान्ति ये।
दण्डप्रणाममपि वा कारयेत्पुष्पवाटिकाम् ॥१३॥

अथवा तुलसीं पुत्रां कृतकृत्यस्सनाथनः ।
अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां चूताद्यांश्चम्पकादिकान् ॥१४॥
तुलसीवाटिकाः कुर्यात् शङ्खचक्राम्बुजाकृतिः ।
वृक्षगुल्मलतादीनां अच्युतारामजन्मनाम् ॥१५॥
कुर्यान्नामानि देवस्य देव्यालक्ष्म्यास्तथा हरेः ।
देहमानश्चरेन्नित्यं कदाचिन्नालसो भवेत् ॥१६॥
अयाचितं शिलोञ्छैस्तु शिष्यदत्तैः क्रमागतैः ।
कुर्यात्कर्मविशुद्धेभ्यः पुत्रमाह्वापिवाधनम् ॥१७॥
कुलटापण्डपतितवैरिभ्यः काकिणीमपि ।
उद्यतस्वे विगृह्णीयादापद्यपि कदाचन ॥१८॥
महापातकिनश्चोराद्भयप्रहितस्तथा ।
मृगयोः पिशुनाच्चैव नाददाद्युद्यतं त्वपि ॥१९॥
याचनेनाऽपि वर्तेत दैन्यं हित्वागमस्ततः ।
दानेन वा नित्यं प्रतिगेहावामतन्द्रितः ॥२०॥
आपद्यपि न याचेत ज्ञातिसम्बन्धवैरीनपि ।
भिक्षार्थं न व्रजेत्तेषां गेहं कुर्यान्नचाप्रियम् ॥२१॥
राज्ञा न प्रतिगृह्णीयात् उपपातकिनस्तथा ।
पुरोधा गणिकाध्यक्षकदर्येभ्योऽपि नाहरेत् ॥२२॥
श्वित्रिणोहैतुकेभ्यश्च विकर्मस्तेभ्य एवच ।
स्त्रीजिताच्च तथान्त्येयात् स्वस्तिवद्भिभ्य एवच ॥२३॥
शास्त्रावमानिनश्चैव परद्रव्यापहारिणः ।
सांयात्रिकाद्विपद्भ्यश्च गणकेभ्यस्तथैव च ॥२४॥

दधिक्षीरघृतादीनां लवणस्य मधोस्तथा।
विक्रयिभ्योऽपि नादद्यादश्वविक्रयिणस्तथा ॥२५॥
नाचरन्ति यथोक्तं ये तेभ्योऽपि भृतकार्चकात्।
बीजभक्षारिणश्चैव बलीवर्दस्य साक्षिणः ॥२६॥
अयथार्थस्य नादद्यादश्वानां दमकात्तथा।
अभक्ताच्च त्रयी विद्यादुदक्यागमकात्तथा ॥२७॥
कौसीदकास्तथाभोक्तुः श्राद्धस्य सततं तथा।
न ग्रामयाजकेभ्यश्च नागम्यागमनात्तथा ॥२८॥
वणिग्भिश्च तथा शूद्रादुत्सृष्टाग्नेस्तथा शठात्।
अगारदाहकेभ्यश्च परिवित्तेभ्य एव च ॥२९॥
विभ्रमस्थापकाच्चैव तथा शिल्पोपजीविनः।
परिहस्ताच्च नष्टाच्च शूद्रशिष्यात्तथैव च ॥३०॥
श्वपाकेभ्यः श्ववृत्तिभ्यः श्राद्धविपाकात्तथैव च।
भगवन्तं तथा विप्रान् पञ्चकालपरायणान् ॥३१॥
भगवन्मन्दिरं चैव पुण्यतीर्थानि सर्वदा।
द्विजस्यैव नादद्यान्निक्षिप्तस्यापहारिणः ॥३२॥
प्रतिलोम्याच्च जातेभ्यस्तथा चानृतजीविनः।
अन्नं त्वपि नादद्यादन्यदेवावलम्बिनः ॥३३॥
क्रमागतैर्धनैर्वापि स्वक्षेत्रारामसंभवैः।
भगवद्भक्तिपूर्तेभ्यो विप्रेभ्यो याचितैस्तु वा ॥३४॥
न्यायार्जितैर्वापि कर्म कुर्यादतन्द्रितः।
अन्येषां परपुण्यार्थे स्वर्याभावे समर्चयेत् ॥३५॥

अलाभे सर्वभोगानां जलं प्रतिनिधिः स्मृतम् ।
अलब्धयान्यो विप्रेषु कपत्रयं वापि योऽर्चयेत् ॥३६॥
विना मूर्द्धाभिसिक्तन्तु वैश्यं वाऽपि महापदि ।
अलब्धो याचनादेव तेषां वा वृत्तिमाश्रयेत् ॥३७॥
तिलं मांसं तथाऽन्नं च लवणं च तथाऽजिनम् ।
रक्तकृष्णादिकं वस्त्रं दधिक्षीरघृतादिकम् ॥३८॥
साधनं चैव हिंसाया विषोलवणकराणि च ।
सुवर्णं चैव गां चैव विक्रीणन्नश्वमेव च ॥३९॥
श्रोत्रियाध्यापको भूत्वा वृत्तिं वा लभते द्विजः ।
स्त्रीबालवृद्धसंयुक्तः सर्वेभ्यो वा समाहरेत् ॥४०॥
भगवद्भक्तियुक्तेभ्यो दद्यात्स्वस्तिकोभ्यवेत् ।
उपार्जितसुर्यथालाभं कर्मारम्भं प्रयोजयेत् ॥४१॥
प्रतिग्रहाद्ब्रह्मे(हो)पः चिरादेव (वि) नश्यति ।
भिक्षयित्वाऽपि वर्त्तेत स्वाश्रमानुगुणं तथा ॥४२॥
अपक्वं वाऽपि पक्वं वा सर्वश्रेष्ठा हि सा स्मृता ।
भिक्षित्वा(?)वर्त्तमानानां योगिनां सिद्धिकाङ्क्षिणाम् ॥४३॥
मदमात्सर्यमानाद्या दोषा गच्छन्ति संक्षयम् ।
यथा यथा हि खिन्नं स्यात् सांसारिकसुखोदये ॥४४॥
तथा तथा दृढं योगी निर्वाणपदमृच्छति ।
अपवर्गरसज्ञो हि सन्मना दुःखवर्जितः ॥४५॥
मोक्षधर्ममना नित्यं सुखं प्राप्य मुक्तवत् ।
योगिनामवमानं च शरीरक्लेश एव च ॥४६॥

अर्थहानिरथ विज्ञानं वृद्धं धर्ममनात्मवत्।
मान्य मानमानिकं मौढ्यं योगिनो नेह संभवेत् ॥४७॥
अनायासेन लभ्यं स्यात् तस्य तत्परमं पदम्।
अविज्ञातमना नित्यं मार्गैरभिद्रुतोऽपि सन् ॥४८॥
अवक्रेण पथेन धर्मो विशुद्धद्रव्यतत्परः।
अमार्गेण धनं लोभात् सञ्चाय शुभमावसन् ॥४९॥
न संसिद्धो भवेत्तस्मात् शुद्धद्रव्यपरो भवेत्।
अकर्मण्यानि सिद्धानि यदि द्रव्याणि कामतः ॥५०॥
तेषां विनिमयेनैव शुद्धिस्त्यागेन वा भवेत्।
अलाभे सर्वभोगानामुदकेनापि पूजितम् ॥५१॥
प्रपश्यत्यमलं लोकं भक्तिपूतान्तरात्मनाम्।
जातया शुद्धवंशेषु भार्यया स्वानुकूलया ॥५२॥
सद्भक्तियुतया नित्यं कारयेद् द्रव्यसाधनम्।
शाकाम्बुभिर्वा न्यायाप्तैर्भक्त्या संपूजयेद्धरिम् ॥५३॥
मन्त्रो मन्त्रेश्वरश्शास्त्रं मन्त्रसिद्धिस्तथैव च।
सिद्धान्तमक्षसूत्रं च गोप्यं धान्यं धनायुषी ॥५४॥
अपमानमसामर्थ्यं हृद्रोगं रोगमान्तरम्।
अनर्थमृणमायासमकृत्यं न प्रकाशयेत् ॥५५॥
धान्यबन्धुविनाशेन नैर्धन्योपद्रवेण च।
मूढैः कृतावमानेन खिन्नस्स्यान्न कदाचन ॥५६॥
प्रातस्स्नातोऽपि विधिवत् स्नानं माध्यन्दिनं चरेत्।
शक्तश्चेदन्यथा रोगात् शाट्या सम्मार्जनं चरेत् ॥५

शुद्धिं कुर्यात्सदा विद्वान् मलानामङ्गजन्मनाम् ।
क्षुरकेशनखश्मश्रु स्त्रीपक्षेषु दृषी (को ?) भवेत् ॥५८॥
दिने दिने स्नानकाले कुर्यादभ्यञ्जनं गृही ।
अथवा शस्तकालेषु शक्तः कुर्याद्विवेत्र तु ॥५९॥
विशुद्धदन्तवदनो निर्मलीकृतविग्रहः ।
शुद्धोदरः प्रसन्नात्मा यथालब्धैस्समर्चयेत् ॥६०॥
सतीनां योषितां देहो यागोपकरणं भवेत् ।
भर्तृणां भगवद्भक्तदेहस्तद्वज्जगद्गुरोः ॥६१॥
कर्मान्तरेष्वसंसक्तिफलकाङ्क्षाविवर्जनम् ।
भक्तिद्रवीकृतं चित्तं विरक्तिस्सर्ववस्तुषु ॥६२॥
अभ्यासस्सततं सर्वप्रकारैस्सत्क्रियाविधौ ।
आलस्यवर्जनं श्रद्धापरमं दम्भवर्जनम् ॥६३॥
अकार्पण्यमलोभश्च क्रोधमोहजयोभयम् ।
देहस्य सेन्द्रियस्यापि विशुद्धिर्द्रव्यदेशयोः ॥६४॥
अकाले वर्जनं निद्रामैथुनाशनकर्मणि ।
सर्वदा शास्त्रशिक्षा च शास्त्रदृष्टेषु कर्मसु ॥६५॥
पारवश्यप्रमार्गं च नित्यं शास्त्रे दृढं परे ।
निषिद्धवर्जने यत्नस्संसिद्धान्ननिषेवणम् ॥६६॥
मार्दवंह्रीर्दयाक्षान्तिरद्रोहस्सर्वजन्तुषु ।
एवमादिगुणाः पुंसां यदास्युस्सत्त्वसंभवाः ॥६७॥
ज्ञातोर्यद्योगमात्मानं तदा भागवताविधौ ।
उत्सृज्य भगवत्कर्म बाह्यकर्मपरायणः ॥६८॥

कुटुम्बसक्तो मूढात्मा राजसो नैव सम्मतः ।
रजसा तमसा व्याप्तो यो यदा कलुषीकृतः ॥६९॥
अतोऽस्य स्वधर्मादेव स्वकर्माणि वैष्णवैः ।
एवं सद्गुणसम्पन्ना महाभागवतप्रिया ॥७०॥
कुटुम्बिन्यपि कर्तव्यं कर्म कुर्यादतन्द्रिता ।
उत्थाय पूर्वं गृहीत सुस्नाता यतमानसा ॥७१॥
स्नुषादुहितृपुत्राद्यान्यथार्हं शुचितां नयेत् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः शुभ्रा वस्त्राभरणभूषिताः ॥७२॥
स्नापान्तः प्रयतो देवमभिगच्छेयुरादृताः ।
त्रिसन्ध्यां कारयेद्बालान् प्रणामं देवपादयोः ॥७३॥
पुत्रः प्रेष्यस्तथा शिष्य इत्येवं विनिवेदयेत् ।
गृहीत प्रमुखास्सर्वा यजन्त्यः पुरुषोत्तमम् ॥७४॥
बालक्रीडादिचरितैः कर्म कुर्युरतन्द्रिताः ।
पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च ॥७५॥
अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ।
कारयित्वा सुवर्णेन पञ्चायुधगणं हरेः ॥७६॥
बध्नीयात्कण्ठदेशे तु बालानां सूतिकागृहे ।
न पुत्र ये दास्यन्ति शयनानि महीतले ॥७७॥
स्थापयेत्क्षेत्रमध्येषु शिलां चक्रादिमुद्रिताम् ।
मुक्तामणिसुवर्णाद्यैः कृत्वा चक्रादिभूषणम् ॥७८॥
यथार्हं बिभृयुस्सर्वे पुमांसः स्त्रीजनोऽपि वा ।
वृद्धबालाङ्गनादीनां पूर्वाह्णे भोजनं भवेत् ॥७९॥

यथाबलं समभ्यर्च्य साग्निं देवं ततोऽशनम् ।
घृतस्थाली विना सर्वं जलक्षीरान्नसंश्रयम् ॥८०॥
कर्तव्यं दिवसं भाण्डमारुतातपतापितम् ।
कर्मण्यत्नप्रयुक्तेषु पूर्वस्मिन्दिवसेऽनिशम् ॥८१॥
परस्मिन्दिवसे कुर्यात् पात्रेषु पचनादिकम् ।
गृहोपकरणं सर्वं मुसलोलूखलादिकम् ॥८२॥
प्रक्षा(लये)ज्जगन्नाथं यागोपकरणानि च ।
यागार्थं देवदेवस्य पाकार्थं चाम्बुपावनम् ॥८३॥
स्थापयेत्पादहस्तादि शुद्ध्यर्थं च पृथक्पृथक् ।
वस्त्रेण बहुशश्शोध्य त्रिविधं चाम्बुपावनम् ॥८४॥
इत्थान्नमेवमेवाद्यैस्संक्रान्तं क्षालयेत्पुनः ।
कर्मण्यं त्रिविधं वारि शुद्धभाजनसंभृतम् ॥८५॥
कुम्भाद्यं स्थापयेच्छीते निर्गन्धे परिवर्जिते ।
अग्न्यगारं च संशोध्य यागोपकरणानि च ॥८६॥
उद्धृत्य भस्म सम्मार्ज्य वह्निं काष्ठैस्समिन्धयेत् ।
करीषकबलं क्षिप्त्वा कुसुमाद्यैस्समर्चयेत् ॥८७॥
भद्रपान्नाद्य गृहिणी पुत्रवत्परिरक्षयेत्॥
शोषयेच्छुद्धभूभागे व्रीहिमुद्गतिलादिकान् ॥८८॥
पाकपरवादिभूतानामप्राप्ये संवृताम्बरे ।
उपलिप्ते शुचौ देशे शुद्धे शूर्पादिसाधने ॥८९॥
व्रीहिमुद्गादिकं सर्वमपहन्युः कुलाङ्गनाः ।
अग्रुरान्तो निजं देहमजल्पन्त्यस्तथा स्त्रियः ॥९०॥

अवन्त्युग्रमापूर्यु जीर्णंवस्त्रैर्निमृज्य च।
निर्मलीकृतकर्त्ताभं विशुद्धीकृत्य तण्डुलम् ॥६१॥
विकीर्य फलकापृष्ठे शर्कराद्यान् समाहरेत्।
न पचेयुर्व्रीहियवान् नावहन्युरतापितान् ॥६२॥
पचेयुर्वाऽपितानन्नं ए(तै)षां न हृदयंगमः।
शस्त्रेण फलमूलानि निकृत्यालोक्य यत्नतः ॥६३॥
कृमिकण्टकदोषाणि निर्हरेद्वाग्यतो सति।
यत्नेन सर्वशाकानां कृमिकीटादिवीक्षणम् ॥६४॥
विधायाहृत्य बहुशः पुनः पुनरुदीक्षयेत्।
सतण्डुलानि मुद्गानि शाकानि च फलानि च ॥६५॥
चतुः प्रक्षाल्य शुद्धाभिरद्भिश्च क्षालयेत्तथा।
हव्यं मुद्गं च शाल्यन्नं शस्तं शाके तुलस्यपि ॥६६॥
तण्डुलाभ.करणं तद्वद् अवघ्रावणमेव च।
संविभागात्पुरासर्वमुपयोगं नचार्हति ॥६७॥
अपर्युषितवस्त्रेषु तापितेष्वातपाग्निभिः।
मृण्मयेषु च ताम्रेषु पचेयुः क्षालितेषु च ॥६८॥
मृण्मयेन नवेनैव शतमुष्णेनापचयेद्धविः।
पश्चादूर्ध्वं न कर्त्तव्या मृण्मये पचनक्रिया ॥६९॥
भिन्नानि चिह्नाङ्कानि विकटानि तथैव च।
शर्कराश्मसमेतानि भाण्डानि परिवर्जयेत् ॥१००॥
पश्चादूर्ध्वं न गंमाद्य मुद्गमारं घृतं तिलम्।
ताम्बूलं तण्डुलं चैव मासादूर्ध्वं न संचयेत् ॥१०१॥

अभावोदनपचने पाचयेदोदनादिकम् ।
वस्त्रं केशं ह्यपोकं वा स्पृष्ट्वा प्रक्षालयेत्करौ ॥१०२॥
नासोदकं नेत्रवारि स्वेदाम्बूनि तथैव च ।
न स्पृशेत् न च वस्त्रेण मार्जयेच्छोधयेद् बहिः ॥१०३॥
नोपशाम्योपशाम्याग्निं न मन्दं नापि सत्वरम् ।
नावृतायांवृतायांधो नान्यबुद्धिः पचेदपि ॥१०४॥
तालमश्वत्थकाष्ठं च पलाशं बिल्वमेव च ।
मरीचकं मदनकं शेलुमुन्मत्तकं तथा ॥१०५॥
बाधकं च करञ्जञ्च करीषं व्याधिघातकम् ।
निम्बं तथा कपित्थं च पारिजातकमेव च ॥१०६॥
एरण्डमरुवं चैव कोविदारंविभीतकम् ।
हरीतकं च शाल्मलिं च श्लेष्मातकमथापि च ॥१०७॥
वर्जयेदिन्धनार्थं [illegible] यच्चान्यत्कीटसंयुतम् ।
विषद्रुमाणि सर्वाणि कण्टकानि तथैव च ॥ १०८॥
दुर्गन्धधूमयोनीति (नि) यत्नेन परिवर्जयेत् ।
व्यञ्जनानि च तानि शाकादीन्यपि पाचयेत् ॥१०९॥
कदलीजातयस्सर्वा (र) चूतं च पनसद्वयम् ।
उर्वारुकं च बृहती कारवल्लीत्रयं तथा ॥११०॥
कर्कन्धुक्षुद्रबृहती कुष्माण्डं तिन्त्रिणी तथा ।
नालिकेरं च सिद्धी च कार्कोटं वत्सरं तथा ॥१११॥
अलकं क्षुद्रकन्दं च महाकन्दं तथैव च ।
कन्दं पिन्धूयुता चैव सूरणं तूलमेव च ॥११२॥

मरीचं शीरकं चैव निष्पावं राजमाषकम्।
महामाषं मरीचं च कृष्णमाषं तथैव च ॥११३॥
माषमुद्गं महामुद्गं मुरसीं शाकिनी तथा।
शाहदं शिरूगुडं चैव जीवन्त्यागस्त्य पद्मवान् ॥११४॥
शृंगिबेरं कुलुत्थं च व्याघ्रं सिद्धं तथैव च।
शस्तान्यन्यानि दुष्टानि सुभृशं कारयेद्बुधः ॥११५॥
कोशातकमलाबुं च दूरतः परिवर्जयेत्।
जीरकाद्यैर्विमिश्राणि नालिकेरयुतानि च ॥११६॥
समरीचानि कार्याणि व्यञ्जनानि रसैस्सह।
पयोमिश्राणि शाकानि हिङ्ग्वमिश्राणि साधयेत् ॥११७॥
आसुरं स्याद्विदग्धं यन्त्रपक्वं रौद्रमेव च।
दैवं शृणु तमेवातः कर्म शृणु च तद्वहिः ॥११८॥
केशकीटादिभिर्दुष्टं विदग्धमशृतं तु वा।
शाकौदनादिकं सर्वं सर्वथा परिवर्जयेत् ॥११९॥
मुद्गान्नं च गुडान्नं च पायसान्नं विशेषतः।
शर्करश्चेदानयेन्नित्यमपूपान्भक्ष्यमेव च ॥१२०॥
पर्वणि श्रपयेदन्नं पायसं द्वादशीषु च।
सर्वेषां पयसां शुद्धं गव्यं चेति निगद्यते ॥१२१॥
अशुद्धस्तु दशाहानि प्रसूतायाश्च गोपयः।
पलाण्डुलशुनामेध्यं खादयन्त्या पयस्तथा ॥१२२॥
अनुत्सारहितायाश्च निक्षिप्तायाश्च गोः पयः।
तथैवाधिकृतायाश्च छागं मात्रं पयस्तथा ॥१२३॥

देशकालातिवृत्त्या च यस्या ऊधसि संस्थितम् ।
क्षीरं तस्यास्त्वकर्मण्यं विना वत्सं च दुह्यते ॥१२४॥
विद्धौजामध्यकर्मण्यं प्रसलंते (?) निवृत्तितः ।
शूद्रस्यस्यास्तथा क्षीरं वाहार्थं या च कल्पिता ॥१२५॥
तं कर्मण्यमाप्ता च वत्सो यस्यावमन्यते ।
रुद्रादिव्यपदेशिन्यो याश्च गावस्तदङ्किताः ॥१२६॥
पयस्तासामकर्मण्यं लीलं वत्सविपरैरपि ।
कर्मण्यं पय आहृत्य पायसं कारयेद्बुधः ॥१२७॥
अपूपं च गुला(डा)न्नं च सन्दायां सगुणं हविः ।
वैशेषिकेषु कुर्वन्ति दिवसेषु विशेषवत् ॥१२८॥
पाक्यं पायसपूपाणां सन्ध्येयां च यथावलम् ।
सङ्क्रान्तिर्जन्मनक्षत्रं श्रवणं द्वादशीव्रतम् ॥१२९॥
पर्वद्वयं समुद्दिष्टं सविशेषक्रियाविधौ ।
चन्द्रसूर्योपरागे च प्रादुर्भावदिनेषु च ॥१३०॥
मासर्क्षेषु महाहर्षे विशेषाराधनं हरेः ।
विद्युद्दुर्निमित्ते च दुःस्वप्ने संजातेऽपि महाभये ॥१३१॥
आगतेषु च भक्तेषु कुर्याद्वैशेषिकीं क्रियाम् ।
द्रव्यहीना यदि भवेत् कर्म वैशेषिकं वृथा ॥१३२॥
निर्धनोऽपि यथाशक्ति कुर्याद्भुक्तेषु चिरन्तम ।
केवलेनोदनेनापि शाकाम्रस्वगृतेन च ॥१३३॥
नैत्यं कर्म विधेयं वै भक्तानां शुद्धचेतसाम् ।
शुक्लपक्षेषु च सर्वेषु परिक्रम्याम्बुनासिक्तम् ॥१३४॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रैरलङ्कृत्य नयेद्यागालयं हरिः।
पाकस्थानं गृहं सर्वं त्रिभृज्याभ्युक्ष्य वारिणा ॥१३५॥
आच्छाद्य चवमन्यच्च समाचामेत्कुटुम्बिनी।
प्रविश्य भगवद्गेहं दीपं प्रज्वाल्य गेहिनी ॥१३६॥
काङ्क्षन्ति भर्तुरायानं तिष्ठेत्सपरिचारिका।
जघन्यशायिनी नित्यं पूर्वोत्थानपरा तथा ॥१३७॥
अन्तर्बहिश्च संशुद्धिः गृहकर्मसु सोद्यमा।
मङ्गलाचारशीलाश्च भृत्यबन्धुजनप्रिया ॥१३८॥
हृष्यवेषा सदाभर्तुरानुकूल्यप्रयोजना।
यथालब्धेन संप्रीता कुशला पाककर्मणि ॥१३९॥
र(म्य)वस्तुषु निस्नेहा काले भोज्यान्नभोजने।
भगवद्भक्तियुक्ता च तथा भागवतप्रिया ॥१४०॥
मितरं भाषिणी हासरोदनोद्घोपवर्जिता।
गृहान्तरद्वारदेशास्थानासनविवर्जिता ॥१४१॥
निद्रालस्यविषादासद्भाषणासत्यवर्जिता।
निस्पृहा परकार्येषु स्थिरबुद्धिर्दमता ॥१४२॥
अलब्धानुब्ध(लब्ध)णा स्निग्धा सलज्जा मधुरस्वना।
कुशला लोकयात्रासु दुष्टादुष्टक्रियापरा ॥१४३॥
व्यये च मुक्तहस्ता च दोषश्रवणभीषिता।
नास्तिवाक्येऽविसंत्रस्ता संचारे व्यन्नविग्रहा ॥१४४॥
नचवक्त्र (?) च लाभा च वेश्यालावण्यनिस्पृहा।
गुप्तेषपरहस्यार्थं कर्मभोज्यान्नभोजना ॥१४५॥

एवमादिगुणोपेत (?) नारीणामुत्तमा सती ।
भर्तृकर्म स्वनुरूपाश्याः (?) कृतकृत्यस्सचेतनः ॥१४६॥
श्लाघयन्ती स्वसामर्थ्यं भर्तृनिन्दापरायणा ।
असमक्षं समक्षं वा दुष्टां तां वर्जयेद्बुधः ॥१४७॥
भर्तुर्धनं च लोभात्स्त्री क्षियमाणेऽपि भर्तरि ।
गोपयन्त्यर्थशीला तां कुर्यात्कर्म बहिष्कृताम् ॥१४८॥
निजोदरं पूरयन्ती भृत्यवर्गं तथाऽतिथिम् ।
न्यूनस्वस्याति स्त्री वा तथा पाकं विवर्जयेत् ॥१४९॥
स्वस्या विपद्यमानाया स्नुषाया स्वेन वा सुतैः ।
धारयेत्तां प्रयत्नेन विना तां कर्म कारयेत् ॥१५०॥
धर्महानिर्यथा न स्याद्यथा सज्जनगर्हणा ।
सर्वं तथा समीक्षं (क्ष्यं) द्रागाचरेद् बुद्धिमान्नरः ॥१५१॥
स्वाधीनां कारयेन्नारीं सर्वकर्मसु नात्मवान् ।
सर्वकर्मानुसन्दध्यात् स्निग्धः किल तयावसन् ॥१५२॥
स्त्रीकृतेषु न विश्वासः कर्तव्यः सत्क्रियापरैः ।
मायाचारेण निपुणा मोहयन्त्यविचक्षणान् ॥१५३॥
अपराधो यदि भवेत् प्रमादान्निजयोषिताम् ।
मुखभङ्गस्मृतस्तासां दण्डस्सन्त्वसचेतसाम् ॥१५४॥
न ताडयेन्नातिमात्रं पुष्पेन कृशतां नयेत् ।
स्त्रियं भर्त्ता नचान्येषां दोषं तस्याः प्रकाशयेत् ॥१५५॥
भोजनाच्छादनैः पुष्पभूषणाद्यैर्निजस्त्रियम् ।
आलापैस्सरसैर्नित्यं तोषयेत्तां रमेन्न च ॥१५६॥

रूप्यं पुष्पं स्वक्षत्रं च नवेद्यागान्न्यं हविः ।
पाकस्थानं गृहं सर्वं विमृज्याभ्युक्ष्य वारिणा ॥१३५॥
आच्छाद्य मण्डपन्यत्र शाखाभाण्डैः सुशोभिनी ।
प्रविश्य भगवद्गेहं दीपं प्रज्वाल्य गेहिनी ॥१३६॥
कारयन्ति भर्तुः स्नानं तिलतैलपरिचारिका ।
जघन्यशायिनी नित्यं पूर्वोत्थानरता तथा ॥१३७॥
अन्तर्बहिश्च संशुद्धिः गृहकर्मसु सोद्यमा ।
मङ्गलाचारशीला च भृत्यबन्धुजनप्रिया ॥१३८॥
दृढवेषा सदाभर्तुरानुकूल्यप्रयोजना ।
यथालब्धेन संप्रीता कुशला पाककर्मणि ॥१३९॥
र(म्य)वस्तुषु निस्स्नेहा काले मेध्यान्नभोजने ।
भगवद्भक्तियुक्ता च तथा भागवतप्रिया ॥१४०॥
मितं भाषिणी हासरोदनोद्घोषवर्जिता ।
गृहान्तरद्वारदेशस्थानासनविवर्जिता ॥१४१॥
निद्रालस्यविवादासद्भाषणासत्यवर्जिता ।
निस्स्पृहा परकार्येषु स्थिरबुद्धिर्दृढव्रता ॥१४२॥
अलब्धानुद्व(त्व)णा स्निग्धा सलज्जा मधुरस्वना ।
कुशला लोकयात्रासु दुष्टादुष्टक्रियापरा ॥१४३॥
व्यये च मुक्तहस्ता च दोषश्रवणभीपिता ।
नास्तिवाक्येऽतिसंत्रस्ता संचारे छन्नविग्रहा ॥१४४॥
नचवक्त्र (?) च लाभा च वेश्यालावण्यनिस्पृहा ।
गुरुवेपरहस्यार्थं कर्मभोज्यान्नभोजना ॥१४५॥

एवमादिगुणोपेत (?) नारीणामुत्तमा सती ।
भर्तृकर्म स्वनुरूपास्याः (?) कृतकृत्यस्सचेतनः ॥१४६॥
श्लाघयन्ती स्वसामर्थ्यं भर्तृनिन्दापरायणा ।
असमर्थां समर्थां वा दुष्टां तां वर्जयेद्बुधः ॥१४७॥
भर्तुर्धनं च लोभात्स्त्री क्लिश्यमानेऽपि भर्तरि ।
गोपयन्त्यर्थशीला सा कुर्यात्कर्म बहिष्कृताम् ॥१४८॥
निजोदरं पूरयन्ती भृत्यवर्गं यथाऽतिथिम् ।
न्यूनस्थस्याति स्त्री वा तथा पाकं विवर्जयेत् ॥१४९॥
श्वश्र्वा विवदमानायां स्नुषाया स्वेन वा सुतैः ।
धारयेत्तां प्रयत्नेन विना तां कर्म कारयेत् ॥१५०॥
धर्महानिर्यथा न स्याद्यथा सज्जनगर्हणा ।
सर्वं तथा समीक्ष्यं (क्ष्य) प्रागाचरेद् बुद्धिमान्नरः ॥१५१॥
स्वाधीनां कारयेन्नारीं सर्वकर्मसु नात्मवान् ।
सर्वकर्मानुसन्दध्यात् स्निग्धः किल तयावसन् ॥१५२॥
स्त्रीकृतेषु न विश्वासः कर्तव्यः सत्क्रियापरैः ।
मायाचारेण निपुणा मोहयन्त्यविचक्षणान् ॥१५३॥
अपराधो यदि भवेत् प्रमादान्निजयोषिताम् ।
मुखभङ्गस्स्मृतस्तासां दण्डस्सन्तप्तचेतसाम् ॥१५४॥
न ताडयेन्नातिमात्रं पुष्पेण कुरुतां नयेत् ।
स्त्रियं भर्ता नचान्येषां दोषं तस्याः प्रकाशयेत् ॥१५५॥
भोजनाच्छादनैः पुष्पभूषणाद्यैर्निजस्त्रियम् ।
आलापैस्सरसैर्नित्यं तोषयेत्तां रमयेन्न च ॥१५६॥

विलोभयन्सदापृष्टदृष्टार्थवचनैःस्त्रियाः ।
भगवत्कर्मसिद्ध्यर्थं नयेदात्मानुकूलताम् ॥१५७॥
पुत्रान् भृत्यान् कलत्रं च भक्तमाश्रितमेव च ।
नित्यं कुर्यादुपायेन भगवद्भक्तिभावितान् ॥१५८॥
अपुत्रा वा सपुत्रा वा भक्ता दक्षा च कर्मसु ।
या स्त्री तां वर्जयेद्भर्ता न कदाचिदपि प्रियाम् ॥१५९॥
पुत्रार्थं नोद्वहेदन्यां कर्म पुत्रा हि योगिनः ।
अपुत्रोऽपि परं याति कामी नान्योऽपि सत्सुतः ॥१६०॥
न स्त्रीजितो भवेद्भर्ता नचाशक्येषु (दाप)येत् ।
भुक्ता न कथयेत्स्त्रीणां असक्तस्सक्तवद्वसेत् ॥१६१॥
निर्भयास्सुहृदोलोको यथास्युस्सर्वजन्तवः ।
सिधाभीत ('' ?) स्वकुलंतत्तथाचरेत् ॥१६२॥
यथाशास्त्रमुपादानमाचमेद्भोगनिस्पृहः ।
भगवद्धर्मलाभेन समो यस सुखी भवेत् ॥१६३॥

इति शाण्डिल्यधर्मशास्त्रे उपादानाचरणं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

इज्याचारवर्णनम्

उपादानप्रकारो यः सम्यगुक्तः समासतः।
इज्याचारं च वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥
भोगानुपाज्ययागार्थं विधिवत्स्नानमाचरेत्।
प्रक्षाल्य पादौ स्वाचामेत् (नित्यंयः) स्वोर्ध्वपुड्रकः ॥ २ ॥
सप(वि)त्रकरश्चैव प्रसन्नो यागमारभेत्।
व्यक्ते वेद्यामायतने व्योम्न्यन्तर्हृदयाम्बुजे ॥ ३ ॥
एकस्मिन्नेव देवेशं यथायोगं समर्चयेत्।
पुक्तमायतनं याऽपि प्रथमं यत्समाश्रितम् ॥ ४ ॥
आदेहपातात्तद्धित्वा नान्यद्धिष्ण्यं समाश्रयेत्।
उपचारेषु भक्तस्तन् स एव इति निश्चितम् ॥ ५ ॥
व्यक्तायतनयोः पूजां कुर्याद्भक्तिविवृद्धये।
वेधन्तरिक्षवन्मौढ्याद्वृत्तिस्थानं प्रपश्यति ॥ ६ ॥
व्यक्तायतनसंस्थानं नार्हस्तत्रार्चनाविधौ।
कर्मिणस्सर्वथा नित्यमस्वाधीनप्रवृत्तयः ॥ ७ ॥
इति उभययोगेन वेदिर्वेदप्रचोदिता।
लब्धं गुरोः प्रसादेन क्रमागतमथाऽपि वा ॥ ८ ॥
उद्धतं याचितं चास्यात् निम्नं गौणमतोऽन्यथा।
भक्तानां सर्वविषयव्यावृत्तदृढचेतसाम् ॥ ९ ॥

सर्वेषामादिमूर्तिस्तु मङ्गलं वेदवादिनाम् ।
कुटुम्बी यजेद्बिम्बं दार्वं शैलं च मृण्मयं ॥१०॥
गृहेषु भित्तिसंस्थं च योगनिद्रारसोत्सुकम् ।
कुटुम्बाश्रमनिष्ठस्य नित्यं स्वाधीनकर्मणः ॥११॥
अच्छिद्रकारिणस्शान्तं व्यक्तो मूर्द्धगस्य पूजनम् ।
चरतः कर्मणो यत्र वेदिः कर्तुं न शक्यते ॥१२॥
अभ्युपायास्तथा भोगा स्वत्रैव व्योम्नि पूजनम् ।
विवेकसिद्धा ये सन्तः पक्वयोगा गुणातिगाः ॥१३॥
केवलज्ञानसन्तृप्तास्ते यजेयुः परं हृदि ।
अन्येऽपि सर्वभोगानामभावे यत्र जायते ॥१४॥
यजेयुर्हृदयाम्भोजे भोगैर्मानसकल्पितैः ।
सिद्धये तु महात्मानो विवेकज्ञानयोगिनः ॥१५॥
वर्जयित्वा कृतानन्ये यजेयुर्द्रव्यसंपदा ।
सर्वभूतेषु देवेषु नरः प्रकृतो (...?) तथा ॥१६॥
मनुष्याकृतिदेवेषु न कार्यं पूजनं बुधैः ।
(केचिद्) धनामुखाः केचित् दमनप्रतिशाकयः ॥१७॥
मनुष्याकृतयो देवा नोपास्यास्ते कदाचन ।
प्रादुर्भावादिभिर्देवैः मत्स्यः कूर्मादिभिर्विना ॥१८॥
अशुद्धेष्वर्चयन्मूढो नाप्नोति परमं पदम् ।
तिर्यक्त्वं मानुषत्वं वा मत्स्याद्यं स्वेच्छया हरिः ॥१९॥
यथास्थितस्सएवासौ दीपाद्दीप इवोदितः ।
व्यक्तव्यवनयो नित्यमर्चयेत्पुरुषोत्तमम् ॥२०॥

सावधानो भवेद्भक्त्या भृत्यो नृपमिवान्तिके।
अन्यत्राप्यर्चयन्मन्त्री पूजाकाले जनार्दनम् ॥२१॥
तत्रस्थं भावयेद्देवं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्।
परीक्ष्य भोगानादाय सौस्थ्योऽप्यमृतरूपताम् ॥२२॥
पञ्चाङ्गो भोतवद्भोगैस्तन्मयैस्तन्मयोर्चितैः।
तत्राभिगमने पूर्वं दिव्यमन्त्रार्थदर्शनात् ॥२३॥
साक्षादभिमुखं देवं भावयित्वाऽर्चयेद्वशी।
भगवद्वदनाम्भोजस्यन्दमानामृतोदधिः ॥२४॥
पिबन्निवमहाह्लादमध्यस्थः पूजयेत्प्रभुम्।
भक्तसन्दर्शनप्रीत्या नानाभूतैरिवावृतः ॥२५॥
नेत्रपातैर्भगवता स्वात्मानं शुचितां नयेत्।
नातिद्रुतं नातिमन्दं नोच्चैर्मन्त्रानुदीरयेत् ॥२६॥
अत्वरः सुमनाः क्रोधकामं हित्वा यजेत च।
न शब्दयन्न्यासमसम्भ्रमक्रुनान्नाद्रयन्महीम् ॥२७॥
नन्तुं कु (?) जल्पंश्च शुद्धमौनो भवेद्वशी।
सम्पूज्याङ्गैरुपाङ्गैश्च बद्धोष्ठं नासिकाक्षरैः ॥२८॥
अव्यक्तैरप्यशुद्धं तन्मौनवर्द्धनं शुभम्।
यथा शुश्रूषनं राजानं यद्वाचं मदहस्तिनम् ॥२९॥
यथाप्रियातिथिं योग्यं भगवन्तं तथार्चयेत्।
सम्यक्प्रसाधितमेवापि यत्स्यान्न हृदयंगमम् ॥३०॥
पर्सयेद् दरदुर्ग च हस्तात्स्खलितमेव च।
पुराभिगमनं मन्त्रैः प्रणवाद्यैर्यथाविधि ॥३१॥

अभिगम्यैव देवेशं मानसाद्यैस्समर्चयेत् ।
अष्टधा विहितैर्मन्त्रैश्चातुरात्म्य पदस्थितैः ॥३२॥
भगवच्छापकैश्शुद्धैरिज्यामन्त्रैस्समर्चयेत् ।
स्नानभोगैस्समभ्यर्च्य दिव्यालङ्कारादिमण्डितम् ॥३३॥
अलङ्कारासनं दत्त्वा दिव्यैस्स्रक्चन्दनादिभिः ।
भोगैस्सुसंस्कृतैरेवमर्चितं भावयेत्परम् ॥३४॥
सतीवप्रियभर्त्तारं जननीव स्तनन्धयम् ।
आचार्यं शिष्यवन्मित्रं मित्रवल्लालयेद्धरिम् ॥३५॥
स्वामित्वेन सुहृत्त्वेन गुरुत्वेन च सर्वदा ।
पितृत्वेन समाभाव्यो मातृभावेन माधवः ॥३६॥
सुस्नातं स्वनुलिप्तं च स्रग्विणं च स्वलङ्कृतम् ।
संस्तुतं विविधैस्स्तोत्रैर्भोज्यासनगतं प्रभुम् ॥३७॥
अवश्यं मधुपर्केण मध्वाज्यदधियोगिना ।
अर्चयेदुदकेनाऽपि स्वातिथ्येन फलादिभिः ॥३८॥
मध्वाज्यं दधि संयोज्य यजते यो जनार्दनम् ।
अयं संसृज्यते तेन श्रीमता मधुपर्कवत् ॥३९॥
मधुराणां [redacted] सम्पर्को मधुपर्कः प्रकीर्तितः ।
सम्पर्कसरसस्तेन मधुपर्केण जायते ॥४०॥
संपूज्य मधुपर्केण गां निवेद्य च दक्षिणाम् ।
गवार्थं द्रव्यमेवापि ततोऽग्नौ च समर्पयेत् ॥४१॥
शाककन्दफलोपेतैर्गुडदध्याज्यसंयुतैः ।
अन्नैः प्रभूतैर्देवेशं विविधैः पृथगर्चयेत् ॥४२॥

पक्वंस्तथान्नाद्यं यद्भुक्तं परमेष्ठिनम् ।
ायद्रक्षणीयं तद्विनियोगावसानिकम् ॥४३॥
ान् भागवतांस्तत्र गुरुपूर्वं यथाविधि ।
र्चयेत्परया भक्त्या द्रव्यैरर्घ्यादिभिश्शुभैः ॥४४॥
तोभिर्भूषणैर्भक्ष्यै र्धनधान्यादिभिस्तथा ।
या व(मूर्ति)तिमभ्यर्च्य दद्यात्तो देवसन्निधौ ॥४५॥
ामध्ये तथा होमे योगे च जपकर्मणि ।
गतं पञ्चकालज्ञं संपूज्यैवाचरेत्परम् ॥४६॥
णं गां गुणवतीं भूमिं वृत्तिकरीमपि
द्भागवताग्रेभ्यो भोगमोक्षार्थये सुधीः ॥४७॥
कुम्भैः पथिश्रान्तैः फलमूलादिभिस्तिलैः ।
माद्यैरुपयोगार्हैस्तोषयेत्सात्वतोत्तमान् ॥४८॥
ंयदात्मनो नित्यं यत्कथार्तं सद्गुणोज्ज्वलम् ।
न्नवेद्य जगद्धात्रे दद्यात्सत्कर्म योगिने ॥४९॥
मन् कुम्भे प्रियं यत्स्यादम्बुवक्षोदनादिकम् ।
मन्काले प्रदातव्यं तेनेष्ट्वा पुरुषोत्तमम् ॥५०॥
शिष्टं वस्तु संपाद्य हृद्यं पुष्पोदनादिकम् ।
निष्ट्वा तद्दत्वा च समस्मन्नरसुकरः ॥५१॥
न्नं सुसंस्कृतं हृद्यं भगवद्ब्राह्मणाग्निभिः ।
यवर्गैस्तथा भुक्तं भोज्यं विषमतोऽन्यथा ॥५२॥
ोषिमपि वा स्तोयं प्रभूतं स्वल्पमेव वा ।
वत्प्रीतये नित्यं दद्याच्छूद्राय योगिने ॥५३॥

ये तोषयन्ति निरतं पञ्चकालपरायणान् ।
सकामास्तत्फलं यान्ति निष्कामाः परमं पदम् ॥५४॥
गृहे भागवते प्राप्ते तदिष्टमुपलक्ष्य च ।
अञ्जसा तत्प्रियं कार्यं यथार्हं श्रमनुत्तयं ॥५५॥
आसनैरर्घ्यपाद्याद्यैर्व्यञ्जनैरुचितोक्तिभिः ।
पादसंवाहनाभ्यङ्गैरतिथिः पूजयेत्प्रियम् ॥५६॥
गृहस्वदनं दत्वा वाक्यं प्रियमथासनम् ।
प्रदेयमञ्जसा नित्यं संप्राप्ते भगवत्परे ॥५७॥
पूज्या नित्यं भगवतस्सन्निधाने विशेषतः ।
अनन्याः पञ्चकालज्ञा न कदाचिदृथेतरे ॥५८॥
अन्नमम्बूनिवस्त्राणि पात्राणि स्रक्फलादिकम् ।
इष्टमिष्टावशिष्टं वा दद्यात्ना पञ्चकालिने ॥५९॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखनिवारणम् ।
भगवद्भुक्तमन्नाद्यमयोग्येभ्यो न योजयेत् ॥६०॥
अयोग्ययोजनादेव योग्ये चाप्यनियोजयेत् ।
भगवद्भुक्त भा(ण्डा)ना प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥६१॥
भगवद्भुक्तमन्नाद्यमज्ञानाद्योऽवमन्यते ।
इह निकृतीं प्राप्य जायते स पुरीषभुक् ॥६२॥
पवित्रं भगवद्भुक्तं सेवयाभ्युपयुञ्जते ।
भवन्त्यरोगास्सुखिनः पापदोषविवर्जितम् ॥६३॥
आराध्यैव जगन्नाथं तच्छेषं नापरा अपि ।
त्यक्तभक्तार्चना व्यर्था अरसा ऊपराम्बुवत् ॥६४॥

अभावे कारिणां कारि मनसाचार्यमर्चयेत् ।
तत्तन्मन्त्रैस्तथाद्रव्यैस्तूर्णं कृत्वा महीतले ॥६५॥
आचार्यस्य पितुश्चैव स्वामिनो द्रव्यमर्हति ।
शिष्यः पुत्रस्तथा दास इति तद्वोक्तुमर्हति ॥६६॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं स्त्रियमथेतरम् ।
पूजयेत्तान् यथायोगं भगवद्योगभावितान् ॥६७॥
द्रव्यशास्त्रानभिज्ञोऽपि भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ।
अभ्यसूयाविरहितश्शास्त्रे पूज्यस्स सात्वतैः ॥६८॥
अकृत्रिमा भगवति प्रीतिर्यस्मिन् प्रदृश्यते ।
भक्तेषु वाच्य एवायं बाह्यलिङ्गधरोऽपि वा ॥६९॥
वैष्णवोऽहं प्रदो(दे)हीति याचिते येन केनचित् ।
नावमन्येत तं विद्वान् तर्पयेदन्यथाऽपि च ॥७०॥
अविज्ञाता अनर्हाः सामान्या ये गृहमेधिनः ।
देवानिवेदितैर्द्रव्यैस्तर्पयेत्तद्सन्निधौ ॥७१॥
भुक्तं भगवता यद्यद् गुरुशेषमथापि वा ।
हुतशेषं ततोच्छिष्टं भक्तिहीने न योजयेत् ॥७२॥
अवश्यं भोजनीयानामभागवतवेदिनाम् ।
लौकिकाग्निषु पक्वेन कार्यमन्येन तर्पणम् ॥७३॥
आपणं साधितुं नित्यमशक्तस्सकृदग्निना ।
योग्यगेहाद्गतेनापि साधयेज्जुदुशादिह ॥७४॥
आपणं भगद्भुक्तं लब्धा भागवतेन तत् ।
पुनरिष्टंच भोक्तव्यं दानं तस्य न चेष्यते ॥७५॥

अनर्पितं भगवते स्वाराध्याय स्वतन्त्रतः ।
यद्भुक्त्वा कुरुते कर्म तद्द्रव्यं यस्य तस्य तत् ॥७६॥
कर्मणा मनसा वाऽपि यथाकालं यथाबलम् ।
स्वाराध्याय निवेद्यैव सर्वं भुञ्जीत बुद्धिमान् ॥७७॥
शुद्धं न्यायेन संप्राप्तं साधितं साधुयत्नतः ।
अभोज्यमेव जानीयान्निजमन्त्रानिवेदितम् ॥७८॥
मूर्त्यन्तरेण संभुक्तं अयत्नेन समागतम् ।
स्वमन्त्रमूर्त्तिं सञ्चिन्त्य मनसा तत्समर्पयेत् ॥७९॥
स्वत आत्मनि देवेश शेषभूतोऽप्यहं गतैः ।
तथास्तीति यदञ्छुद्धस्तथा स्वेन समन्वितः ॥८०॥
मुमूर्षधरतथा वाञ्छा भगवत्पादयोः परैः ।
समर्प्यन्ते तथाशक्तं भोज्यमन्नं निवेदितम् ॥८१॥
तथा स्वाराधनेनैव न प्रीतो भगवान् हरिः ।
यथा भागवतश्रेष्ठपादाम्बुरुहपूजनात् ॥८२॥
यथा कु(कौ)टुम्बिकश्श्रीमान् कुमारैरनुमोदिते ।
मोदिते भगवान् तैस्तैस्तथा नियतमानसैः ॥८३॥
अनादृतसुतं गेही पुरुषं नाभिनन्दति ।
तथाऽनर्चितसद्भक्तं भगवन्नाभिनन्दति ॥८४॥
यस्य यस्याधिकं दृष्ट्वा भक्तिज्ञानक्रियामपि ।
तं तं समर्चयेत्पूर्वं यथार्हं क्रमयोगतः ॥८५॥
निर्धनांश्चरतो लोके वृत्त्यर्थमिव स(सा)त्वतान् ।
नावमन्येत तल्लोक मपात्री कुरुते हरिः ॥८६॥

ये पाचयन्ति धरणीं चरन्तो पाञ्चकालिकः ।
दर्शनाद्भाषणात्तेषां कृतार्थाः सर्वजन्तवः ॥८७॥
अभ्यर्च्य श्रद्धया प्राप्तान् सर्वानभ्यागतातिथीन् ।
पाषण्डवर्ज्यमन्नाद्यैरग्निकार्यं समारभेत् ॥८८॥
लवणं चोदकं हित्वा कर्मण्यं यद्यदाहृतम् ।
तत्सर्वं जुहुयादग्नौ तिलपुष्पौदनादिकम् ॥८९॥
यदन्नं साधितं साधु प्रापणार्थं प्रयत्नतः ।
भगवद्भुक्तशेषेण तेनैव भगवत्क्रिया ॥९०॥
यथा व्योम्नि यथा वेद्यां योगे ध्याने यथोदितम् ।
कुटुम्बाश्रमनिष्ठानां तद्वदग्निषु पूजनम् ॥९१॥
पापक्षयक्रियापूर्तिस्सर्वोपद्रवनिग्रहः ।
शुद्धिश्चित्तप्रसादश्च तस्माद्धोमं न लोपयेत् ॥९२॥
निषिद्धद्रव्ययोगेन पञ्चकाले निषेवणाम् ।
श्रद्धया जुह्वतां नित्यं नाराध्यमिह किंचन ॥९३॥
आयाह्याग्नौ जगन्नाथं मनसाभ्यर्च्य शक्तितः ।
जुहुयात्काष्ठपुष्पान्नं घृतक्षीरविलादिकम् ॥९४॥
श्रद्धया परया हुत्वा यथाविधि विधानवित् ।
संविभागं च भूतानां कुर्याद्भगवदग्रतः ॥९५॥
भृत्याश्च द्विविधा ज्ञेया प्रेता जीवास्तथैव च ।
प्रेता मृतास्स्ववंशेषु जीवा जीवन्ति वै गृहे ॥९६॥
पितृपुत्रकलत्राद्या दासीदाससमाश्रिताः ।
रक्षणीया गृहे ये स्युर्भृत्या जीवा इमे स्मृताः ॥९७॥

यथार्हं च यथाशक्ति शुचिभक्ष्यान्नमम्बु च ।
दद्यात्पितॄन् समुद्दिश्य भगवज्ज्ञानयोगिने ।।९८।।
चत्वारो वहयो द्वौ वा सम्यग्ज्ञान्येक एव वा ।
पूज्या नित्यं प्रयत्नेन पित्रर्थं भोज्यसंपदा ।।९९।।
स्वल्पैरप्यन्नपानाद्यैः पादोदकविमिश्रितैः ।
भुक्तैर्भगवता सन्तं सोपयेत्पितृतृप्तये ।।१००।।
भिक्षां वा भिक्षवे दद्यात् पित्रर्थं शक्तिवर्जितः ।
प्रत्याचक्षीत नाल्पान्नं पानीयं लवणं सति ।।१०१।।
पितरं मातरं पुत्रान् कलत्रं मित्रमेव च ।
बिभर्ति वा यथागेही प्रेतभूतास्तथैव सः ।।१०२।।
कृशान् भागवतान् प्राप्तान् दरिद्रानध्वकर्शितान् ।
तैलान्नवस्त्रपानाद्यैः पुरस्तान् वासयेद् गृही ।।१०३।।
निन्दन्ति ये भागवतानज्ञानात्पापचेतसः ।
न दद्यात्सर्वथा तेभ्यो वाचं वार्यापि यात्सुखम् ।।१०४।।
गृहे भागवतं प्राप्तमज्ञानाद्योऽवमन्यते ।
नष्टश्रीको भवेत्सद्यः क्षीणायुः पुण्यसञ्चयः ।।१
भोजयेद्भोजनीयांस्तान् गुरुपूर्वं कुटुम्बिकः ।
पितृमातृक्रमेणैव दासान्तं प्रीतमानसः ।।१०६।।
कांस्यं कुम्भोदलं पाद्मं पालाशवटपल्लवम् ।
अश्वत्थपल्लवं चैव पात्रं कुर्यान्न भोजने ।।१०७।।
नातिदोषावहं कांस्यं भोजनेऽश्वत्थ एव च ।
कुटुम्बिनामकामानामितीच्छन्ति हि केचन ।।१०८।।

पात्रंदार्वं च शैलं च मृण्मयं पाणिमेव च ।
आयसं वर्जयेद्योगी भृष्टं वस्त्रमेव च ॥१०६॥
हैमं रौप्यं च ताम्रं च कदलीनालिकेरकम् ।
कारयेद्भोजने पात्रमन्यत्कर्मण्यपृष्ठकम् ॥११०॥
कर्मण्येष्वपि भिन्नेषु नाश्नीयात्तैजसेषु च ।
निक्षिपेन्नच ताम्रेषु दधिक्षीरघृतादिकम् ॥१११॥
चतुरश्रेषु शुद्धेषु सद्यः प्रक्षालितेषु च ।
भूमिं संस्पृष्टपार्श्वेषु पिष्टरेषु क्रमाविशेत् ॥११२॥
पालाशवटतालानामश्वत्थस्य च काष्ठजम् ।
चक्रादिलाञ्छितं भिन्नं वर्जयेदुत्तमासनम् ॥११३॥
वेत्रचर्मकृतं चैव तालपत्रकृतं कुशम् ।
आसनं वर्जयेद्भुक्तौ यागयोगोपयोगि च ॥११४॥
स्पृष्ट्वा भुवं पदाग्रेण पात्रं सव्येन पाणिना ।
अश्नीयान्मन्दमावृत्य पादौ वस्त्रान्तरेण च ॥११५॥
अङ्केनारोहयेत्पादं पाणिना नाक्रमेद् भुवि ।
अङ्कं वा न स्पृशेत्पद्भ्यां पादं पादान्तरेण वा ॥११६॥
उपलिप्य शुचौ देशे निश्छिद्रं चतुरश्रकम् ।
सवितानें सदीपे च भोक्तव्यं भगवन्मयैः ॥११७॥
वेत्रासनस्थे पात्रे च नाश्नीयान्नासने स्थिते ।
नाकं स्थे दारुसंस्थे च नाकेशेनार्द्धकारिते ॥११८॥
नाश्नीयाच्छयनारूढो न दीपे निहते पुनः ।
न दृष्ट्वा केशकीटाद्यं नचान्धेऽप्यदर्शने ॥११६॥

पानीयं न पिबेद्योगी शङ्खचक्रादिमुद्रितैः ।
शङ्खेन पायसेनापि पद्मपत्रादिभिस्तथा ॥१२०॥
कुर्वन् सुभोजनं कर्म्म सर्वेषु गृहमेध्यपि ।
प्रसाद्यस्तानुज्ञाप्य सहाश्नीयात्प्रबुद्धधीः ॥१२१॥
बालवृद्धातुरान्दासानाश्रितान् मातरं गुरुम् ।
पितरं चागतान् ज्ञात्वा गृही भोजनमारभेत् ॥१२२॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य द्विरार्द्र मुखवत्करः ।
इज्या प्रदेशाभिमुखं समश्नीयात्प्रसन्नधीः ॥१२३॥
जपभोजनहोमास्तु देवस्याभिमुखं चरेत् ।
भगवत्पादयोर्योऽन्य(:) शिरश्शयनमाचरेत् ॥१२४॥
विशुद्धकोष्ठशुद्धाभिः पादाम्बु कुसुमादिभृत् ।
पयिश्रयेपरशुद्धात्मा भुञ्जीतान्नपवित्रितम् ॥१२५॥
कर्म्मारंभपवित्रं च प्रणवं च षडक्षरम ।
जप्त्वा ध्यानपरोऽश्नीयात् तन्मयोऽन्नमनाकुलः ॥१२६॥
संविभागावशिष्टेन कारिदत्तावशेषितैः ।
हुतशेषेण संयुक्तं यदन्नममृतं तु तत् ॥१२७॥
नावश्यं भोजने मौनं कुटुम्बाश्रमवासिनाम् ।
वाचोपचारः कर्त्तव्यो भोजने भुञ्जता सह ॥१२८॥
भगवत्पादतोयेन प्रोक्षयित्वाऽमृतोदनः ।
ध्यायन्नन्नगतं देवं जपन्मूलं चतुर्गुणः ॥१२९॥
अर्घ्येण परिषिच्यान्नं कर्मारम्भेण मन्त्रवित् ।
इदमन्नं जपेन्मन्त्रं स्पृष्ट्वा भोज्यामनाकुलः ॥१३०॥

धातारं हृदयान्तस्थं ध्यात्वा पादाम्बुजपूर्वकं ।
तदास्ये जुहुयादन्नं तत्तन्मन्त्रैस्समाहितैः ॥१३१॥
ध्यायन्नेवं परंब्रह्म भोक्तारं हृदये स्थितम् ।
अश्नीयादत्वरो मन्त्री भोज्यं सर्वमकुत्सयन् ॥१३२॥
विशिष्टभोज्यमायातमनिवेद्यिसमन्तरा ।
अर्चापयेदनेनान्तस्सुतशिष्यादिभिः परम् ॥१३३॥
क्षुद्रं वस्तु समायातं मनसा तन्निवेद्य च ।
अश्नीयान्मिश्रितं कृत्वा साक्षात्पूर्वनिवेदितैः ॥१३४॥
निष्कल्मषो भवेन्मर्त्य एवं शुद्धान्नभोजनात् ।
प्रसीदन्ती इन्द्रियाण्याशु सत्त्वं च परिवर्द्धते ॥१३५॥
अन्नशुद्ध्यैव सत्त्वस्य विशुद्धिस्सर्वदेहिनाम् ।
सत्त्वशुद्ध्यैव सत्कर्म नियते वर्जयेत्यसन् ॥१३६॥
आरोग्यं रूपवत्ता च कीर्तिःश्रीज्ञानमेव च ।
शान्तिस्सत्कर्मणि श्रद्धा शुद्धान्नेन भवन्ति हि ॥१३७॥
काम क्रोधस्तथालोभः परहिंसारुचिस्तथा ।
निद्रालस्यादयो दोषा अमेध्यान्ननिषेवणात् ॥१३८॥
अशुद्धान्नाशनात् पुंसां रोगावाह्यास्तथान्तरा ।
शत्रुवृद्धिमहद्रोहस्तामसीगतिरेव च ॥१३९॥
परदारपरद्रव्यसन्य(:)संसक्ति दुष्टभोजनात् ।
कार्यबुद्ध्येव कालेन क्रियन्ते ते बुद्धेतिभिः ॥१४०॥
शनैश्शनैः क्रिया साध्वी विगलय्य यथादि वा ।
अत्यन्तामेव भोज्यानि भोक्तुं मृगयते नरः ॥१४१॥

गलेऽमत्कर्मणा रूपाद्मेध्यस्य निषेवणात् ।
विपर्येष्वभिषक्तानामायुः प्रक्षीयतेऽन्तरा ॥१४२॥
पथ्यं मितं च शुद्धं च रस्यं हृदयनन्दनम् ।
स्निग्धं हरिप्रियं चोष्ण मन्नं भोज्यं मनीषिभिः ॥१४३॥
भगवद्यागयोग्यं यत्तदेवाशनकर्मणि ।
भोजनार्हमिदं देव यागाङ्ग इति नेष्यते ॥१४४॥
न भर्त्सयन् बालपुत्रान् नावदन् न च भार्यया ।
अन्येभ्यो दापयञ्छ्रद्धया नश्नीयात्सह बान्धवैः ॥१४५॥
शक्तिहीनो यथाशक्ति दापयन्नन्नमम्बु च ।
भृत्यवर्गं समाश्नीयात् तेभ्यो दत्वा कदाचन ॥१४६॥
पिबेद्भोजनपात्रेण पाणिना पानभोजने ।
प्रभूतं न पिबेत्तोयं नापिबन् वाशनं चरेत् ॥१४७॥
पीत्वावशिष्टं चषके पुनस्तान्न पिबेज्जलम् ।
शाकाद्यं नोत्सृजेत्थाल्यः पाणिना वापि भुञ्जताम् ॥१४८॥
आद्याद्यन्तयोरार्द्रं मध्ये क्लिन्नमिवोदनम् ।
अन्नोपदंशपानीयैः त्रिभागमुदरं भवेत् ॥१४९॥
ये भुञ्जते समीपस्था ये भोक्ष्यन्ति ततः परम् ।
सर्वं तन्मनसा बुद्ध्या तदर्हमशनं चरेत् ॥१५०॥
भगवद्भुक्तशेषं यद् भुक्तं भागवता तथा ।
तदेव भोज्यमुद्दिष्टं भगवद्योगसेविभिः ॥१५१॥
वासोभूषणपुष्पाणि गन्धं तैलं तदौषधम् ।
सर्वं भगवते नित्यमुपयुज्यान्निवेदितम् ॥१५२॥

स्नानाचमनपानार्थमर्हणाद्यं यदम्बुवत् ।
उपयुक्तं भगवता पानीयं तत्प्रकल्पयेत् ॥१५३॥
भोजनाद्यं तथाद्रव्यं पात्राण्येकं समन्त्रकम् ।
पीत्वे(पित्रे)द्रवद्यं सद्भक्तो मिश्रितं चार्हणादिभिः ॥१५४॥
भोजनं भगवत्कर्म यद्यपि स्यान्मनीषिभिः ।
न कार्यं भगवद्गेहे विशेषाद्देवसन्निधौ ॥१५५॥
तनयोऽहमिति ज्ञात्वा पात्रं शय्यासनादिकम् ।
उपयुञ्जन् भगवतः पातित्या यत्प्रकल्प्यते ॥१५६॥
तन्मयत्वेऽपि पुत्रस्य पितुः पुत्रो यदाभवेत् ।
नित्यं भिन्नश्च स यथा तथा भागवतो हरेः ॥१५७॥
भुक्तोत्सृष्टं भगवता स्वार्थं तस्मै निवेदितम् ।
उपयोज्यं भवेत्सर्वं नासा कार्यं समाचरेत् ॥१५८॥
फलत्रयमपूपं च गुडान्नं पायसं तथा ।
सर्वं भगवते दत्तं भोज्यं तन्मन्त्रमूर्त्तये ॥१५९॥
चन्दनं गन्धपुष्पं च खण्डं कर्पूरमेव च ।
नोपयुञ्जीत राजार्हमन्यत्र न समर्पितम् ॥१६०॥
श्वसूकरहतं यत्स्यादुच्छिष्टं यच्च मानुषम् ।
नाद्यपि तदश्नीयात् दद्याद्वापि कर्मिणे ॥१६१॥
माषादिचूर्णैर्मृद्भिर्वा प्रक्षाल्यं करयोर्द्वयोः ।
प्रक्षाल्य जानुपादौ च दन्तान्काष्ठैर्विशोधयेत् ॥१६२॥
विशुद्धवदनो मन्त्री स्वाचान्तो द्विरनाकुलः ।
प्रविश्य भगवद्गेहं नत्वा पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥१६३॥

आदाय तुलसीं त्यक्तां भगवत्पादमण्डिताम् ।
भक्षयेच्छोधयेद्देहं भगवत्पादवारिणा ॥१६४॥
भक्षितं भगवत्पादसंस्पृष्टं तुलसीदलम् ।
आरोग्यं भक्तिवृद्धिं च पापहानिं करोत्यपि ॥१६५॥
अष्टाङ्गयोगमीतिं च कृत्वा ध्यानपरो वशी ।
स्वाध्यायमपि सङ्कल्प्य यथाशक्ति जपेन्मनुम् ॥१६६॥
स्तोत्रपाठैश्च सन्तोष्य शक्तश्चेद् गानविद्यया ।
स्वरयोगेन देवेशं तोषयेद्भक्तिवृद्धये ॥१६७॥
पञ्चकालपरा गानविद्याविशारदाः ।
शुद्धाचारा महात्मानः पूज्या भागवतास्स्वयम् ॥१६८॥
सुस्निग्धकण्ठास्तालज्ञास्स्वराचारादिवेदिनः ।
मागधाभिनयाः पूज्या अनिन्द्या भगवानिह ॥१६९॥
भक्त्या पुलकितस्त्वाङ्ग आनन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
गद्गदस्वरयोगश्च यथा हि स्यात्तथा चरेत् ॥१७०॥
अतिरेको यदि भवेत् भक्तिसंकीर्तनादिभिः ।
तदा नोपरमेत्तस्मात्तत्र याक्रियते मुदा ॥१७१॥
ततश्च उदितां शान्तस्वान्तो गतक्लमः ।
अनुभूय हरिं भक्त्या शान्तस्स्वरमन्यया ॥१७२॥
गानविद्यासमर्थश्चेन् गानेन पुरुषोत्तमम् ।
तोषयेत्तु यथाकालं मनस्यसन्निधौ हरेः ॥१७३॥
अशक्तश्चेदनस्याने स्वाध्यायान्ते यथोत्तथा ।
सन्ध्यान्ते च यथान्ते गानेनाराधयेद्विभुम् ॥१७४॥

उपरम्येच्छनैर्विद्वान् स्तुतिगीति जपादिकान् ।
तोषयेदच्युतं भक्त्या भक्ष्यापूपफलादिभिः ॥१७५॥
समालिप्य जगन्नाथं कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
कर्पटैर्व्यञ्जनैर्वाऽपि यथाकालं समर्चयेत् ॥१७६॥
भावयन्तो जगन्नाथं बोधयन्तः परस्परम् ।
सुसंभूय कथाः कुर्यात् सच्छास्त्राणि विलोकयेत् ॥१७७॥
सत्कर्मसततं कुर्यादसत्सर्वं च वर्जयेत् ।
एकमेकायनं शास्त्रं साक्षाद् ब्रह्मप्रकाशकम् ॥१७८॥
अन्यानि सर्वशास्त्राणि वदन्त्यस्मात् तत्परम् ।
सच्छास्त्रपठनैस्सद्भिश्शास्त्रार्थस्यापि शिक्षया ॥१७९॥
शास्त्रार्थज्ञापनैर्वाऽपि शिक्षयेच्छास्त्रमादरात् ।
व्याख्यापाठलेखने नापि ग्रन्थनिर्माणकर्मणा ॥१८०॥
शिष्याणां शिक्षया वाऽपि स्वाध्यायार्थेन मुच्यते ।
न स्मर्तव्यो विनीतेन वेदमन्त्रोऽप्यवैष्णवम् ॥१८१॥
काव्यालापोऽपि जप्योऽसौ यत्र संकीर्त्यतेऽच्युतः ।
गन्तव्यं यदि तीर्थार्थमुपादानार्थमेव वा ॥१८२॥
स्वाध्यायकाले गमनं प्रारम्भोऽथ यथासुखम् ।
अवश्यमिष्ट्वा हुत्वा च दत्त्वा चैव यथाबलम् ॥१८३॥
गन्तव्यमिष्टसिद्ध्यर्थं भगवद्योगसेविभिः ।
शुभेऽनुकूले नक्षत्रे मुहूर्तेऽपि च मङ्गले ॥१८४॥
दीर्घाध्वानं व्रजेद्विद्वान् ससहायोऽप्रमत्तधीः ।
व्योम्नि देवं यजेन्नित्यं बाहुभ्यां न नदीं तरेत् ॥१८५॥

सन्दिग्धान्नाश्रमे नावन्निवेद्यारोहयेद् बुधः।
प्रयाणारम्भसमये मध्ये विश्रम्य चोत्थिते ॥१८६॥
आचम्य पुनरुत्थाने कर्मारम्भं जपेद् बुधः।
वल्मीकं गोमयं चैव छायामश्वत्थतालयोः ॥१८७॥
न लङ्घयन्व्रजेद्विप्रो गवां नित्यमनापदि।
छायायां विश्रमेन्नाऽपि कश्चित्तस्यां हि तिष्ठति ॥१८८॥
शास्त्राभ्यासपरस्यापि शास्त्रे भक्तिः सुदुर्लभा।
शास्त्रे भक्तिमतामेव सुलभं शाश्वतं पदम् ॥१८९॥
श्रवणं श्रावणंचिन्ता सदर्थे तस्य सङ्ग्रहः।
चोदितानामनुष्ठानं शास्त्रे भक्तस्य लक्षणम् ॥१९०॥
शास्त्राभ्यासपराणां च कर्मचाप्यनुतिष्ठताम्।
हृदये भक्तिहीनानां न शास्त्रं तु प्रकाशते ॥१९१॥
अभक्तानामनर्हाणां सच्छास्त्रं श्रूयतेऽपि या।
अन्यथा प्रतिभात्येव विपार्त्तानां यथा पयः ॥१९२॥
प्रकाशयितुमात्मानं भक्तानां हितकाम्यया।
अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः ॥१९३॥
तस्माच्छास्त्रे दृढा कार्या भक्तिर्मोक्षपरायणैः।
अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते ॥१९४॥
तामसानां विमूढानां पतितानां भवार्णवे।
विपरीतं च सकलं धर्मज्ञानं प्रकाशते ॥१९५॥
स्तकीर्णं इव माणिक्यो चिरस्थाम्बरवेष्टितः।
एवं विश्वरैरेव भगवान्नः संस्थितो हृदि ॥१९६॥

निष्प्रदीपस्यगेहस्य द्वारैरिव दुरात्मनाम् ।
दृश्यते करणैरन्तरन्धकारसमं निशि ॥१९७॥
हृदयस्थे जगन्नाथे कार्यकारी प्रियं भवेत् ।
कालयोग्यं च कृत्वैव योगं भोजनमाचरेत् ॥१९८॥
राऽयामजन्नयोगासन् यथाकामं समाचरेत् ।
भगवत्सन्निधाने वा विविक्तोऽन्यत्र वा स्थले ॥१९९॥
योगं कुर्यात्समाधाय यथास्थानासनो वशी ।
उपलिप्ते शुचौ देशे कुशानास्तीर्य भूतले ॥२००॥
शुद्धमासनं समाधाय वस्त्रेणाप्लुत्याथ तत् ।
चौरशुल्ककृतं चर्म मार्गं वेत्रकृतं तथा ॥२०१॥
अजिनमेकवस्त्रं च योगेस्यादासनं दृढम् ।
ईशः परमात्मा यः प्रत्यगात्मा तथेदृशः ॥२०२॥
सद्धर्मानुसन्धानमिति योगः प्रकीर्त्तितः ।
योगानामिन्द्रियैर्वस्यै बुद्धे र्ब्रह्मणि संस्थितः ॥२०३॥
वदन्ति न तथा ह्येयं प्रथमेकं विदुर्बुधाः ।
भक्तिवन्न वियोगेन यथाचित्रं न लभ्यते ॥२०४॥
कर्मज्ञानं तथा योगं विना योगो न लभ्यते ।
अज्ञस्त्वेकायनाचारं कर्मयोगं वदन्ति हि ॥२०५॥
सम्यग्ज्ञानमिदं प्राज्ञा वदन्त्यच्युतयोगिनः ।
योगो धर्म इति (प्रोक्त) स्साक्षाद्भगवतो विधिः ॥२०६॥
सर्वेन्द्रियैरपि सदा योगो युज्यत इत्यतः ।
अनुसन्धानविज्ञानयोगेन ब्रह्मशाश्वतम् ॥२०७॥

अथाहंमिन्द्रियैरस्मा सेव्यते मल्लिकाशरैः ।
. . . . ॥२०८॥

यावित्यक्षिने गेहे भुजगं इवान्तरः ।
यथा यथा हरिं भगवान् जानाति पुरुषोत्तमम् ॥२०९॥
तथा तथा समुत्सृज्य पापानि कुरुते शुभम् ।
यदा पापस्य वैमल्यमलं वा यत्र दृश्यते ॥२१०॥
विकला भक्तिरत्रैव पौढम्यं समवाप्नुयात् ।
रजस्तमः क्षयादेव शुद्धं सत्त्वं ततोऽमलम् ॥२११॥
ज्ञानं भवति विज्ञानात् भक्तिः पुंसां प्रजायते ।
कर्मणा ज्ञानमिश्रेण स्थिरप्रज्ञो भवेत्पुमान् ॥२१२॥
तत्प्रकारो तु न तमो रजो वा वर्तते क्वचित् ।
शुद्धाचारपरत्वं हि शुद्धसत्त्वस्य लक्षणम् ॥२१३॥
निषिद्धकाम्ययोगश्च सत्त्वेतरगुणोद्भवः ।
सच्छास्त्रनिरतायैव शुद्धसत्त्वा हि योगिनः ॥२१४॥
अक्लेशेन मुमुक्षुर्यं भवाब्धि याति तत्परम् ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ शश्वत्स्वाध्याय तत्परः ॥२१५॥
योगधर्मैकनिरतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
सकृद्देवार्चितोऽप्येषः स्वाध्यायो द्वादशाक्षरम् ॥२१६॥
भक्तानां पातकान्याशु नाशयत्यवशादपि ।
नित्यं स्वाध्यायशीलानां स्वाधीनेन्द्रियवृत्तिनाम् ॥२१७॥
यजतां जुह्वतां चैव जीवन्मुक्तिर्व्यवस्थिता ।
उपवासं विनैवायं महापातकनाशनम् ॥२१८॥

निषिद्धकर्मणि संप्राप्ते सोपवासं जपेन्मनुम् ।
परिहृत्य तु पापानि जपन् कुर्वन् सदा क्रियाम् ॥२१९॥
उपवासपरो भूयः स कृच्छ्राणि समाचरेत् ।
उपवासपराणां तु कदाचिन्नेन्द्रियभ्रमः ॥२२०॥
इन्द्रियभ्रमहीनानामचिराद्ब्रह्म सिद्ध्यति ।
अक्षतर्पणयुक्तानां यततामपि योगिनाम् ॥२२१॥
नित्यं पार्श्वगतो मृत्युः सर्वसंजीविनामिव ।
अवश्यं भवसन्तारमिच्छन्नविजितेन्द्रियः ॥२२२॥
शरीरं शोषयेन्नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
उपवासपराणां तु केवलं नाक्षनिग्रहः ॥२२३॥
क्रियमाणं कृतं यद्वा सर्वं पापं विनश्यति ।
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रमपि पक्षयोः ॥२२४॥
यथाशक्त्युपवासी स्याद्यतवाक्कायमानसः ।
एकादशीमुपवसेद्दिनषट्कं तु शक्तिमान् ॥२२५॥
श्रवणैकादशीसर्वं कृष्णाष्टम्याख्यमादरात् ।
उपोष्यैकादशी याऽपि भगवत्प्रीतये बुधः ॥२२६॥
स्वाध्यायतत्परश्शश्वत् द्वादश्यां पारणं चरेत् ।
उपोष्य विधिवद्देवमभ्यर्च्य च परेऽहनि ॥२२७॥
भक्तैस्सहाश्नतां तुष्टिर्न श्वेतद्वीपवासिनाम् ।
उपवासदिने विद्वानात्मयागं विनैव च ॥२२८॥
अन्यत्समाचरेत्सर्वं यथापूर्वं तु विज्वरः ।
अथवा जपनिष्ठानां दातॄणां मितभोजिनां ॥२२९॥

अच्छिद्रकारिणा नित्यं पाश्चकाल्यमलं भवेत् ।
स्वाध्यायमभ्यसेन्नित्यं मनसा मौनमावहेत् ॥२३०॥
अविरोधेन भूतानां भुञ्जेद्वाचमनाकुलः ।
यदुद्वेगकरं वाक्यं अन्याथर्थाविबोधनम् ॥२३१॥
असत्यं निह्नवार्थं च नोच्चरेदपि गर्हिताम् ।
अर्थयुक्तं (च) सत्यं च श्राव्यं प्रियकरं मृदु ॥२३२॥
शुद्धं मितं च सिद्धं च कालयोग्यं वदेद्बुधः ।
वेदविद्याव्रतस्नातैर्शान्तस्समचेष्टितैः ॥२३३॥
असूयारहितैरस्मिञ्शास्त्रे भक्तैस्समाचरेत् ।
मूर्खाश्च पण्डितंमन्या अधर्म्या शासिका इव ॥२३४॥
धर्मयुक्तान् प्रबाधन्ते साधूनां लिङ्गमास्थिवः ।
एकतस्त्यपवर्गार्थमनुष्ठानादिकौशलम् ॥२३५॥
लोकानुसारस्त्वेकत्र गुरुः पश्चादुदीरितः ।
भवन्ति बहवो मूर्खाः कश्चिदेकोऽपि शुद्धधीः ॥२३६॥
शासितोऽपि यथा मूर्खैरचलो यस्सबुद्धिमान् ।
न विश्वासः क्वचित्कार्यो विशेषात्तु कलौ युगे ॥२३७॥
पापिष्ठा वाग्दर्पेण मोहयन्त्यविचक्षणान् ।
गोपयन्नाचरेद्धर्मान् नागूढः किञ्चिदुच्चरेत् ॥२३८॥
पृष्टोऽपि न वदेदर्थं गुह्यं सिद्धान्तमेव च ।
आश्रितायातिभक्ताय शास्त्रश्रद्धापराय च ॥२३९॥
न्यायेन पृच्छते सर्वं वक्तव्यं शान्तयोगिने ।
धर्मार्थं धर्माधर्ममपि मिश्रधीः ॥२४०॥

अयोग्येषु वदच्छास्त्रं सन्मार्गात् प्रच्युतो भवेत् ।
ऊषरे निपतेद् बीजं षण्ढे कन्यां प्रयोजयेत् ॥२४१॥
सृजेद्वाचा नरेमालां नापात्रे शास्त्रमुत्सृजेत् ।
अच्छिद्रकर्मनिरतः शास्त्राभ्यासपरस्सदा ।
स्वाध्यायाभ्यासयोगेन नयेत्कालमतन्द्रितः ॥२४२॥

इति शाण्डिल्यधर्मशास्त्रे व्रतादिविधाननिरूपणं नाम
चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

रात्रावन्त्यायने योगकृत्यवर्णनम्

यामिन्या योगकाले यत्कार्यं योगिभिर्नरैः ।
वक्ष्यामि तत्समासेन शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥
अथ सूक्ष्मप्रमाणेन दृश्यमाने दिवाकरे ।
विधाय देहशुद्धिं च वासोऽपि परिधाय च ॥ २ ॥
ीक्षणाचमने कृत्वा दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत् ।
यायन्नेवापरं ब्रह्म यावन्नक्षत्रदर्शनम् ॥ ३ ॥
पेद् ब्रह्म पवित्रं वा मानसं मौनमास्थितः ।
भिगम्य यथापूर्वमर्चयित्वा यथाविधि ॥ ४ ॥

हुत्वा जप्त्वा तथा स्तुत्वा योगं कुर्यादतन्द्रितः।
पुष्पानुलेपनैर्दीपैरर्घ्यपूर्वैर्यथाविधि ॥ ५ ॥
सन्ध्ययोरुभयोः कार्या पूजा परमपावनैः।
त्रिकालं द्रव्ययागेन तथा नैमित्तिकार्चनात् ॥ ६ ॥
भक्तिज्ञानक्रियावृद्धिरविघ्नेनैव सिध्यति।
नक्तं कुटुम्बिकोऽश्नीयात् हितं पथ्यं सुतृप्तिमान् ॥ ७ ॥
सर्वं च तिलसंबन्धं दधिशाकं च वर्जयेत्।
मुद्गसम्बन्धसर्वं च शुक्तं कालान्तरे भवेत् ॥ ८ ॥
अपूपवर्जं तथापि वर्ज्यमेव दिनान्तरे।
शुष्कपक्वं तथा वस्तु भघृतं शाकमेव च ॥ ९ ॥
चुरी(गुरु)भूतं च गर नीरं न पर्युषितदोषभाक्।
दध्यन्नपायसान्नं च गुडान्नं च घृतोदनम् ॥१०॥
अपूपानि च वर्ज्यानि न पर्युषितदोषतः।
वद्रूपेण पुनःपकारसगन्धान्तरान्वितम् ॥११॥
अन्योपयुक्तशेषं च वर्ज्यं स्याद् गव्यवर्जितम्।
भक्ष्यापूपफलादीनां शय्यानामपि पू (र्व्यं ?)शः ॥१२॥
तत्संबन्धानुसन्धानमिति योगः प्रकीर्तितः।
योगान्तामेन्द्रियैर्वश्यै शुद्धैश्च ध्राणिसंस्थितः ॥१३॥
प्रयुक्तैरप्रयुक्तैर्वा भगवत्कर्मविस्तरैः।
आभास ज्ञानिनां ज्ञानं योगकर्मपृथक्कृतम्.(पृथक् पृथक्) ॥१४॥

कर्मज्ञानं तथा योगं विना योगान्न लभ्यते ।
यज्ञास्त्येकायनाचारं कर्मयोगं वदन्ति हि ॥१६॥
सन्ध्यज्ञानमिति प्राज्ञा वदन्त्य (?) योगिनः ।
योगधर्म इति ख्यातः साक्षाद्भागवतो विधिः ॥१७॥
सर्वेन्द्रियैरपि सदा योगो युज्यत इत्यतः ।
अनुसन्धानुविज्ञान योगेन ब्रह्म शाश्वतम ॥१८॥
यथाऽहमिन्द्रियैरात्मा सेव्यते सत्क्रियापरैः ।
बुद्धि संस्थं परं ज्ञानं बुद्धिर्बुध्यति तत्परम ॥१९॥
विशुद्धैरिन्द्रियैरेव बोद्धुं सच्छक्यते न वा ।
इन्द्रियाणां विशुद्धित्वं भगवत्कर्म योगिता ॥२०॥
सर्वकर्म निवृत्तिर्या दुर्लभा सा शरीरिणाम् ।
असद्विषयसंसृष्टे (रि) इन्द्रिये (वि?) ह्यामतिः ॥२१॥
न शक्नोति परं ज्ञातुं अविधेयाश्वमेधवित ।
भगवत्कर्मसंसक्तैरिन्द्रियैर्विमला मतिः ॥२२॥
प्रयाति तत्परं दीपैः पदार्थादिव दृङ्निशि ।
यथाच्छिद्रघटस्यान्तः प्रदीपे स्थापिते निशि ॥२३॥
ज्योतिर्मयानि छिद्राणि तथा द्वाराणि योगिनः ।
अज्ञानतमसा पूर्वं हृदयं मूढचेतसाम् ॥२४॥
द्वाराण्यपि ततः पूर्णान्यन्धत्वान्येव कुर्वते ।
सर्वदा योग एवायमेवमेकायनो मतिः ॥२५॥

निबद्ध्यते तन्निर्मूलं पारतद्रवबिन्दुवत्।
अस्थिरे मनसि स्रोतो विपथाने(व) य(था)
मनस्तद्राद्दढं मुग्धं रमते सत्प्रवृत्तिभिः।
नियोज्य सत्क्रियास्वेव स्वानि बद्धं परे मनः
रमते तत्परेणैव स्वाधीना (?) गुणं(:सद्)
सम्यक् सद्विपयेष्वेव नियृत्तैरिन्द्रियैर्मनः ॥
सत्त्वं ब्रह्माणि कालेन निष्ठितैरेव तिष्ठति।
यदा तु भगवत्पादसरसीरुहयोर्मनः ॥३०॥
निश्चलं रमते चित्तं कामकृत्यस्तथा बुधः।
अनिर्जितेन्द्रियो सिद्धो भगवद्योगएव सः
जहाति भगवत्कर्म पतितो याति रौरवम्।
योगोऽयमेव यागश्च बाह्या ये व्याधयोऽभवन्
सर्वं शरीरक्लेशाय येषु कृष्णो न चिन्त्यते।
उत्सृज्य भगवत्कर्म सन्न्यासे हृतसंशयः ॥३३॥
निष्प्रयोजनदेहानां तेषां न सुलभो हरिः।
इन्द्रियाणि प्रवृत्तानि कर्मस्विति न हीयते ॥३४॥
हीयते सातियातानि निषिद्धेष्वनृतो यथा।
भगवन्तं समुद्दिश्य तदेकशरणा नराः ॥३५॥
कदाचिन्न च हीयन्ते कार्म्यं (काम्य) कर्मरता अपि।

तथा तथा स तन्निष्ठो रमते तत्र तत्र च ।
अभागवत भागस्था क्षीयते वासना यथा ॥३८॥
तथा यतेत पुरुषो मनोवाक्कायकर्मभिः ।
सर्वत्र मैत्रीं कुर्वीत विवादं नाचरेत्क्वचित् ॥३९॥
न नासाचपलः कर्मी न जिह्वाचपलो भवेत् ।
अन्येषामिन्द्रियाणां च चापल्यं वर्जयेद् बुधः ॥४०॥
नान्यैरयमतोद्द्वान्नान्यभक्तान्समाश्रयेत् ।
अधीतं नोत्सृजेच्छास्त्रं न ब्रूयादनृतं क्वचित् ॥४१॥
शपथं नाचरेत्पादं संस्पृश्य गुरुदेवयोः ।
वाचि कर्मणि चित्ते च सर्वदा यश्शुचिर्भवेत् ॥४२॥
अतन्द्रितश्च शास्त्रार्थे योगसिद्धिं स गच्छति ।
अनुद्वणश्चात्र वासा नियतासनभोजनः ॥४३॥
अनुद्धतजनैर्युक्तो योगसिद्धिं स गच्छति ।
नक्तं न संचरेद्योगी संचरेद्यदि दण्डधृक् ॥४४॥
ससहायस्सावकाशः संचरेत्कार्यगौरवात् ।
कूपं च वृक्षमूलं च सभावासं रिपोर्गृहम् ॥४५॥
शून्यायतनमेवापि न पश्येन्नक्तमञ्जसा ।
नक्तमुक्तैर्न वक्तव्यं विवादं न स्मरेद्बुधः ॥४६॥
निष्प्रदीपे न भुञ्जीत विशेषान्निवृते पुनः ।
भायात्रो (?) मात्राय भुक्त्वा च मितमत्वरः ॥४७॥
प्रोक्षितं सपवित्राद्भिरापिरञ्चयनोत्तमम् ।
यावन्निद्रा समभ्येति तावद्धि मनसा जपेत् ॥४८॥

निद्रान्तरे प्रबुद्धस्सन् कीर्तयेद्भगवद्गुणान् ।
सुवस्त्रवेषधरया स्नातया दुर्विचित्तया ॥४९॥
अरोगया दयितया स्वयमेवं विनिवेशयेत् (सदावसेत्)
या तु क्षयो रोग वृद्धिरर्थीसत्कर्मविप्लवः ॥५०॥
सौभाग्यायुर्यशो नाशः पुंसा स्त्रीष्वपि सर्गिणा ।
गायतां भगवद्गाथां कुर्वतां स्तोत्र मुच्चकैः ॥५१॥
शृण्वन् श्रोत्रसुखं नादं निद्रामनुभवेद्बुधः ।
स्वप्नेषु चैव दृष्टेषु प्रियां भार्यां गुरुं तथा ॥५२॥
विना न कथयेत्स्वप्नं अन्येषा (?) नमेव वा ।
दुःस्वप्नदर्शने सद्यः उत्थायाम्बुकृतक्रियः ॥५३॥
प्रणम्य पादयोर्देवं जप्त्वा स्तोत्राणि कीर्त्तयेत् ।
दुःस्वप्नानुगुणं प्रातः स्नानदानार्चनादिभिः ॥५४॥
कुर्याद्विशेषवत्कर्म यथा चित्तं प्रसीदति ।
सुखनिद्रारतः काले भवत्युत्थाय सत्वरः ॥५५॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुञ्जीतापि यथाविधि ।
आद्यन्तवर्जं निद्राया योग्यं यामद्वयं निशि ॥५६॥
चतुर्थं याममुत्थाय योगी योगं समाचरेत् ।
साक्षात्परमयोगस्तद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥५७॥
भगवद्वासुदेवस्य पादाम्बुरुहचिन्तनम् ।

तदीयं तत्क्रियार्हं च तवैवेति निगद्यते ।
अव्यक्तार्थतया वस्य प्रणवस्य विशेषत. ॥६०॥
तदर्थद्योतनादेतमुदितं भगवत्पदम् ।
अन्यत्रापि च तद्दृष्टमित्यनन्यपरं वचः ॥६१॥
वासुदेव (?) इतिदन्तस्य चोपरि ।
नमः परपदं योगादुपरिस्थपदद्वयम् ॥६२॥
चतुर्थ्यन्तमभून्नित्यं योगिना योगसिद्धये ।
ओङ्कारपदमेवैकं योगिना योगसिद्धये ॥६३॥
द्वादशाक्षररूपेण परिणाममुपागतम् ।
मन्त्रान्तरेष्वपि बुधा देवतान्तरभागिषु ॥६४॥
प्रयुञ्जते तवोङ्कारं मन्त्राणां प्राणसिद्धये ।
मन्त्रान्तरे प्रयुक्त्वाद्देवतान्तरगोचरे ॥६५॥
अवक्त्रर्थस्तथोङ्कारः केवलेनैव धारकं ।
एकयोगशरीराणामेवं ज्ञानवतामपि ॥६६॥
समासन्नेऽपि तज्ज्ञाने तन्मात्रं नैव साधनं ।
अपक्वयोगज्ञानानामपि वेदविदां नृणाम् ॥६७॥
द्वादशाक्षरयोगेन दूरस्थं तदिहान्तिके ।
स्मृतमात्रो महामन्त्रो सुसूक्ष्मे द्वादशाक्षरे ॥६८॥
चित्तदर्पणसङ्क्रान्तः ससुखं लक्ष्यते हरिः ।
अतश्च द्वादशान्तेन स्वाध्यायेन जनार्दनम् ॥६९॥
आसन्नतां प्रयात्याशु ब्रह्मण्यर्पितकर्मणा ।
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ॥७०॥

निद्रान्तरे प्रबुद्धस्सन् कीर्त्तयेद्भगवद्गुणान् ।
सुवस्त्रवेषधरया स्नातया दुर्विचित्तया ॥४६॥
अरोगया दयितया स्वयमेवं विनिवेशयेत् (सदावसेत्)
या तु क्षयो रोग वृद्धिरश्रीसत्कर्मविप्लवः ॥५०॥
सौभाग्यायुर्यशो नाशः पुंसा स्त्रीष्वपि सर्गिणा ।
गायता भगवद्गाथां कुर्वता स्तोत्र मुख्यकैः ॥५१॥
शृण्वन् श्रोत्रसुखं नादं निद्रामनुभवेद्बुधः ।
स्वप्नेषु चैव दृष्टेषु प्रिया भार्यां गुरुं तथा ॥५२॥
विना न कथयेत्स्वप्नं अन्येषा (?) नमेव वा ।
दुःस्वप्नदर्शने सद्यः उत्थायाम्बुकृतक्रियः ॥५३॥
प्रणम्य पादयोर्देवं जप्त्वा स्तोत्राणि कीर्त्तयेत् ।
दुःस्वप्नानुगुणं प्रातः स्नानदानार्चनादिभिः ॥५४॥
कुर्याद्विशेषवत्कर्म यथा विष्णुं प्रसीदति ।
सुखनिद्रारतः काले भवत्युत्थाय सत्वरः ॥५५॥
प्रक्षाल्य पादावाचम्य युञ्जीतापि यथाविधि ।
आद्यन्तवर्जं निद्राया योग्यं यामद्वयं निशि ॥५६॥
चतुर्थं याममुत्थाय योगी योगं समाचरेत् ।
साक्षात्परमयोगस्तद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥५७॥
भगवद्वासुदेवस्य पादाम्बुरुहचिन्तनम् ।
ओमित्येकाक्षरं साक्षात् वासुदेवस्य वाचकः ॥५८॥
ओमित्युच्चारणेनैव वाच्यमानीयते परम ।
ओमित्यानीय तद्ब्रह्म नमस्कार भरेन तु ॥५६॥

तदीयं तत्क्रियार्हं च तवैवेति निगद्यते ।
अव्यक्तार्थतया तस्य प्रणवस्य विशेषतः ॥६०॥
तदर्थद्योतनादेतमुदितं भगवत्पदम् ।
अन्यत्रापि च तद्ब्रह्मेत्यनन्यपरं वचः ॥६१॥
वासुदेव (?) इतिदन्तस्य चोपरि ।
नमः परपदं योगादुपरिस्थपदद्वयम् ॥६२॥
चतुर्थ्यन्तमभून्नित्यं योगिनां योगसिद्धये ।
ओङ्कारपदमेवैकं योगिना योगसिद्धये ॥६३॥
द्वादशाक्षररूपेण परिणाममुपागतम् ।
मन्त्रान्तरेष्वपि बुधा देवतान्तरभागिषु ॥६४।
प्रयुञ्जते तदोङ्कारं मन्त्राणा प्राणसिद्धये ।
मन्त्रान्तरे प्रयुक्तत्वाद्देवतान्तरगोचरे ॥६५॥
अवक्त्रर्थस्तथोङ्कारः केवलेनैव धारकं ।
पक्वयोगशरीराणामेवं ज्ञानवतामपि ॥६६॥
समासन्नेऽपि तज्ज्ञाने तन्मात्रं नैव साधनं ।
अपक्वांगज्ञानानामपि वेदविदां नृणाम् ॥६७॥
द्वादशाक्षरयोगेन दूरस्थं तदिहान्तिके ।
स्मृतमात्रो महामन्त्रो सुसूक्ष्मे द्वादशाक्षरे ॥६८॥
चित्तदर्पणसङ्क्रान्तः ससुखं लक्ष्यते हरिः ।
अतश्च द्वादशान्तेन स्वाध्यायेन जनार्दनम् ॥६९॥
आसन्नतां प्रयात्याशु ब्रह्मण्यर्पितकर्मणां ।
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ॥७०॥

॥ श्रीः ॥

* कण्वस्मृतिः *



धर्मसारवर्णनम्

कण्वं नत्वा महाभागं मुनयो ब्रह्मवित्तमाः ।
युगभेदप्रभेदेन सर्वधर्मान्सनातनान् ॥ १ ॥
पप्रच्छुरखिलप्राप्त्यै लोकानां हितकाम्यया ।
कण्व वेदविदां श्रेष्ठ सर्वलोकहिताय वै ॥ २ ॥
सर्ववैदिककृत्यानां मुख्यामुख्यगुणागुणम् ।
प्रविभज्य समासेन सुस्पष्टं कथयस्व नः ॥ ३ ॥
मुख्यं कल्पममुख्यं च गौणं काम्यमियत्तमः ।
एवमेतत्तथा नोचेत्साध्याः साध्येषु तत्परम् ॥ ४ ॥
चित्तं सर्वस्व तत्रतत्र संग्रहेणानुविस्तरम् ।
सुस्पष्टं सुलभं तुल्ययोगयोग्यं तथा वद ॥ ५ ॥
इतिपृष्टो ब्रह्मनिष्ठ इदं प्रोवाच तान्प्रति ।
पृष्टं भवद्भिः परमं रहस्यं स्वर्गसाधनम् ॥ ६ ॥
चित्तशुद्धिकरं ब्रह्म ज्ञानकारणमद्य वै ।
न शक्यतेऽन्यैरेतद्धि वक्तुं श्रोतुं च कैश्चिदु ॥ ७ ॥
अथापि वः प्रवक्ष्यामि धर्मसारं श्रुतीरितम् ।
मुख्यामुख्ये विभज्यैव चित्तपूर्वं द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥

क्रिया कर्ता कारयिता कारणं तत्फलं हरिः।
सर्वमीश्वरमेवेति बुद्धिर्यस्य सदास्थिरा ॥ ९ ॥
स एव कृतकृत्यो हि सतु ज्ञानस्य भाजनम्।
तत्कृतस्य च कार्यस्य वैगुण्यं नैव जायते ॥१०॥
कदाचिदपि केनापि नात्र कार्या विचारणा।
यत्किंचिद्वा कृतं तेन परमेश्वरतुष्टये ॥११॥
तदक्षयममोघं स्याद्ब्रह्मज्ञानैकसाधकम्।
यथाशास्त्रकृतं च स्यादशास्त्रकृतमप्यलम् ॥१२॥
परमेश्वरतुष्ट्यर्थंकृतं तस्मात्तथा चरेत्।
तस्माद्ग् (णु) सर्वत्र परमेश्वरतुष्टये ॥१३॥
करिष्ये कर्मचेत्युक्त्वा सर्वकर्माण्युपक्रमेत्।
परमेश्वरशब्दंयेत्यक्त्वान्यंशब्दमुत्तमम् ॥१४॥
कर्मादिषु प्रकुर्वन्ति तानि वैगुण्यमाप्नुयुः।
सत्यएव न संदेहस्तस्मात्तं तादृशस्त्रिशिवः ॥१५॥
परमेश्वरशब्दं ये कर्मादिषुसमाहितैः।
प्रथमेदृदिकैः सिद्धिः महाशब्दोऽथमा सदा ॥१६॥
भीशब्दपूर्वको नित्यं तावन्मात्रेण सात्क्रिया।
सम्यक्कृता दोषशून्या सर्वलक्षणभूषिता ॥१७॥
सर्वाङ्गोपाङ्गसहिता सर्वमन्त्रकृता भवेत्।
देशःकालश्च वक्तव्यः कर्मादौ मस्तकं द्विजैः ॥१८॥
यत्र देशाखिलानां च मेरुदक्षिणभागगाः।
षट्पञ्चाशात्मभेदेन कथितस्तं यथा वदेत् ॥१९॥

... नर्मदायांस्तथैव च।
गोदावर्यां च कृष्णायाः कावेर्याश्च ततः परम् ॥२२॥
ताम्रपर्ण्याश्च सेतोश्च मध्यभागं पठेद्बुधः।
कालं परार्धं प्रथमं कल्पं मन्वन्तरं युगम् ॥२३॥
तत्राद्यं संवत्सरं मासमृतुं पक्षं तिथिं ततः।
क्रमाद्वारेणसंयुक्तं समुच्चार्य च तादृशे ॥२४॥
समकल्पेन च तिथौ करिष्यामीति कर्मणः।
नामोच्चार्यं यदेवैवमेतत्सङ्कल्पमुच्यते ॥२५॥
संवत्सरश्चर्तुमासो युगः पक्षस्तिथिस्तथा।
त एते कालभेदाः स्युश्चन्द्रगत्यासमुद्भवाः ॥२६॥
यावत्कलाश्चन्द्रस्य प्रथमायामुदीरिता।
वृद्धिक्षयौ यावदत्र प्रथमेत्युच्यते बुधैः ॥२७॥
एवं सर्वेऽपि तिथयो ज्ञेयाः पञ्चदशापि वै।
शुक्लेतरस्य चन्द्रस्य कलावृद्धिक्षयौ स्मृतौ ॥२८॥
घटिकाः षष्टिसंख्या हि प्रत्येकस्यापि तत्परम्।
अतिवृद्धिक्षयमपि निर्दिष्टं सर्वदा ॥२९॥
मासानां नामघटिकाश्रितप्रकाशनाय तः।
एवमादिनामप्रवृत्तिश्चर्याणां निदर्शनैः ॥३०॥

तस्मान्मानस्तु चान्द्रोऽयं सर्ववैदिककर्मसु ।
परिग्राह्यो भवेन्नूनं तेन मानेन वैदिकः ॥३३॥
तस्मात्सर्वाणि कर्माणिनियनैमित्तिकान्यपि ।
पैतृकाण्यपि दैवानि यानिकान्यखिलान्यपि ॥३४॥
कान्तप्रयुक्तानि विना चान्द्रेणैव समाचरेत् ।
क्रियमाणेऽन्यथा तस्मिन्यस्मिन्कस्मिश्चकर्मणि ॥३५॥
पक्षमासतु भेदः स्यात्तस्मात्संकल्प एव स. ।
अन्यथैव भवेन्नूनं तस्मात्तत्कर्म केवलम् ॥३६॥
अन्यथैवं कृतं स्याद्धि तेन तत्तु विनश्यति ।
कालभेदकृतं कर्म तस्मात्तन्न तथाचरेत् ।३७॥
युगाब्दमासतु पक्षतिथयस्तत्रमुरुयत. ।
चान्द्रमाने संभवन्तिवक्रमाश्चनियता पुनः ।३८॥
यएते कथिताः सद्भिरन्ये ह्यनियता किल ।
क्रान्तयो निखिलालोनिश्चयागमवर्जिताः ॥३९॥
तेषां मासत्वनामेदं मुख्यतस्तु न संभवेत् ।
मासादिमध्यान्तलक्ष्मराहित्येन तथोदितम् ॥४०॥
तदाहि तत्सम्यगेव प्रकृतेऽयनिरूप्यते ।
इन्द्राग्नी हूयते यत्र मासादि संप्रकीतिनः ॥४१॥

तानप्युदाहरिष्यामि स्पष्टार्थं मम साम्प्रतम् ॥४४॥
दर्शान्तः पूर्णिमामध्यः शुक्लर्षः प्रतिपन्मुखः।
त्रिंशत्तिथिः पक्षयुगं कृत्स्नाब्दक्षयवृद्धिकः ॥४५॥
मासवाचकशब्दाः स्युस्त इमे तत्रनीतराम्।
सौरमाने प्रवर्तन्ते मासेषु किल सर्वदा ॥४६॥
सर्वे मेषादिशब्दास्ते राशीनामेव वाचकाः।
समासानां मुख्यतो वै गुणतश्चेत्कदाचन ॥४७॥
तद्वाचकत्वकार्याय भवन्ति किल तावता।
कथं ते मुख्यमासाःस्युस्तद्द्वयंऋतुरीरितः ॥४८॥
तत्षट्कं वत्सरः प्रोक्तस्तस्मादब्दऋतु ततः।
मासं पक्षं तिथिं चापि मार्गेणानेन सन्ततम् ॥४९॥
सम्यगालोच्य संकल्प्येव्यत्यासे न भवेद्यथा।
तथासमुच्चरेत्सर्वान् न्यूनानतिरिक्ततः ॥५०॥
तिथ्यादीन्यदि संकल्पे व्यत्यासेनोच्चरेत्तदा।
पुनः कुर्यात्तु तत्कर्म नष्टं तत्तेन तावता ॥५१॥
स्नानद्वये नित्यमेव संकल्पं सम्यगाचरेत्।
कालादीन्प्रवदेच्चापि त्वरन् यदि तदा पुनः ॥५२॥

... सः शब्दाऽय परमेश्वरः ।
श्रीशब्दस्तत्र तत्र स्यादन्यथा शुभभाङ्न तु ॥५५॥
शम्भुः पुण्यशिवश्रीभिरास्य(श्व)न्तः कालकीर्तनात् ।
भवन्ति श्रीशुभावासास्तस्मादेतास्तदा वदेत् ॥५६॥
(भवन्त्यस्याः शुभाः सर्वे स्तोतारएतास्ततस्त्यजेत्)
आशौची प्रोक्तशंभ्वादि शब्दानां श्रुतिमात्रतः ।
आशौच मध्ये यदितान् श्रीशम्भु शुभपुण्यकान् ।
आशौची प्रवदेन्मोहात्तस्याशौचस्य सर्वदा ॥५७॥
वृद्धिरेव भवेन्नूनं तस्मात्तानति यत्नतः ।
प्रसमीक्ष्य त्यजेन्नूनमन्यथानर्थ एव वै ॥५८॥
भवेदेव न सन्देहः अतस्तानत्र संत्यजेत् ।
नैमित्तिकेषु सर्वत्र सर्वेष्वपिशुचिर्यतन् ॥५९॥
देशं कालविशेषांस्तान्संकल्पे प्रवदेद् भृशम् ।
उक्तिरेव हि संकल्पः कर्मादिषु न मानसः ॥६०॥
सभाभ्यनुज्ञा च परावश्यकी दक्षिणा च सा ।
विधिभेदान्मासभेदात्पक्षभेदाद्दतोस्तु वा ॥६१॥
अब्दभेदात्कर्मनष्टं प्रवदेन्नात्र संशयः ।
भेदो नामात्रसंकल्पे तथोक्तिरिति तत्स्मृतम् ॥६२॥
अयनस्यप्रभेदोपिनंदोषाय भवेत्किल ।
यतोऽयनस्य सततं वस्तुन्नास्ति ततस्तथा ॥६३॥

मेषादीनामनेनैव नक्षत्रस्य च सर्वदा।
प्रभेदोक्तौ न दोषोऽस्ति तेन तेषां कदाचन ॥६४॥
उक्तिरावश्यकी नेति संकल्पे श्रुतिराह हि।
तस्मादब्दमृतुं मासं पक्षं तस्य तिथिं शिवाम् ॥६५॥
संकल्पे ह्यत्यजन्सर्वान्प्रवदेत्सर्वकर्मसु।
एतेषामन्यथोक्तौ चेत्संकल्पे तत्र कर्म वै ॥६६॥
नष्टमेव प्रभवति तेन तत्र पुनश्चरेत्।
अन्यथा दोषमाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥६७॥
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म विहितं वैदिकस्य यत्।
तदुक्तेनैव मार्गेण कर्तव्यं नान्यथा चरेत् ॥६८॥
यदि प्रमादेन कृतमन्यथा शास्त्रवर्त्मनः।
तस्यतद्दोषशान्त्यर्थं सद्यश्चित्तं श्रुतीरितम् ॥६९॥
स्मृत्युक्तं वाथ सूत्रोक्तं पुराणोक्तमथापि वा।
समाचरेद्विधानेन भक्तिश्रद्धापुरस्सरम् ॥७०॥
कृतमात्रे तु तस्मिन्वै प्रायश्चित्ते तत्क्षणात्ततः।
सदोषो विलयं याति तेनायं स्यात्कृती शुचिः ॥७१॥
भवेदेव न संदेहो न चेद्दोषोऽभिवर्तते।
कालेन महता भूयो ह्यस्तु वटबीजवत् ॥७२॥
तस्माद्दोषं समुत्पन्नं सद्यएव प्रशामयेत्।
बाह्यः प्रातरुत्थाय स्मरेदीश्वरमव्ययम् ॥७३॥
पादौ प्रक्षाल्य गण्डूषं कृत्वाऽऽचम्य विधानतः।

गन्धमादनसंज्ञं च लोकालोकं गिरीश्वरम् ।
हिमवन्तं च कैलासं पुनरन्यान्छुभाकरान् ॥७५॥
पतिव्रताः पार्वतीमत्रा अहल्यां द्रौपदीं शिवाम् ।
तारां मन्दोदरीं पुण्यां नित्यकल्याणसुन्दरीम् ॥७६॥
सीतामरुन्धतीं लक्ष्मीं भारतीं परमेश्वरीम् ।
इन्द्राणींपुनरन्याश्च नित्यकल्याणमूर्तिकाः ॥७७॥
ब्रह्मनिष्ठान्महाभागान्ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ।
लोकपालांल्लोकनाथान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥७८॥
स्मृत्वा ब्रह्मैक्यसंधानं कृत्वा ब्रह्माहमित्यपि ।
सर्वेभ्यश्च नमस्कुर्यान्नमो महद्भ्यइति वै यदेत् ॥७९॥
तत्र ध्यानादि(?)स्मरणयोः कालादिनियमो नहि ।
यदावकाशो लभते तदानित्यं [redacted] शक्यते ॥८०॥
कर्तुं किलाथ च पुनः प्रातश्चेत्तद्विशिष्यते ।
पादप्रक्षालनं नित्यं पश्चिमाभिमुखश्चरेत् ॥८१॥
यधन्यथाकृतं तत्तु तदाम्भस्तत्क्षणे परम् ।
मूत्रमेव भवेन्नूनं दक्षिणाभिमुखाकृते ॥८२॥
उदगाभिमुखे चेत्तु तज्जलं रक्तमेव हि ।
प्राक्तु चेत्तज्जलं मद्यं तत्स्पृष्टोऽयं हि जायते ॥८३॥
पादप्रक्षालनं पश्चात्पश्चिमाभिमुखेन हि ।
कर्तव्यं सततं यत्नान्नान्यया हरिता कचित् ॥८४॥
सार्वकालिकधर्मोऽयं सार्ववर्णिक एव च ।
वैदिको निखिलो भूयो नूनं निश्चितुताऽधुना ॥८५॥

श्राद्धे विवाहे यज्ञे च मौञ्ज्यां स्वस्य परस्य वा ।
दिशिमं नियमा प्रोक्ता कुर्यादभ्यागते मति ॥८५॥
दक्षिणादिक्हते तस्मिन्कुर्यादिति यदि मोहनः ।
अर्थ मन्त्रो जपार्थं स्यात्प्रयमानः शुभंकरः ॥८६॥
प्राच्यादिशास्तथा मन्त्रास्तदुत्तरश्रुति श्रुतिः ।
उत्तरस्यां दिशि प्रोक्तस्तस्या अप्युत्तरो महान् ॥८७॥
श्राद्धकाले स्वयं गन्तु तथा विप्रस्य वा वशात् ।
तस्यास्यया(पूर्वे)ऽनुवाकस्य दशावारजपो भवेत् ॥८८॥
मौञ्ज्यां मोहने चेद्भूयस्तथा कर्मण्य(न्या)(णि)दिशु वै ।
अग्ने तेजस्विन्ननुवाकं द्वादशावारकम् ॥९०॥
अग्नेस्तु पुरतस्तिष्ठन् प्रजपेत्पाणिपीडने ।
श्रीसूक्तं पूर्वानुवाकं तथापि द्विगुणं जपेत् ॥९१॥
यज्ञे तु संभारयजूंषि पत्न्यनुवाककम् ।
पुरुषसूक्तं वैष्णवं च श्रुपं द्वादशावारकम् ॥९२॥
प्रजपेदेव तस्मात्तु पादप्रक्षालनं तदा ।
पश्चिमाभिमुखेनैव कर्तव्यं नान्यथा मतम् ॥९३॥
मुखशब्दमकुर्वंश्चै नित्यं गण्डूषमाचरेत् । · ·
सर्वतो मुखहस्ताभ्यां शुद्धाभ्यां प्राङ्मुखोऽथवा ॥९४॥
उदङ्मुखो यथेच्छं वा सशुद्धकरतस्तदा ।
तथा शुद्धाभिरद्भिर्वा विपद्यपि न चाचरेत् ॥९५॥
यदि गण्डूषकाले तु मुखाच्छब्दः प्रजायते ।

तद्दोषपरिहाराय गायत्रीं त्रिशतं जपेत्।
एवमाचमने प्रोक्तं जलपाने च भोजने ॥९७॥
भक्षणे चापि भक्ष्याणां खाद्यानामपि खादने।
भोज्यानां भोजने चापि तथा वै लेह्यचोष्ययोः ॥९८॥
अशब्दं सर्वतः कुर्वन् तत्तत्कर्म समाचरेत्।
यदि शब्दं तथा कुर्वन् सद्यो निरयमृच्छति ॥९९॥
तद्दोषपरिहाराय पूर्वचित्तं समाचरेत्।
विशेषतस्तक्रदधिपयोदधिघृतादिषु ॥१००॥
यदि शब्दः समुत्पन्नः पाने वा भक्षणे यदि।
महाननर्थो भवेत्सद्यः तद्द्रव्यं मद्यमेव हि ॥१०१॥
भवेदेव न सन्देहस्तस्य चित्तं ततस्त्विदम्।
पक्षं तु यावकाहारो निराहारो दिनत्रयम् ॥१०२॥
अष्टानां वा चतुर्णां वा ब्राह्मणानां च भोजनम्।
कुर्यादेव न संदेहोऽथवा गायत्रमाचरेत् ॥१०३॥
त्रिसहस्रजपं मासं संहितात्रयमेव वा।
चित्तं तत्कथितं तस्मान्न तत्कुर्यात्तथा द्विजः ॥१०४॥
नित्यं मूत्रपुरीषादिकर्मस्वेषु प्रचोदितम्।
यत्र यत्र ह्याचमनं द्वयं (तत्र) तत्र परो विधिः ॥१०५॥
अयमेव समाख्यातः प्रथमाचमने खलु।
मन्त्रो मानसिकः कार्यः कदाचिन्न तु वाच(चि)कः ॥१०६॥
द्वितीयाचमने सम्यङ्मन्त्रोच्चारस्तु वाचिकः।
न मानसः कदा कार्यः प्रथमे तु तथा चरेत् ॥१०७॥

एककालस्य चित्तं स्यादेवं तत्कालसंख्यया।
सम्यक्समीक्ष्य तत्कुर्यादन्यथा भ्रष्ट एव हि ॥१३०॥
भवेदेव न संदेहस्तदूर्ध्वं चेत्तथाविधैः।
पुनस्संस्कारतःशुद्धो भविष्यति न चान्यथा ॥१३१॥
यदि प्रक्षालनं त्यक्त्वा मेहनस्य गुदस्य वा।
चरेद्विप्रो व्रात्यएव न संभाष्योऽखिलैरपि ॥१३२॥
मोहना (त्) क्षालनान्मासं मात्राद्यद्विविपर्ययात्।
भ्रष्टो भवेत्ततो भूयः पुनस्संस्कारतश्शुचिः ॥१३३॥
यथार्थकथनान्निरयं चित्ते कर्ता भवेन्न तु।
बुद्धिपूर्वंगुदप्रक्षालनशून्योऽभक्षणे ॥१३४॥
जाते तु सद्यः पतितस्त्वयथार्थोक्तितः परम्।
आषण्मासाच्चित्तकर्मकर्तुं शक्यं ततः परम् ॥१३५॥
पतितो नात्र सन्देहश्चित्तं तस्य च चोदितम्।
पुनर्गर्भविधानेन पुनः संस्कारतस्तराम् ॥१३६॥
शुद्धिः प्रकथिता सद्भिस्तत्तस्यैव न चान्यथा।
कृत्वा तु तादृशं कर्म न कृतं चेति वक्ष्यति ॥१३७॥
संत्याज्य एव सततं न योग्यो यस्य कस्यचित्।
चरणौ च करौ सम्यक् प्रक्षाल्य च ततः परम् ॥१३८॥
नाचामेद्यदि तूष्णीकं भवेन्नात्रसंशयः।
पुनः प्रक्षाल्याचामेत्तौ पापस्य विशुद्धये ॥१३९॥
अनाचम्यैव यो मोहाद्वेदवर्णं समुच्चरेत्।
भ्रूणहत्यामवाप्नोति तत्पापविनिवृत्तये ॥१४०॥

पाहि त्रयोदशाख्यमनुवाकं शतं जपेत् ।
लौकिकोक्तेरिदं विष्णुं प्रजपेद्दशवारकम् ॥१४१॥
कदाचिन्मोहतो विप्रः अकृत्वा दन्तधावनम् ।
स्नायात्कृत्वा दन्तशुद्धिं पुनः स्नायाद्यथाविधि ॥१४२॥
तृणपर्णैस्सदा कुर्यादमामेकादशीं विना ।
तयोरपि च कुर्वीत जम्बूप्लक्षाम्लपर्णकैः ॥१४३॥
अष्टकासु मृताहेषु अमामनुयुगादिषु ।
महालयेषु पुण्येषु संक्रान्तिष्वयनद्वये ॥१४४॥
व्यतीपाते गजच्छाया ग्रहणादिषु सूतके ।
पुनरन्यासु तिथिषु स्वजन्मत्रितये तथा ॥१४५॥
दन्तधावनतः पापं महदाप्नोति केवलम् ।
तद्दोषपरिहाराय अग्नेर्मन्त्यानुवाककम् ॥१४६॥
स्नात्वा संकल्प्य विधिना प्रजपेत्पञ्चवारकम् ।
पवित्रपाणिराचान्त उपविश्यैव नान्यथा ॥१४७॥
तिष्ठन्धावन्प्रजल्पन्वा जपेद्यदि निरर्थकम् ।
भवेदेव न सन्देहस्तस्मात्तन्न समाचरेत् ॥१४८॥
यदि संध्यां प्रकुर्वीत चाकृत्वा दन्तधावनं ।
व्यर्था भवेत्तु सा संध्या तस्मात्तद्भूय एव वै ॥१४९॥
दन्तधावनतः पश्चात्कुर्वीतैव यथाविधि ।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति ॥१५०॥
तथैव पैतृके कुर्यात्तद्दिनेषु तथा न तु ।
नित्यं स्नानं द्विजः कुर्यात्प्रातरुत्थाय धर्मतः ॥१५१॥

वैश्वदेवमिति स्नानं अन्यथा तेऽखिलाः परम् ।
शापन्त्येनं जीवनाशायशाः कोपिता हि ते ॥१५२॥
स्नातुं प्रयान्तं विबुधाः पितरो मुनयोऽखिलाः ।
दृष्ट्वा पयोऽर्थिनः सन्त अनुधावन्ति पृष्ठतः ॥१५३॥
यदि तेषां सजलं हि दत्तैव किल मोहतः ।
सर्वस्वाङ्गसमुत्सृष्टमन्यत्र किल गच्छति ॥१५४॥
तृष्णां स्थिवन्ति या मूढा भवेत्तच्छापभाजनम् ।
तस्मात्स्नात्वा प्रयत्नेन देवादीनां विधानतः ॥१५५॥
देयमेव भवेन्नूनं सर्वस्वाङ्गविनिर्गतम् ।
स्नानाङ्गतर्पणं चापि नित्यं कार्यं विधानतः ॥१५६॥
अकृते तर्पणे तस्मिन्वृथैव प्रभवेत्तु तत् ।
कुर्वीत तर्पणं सर्वं स्नानेषु किल मार्जनम् ॥१५७॥
संकल्पं तद्द्वयंचापि नचेत्स्नानं तु तद्भवेत् ।
यद्यशक्तो भवेत्स्नातुं सलिलेषु विधानतः ॥१५८॥
नदीतटाककूपेषु स्नानमुष्णेन वा चरेत् ।
कण्ठस्नानं कटिस्नानं पादस्नानं तु वा चरेत् ॥१५९॥
तत्रापि यद्यशक्तश्चेत्सर्वमुष्णेन वाऽऽचरेत् ।
अथवा कापिलस्नानं प्रोक्षणस्नानमेव वा ॥१६०॥
स्नातस्नानं वा कुर्वीत शुद्धवस्त्राणि वा धरेत् (धारयेत्) ।
कायानुगुणतस्सर्वं कार्यमेव न चान्यथा ॥१६१॥
प्रातस्संक्षेपतः स्नानं होमार्थं तु विधीयते ।
मध्याह्ने तु यथोक्तिस्त्वं शनैस्सर्वं समाचरेत् ॥१६२॥

जलस्नाने सर्वथा चेदशक्तः कर्तुमेव वै ।
कायानुगुणतो यद्वा स्नानमेकं समाचरेत् ॥१६३॥
बहुप्रोक्तेषु सर्वेषु दिव्यस्नानं विशेषतः ।
दुर्लभं सर्वमेतद्धि गङ्गास्नानसमं हि तत् ॥१६४॥
न संकल्पादि तत्र स्यात्तर्पणं प्राणसंयमः ।
तथैवाचमनं वापि वायव्येऽपि तथैव च ॥१६५॥
तत्तु प्रयत्नसाध्यं स्यात्सार्थं प्रातस्तथान्तरे ।
न वायव्यसमं स्नानं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१६६॥
तद्गङ्गास्नानतुलितं पञ्चपातकनाशनम् ।
उपपातकसंदोहनिर्मूलकरणक्षमम ॥१६७॥
ततस्सन्ध्यां प्रकुर्वीत शक्तः स्नानप्रपूर्विकाम् ।
नक्षत्रसहितां पूर्वां पश्चिमां सूर्यसंयुताम ॥१६८॥
असावादित्यमन्त्रेण ध्यानं तत्क्रियतेसदा ।
ब्राह्मणस्यैव संध्या स्यात्संधावब्रह्मपामुखात् ॥१६९॥
सार्थान्यंपूर्वकर्ता स्याद्गायत्र्यार्घ्ये त्रयं चरेत् ।
सम्यगुच्चार्य तां वर्णस्वरतः क्रमतस्तथा ॥१७०॥
ब्राह्मण्यमूलं नैव स्यान्नान्यदस्ति जगत्त्रये ।
तन्मूलं ततस्साहि संध्यानां त्रितयेऽनिशम् ॥१७१॥
जप्यात्यन्तैकनियमशतैर्यन्त्रशताधिकान् ।
एतन्मन्त्रजपेनैव ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥१७२॥
सर्वलोकैकवन्द्यत्वं सर्वाचार्यत्वमेवच ।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिकम् ॥१७३॥

निषद्यानुग्रहो सर्वं मद्विमामन्त्र्यूज्ज्वला ।
एतन्मूलानि सर्वाणि तस्मादेनं मनुं परम् ॥१७४॥
यथाशास्त्रमधीत्यैव स्वरवर्णक्रमान्वितम् ।
सम्यगेव जपेद्विद्वान् त्रिसंध्यासु यथोचितः ॥१७५॥
अस्यास्तु मन्त्रविद्यायाः स्वरवर्णादिशून्यतः ।
संध्यात्रयीकरणतो ब्राह्मण्यं दूषितंतराम् ॥१७६॥
दोषयुक्तं च भवति वर्णोच्चारणतः परम् ।
सर्वस्वरादिशून्ये न व्यत्यासः स्वरवस्तथा ॥१७७॥
तद्ब्राह्मण्यं तादृगेव भवेदेव न संशयः ।
एतन्मन्त्रं समीचीनं प्रोक्ते कर्मणि वैकृते ॥१७८॥
अर्थाः सर्वेऽपि शुध्यन्ति तद्ब्राह्मण्यं च पुष्कलम् ।
अविशुद्धं महच्छ्रीमत् प्रभवेद्वीर्यवत्तरम् ॥१७९॥
चतुर्विंशतिवर्णाना मुक्तिमात्रेण केवलम् ।
आभासमात्रब्राह्मण्यं तत्र तिष्ठति केवलम् ॥१८०॥
तस्मात्सम्यक्स्वरयुतं तन्मन्त्रं वेदचोदितम् ।
विप्रत्वसिद्धयेऽधीत्य संध्याकर्मणि सिद्धये ॥१८१॥
ब्रह्मध्यानार्थ्यमात्रो यः पुरापद्मभुवाखिलाः ।
श्रुतयो विशदत्वेन ब्राह्मणानां प्रदर्शिताः ॥१८२॥
तस्माद् वेदान्विधानेन सम्यग्गुरुमुखात्परम् ।
अधीत्याम्रं तदन्तस्थां गायत्रीं शिरसा सह ॥१८३॥
नित्यमावर्तयेद्वस्या त्रिसंध्यासु महाशुचिः ।
भूत्वाथ स्नात्वा स्वरैर्वत्तद्वर्णकैरतिशोभनैः ॥१८४॥

एतावुभौ च तद्बुद्धिर्भावाभावौ शिवाशिवौ ।
गुणत्रयं जन्ममृती जगत्कार्यं प्रवर्तते ॥१९६॥
जगद्द्रव्यं जगद्दानां च कर्म त्रिसंध्यया ।
येनेदं न विद्यन्येन गुह्यमेतन्मयोदितम् ॥१९७॥
सर्वेषामपि लोकानां सर्वेषां नाकिनामपि ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मनूनां बहुना किमु ॥१९८॥
सर्वं कृत्यं संध्ययैव सम्यगेव सुसाधितम् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन नयत्किमपि नास्ति वै ॥१९९॥
संध्याभावे सर्वलोकविनाशः सद्य एव वै ।
भवेदेव न सन्देहो ब्राह्मणास्तादृशा हि वै ॥२००॥
सर्वत्रापि च वर्तन्ते कलौ चैतत्तु केवलम् ।
तिष्ठेत्तिरोहितत्वेन देवास्तादृशा परे ॥२०१॥
ब्राह्मणाः सर्वजगतां निदानं परमं परम् ।
तद्विना चेन्नकिमपि तेनैवैतत्प्रवर्तते ॥२०२॥
तत्कारणं हि गायत्री वेदमाता जगन्मयी ।
तयैतत्सृज्यते सर्वं तयैतत्पाल्यते परम् ॥२०३॥
संह्रीयते (?) तयैवेति सेषा किल जगत्प्रसूः ।
स्त्रीलिङ्गेन श्रुतौ नित्यं लीलया व्यवह्री(?)यते ॥२०४॥
लिङ्गानां वचनानां च हृदयं तत्र ब्रह्मणि ।
लिङ्गैः सर्वशब्दैर्वचनैरखिलैरपि ॥२०५॥
परं ब्रह्म नान्यत्किमपि विद्यते ।
व्यवहारोऽयं यथा भवति तत्तथा ॥२०६॥

देवता हृदयं प्रोक्तं पुल्लिङ्गो देवइति
नपुंसकं महाविद्या तदेतद्गितं मतम् ॥[illegible]॥
गायत्र्यास्तु छन्दो वै गायत्र्येव न चान्यत् ।
विश्वामित्रऋषिः प्रोक्तो देवता सविता स्मृता ॥[illegible]॥
[illegible] समाख्यातशिरसा [illegible]
नारायणस्तु हृदयं [illegible] समर्पित ॥[illegible]॥
महामन्त्रस्य [illegible] ।
[illegible] प्रोक्तं प्रथमं तु [illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] प्रोक्तं [illegible] तु ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
परिहाराय [illegible] ।
[illegible] गायत्री [illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] तु [illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥

तस्मादध्ययनं नित्यं गायत्र्याः किल केवलम् ।
समीचीनोच्चारणैकहेतवे तस्य नान्यथा ॥२१८॥
तस्मादेवंविधिःख्यातो गायत्रीग्रहणात्परम् ।
वेदैकाध्ययनं नित्यं तत्संस्कारैकहेतवे ॥२१९॥
एवं सति तु यो मूढो गायत्रीग्रहणात्परम् ।
अनधीत्यैव तं वेदमसंशोध्यैव तामपि ॥२२०॥
गायत्रीं वर्णसंयुक्तामुच्चरेद्वेदवर्जनात् ।
श्रममन्यत्र कुरुते शास्त्रजाले वृथाश्रमी ॥२२१॥
वेदाभ्यस्तु योलोके सोऽस्वाधीनैकवाग्भवेत् ।
देवी स्वाधीनवाक्प्रोक्तस्तेन मन्त्रादिकं सदा ॥२२२॥
सम्यगुच्चारणाच्चैव प्रभवेदिकलसन्ततम् ।
सर्वदक्षस्तु वेदीस्यात्सर्वसिद्धिश्च तेन सः ॥२२३॥
प्रभवेदपि ते नैव इदं नित्यं समभ्यसेत् ।
वेदान्वेदौ नचेद्वेदं शाखामात्रं तु केवलम् ॥२२४॥
अध्येतव्यं प्रयत्नेन नचेद्ब्राह्मणः स्मृतः ।
दुर्ब्राह्मणो वा नो चेत्तु ब्राह्मणम् न संशयः ॥२२५॥
अथवा ब्रह्मबन्धुःस्यात्तएते ब्रह्मयोनिजाः ।
स्यश्चत्वनमुचत्वारस्तेषां लक्षणमुच्यते ॥२२६॥
ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नः सम्यङ्मन्त्रैर्न संस्कृतः ।
अग्रोत्रियैःकृता तेन कर्माभासैकसंस्कृतः ॥२२७॥
अब्राह्मणश्चविप्रोक्तो मन्त्राभासजपादिकः ।
गर्भाधानादिसंस्कारचौलोपनयनेषु वः ॥२२८॥

गमुद्दिश्य प्रयत्नेन तन्त्रात्सलिलं तदा ।
पिबन्मध्ये शिरसा पश्चे पश्चे यतस्तुनिः ॥२६२॥
नष्टकृच्छ्रविधानेन नरपिण्डहोमपूर्वकम् ।
कान्तं नयेच्छुचिः स्नात्वा तादृशस्यास्य भेषजं ॥२६३॥
सर्वाश्रमिनमहासंध्यारहितस्य दुरात्मनः ।
नाशानि तारकाणि स्युः प्रजप्तानि जगत्पतेः ॥२६४॥
वेदाक्षरैकशून्यस्य पुराणान्तर्गताः पराः ।
श्लोकाः केचन संग्राह्याः स्नानसंध्यादिकर्मसु ॥२६५॥
न वैदिकः पुराणोक्तमन्त्रैः कुर्यात्कथंचन ।
किंचित्कर्मापि तस्मात्तैर्वैदिकैरेव चाचरेत् ॥२६६॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशापराम् ।
संध्यां नोपासते ये तु कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥२६७॥
कलौ तु केवलं विप्रे द्गायत्रीवर्णमात्रतः ।
तदेकदेशतश्चापि क्रियानुकरणादपि ॥२६८॥
ब्राह्मण्यं तच्च पूज्यं स्यान्न विचार्यं प्रयत्नतः ।
न निषेध्यं विशेषेण गोपनीयतमं भवेत् ॥२६९॥
संध्ययोः स्नानतो मौञ्ज्याः बाह्यैकक्रियया परम् ।
मोदनीयं हि विप्रत्वं न विचार्यतमं भवेत् ॥२७०॥
मूकस्यापि च विप्रत्वमस्तीत्येवेति केचन ।
प्रोचुर्महर्षयो मौञ्ज्यां गायत्रीजलपानतः ॥२७१॥
जले संलिख्य गायत्र्या मन्त्रैः कृत्वाखिलाः क्रियाः ।
प्राशयेच्च विधानेन मूकविप्रत्वसिद्धये ॥२७२॥

सर्वेषु श्रुतिरुत्कृष्टा रुद्रैकादशिनी ध्रुवौ।
पञ्चाङ्गरुद्रन्यासेन सर्वकल्मषनाशनी ॥२८४॥
विप्रसंध्याविघातस्य कर्ता सद्यः स्वयं तदा।
तस्य संध्यां यतःकुर्यादन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥२८५॥
न संध्याविघ्नकरणादन्यत्पापं तु विद्यते।
ब्राह्मणस्य क्षत्रियादेरपि शूद्रस्य वा पुनः ॥२८६॥
संध्यापरं तु होमः स्यात्सा च संध्याजपोऽपि वा।
मित्रस्यचर्षणीमन्त्रादुपस्थानादिकं परम् ॥२८७॥
आहिताग्नेः पूर्वमेव चोदयादंशुमालिनः।
निखिलं तद्विजानीयादग्नेरुद्धरणं तथा ॥२८८॥
आहिताग्नेरग्निहोत्रं सर्वश्रुतिसमीरितम्।
निखिलेभ्यश्च कर्मभ्यः सततं ह्यतिरिच्यते ॥२८९॥
तत्कर्मणः सर्वकर्मजालं यत्तदशेषकम्।
परं तद्योग्यतामात्रं संपाद(द)कमिति स्मृतम् ॥२९०॥
यस्मात्तदुदयात्पूर्वं स्मार्तं निर्वर्त्यं चाखिलम्।
ततः संकल्पनियतस्त्वग्निहोत्रस्य कर्मणः ॥२९१॥
होष्यामीत्येव संकल्प्य सायम्प्रातः समाचरेत्।
संकल्पानन्तरं तस्य तदुद्धरणमुच्यते ॥२९२॥
अकृत्वैव (तु) संकल्पं न तदुद्धरणं चरेत्।
कृते तस्मिश्चसंकल्पे तन्मध्ये स्मार्तकर्म तत् ॥२९३॥
न किंचिदपि कुर्वीत महावैदिककर्मणि।
कर्मणोऽन्यस्य संकल्पेऽन्यकर्मान्तरमुच्यते ॥२९४॥

प्रथमं वैदिकं कर्म मंत्रपूर्वं च कर्मसु
तन्त्रोक्तं पुराणपरत्वात्तिथौ कुर्यात्त्रयमिदम् ॥९५॥
शौचं निवर्तितं येहि पितॄणामपि पुनः क्रियाः ।
स्नात्वा वै वाससा सार्धं अग्निहोत्रं यथा पुरा ॥९६॥
नित्यं च सततं सर्वं कुर्वीतेति परा श्रुतिः
सद्वैदिकस्य तन्त्रस्य संकल्पेऽस्मिन् [illegible] यदि ॥९७॥
यस्य कश्यपिदेवस्य सदन्नपानिनामपि ।
मध्ये वा श्रुतिजा नूनमागमेषु पुनस्तु वा ॥९८॥
नाम्नैवेति मनः प्राह सम्यग्वै तु श्रुतिजः ।
स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत कर्मकाले तु सन्तुत ॥९९॥
वैतानिकस्थले त्यक्त्वा दूरे तिष्ठति नात्र नम
यावत्कर्म ततो भूयो वहिरन्तेन न पुनः ॥१००॥
एवं वैदिकजामन्त्रगोत्रिणामपि [illegible] ।
समाना तत्र विप्राणां तीर्थानां वर्णं सद्वर्णन ॥१०१॥
वर्णादेशं कर्म सम्यगुपमार्दितं परम्
नपरस्य नानाजात वैदिकस्य महात्मन ॥१०२॥
सद्धर्मः पृथगेव तु विदुषेऽप्यन्यवोऽपि तथा
सर्वदेशादयः सर्वे नानात्व च पृथक् पृथक् ॥१०३॥
विद्वान्त्रमपि चोदयन्ते वैदिकत्वादन्यं भवन्तु ।
[illegible] मूर्वीत्यमा[illegible] ॥१०४॥
[illegible] हि [illegible]
अतः [illegible] (वेदाश्चापि [illegible] त्रयी)
वेदव्यासकृतसंहिता ॥१०५॥

कन्याकुम्भतुलीरेषु पत्नीगर्भे सुसन्ततम् ।
अन्त्यत्वमासपक्षेषु चानुमनुयुगादिषु ॥३०६॥
प्रोच्यते वेदवाक्येन तस्मात्तु क्षुरकर्म तत् ।
आहिताग्नेः पर्वणि हि कथितं तु विशिष्यते ॥३०७॥
इष्ट्यभावेऽपि तत्कर्म मात्रादपि च केवलम् ।
यत्किंचित्कर्मणादिष्टिकर्मैकदेशतः ॥३०८॥
कर्मणादिष्टिसिद्धिश्च भवत्येवेति तत्कृतम् ॥३०९॥
यावतः कर्मणः कर्तुमशक्तावपि तस्य वै ।
अङ्गमात्रास्यास्तु कृतौ समीचीनं भवेत्किल ॥३१०॥
सोऽयं तस्मादाहिताग्नेर्न कालादिनिरीक्षणम् ।
क्षुरस्य कार्यं नैव स्यात्सकालः क्षुरकर्मणः ॥३११॥
नित्यतः समुपक्रान्तस्तस्याग्नेरुपक्रमे ।
त्यक्तनष्टाग्निहोत्रस्याहिताग्नेरेवमप्यवि ॥३१२॥
चोदितं तद्धि चैवं स्यादाहिताग्नीतरस्य च ।
वर्णिनो ग्रहणश्चापि वैदिकस्यैव केवलम् ॥३१३॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे व्रतानां सन्ततं तराम् ।
यदा तदा क्षुरं स्याद्धि न कालादिनिरीक्षणम् ॥३१४॥
कूष्माण्डे गणहोमे च प्रायश्चित्ते ह्युपस्थिते ।
सूतकान्ते प्रसूत्यन्ते व्रते(त)चान्द्रायणादिषु ॥३१५॥
नैमित्तिकब्रह्मकूर्चे न कालादिनिरीक्षणम् ।
देवासुरसुराणां तु(त)त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥३१६॥

तहीक्षानियमा दिव्या दम्पत्यालापनादिकाः ।
महदाशीरुत्सवश्च भूपगोत्सव एव च ॥३५०॥
दीपोत्सवो दीपशान्तिः कुलाचारादयोऽखिलाः ।
चौर्योत्सवो हेलनाख्यो ह्यनुभक्षिमहोत्सवः ॥३५१॥
गीतोत्सवो वाद्यघोषणोत्सवसंज्ञकाः ।
शेषहोमो नागबलि महेन्द्राणी(णं?) समर्चनम् ॥३५२॥
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्या तद्देवानां समर्चनम् ।
महादिशामुत्सवश्च ताम्बूलोत्सव एव च ॥३५३॥
तद्दम्पती महापूजा तन्नामोक्त्युत्सवः परः ।
गृहाद्ग्रामविनिर्याणमहाजलमहोत्सवः ॥३५४॥
हारिद्रजलतच्चूर्णगन्धकुङ्कुमवस्तुभिः ।
दोलोत्सवोदेवतोद्वासनसंज्ञोत्सवः परः ॥३५५॥
कङ्कणोद्वासनोबन्धोद्वासनादिकमित्यतः ।
यद्द्रव्यजातं तत्सर्वमन्वहं तत्ततोऽधिकम् ॥३५६॥
भवत्येव ततो यत्नादुख्यमग्निं सदा धरेत् ।
यदि भूमौ निक्षिपेत्तु तपद्भूमिशुचिः सदा ॥३५७॥
सशान्ति कुरुते तस्मात्परं तण्डुलहोमतः ।
गार्हपत्याख्यकश्चित्तु पुरोडाशादिना न तु ॥३५८॥
हविषापाशुकेनैव नित्यशान्तो भवेदहो ।
नचेद्गार्हपत्याख्यो यजमानस्य सन्ततम् ॥३५९॥
तस्मिन्नतीते वर्षतौ पलंलं हि वदिच्छवि ।
वह्नयो वैदिकात्तस्माद्गार्हपत्यादिकास्त्रयः ॥३६०॥

नियमोऽयं यजुष्मस्य श्राद्धकर्मणि पावकः ।
वैदिकः कथितः सद्भिर्यद्वा चान्यत्तथैव हि ॥३७२॥
मुख्यः कल्पः पावके स्यादप्सु कृष्णकर्मणः ।
विकल्पात्पाणिहोमोऽपि नवाग्निस्तदनन्तरम् ॥३७३॥
प्रयतो वैश्वदेवान्ते ब्राह्मणानतिथीनपि ।
भोजयीत न चाश्नीयान्मानुषोऽयं महामखः ॥३७४॥
अजस्रं वैश्वदेवाद्यावयमानेऽथवा शुचिः ।
औदुम्बर्येध्मसमिधो जुहुयाद्दश वा शतम् ॥३७५॥
तावत्संख्याश्चाहुतीश्च श्रीकामः कालयोर्द्वयोः ।
देवयज्ञोऽयमुदितः केचित्तु शकलाहुतिः ॥३७६॥
इमं यज्ञं तमेवोचुर्यदि पितृभ्यः स्वधेति वै ।
तर्पणं क्रियते यत्तु पितृयज्ञं प्रचक्षते ॥३७७॥
येयं पूर्वं बलिः प्रोक्ता वायसानां शुनामपि ।
एषा(ष) वै भूत यज्ञः स्यादतिथीनां तु भोजनम् ॥३७८॥
नृयज्ञः कथितः सद्भिर्ब्रह्मयज्ञस्त्रयीमयः ।
एवं पञ्चमहायज्ञाः श्रुतिप्रोक्ताः सनातनाः ॥३७९॥
नैषामङ्गाङ्गिभावोऽस्ति स्वतन्त्रास्ते परस्परम् ।
तर्पणं ब्रह्मयज्ञस्य देवादीनां यदीरितम् ॥३८०॥
यदङ्गमेवतस्याः स्यात्तच्चनित्यमितीरितम् ।
देवानां प्रथमं तत्र तर्पणं समुदीरितम् ॥३८१॥
ऋषीणामथ तत्प्रोक्तं पितृणां तु ततः परम् ।
[illegible] ये देवा वेदोक्ता अष्टमे मताः ॥३८२॥

ब्रह्मा वै चतुर्होतारः तेभ्यो यज्ञोऽधिनिर्मितः ।
स हि नारायणो ब्रह्मा पुरुषरूपेण तत्र च ॥३९४॥
वर्तते चानुवाकेन चोत्तरेण जगन्मयः ।
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्ता कारणकारणम् ॥३९५॥
करणस्यापि करणं जगज्जन्मादिकारणम् ।
सत्यज्ञानानन्दमयं सदसच्चिन्मयात्मकम् ॥३९६॥
तद्रूपेणावतीर्णं तत्तस्याध्येता तदात्मकः ।
ब्रह्मवाग्भुच्यते सद्भिः स येन निषिध्यते ॥३९७॥
स सर्ववेदयज्ञौघसत्कर्मतन्त्रतन्मतः ।
स उ वै वैदिकश्रेष्ठःकर्मिष्ठः कर्मठोऽशठः ॥३९८॥
सर्वाचार्यः सर्ववन्द्यः संप्रदायप्रवर्तकः ।
सर्वाचारस्थापकश्च सर्वलोकविलक्षणः ॥३९९॥
सूक्ष्मधर्मार्थतत्वज्ञः सोऽयं किल विशेषवित् ।
वेदमार्गानुसारी च परं वेदोक्तमेव हि ॥४००॥
करोति कर्मनान्यत्तु गौणमुख्ये तथा बलम् ।
देशकालमहापात्रद्रव्ययोगादिकेक्षणे ॥४०१॥
मुख्यं तत्समनुष्ठानं कुरुते किल सन्ततम् ।
सत्कर्मभिः सदा पूजां करोति कुलसंभवः ॥४०२॥
सपत्रपुष्पादि कृत्वा देवस्य परमात्मनः ।
भवेन्नतु सदापूजा किन्तु सत्कर्मभिः कृतैः ॥४०३॥
यथाशास्त्रादिविहितैरलभ्यैर्महवीति सा ।
प्रोच्यते तद्विशेषज्ञैः स हि सर्वोत्तमोत्तमः ॥४०४॥

कथितास्तु समासेन हविर्यज्ञास्तथैव च।
अग्निहोत्रं च दर्शादि तथैवाग्रयणं महत् ॥४१६॥
चातुर्मास्यनिरूढे च सौत्रामणिरतः परम्।
पितृयज्ञाश्च कथिता एकविंशतिसंज्ञिकाः ॥४१७॥
कर्म यद्यपि तत्प्रोक्तं त्रिक्षणस्यापि केवलम्।
तानीमानि तु कर्माणि नित्यान्याहुर्मनीषिणः ॥४१८॥
कर्थं तदिति हि प्रोक्तं वीप्सावाक्येन केवलम्।
तेन तत्कर्म कथितं केचिदत्र महर्षयः ॥४१९॥
चत्वारिंशत्संस्काराः प्रोचुरेवं च तद्यथा।
पद्यापद्यापि वक्ष्यामि क्रमेणैव पुनश्च तैः ॥४२०॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोनाम(जात)कर्म च।
नामान्नप्राशनं चौलं मौञ्जीव्रतचतुष्टयम् ॥४२१॥
स्नानं गोदानिकं चेति विवाहः पैतृमेधिकम्।
परं निष्क्रमणं त्वेवं परो विष्णुबलिः परः ॥४२२॥
तदंगभूतया दिव्यं सर्वाण्युक्तानि च क्रमात्।
यस्य वेदश्चवेदी च विच्छिद्येते त्रिपौरुषम् ॥४२३॥
स वै दुर्ब्राह्मणो नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः।
दौर्ब्राह्मण्यविनाशाय द्विजो भक्त्या धिया युतः ॥४२४॥
नित्यमेव यतस्तस्माद्यज्ञाने तान्सदा यजेत्।
पितॄणां प्रजया पश्चादेतेषु त्रिषु सर्वदा ॥४२५॥
चेतसा भीतियुक्तेन तदापाकरणहेतवे।
स्वाध्यायोऽयं ह्यधी(मधे)तव्यो(?)महातन्नियमैर्युतः ॥४२६॥

महाग्निगृग्मरन्च पितृयज्ञस्तथैव च।
पैतृकाणि हि कर्माणि चत्वार्याहुर्मनीषिणः ॥४३८॥
प्राधान्येनैव चोक्तानि जातकर्ममुखानि तु।
मानुषाणि तु सर्वत्र प्रसिद्धानि जगत्त्रये ॥४३९॥
पराणि दैविकान्याहुः सर्वाण्येतानि वै द्विजः।
प्रतिसंवत्सरं कुर्यादेव पित्र्याणि शक्तितः ॥४४०॥
शक्तिसाध्यानि कार्याणि कथं कुर्यादकिंचनः।
प्रभूतधनधान्यानि ह्यग्निहोत्रमुखानि वै ॥४४१॥
इत्याहुः केचनाचार्या वैखानसमहर्षयः।
अपरे वालखिल्यास्तु वैदिकामवयोऽब्रुवन् ॥४४२॥
यस्य त्रिवार्षिकं वित्तं लक्षं लक्षार्धमेव वा।
स कथं मत्तमातङ्गमग्निहोत्रमुपासते ॥४४३॥
पुनरन्ये ह्यश्मकुट्टाः स्वमतं प्राहुरुत्तमम्।
रंभासंभोगकार्याय स्वर्गोऽयं विहितः पुरा ॥४४४॥
पितामहेन देवेन तत्कार्याय मखः परः।
रंभासंभोगकामा ये तैरेवाहिसहिक्रतुः ॥४४५॥
समनुष्ठेय एवेति नान्यकार्याय स स्मृतः।
नैमिशा(षा)दि महाक्षेत्रे विद्यमानेश्वरार्चनात् ॥४४६॥
मुक्तिर्नात्र विरोधो हि तस्मात्कुर्याद्धरेः सदा।
प्रतिमासु पुराणेषु मृद्दारुप्रस्तरात्मसु ॥४४७॥
पत्रैः पुष्पैः फलैरर्चा षोडशैरुपचारकैः।
नित्यपूजा विशेषेण तथा नैमित्तिकान्यपि ॥४४८॥

वैखानसैकदेशापि चक्रुर्दूषणमेव वै।
ते क्रमेण तद्भक्त्या वैखानसमहर्षयः ॥४६०॥
वालखिल्यास्तु संभूत्वा पश्चाज्जन्मान्तरे पुनः।
संप्रक्षाला भवन्त्येव पश्चाज्जन्मान्तरे किल ॥४६१॥
मरीचिपाः संभवन्ति तस्मिञ्जन्मनि केवलम्।
वेदमार्गानुगां बुद्धिं संप्राप्य महती ततः ॥४६२॥
पितृभिश्शिक्षिताः सम्यग्वेदाभ्यासपरायणाः।
वासं गुरुकुले कृत्वा ऋचस्सामानि तानि च ॥४६३॥
यजूंषि लब्ध्वा पुण्येन भवेयुः किल कर्मणा।
सन्तः सत्पथगा धीराश्चाचल्यैकविवर्जिताः ॥४६४॥
सतां यजुस्सामऋचः श्रीर्दिव्या महती परा।
तद्वन्तश्चतदर्थज्ञास्तदनुष्ठानतत्पराः ॥४६५॥
क्रमेणैव लभन्ते तं पन्थानं ब्रह्मवादिनाम्।
सम्प्राप्य दिव्यज्ञानं तन्निदिध्यासनतत्परः ॥४६६॥
सायुज्यनाम(मि)कां मुक्तिं लभन्ते सद्गुरोस्तराम्।
प्रसादेनैव कृपया पितॄणामर्चया तथा ॥४६७॥
अयमेव महामार्गो वेदोक्तात्यन्तसौलभः।
अन्यः पन्था नायनाय श्रुतिरेवमुवाच सा ॥४६८॥
ब्राह्मणस्यैव तद्विद्याशिक्षितस्य विशेषतः।
द्वावेव श्रवणादीनां वेदवाक्यविचारतः ॥४६९॥
सूत्राणां(शि)क्षया चापि मुक्तिः स्यात्तादृशी परा।
विना वेदान्तवाक्यानां दिव्योपनिषदामपि ॥४७०॥

विशेषेण ब्रह्मविद्या विषये वै वृथा कलिम् ।
न कुर्यादेव सहसा शक्त्या नित्यःस वो भवेत् ॥४८२॥

नानाहिताग्निस्तिष्ठेत्तु न च दुर्ब्राह्मणोऽपि वा ।
येन केनाप्युपायेन दौर्ब्राह्मण्यं समागतम् ॥४८३॥

अपि स्वीकृत्य चण्डालान्नाशयेत धनं द्विजः ।
दौर्ब्राह्मण्येन नष्टस्याश्रोत्रियत्वेन वा तथा ॥४८४॥

असोमयाजित्वेनैवं को लोकः स्यादहन्तराम् ।
नैव जाने नैव जाने नैव जाने पुनः पुनः ॥४८५॥

वेदविद्भ्यस्ततो यत्नाद्धिन्छित्तिर्नभवेत्तथा ।
मनुष्ययत्नः कर्तव्यस्तद्यत्नादपि केवलम् ॥४८६॥

अदृष्टलाभो भवति विशेषेण न संशयः ।
नाहीनक्रतुभिरितव्ये(?)यमेवैव न चान्यथा ॥४८७॥

कलापहीनक्रतवो दुस्साध्याः स्युर्हि देहिनाम् ।
सर्वक्रतूनां प्रथममाधानात्तु परंतराम् ॥४८८॥

अग्निष्टोमस्त्वनुष्ठेयः अतिरात्रोऽथवा सदा ।
अतिरात्रे प्रथमतो यदि चेत्समनुष्ठिते ॥४८९॥

अधिकारमूत्तरेषु तेषु क्रतुषु नैव वै ।
अग्निष्टोमे प्रथमतः कृते तु किल यच्चयद्रम् ॥४९०॥

क्रतूनामपि सर्वेषामनुष्ठानाय योग्यता ।
उभयोः भवेदेव नात्रकार्या विचारणा ॥४९१॥

निर्यं कर्तुं भवेद्भूयस्त्वतीतेषु दशस्वपि।
अहन्येकादशदिने नामकरणाख्यकर्मणा ॥५०३॥
कर्तुं तत्र कृते भूयस्तत्र नामाख्यकं परम्।
तत्परस्मिन्नपि दिने कर्तुं वै शक्यते दिने ॥५०४॥
दिनेऽतीते द्वादशे तु भक्तप्राशनकर्मणा।
सहैव विहितं शास्त्रात्र पृथग्भिन्नकालतः ॥५०५॥
मासि षष्ठे तत्र कर्म कालेऽतीते तु तस्य च।
वर्षे तृतीये चौलेन नान्तरा तत्र वै स्मृतम् ॥५०६॥
तस्य कालेऽप्यतीते तु मौञ्ज्या सह विधीयते।
कर्तव्यत्वेन सततं जातकादीनि यानि वै ॥५०७॥
तान्युक्ता निखिलान्यत्र मौञ्ज्या सह विधानतः।
तदानीमेव कार्याणि न तु भिन्नेन नेहसा ॥५०८॥
कर्म कर्मान्तरेणैव कर्तव्यं स्यात्प्रयत्नतः।
यद्यतीतं कृतं कर्म भिन्ने काले प्रमादतः ॥५०९॥
अपनीतेर्न्न तस्यापि पुनः करणमर्हति।
पृथग्भिन्नं भिन्नकालः समुहूर्तादयः स्मृताः ॥५१०॥
प्राजापत्येन मुख्येन तद्द्वितीयादिना मुखम्।
कर्तव्यं स्यादुपाकर्म तथा चोत्सर्जनं पुनः ॥५११॥
प्राजापत्याख्य काण्डानि व्रतानि नव वै तथा।
सौम्यान्यपि च दिव्यानि ससाग्नेयानि संविधिः ॥५१२॥
वैश्वदेवाख्यकाण्डानि षोडश स्युर्हि संख्यया।
प्राजापत्ये तत्र काण्डं पौरोडाशे विधीयते ॥५१३॥

तदाहुसिद्धयं कुर्यान्नान्यल्लिमपि विद्यते।
अयं हि गुप्ति(प्र)होमे स्यान्नित्यं कालद्वये चरेत् ॥५४७॥
तदग्निरक्षणार्थेव तदार्थं विधीयते।
प्रधानाहुत्यथविवाहाग्निसिद्धिर्भवेत्किल ॥५४८॥
स्थालीपाकादथपुनरस्तुपक्रम उच्यते।
औपासनस्य कृत्यस्य कर्मणः श्रुति बोधनात् ॥५४९॥
तावन्मासस्तु पक्षो वा ऋतुर्वाप्ययनं शरत्।
अहनयोर्दिनं वापि मार्गमध्ये विधानतः ॥५५०॥
सायं प्रातस्तस्य कालो न गृहे सोऽयमुच्यते।
शकटारोहणात्पश्चाद् बध्वा कृशानुना सह ॥५५१॥
होमकाले मार्ग मध्ये गुप्तिहोमोऽय मुच्यते।
गृहप्रवेशहोमस्य चार्वागेव ततः परम् ॥५५२॥
यावज्जीवास्य संकल्पपत्न्या कार्याद्विजन्मनाम्।
अनुज्ञार्थं दक्षिणतः तेषां स्वप्रार्थनादितः ॥५५३॥
औपासनारंभतुर्ययामिन्यपरपक्षके।
शेषहोमं प्रकुर्वीत मङ्गलस्नानपूर्वकम् ॥५५४॥
विवाहात्पूर्वं दिवसे नान्दीश्राद्धमुदाहृतम्।
ततः परं विधानेन लाजहोमात्परं तराम् ॥५५५॥
तद्दीक्षायामनुष्ठेया दीक्षाधर्माः सनातनाः।
नातपे संचरेद्वापि न ज्योत्स्नायां हिमेऽपि वा ॥५५६॥
नैव स्नानं प्रकुर्वीत तटाके वा सरित्यपि।
ह्रदेषा देव खाते वा कूपे वा पल्वलेऽपि वा ॥५५७॥

दण्डं छत्रं त्रैणवं च तिरस्करणिकामपि।
विचित्रामृत्वगां कृत्वा चतुर्भिः षड्भिरुत्तमैः।।५६९।।
अष्टभिर्वा द्विजैर्धीरैर्वेदघोषपुरस्सरम्।
गीतवादित्रसंघैश्च सर्वमङ्गलसंवृतः ।।५७०।।
यद्विर्गच्छेत्तदागच्छेत्सायं प्रातश्च वर्षति।
न चरेन्नैव निर्गच्छेन्न तुषारेऽतिधर्मके ।।५७१।।
न तप्तायां धरायां वा सोपानत्कोऽपि मङ्गले।
नार्द्रायां कर्दमेवाऽपि गच्छेदपि च सङ्कटे ।।५७२।।
अपरात्दागतं दैवात्सूतकं मृतकं त्यजेत्।
इन्द्राण्युद्वासनात्तद्वत्कङ्कणविमोक्षणात् ।।५७३।।
लक्ष्मीनारायणध्यानपरत्वेन सदा भवेत्।
इन्द्राणीमपि गौरीणां सायं प्रातः समर्चयेत् ।।५७४।।
यदि मोहेन तेनार्च्ये नित्या मङ्गलभाग्भवेत्।
नित्यमौपासनं कृत्वा बृहत्सामेति मन्त्रतः ।।५७५।।
तद्भस्मना प्रकुर्वीत स्वरक्षां सन्निधानतः।
प्रयत्नानामिकाङ्गुल्या चेमात्वमितिमन्त्रतः ।।५७६।।
वध्वारक्षां प्रकुर्वीत शुभिके शिरमन्त्रतः।
यामाहरेति मन्त्रेण मालिकामपि च स्रजम् ।।५७७।।
विभृयादपि(च)य(त्ने)न नीराजनरतश्च वै।
तदा तदा च तन्मध्ये विप्राशीरपि सन्ततम् ।।५७८।।
अत्यन्तावश्यकी ज्ञेया मङ्गलेषु पदे पदे।
आगतानां विशेषेण बन्धूनां च द्विजन्मनाम् ।।५७९।।

पात्राभिघारणं कृत्वा परिवेषणमादितः।
[illegible] भोजनेऽन्वहम् ॥५९१॥
[illegible] भोक्तृनां [illegible] च महात्मनाम्।
[illegible] [illegible] भूरिषु ॥५९२॥
[illegible] वैश्वदेवविवर्जनात्।
[illegible] हविः ॥५९३॥
[illegible] शय्यासंभजनविवर्जनाम्।
[illegible] भोजने सदा ॥५९४॥
[illegible] वेदाजने [illegible]।
[illegible] पायसं कृसरं विना ॥५९५॥
[illegible] भक्ष्याभावे त्वयं विधिः।
[illegible] परमान्नेषु भूरिषु ॥५९६॥
[illegible] नियमो मनुरब्रवीत्।
[illegible] विधवां नैव भोजयेत् ॥५९७॥
[illegible] तेषु सर्वदिनेष्वपि।
[illegible] ब्राह्मणेषु वा ॥५९८॥
[illegible] पानेनोपवेशयेत्।
[illegible] निवेदयेत् ॥५९९॥
[illegible] यत्नेनैव विवर्जयेत्।
[illegible] जलम् ॥६००॥
[illegible] यथा ब्रह्मौदने शिवे।
[illegible] पाचयेत् ॥६०१॥

नोच्चरेत वदान्यानि पुराणादीनि कृत्स्नशः।
पितृक्रियाप्रधानानि यामगाथादिकानि च ॥६१३॥
सप्रयत्नेनोच्चरेच्च पितृयज्ञादिकं तथा।
साकमेधं शुनासीरीयकं तद्वैश्वदेविकम् ॥६१४॥
वारुणं तत्प्रघासं च कल्याणेषु विवर्जयेत्।
कुम्भाण्डश्चापिकूश्माण्डमसूरः कन्दसंज्ञकः ॥६१५॥
मूलानिशाकुटादीनि कर्णप्रावरणं पुनः।
निंबो नैंब्यो महासौम्यः सोमकेतुश्शिवारुणः ॥६१६॥
कर्णमूलं कर्णदामं.........पाप्मनः।
पुण्यो वार्ताकजातीयः पटोलः पनसश्शिवः ॥६१७॥
उर्वारुस्सरणस्सारः सारणोपसरित्तटः।
एते शाकाश्शोभनदाः कल्याणेषु महर्षिभिः ॥६१८॥
मुख्यत्वेनैव कुर्वीत सर्वसाधारणेन वै।
देहे निपतिताः स्युश्चेत्प्रमादाद्वर्णबिन्दवः ॥६१९॥
जपेत्पृथिव्यै स्वाहेति चानुवाकं पराशिवाः।
यदि याकेन दैवेन ताडितस्त्वातपेन वा ॥६२०॥
पवते सदवाक्यानि तानि सर्वाणि वै जपेत्।
अवशाज्जलसिक्तश्चेदद्भ्यः स्वाहेति वा जपेत् ॥६२१॥
शुना स्पृष्टिरस्पृश्यादिभिरेव वा।
हरिद्रातैलचूर्णानि द्रव्यलिप्तो यदान्वहम् ॥६२२॥
उष्णोदकेन तु स्नानं पावमानीभिरेव च।
उत्तमाङ्गं विना स्नायादिदं विष्णुं च तं जपेत् ॥६२३॥

दौर्भाग्यं कुले तेषां नास्त्येवादर्शपूर्वकम्।
सर्वं यागप्रतिनिधिः कल्पोऽयं क्वचन स्मृतम् ॥६३५॥
ब्राह्मणानां पुरा सृष्टं ब्रह्मणैव महात्मना।
वेदक्रियासुचालस्यायेऽपि वार्तावदुर्द्धरः ॥६३६॥
तेषामपि हितार्थाय महाशीरियमुत्तमाम्।
सृष्टा किलासिचपलं सर्ववेदस्य सारतः ॥६३७॥
समुद्धृत्य समुद्धृत्य चैकीकृत्य च तां चिरात्।
प्रकाशिता जगत्यत्र तदेतत्तादृशं शिवम् ॥६३८॥
महत्सु वैदिकं कर्म ब्राह्मणानां सुमेधसाम्।
यद्यत्र शोभने तस्य वस्त्रं कौतुकमुत्तमम् ॥६३९॥
बध्वाहतस्य माङ्गल्यं वह्निस्पृष्टं भवेद्यदि।
दग्धमान्तं तथार्धं वा यत्किंचिदपि वा पुनः ॥६४०॥
उपदीकाहृताः केशाः मूषकैर्वापि दंशिताः।
द्विपाच्छन्तुभिरुत्क्रान्ता येषां तेषां च कर्मणाम् ॥६४१॥
आयुष्यसूक्तपठनं लक्ष्मीसूक्तस्य वै तदा।
पुनर्वस्त्रान्तरादीनां तत्तन्मन्त्रैः परिग्रहः ॥६४२॥
निष्कृतिर्विहिता सद्भिर्वेदविद्भिर्द्विजोत्तमैः।
यदि चण्डालसंस्पर्शो वरयोः संभवेत्तदा ॥६४३॥
तदास्यान्मङ्गलस्नानं हरिद्रोष्णजलेन तु।
यदि श्वकाकसंसृष्टिस्तदुष्णेनैव वारिणा ॥६४४॥
हरिद्रामिश्रिते नैव घृतेन च विधीयते।
स्नानात्परं रुद्रजपस्त्रिवारं निष्कृतिर्मता ॥६४५॥

जलाक्षताभ्यां संकल्प्य पूजयित्वाक्षतानपि।
ऐरावतं च संपूज्य दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥६५७॥
सुप्रतीकं धराधारं त्रिःपरिक्रम्य तत्परम्।
प्रति प्रति प्रवादाभ्यां विनियम्य परस्परम् ॥६५८॥

(न तत्सौमङ्गल्यवधया)

कृष्णान्मणींश्च तत्कण्ठे तद्देवानां च सन्निधौ।
बध्नीयाद्गीतवादित्र पुरंध्रीगानपूर्वकम् ॥६५९॥
ततः पुनश्च संकल्प्य फलदानानि चाचरेत्।
तथा तांबूलदानानि दक्षिणादीनि शक्तितः ॥६६०॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रकुर्वीत वस्त्रालंकारपूर्वकम्।
सभापूजां च कुर्वीत तदाशीः प्राप्य तत्परम् ॥६६१॥
दम्पती चोपवेश्योभौ दम्पती पूजनक्रियां।
प्रकुर्यातां विधानेन तदीयामाशिषां शिवाम् ॥६६२॥
स्वीकुर्वतां तत्परं च दद्यात्ताभ्यां च दक्षिणाम्।
तांबूलं च क्रमेणैव सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥६६३॥
तत्रत्यानां च सर्वेषां तांबूलं चापि दक्षिणाम्।
शक्त्या लोभैर्न दद्याच्च मञ्चारोहणमेव च ॥६६४॥
डो(दो)लोत्सवोऽपि कर्तव्यो महाचूर्णोत्सवस्तदा।
वीथीप्रदक्षिणं चापि पुनर्वेश्मप्रवेशनम् ॥६६५॥
जलक्रीडाविधानं च तांबूलस्य च भक्षणम्।
मध्याह्ने मङ्गलस्नानं पुनश्च स्वस्तिवाचनम् ॥६६६॥

कल्याणं पुत्रयोः कृत्वा द्वौषण्मासं ततः परम्।
पित्रोर्विना मृताहं तु अन्यदर्शादिकं न यत् ॥६७८॥
दूर्वाक्षताभ्यां तत्सर्वं कुर्यादेवाविचारयन्।
यदि दूर्वाक्षतास्त्यक्त्वा कारुण्याना पितृक्रियाम् ॥६७९॥
पितृव्यमातुलादीनामपि दर्शादिकं च यत्।
तदादिकं दर्भतिलैःषण्मासं शुभात्परम् ॥६८०॥
पुत्रयोः स्वस्य वा मूढः सदादुःखी भवेदयम्।
तस्मात्पैतृककृत्येषु स्वस्य वा पुत्रयोः शुभात् ॥६८१॥
षण्मासमध्यप्राप्तेषु दर्शनैमित्तिकादिषु।
दूर्वाक्षताः प्रशस्ताः स्युर्न दर्भा न तिला अपि ॥६८२॥
पुत्रीविवाहः परमो विवाहात्तनयस्य वै।
यतन(तनयः) स्वगृहेसम्यक्क्रियतेऽन्यत्र तस्य चेत् ॥६८३॥
तस्मात्पुत्रविवाहस्य षण्मासात्तु परं तराम्।
शुभकर्मसमाचारः स्वनुष्ठेयो विपश्चिता ॥६८४॥
पुत्रोपनयनं तस्माद्विवाहात्तस्य कर्मणः।
शुभाचरणनाम्ना वै सततं ह्यतिरिच्यते ॥६८५॥
यतो विवाहं पुत्रस्य स्वीकृतो हि गृहान्तरे।
तस्मादत्रविवाहात्तु दुर्बलं नित्यमेव हि ॥६८६॥
अथापि सम्यक्कुर्वीत विवाहात्तु तयोः परम्।
शुभाचरणकर्माख्यषण्मासं च शनैश्शनैः ॥६८७॥
तत्क्रमाञ्चापि वक्ष्यामि मन्दवारे च सौम्यके।
वरयोरुत्सवं कुर्यान्मङ्गलस्नानपूर्वकम् ॥६८८॥

एवं [illegible] तनये दत्ते भिन्नगोत्राय चापदि।
तज्जातानां पुनः स्वस्य जनकस्य कुलं प्रति ॥७००॥
समाननकार्यो……स(अ)ज्ञात प्रार्थनादिका।
सहस्राख्य परं भूयो दायादानां च तत्पितुः ॥७०१॥
तद्दायादिः प्रकर्तव्यो हरिद्राजललक्षणम्।
पश्चान्न तत्स्वीकारोऽपि तदेतदखिलं कृतम् ॥७०२॥
किमासीदिति चालोच्य चेतसा पश्यताधुना।
गोत्रप्रवेशादयन तत्संसृष्टौ यथा तराम् ॥७०३॥
जातायामपि तस्याःस्यात्तद्गोत्रस्य च तादृशः।
तद्रिक्थसंबन्धकथा तत्समत्वकथापि वा ॥७०४॥
क जाता तत्परं चास्य वंशो दुर्बल एव हि।
बभूव किल हा तावत्प्रकृतिं याति केवलम् ॥७०५॥
तावदेव हि विप्रत्वं न्यूनत्वं समुपागतम्।
तत्रापि सम्यगधुना स्पष्टाय हि निरूप्यते ॥७०६॥
अन्यगोत्रप्रदत्तो यः [illegible] तु स्वपितरं क्रमात्।
पालयिता तस्य पित्रा च तत्पित्रा दत्तकेन वा ॥७०७॥
सपिण्डीकरणे सम्यग्योजयेत्तत्र बाधकम्।
न भवेत्किंचिदपि वा दत्तजस्तु पुरा किल ॥७०८॥
स्वपुत्रं न्यस्य तातैकगोत्रसिद्ध्यर्थमादरात्।
स्वतातगोत्रमित्युक्तस्वपितामहगोत्रकम् ॥७०९॥
स्वतातततातगोत्रस्य सिध्यथमिति तन्मनः।
सुस्पष्टाय प्रकथितं तदर्थो गुरुणोदितः ॥७१०॥

[illegible]
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible]
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥

सम्यक् त्रिपूर्वपर्यन्त असौ यद्यपि नैच्यभाक्।
वंशजानामस्य पितुस्त्याग एकस्य चोदितः ॥७२२॥
पितामहस्य तत्पश्चाद्द्वितीयस्य ततः पुनः।
तृतीयस्य परित्यागस्त्रयाणां [redacted] ततः परम् ॥७२३॥
सद्वंशजानां सुस्पष्टं न्यग्भं नैच्यं च तत्कुले।
सुस्पष्टमेव पित्रादित्यागस्तत्र सुधर्मना ॥७२४॥
युष्मत्साम्यं तत्परं वै वंशजानां भविष्यति।
तावदेतांस्त्यक्तपितॄन् पश्यन्तः कृपया बत ॥७२५॥
युष्माभिर्न समाह्यन्ते पुत्रपौत्रादयस्त्रयः।
गोत्रप्रवररिक्थादिव्यवहारेषु वच्म्यपि ॥७२६॥
कृपया विप्रमात्रत्वस्वीकारेण सुदाप्युताः।
अङ्गीकृत्य च मामेयमेतद्वंशं च धर्मतः ॥७२७॥
समुद्धरत पाताद्य शरणं यागतोऽस्म्यहम्।
इत्युक्तास्तेऽपि सर्वे वै तथा कुर्युस्तदम्भसा ॥७२८॥
ओमित्येवेति तत्राग्नौ व्याहृतीश्चहुनेच्छतम्।
ततो मौञ्जीं प्रकुर्वीत तत्पुत्रस्तदनन्तरम् ॥७२९॥
न तैस्समो भवेत्तावद्गोत्रा रिक्थक्रियादिषु।
यावत्तु क्रमसापिण्ड्यसिद्धिः स्यात्तावदेव हि ॥७३०॥
स्वगोत्रागतपुत्रस्य तादृशस्य पितुर्मृतौ।
आशौचं त्रिदिनं प्रोक्तमेवं मातुश्च तत्समम् ॥७३१॥
दर्शादिदेवताश्चापि पितामहमुखास्त्रयः।
नोच्चार्यश्च पिता तेषु श्राद्धमात्रं त्रिपूर्वकम् ॥७३२॥

सर्वस्वहरणं कृत्वा तयोः पूर्वं निबन्धनाम् ।
भाण्डन्यरहितो कृत्वा देशात्तस्मात्प्रवासयेत् ॥७४४॥
परस्मै पुत्रदाने तु महते तादृशं पुनः ।
बाधकं शास्त्रतो ज्ञेयं पुत्रीदाने तु साधकम् ॥७४५॥
दौहित्रः कर्ता(?) तनयश्चापि सर्वशास्त्रसमौ मतौ ।
विभक्तेषु तु तद्भ्रातृसुतेषु किल तत्परम् ॥७४६॥
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य कर्ता दौहित्र उच्यते । ·
दौहित्रस्य तु कर्तृत्वं स(पुन) र्वै(स) पुत्रयोः ॥७४७॥
अभावे कथितं सद्भिः सुतस्त्वेते तु एव हि ।
तेषामभावे दौहित्रो भ्रातृपुत्रेषु सत्सु चेत् ॥७४८॥
अविभक्तेषु तैः सर्वैस्तत्सुखेनैव केवलम् ।
सर्वं कारयितव्यं स्यात्प्रेतकृत्यमशेषकम् ॥७४९॥
नायं तद्धनभागी स्याद्भ्रातयो धनभागिनः ।
यत्किंचित्तैः प्रीतिदत्तमस्य तद्भवति ध्रुवम् ॥७५०॥
न चेत्किमपि नास्त्येव विभक्तेषु तु तेषु वै ।
तद्धनं निखिलं चास्य धर्मतः प्रभवेद्ध्रुवम् ॥७५१॥
यत एवमिति प्रोक्ते पुत्राभावे तु चोदितः ।
प्रीत्यासन्नस्सपिण्डो यः कर्ता स इति निश्चयः ॥७५२॥
प्रीत्यासन्नस्सपिण्डत्वं दौहित्रस्येव मुख्यतः(मुच्यते) ।
इति तेषां सपिण्डानाममुख्यं तेन केवलम् ॥७५३॥
अङ्गादङ्गात्संभवति पुत्रवद् दुहिता यतः ।
तत्संभूतस्तु दौहित्रो भ्रातृपुत्रादयस्तथा ॥७५४॥

[illegible] ।
[illegible] ॥७६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८६॥

योजयेत्तु भवेन्नैव नात्र कार्या विचारणा।
हविः स्वीकरणान्तो वै यागस्सर्वाङ्गसंयुतः ॥७६६॥
एकं हविर्नान्यकार्यहेतवे प्रभवेत्किल।
स्थालीपाकादिषु कृतं हविस्तत्त्वन्नभोजने ॥७६७॥
प्रभूतसर्पिषान्यस्य कार्यस्य न भवेद्धो।
मधुपर्कादिषु कृतं यद्धविस्तत्तथैव हि ॥७६८॥
अन्यकार्याय न भवेच्छ्राद्धकर्मणि चेद्धविः।
औपासनाग्नौ तत्पूर्वं कर्तव्यं मुख्यतो न चेत् ॥७६९॥
लौकिकाग्नौ सर्वजनसौलभ्यायैव केवलम्।
औपासनकृतं चान्नमुद्धिशादाज्ञया कृतम् ॥७७०॥
तन्मे(।)क्षणेनोद्धृतं च होतव्यमधिकोष्णवः।
यावत्तु प्राशनं तेषां तावदुष्णं भवेत्तराम् ॥७७१॥
ततः परं च पिण्डेषु गतोष्णेषु नमो मनुः।
नमस्काराय कथितस्तस्मात्पैतृककर्म यत् ॥७७२॥
अत्यन्तोष्णेन निर्वर्त्यं तस्य प्राशनकर्मणि।
प्रोक्षणं सेचनं चापि यजमानस्य मुख्यतः ॥७७३॥
कर्तृणां गौणतः प्रोक्तं कुमारस्य तु भोजने।
गुरोरेव हि कर्तृत्वं भुक्तेस्सूनोर्मतं तराम् ॥७७४॥
सेचनं प्रोक्षणे नष्टो प्राशौदनिककर्मणि।
हविर्भक्षणमात्रेषु सर्वत्रैवं विधीयते ॥७७५॥
एवमाग्रयणस्मार्तवण्डुलानां तथा पुनः।
हविषश्चापि तत्प्रोक्तं नतैः कर्मान्तरं चरेत् ॥७७६॥

[illegible] ।
[illegible] ॥८७७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८७८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८७९॥
[illegible]
[illegible] ॥८८०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८८१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८८२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८८३॥
[illegible] ।
एवमेव तु [illegible] ॥८८४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८८५॥
[illegible] ।
[illegible] तथा ॥८८६॥
[illegible] ।
[illegible] देवमानवसन्निधौ ॥८८७॥

श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नेन श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
देवपूजां प्रकुर्वीत वैश्वदेवं ततः परम् ॥७८
वैदिकोऽयं विधिःप्रोक्तः कर्मान्ते ब्रह्मयज्ञकम्।
प्रभुब्रह्मपरो यस्तु शाखामात्रेऽतिपावने ॥७८९॥
शाखाध्यायी महाभागः पङ्क्तिपावनपावनः।
शाखामात्रैकदेशस्याध्ययनाच्छ्रोत्रियत्वकम् ॥७९०
न प्राप्नोत्येव विधिना शाखाध्यायी ततो भवेत्।
नित्यस्नानस्सदाचारः सदाबद्धिः सदाशुचिः ॥७९१
सदातुष्टस्सदाशान्तः सदासूयाविवर्जितः।
अग्निहोत्राद्यभावेऽपि वेदवेदिविवर्जितः ॥७९२॥
ब्रह्ममेधक्रियाशुद्धः पूर्वतुल्यो भवत्यपि।
इत्येतदुक्तं कण्वेन मुनिना धर्मगुत्तमम्।
शास्त्राणां प्रवरं शास्त्रं हिताय जगतां वराम् ॥७९३

॥ इति श्रीकण्वस्मृतिः समाप्ता ॥

शुभमस्तु

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* दाल्भ्यस्मृतिः *

[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] च ।
[illegible] च ॥ २ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्वफलमश्नुते ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं देवानां प्रतिपालनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥
इष्टापूर्तौ द्विजातीनां सामान्यौ धर्मसाधकौ ।
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ।
यावदस्थीनि गंगायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य च ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥
देवानां च पितॄणां च जले दद्याज्जलाञ्जलीन् ।
असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलाञ्जलीन्
केशकीटकशंबूकमस्थिकंटकमेव च ।
स्थलेषु च न दातव्यं कदाचिदशुचिर्भवेत्
वामहस्ते तिलान् स्थाप्य यस्तु तर्पयते पितॄन् ।
पितरस्तर्पितास्तेन रुधिरेण जलेन वा
एकादेव(मेव) ऋषीणां तु द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।
अर्हन्ति पितरस्त्रीन्स्त्रीन्स्त्रियश्चैकैकमंजलिम् ॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा सतिलं दक्षिणामुखः
त्रींस्त्रीनपोऽञ्जलीन् दद्यादुच्चैरुच्चतरं द्विजः
जले चैव जलं देयं पितॄणां जलकाङ्क्षिणाम् ।
ततःस्थलेषु दातव्यं पितॄणां नोपतिष्ठति
नोदकेषु च पात्रेषु नाशुद्धो नैकपाणिना ।
नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ।
मुच्यते प्रेतलोकाच्च स्वर्गलोकं स गच्छति

सद्यस्त्वहन्यहनि पूजा यदा कोऽपि मृतो व्रजेत्।
यजेत वा आद्यश्राद्धं च वा पृथक्पृथगेव ॥२०॥
अथर्द्धितो यस्तु वर्जन्तु तं पृथक् च पाण्डुरः।
दैवेन: स्मृतिविधानात्सर्वं न नाशो नृप इष्यते ॥२१॥
मृताहेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा।
नवमैकादशे श्राद्धं नवश्राद्धमनुष्यते ॥२२॥
नवश्राद्धं त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकादिकं।
पतन्ति पितरस्तस्य यो न कुर्यात्पापकृद् द्विजः ॥२३॥
मासिकानि यथा द्वादशाद्याब्दं षण्मासिके।
ऊनषाण्मासिको नाऽऽद्ये श्राद्धं संख्यातु षोडश ॥२४॥
मृतेऽह्नि [redacted] कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि ॥२५॥
पादैतानि [redacted] कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश।
त्रिशद्वर्षं स्थिरं ज्ञात्वा वर्षैः श्राद्धशतैरपि ॥२६॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते।
तत्र तत्र त्रयं कुर्याद्वर्जयित्वा क्षयेऽहनि ॥२७॥
एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते तु यः।
अकृतं तद्विजानीयात्स मातृपितृघातकः ॥२८॥
नित्यं नैमित्तिकं कार्यं नित्यं [redacted] परिलंघयेत्।
आदौ नैमित्तिकं कुर्यात्पश्चान्नित्यं समाचरेत् ॥२९॥
अमायां तु क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा यदि।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥३०॥

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
एकादशदिने पूर्णे पार्वणं च विधीयते ॥३१॥
यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम्।
प्रतिमासं तथा तस्य प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३
तस्याप्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः।
नित्यत्वात् कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥३
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते।
मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः ॥३
पितामह्या सहैतस्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम्।
पतिर्नैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियः ॥३
सा मृतापि हि पत्यैक्यं मांसमज्जास्थिभिः सह।
मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत् पुत्रिकासुतः ॥३
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः।
अथ येन्मन्त्रविध्युक्त. शारीरैः पङ्क्तिदूषकैः ॥३
अदुष्यं(ष्य?) तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः।
अग्नौ करणशेषं तु पितृपात्रेषु वापयेत् ॥३
पितृपात्रं पितृणां च न दद्यात्पूर्वेऽपरेऽथिके।
मृन्मयेषु (ष्व) च पात्रेषु श्राद्धे भोजयते पितॄन् ॥३
दातुश्च नोपतिष्ठेत भोक्ता च नरकं व्रजेत्।
हस्तदत्तं तु यत् स्नेहलवणव्यंजनादिकम् ॥४
दातुश्च नोपतिष्ठेत भोक्ता भुंजीत किल्बिषम्।
गण्डूषकरणात् पूर्वं हस्तं प्रक्षालयेद्द्विजः ॥४

एवं दैवं च पित्र्यं [redacted] अन्नाद्यं चोपचारकैः।
द्विजः पिबति गण्डूषं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥४२॥
एवं दैवं [redacted] पित्र्यं च अन्नाद्यं चोपचारकैः।
अयं पिबति गण्डूषान् गच्छति भूमिषु ॥४३॥
कांक्षन्ति पितरः सर्वे ये चान्ये भूमिदेवताः।
दन्तधावनदत्तं धूपं श्राद्धं च नैवेद्यमर्पति ॥४४॥
एवं दैवं च पित्र्यं च अन्नाद्यं चोपचारकैः।
पश्चिमदिग्भिमुखस्तत्र निक्षिपेद्भूमिमण्डले ॥४५॥
अधिपंक्तिभोजने विप्रो भुञ्जन्यो न पिबति।
पिता च पिबते यत्र जीवेन च पितामहः ॥४६॥
तौ पिण्डपितृनामानौ ... प्रपितामहे।
पितृणां शान्ति पूर्णाया पिता च यमने यदि ॥४७॥
अखिलं चोपचारश्च पुनः श्राद्धं परेऽहनि।
अनुपानं वहिः पानि दूरान्तं तर्पणं चरिष्य ॥४८॥
दत्त्वा पञ्चौदनं कुर्याच्छ्राद्धपाकी प्रजायते।
नानीतं पितरः पात्रे कुर्वन्तो गच्छन्ति यदि ॥४९॥
दृष्ट्वे दहते चैव निराशाः पितरो गताः।
पर्वतीकुसुमं चैव केतकीकरवीरकम् ॥५०॥
यावौ दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः।
कुष्मी शतपत्राणि भृङ्गराजस्तथैव च ॥५१॥
मालतं मोगरं चैव पितृणां दत्तमक्षयम्।
कुष्ठिधाराणकाञ्चयो मसूरा यावनालकाः ॥५२॥

त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते।
एकादशाहिने पूर्णे पार्वणं तु विधीयते ॥३१॥
यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम्।
प्रतिमासं तथा तस्य प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३२॥
तस्यात्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः।
नित्यत्वात् कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥३३॥
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते।
मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत्सुतैः ॥३४॥
पितामह्या सहैतस्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम्।
पतिनैकेन कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियः ॥३५॥
सा मृतापि हि पत्यैक्यं मासमज्जास्थिभिः सह।
मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत् पुत्रिकासुतः ॥३६॥
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः।
अथ चेन्मन्त्रविद् युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषकैः ॥३७॥
अदुष्यं(दू?) तं यमः प्राह पङ्क्तिपावन एव सः।
अग्नौ करणशेषं तु पितृपात्रेषु दापयेत् ॥३८॥
पितृपात्रं पितॄणां च न दद्याद्वैश्वदेविके।
मृन्मयेषु (ण्म) च पात्रेषु श्राद्धे भोजयते पितॄन् ॥३९॥
दातुश्च नोपतिष्ठेत भोक्ता च नरकं व्रजेत्।
हस्तदत्तं तु यत् स्नेहलवणव्यंजनादिकम् ॥४०॥
दातुश्च नोपतिष्ठेत भोक्ता भुंजीत किल्बिषम्।
गण्डूषकरणात् पूर्वं हस्तं प्रक्षालयेद्द्विजः ॥४१॥

च विप्रं च ब्राह्मणं चोपपातकैः ।
र्वति गच्छन्ति ब्राह्मणो ब्रह्मसूत्रकः ॥४२॥
च विप्रं च ब्राह्मणं चोपपातकैः ।
रति गच्छन्ति त्यजन्ति भूमिषु ॥४३॥
पितरः सर्वे ये श्राद्धे भूमिदेवताः ।
इदं पूतं श्राद्धं न संप्रयान्ति ॥४४॥
च विप्रं च ब्राह्मणं चोपपातकैः ।
मनुष्याय निषिद्धं भूमिसम्भवे ॥४५॥
राजने विप्रो भुञ्जानो न विशति ।
न प्रियते यावत् जीवेत च पितामहः ॥४६॥
कृष्णाविकलानामादिकल्पितम् प्रपितामहे ।
पांसि पूर्णानि पिता च यमते यदि ॥४७॥
चोपपातकम् पुनः श्राद्धं परेऽहनि ।
नं यहिः पाणि हुंकारं गर्जनं बलिम् ॥४८॥
तीदनं कुर्याच्छ्राद्धपाको प्रजायते ।
पितरः पात्रे कुर्वतो गच्छन्ति यदि ॥४९॥
यद्दृष्टे चैव निराशाः पितरो गताः ।
कुसुमं चैव कल्कीकरवीरकम् ॥५०॥
दर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः ।
शतपत्राणि भृंगराजस्तथैव च ॥५१॥
मोगरं चैव पितृणां दृष्टमक्षयम् ।
नारायणकाण्डकर्यो मयूरा याश नालकाः ॥५२॥

निः पावा राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं पतत्यधः ।
श्राद्धे वै मृन्मयं(मृण्मयं)पात्रं मृत्तिकायाश्च लेपनम् ॥५३॥
साज्यं धूपं घृतं चैव निराशाः पितरो गताः ।
क्षारस्य तु यल्लवणमुच्छिष्टस्य तु यद्घृतम् ॥५४॥
मुखेन धमितं भुंक्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।
अंगुल्या दन्तधावेन प्रत्यक्षलवणेन च ॥५५॥
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ।
श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुञ्जीत लोलुपः ॥५६॥
पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।
श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो नैव भुंक्ते कदाचन ॥५७॥
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा ।
पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ॥५८॥
दानं प्रतिग्रहो होमः श्राद्धभुगष्ट वर्जयेत् ।
श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा च भोजयित्वाभिगम्य च ॥५९॥
व्यवायी रेतसो गर्ते मज्जयत्यात्मनः पितॄन् ।
दैवपूर्वं भवेच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ॥६०॥
ब्रह्मचारी भवेद्भुक्त्वा भुक्त्वा श्राद्धं च नैत्तिकम् ।
पितृपात्रं समुत्सृष्ट्वा(ज्य)पिण्डांस्तत्र प्रदापयेत् ॥६१॥
अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषास्तथा ।
तेषां श्राद्धं तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं (?) पार्वणम् ॥६२॥
मृतकालदिनं श्राद्धं प्रमादाद्गलितं तथा ।
दिनाद्द्वादशाहे वा कुर्यात् तन्मासपर्वणि ॥६३॥

समत्वमागतस्यापि पितुः श्राद्धगतस्य च।
एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ॥७५॥
महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि।
कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि ॥७६॥
एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।
आवाहनाग्नौ करणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥७७॥
संकल्पं तु यदा कुर्यान्न कुर्यात्पात्रपूरणम्।
नावाहनाग्नौ करणं पिण्डांश्चैव न दापयेत् ॥७८॥
विवाहव्रतबन्धोर्ध्वं वर्षमर्धार्धमेव वा।
पिण्डान्सपिण्डान् नो दद्यात् न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥७९॥
नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्जितं।
आमश्राद्धं तु नैव स्याच्छूद्रः कुर्यात्सदैव हि ॥८०॥
अपत्नीकः प्रवासी च यस्य भार्या रजस्वला।
आमश्राद्धो द्विजः कुर्याच्छूद्रः कुर्यात्सदैव हि ॥८१॥
या संख्या पक्वपाकस्य शुष्कं तद्द्विगुणं भवेत्।
चतुर्गुणं हिरण्यं तु श्राद्धकर्मणि संस्थितम् ॥८२॥
मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥८३॥
दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुक् द्विजः।
ततः सन्ध्यामुपासीत होमं चैव यथाविधि ॥८४॥
चान्द्रायणं नवश्राद्धे पाराको(?) मासिके मतः।
पक्षत्रयेऽति कृच्छ्रं स्यात् षण्मासे कृच्छ्र एव तु ॥८५॥

चण्डालोदकसंस्पर्शे स्नात्वा विप्रो विशुध्यति।
तेनैवोच्छिष्टसंस्पर्शे त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥९७॥
अज्ञानतः स्नानमात्रमन्येभ्योऽपि विशेषतः।
अत ऊर्ध्वं न दोषः स्यान्मदिरास्पर्शने तथा ॥९८॥
अस्थिभेदं गवां कृत्वा लांगूलशफछेदनम्।
पातनं चैव शृङ्गाणां मासार्धं यावकं पिबेत् ॥९९॥
यवसस्तावदुद्वव्यो यावद्रोहति तद्व्रणः।
तद्व्रणां दक्षिणां दद्यात्ततः पापात्प्रमुच्यते ॥१००॥
हले वा शकटे चैव दुर्बलं यो नियोजयेत्।
प्रत्यवाये समुत्पन्ने ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥१०१॥
प्रयत्नाद्वापि कूपेषु वृक्षच्छेद निपातने।
गवाशनं कृन्तयित्वा ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥१०२॥
अविवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन तु।
नदीपर्वतसंरोधे पादोनं व्रतमाचरेत् ॥१०३॥
एका चेद्बहुभिः कैश्चिद्दैवाद्व्यापादिता यदि।
पादं पादं च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥१०४॥
एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्।
योजने च त्रयः पादाः चरेत्सर्वं निपातने ॥१०५॥
रोम्णां तु प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुवापनम्।
पाददाने शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥१०६॥
एकवर्षं दद्याद् द्विपादे कांस्यभाजनम्।
च गां दद्यान्मिथुनं च निपातने ॥१०७॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्निशाः पुंसि पञ्चमे।
षष्ठे चतुरहं प्रोक्तं सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥११९॥
एकादशाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥१२०॥
मन्त्रकर्मपरिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः।
नामधारकविप्राणां दशाहं सूतकं भवेत् ॥१२१॥
संपर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन संपर्कं नैव कारयेत् ॥१२२॥
आद्यावारभ्य आशौचं संयोगो यस्य नाग्निषु।
आद्याधान्ते च विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥१२३॥
शावसूतकमुत्पन्नं पश्चाज्जातं न सूतकम्।
शावेन शुध्यते सूतिः सूत्या शावं न शुध्यति ॥१२४॥
जातं जातेन शुद्धं स्यान्मृतकं मृतकेन तु।
न जाते मृतशुद्धिः स्यान्न मृते जातकं तथा ॥१२५॥
मातुरग्रे प्रमीतिः स्यादशुद्धौ म्रियते पिता।
पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥१२६॥
स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाः शौचवर्जिताः।
पाते मातुर्दशाहः स्यात्सपिण्डानां दिनत्रयम् ॥१२७॥
आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः।
अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात् सूतकं तु यथोदितम् ॥१२८॥
शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं तथा।
रजस्वलायाः संस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥१२९॥

सगोत्रो वान्यगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत् ॥१४१॥
निर्दशे गुरुणाते च स्त्री चैवोर्ध्वंदिके।
ऊर्ध्वं त्रिरात्रमाशौचं दद्यादसकृतक्रियः ॥१४२॥
आत्रिमासात् त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणी स्मृता।
अहः संवत्सरादर्वाक् ततः स्नानं समाचरेत् ॥१४३॥
रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥१४४॥
उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः।
जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी ॥१४५॥
उषसः प्राग्रजः स्त्रीणां विज्ञेयं दिनपूर्वकम्।
अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते ॥१४६॥
रात्रिं कृत्वा त्रिभागां तु द्वौ भागौ पूर्व एव तु।
उत्तरं तु परं ज्ञेयं युज्यते रुधिरःस्मृतः ॥१४७॥
रजस्वला यदि स्नाता पुनरेव रजस्वला।
एकादशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते ॥१४८॥
रजस्वलायां प्रेतायां संस्कारादीनि नाचरेत्।
ऊर्ध्वं त्रिरात्रतः स्नातां शवधर्मेण दाहयेत् ॥१४९॥
या मृता सूतकी नारी या मृता च रजस्वला।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शवधर्मेण दाहयेत् ॥१५०॥
अन्तरिक्षे मृता ये वाऽप्यग्नौ चाप्सु प्रमादतः।
उदक्यां सूतिकां नारीं चरेच्चान्द्रायणत्रयम् ॥१५१॥

संग्रामे अट्टमार्गे च यात्रादेवगृहेषु च।
महोत्साहे महोत्पाते स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुःष्यति ॥
दिवा(?)कपिच्छ(त्थ)च्छायायां रात्रौ दधिशमीषु ॥
धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा ॥
शूर्पवातो नखाद्बिन्दुः केशवस्त्रघटोदकम्।
मार्जनीरेणुसहितं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥१
यत्र यत्र च संकीर्णं पश्येदात्मनमात्मना।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वर्तनं यथा ॥१
इदं दाल्भ्यकृतं शास्त्रं श्रावयिष्यति यो द्विजान्।
सर्वपापविशुद्धात्मा पुण्यलोकमवाप्नुयात् ॥१

॥ इति श्रीदाल्भ्यप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥

॥ शुभम्भूयात् ॥

मन्त्राभावे व्याहृतयः

मन्त्राभावे तु सर्वत्र स्मृता व्याहृतयः किल ॥७॥
अन्यये लिङ्गतोऽप्यांद्वा विरोधाभावतः परे।
तत्तन्मन्त्राः संभवन्ति तेषु तेषु च कर्मसु ॥८॥
प्रायश्चित्तं दृश्यते न यत्र कुत्रापि तत्र वै।
तस्यैतत्कथितं दिव्यं प्रायश्चित्तं महत्तरम् ॥९॥
पुण्या व्याहृतयश्चेति सा श्रुत्या वैष्णवी शिवा।
सर्वपापप्रशमनी चिन्तितार्थप्रदायिनी ॥१०॥
प्रायश्चित्तक्रियाहेतोर्निर्णीता विष्णुना पुरा।
न व्याहृतिसमो मन्त्रो न व्याहृतिसमो जपः ॥११॥
न व्याहृतिसमस्तीर्थो न व्याहृतिसमं तपः।
न व्याहृतिसमो यज्ञो न व्याहृतिसमाः क्रियाः ॥१२॥
तस्मात्सर्वत्र ता दृष्टाः प्रायश्चित्ताय केवलम्।
तस्माद्वैदिककृत्यानां लौकिकानामशेषतः ॥१३॥
प्रमादाकरणे कृत्स्ने तत्त्यागे बुद्धिपूर्वके।
अज्ञानिनां ज्ञानिनां च पावकास्तारकाः पराः ॥१४॥
उत्तारका व्याहृतयो ऋचा युक्तास्तथा पुनः।

जातकर्माद्यतिक्रमे

कर्मणोऽकरणे जातनाम्नोर्व्याहृतयः स्मृताः ॥१५॥
दिनैकसाध्याः कथितास्तथा नामाख्यकर्मणः।
तथान्नप्राशनस्यापि चौलस्याकरणे ततः ॥१६॥

पाकारम्भात्पूर्वं तद्वीथ्यां मृतिसंभवे

पाकारम्भस्य पूर्वं तत्प्रभवेच्छ्राद्धवारकम् ॥२६

शवं वीथ्यां निपतितं पाकारम्भात्परं तु न।
उपक्रान्तस्य तस्यास्य सूतकं यदि मध्यतः ॥२७
अभ्यागतं तेन सद्धि वारितं न भविष्यति।
तस्माच्छ्राद्धमुपक्रान्तं सूतकेऽपि तथाऽऽचरेत् ॥२८
आतर्पणं विधानेन पाकस्यारम्भतोऽखिलम्।

दर्शपूर्णमासेष्टिपशुबन्धानन्तरं श्राद्धम्

सर्वेषां व्रतकृत्यानां वारकं श्राद्धमेककम् ॥२९
तस्यापि वारको यागः पौर्णमासश्च दार्शिकः।
पौर्णमासं च दर्शं च पशुबन्धं च तद्दिने ॥३०
समागतं समाप्याऽऽदौ पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेत्।
पितृक्रियादिनप्राप्तयागानुष्ठानतोऽखिलाः ॥३१॥
वसवश्चापि रुद्राश्चाप्यादित्याश्चैव कृत्स्नशः।
तद्रूपाः पितरः सर्वे सर्वे चापि पितामहाः ॥३२॥
नित्यतृप्ता भवेयुर्वै निखिलाः प्रपितामहाः।
दीक्षाप्राप्त्या तु भूयिष्ठा तृप्तिस्तेषां भविष्यति ॥३३॥

महादीक्षाभ्यागतश्राद्धम्

प्रत्यब्दमासस्तन्मासदीक्षा या न भविष्यति।
प्रत्यब्दमपि पित्रोस्तन्न पितृकार्यिकं मतम् ॥३४॥
महादीक्षाभ्यागतं गतमेव भविष्यति।
महादीक्षागतस्यास्य तदन्ते करणं ननु ॥३५॥

सूत्याशौचस्यास्पृश्यत्वम्

सूत्याशौचे मृताशौचे वैदिकं कर्म नाचरेत्।
अस्पृश्यत्वं न सूत्यां स्यादाशौचे तु भवेद्धि तत् ॥४५॥
उभयोर्भोजनं कुर्यान्महागुरुनिपातने।
अहोरात्रं भुक्तिहीन्यं सर्वेषामपि तन्मतम् ॥४६॥
अकालभुक्तिराशौचे सूत्याशौचे न तन्मतम्।
संध्यामात्रं प्रकुर्वीत तयोर्मानसमन्त्रतः ॥४७॥
एकद्वित्रिचतुर्नारीनष्टाशौचस्य चेत्पुनः।
आशौचे वर्तमानस्य संघाताशौचिनस्ततः ॥४८॥
साक्षादन्नस्य भुक्तिर्न संध्या सा स्याज्जले क्रिया।

संततशौचसंभवे

शातशाविगतमामवासिनः संततापिनः ॥४९॥
सूतकान्ते पुनःप्राप्तसूतकस्य निरन्तरम्।
अब्दं दृष्ट्वा ततो यत्रास्यकस्या तं माममादरात् ॥५०॥
सद्यो देशान्तरे पित्रोः श्राद्धं कार्यमिति स्थितिः।
यदा परंपरागोऽस्य (पश्य) जायते श्राद्धघातकः ॥५१॥
मदा संवत्सरं दृष्ट्वा सद्यो देशान्तरं व्रजेत्।
यदि पित्रो न जायेत आशस्याथ तथा तदा ॥५२॥
श्राद्धं तत्रैव कुर्वीत धृतयज्ञोपवीतवान्।
एवैव समाक्रान्तः सूतकत्रयतो यदि ॥५३॥
आशौचेन वा पश्चाद्यम्यूयं विभूषयन्।
विहीनः स्यादनर्हः सर्वकर्मसु ॥५४॥

एवं वर्षाष्टकेऽतीते वार्धीयीकाश्रमं व्रजेत्।
शिखासूत्रं च तद्युग्मं ब्राह्मणत्वस्य मूलके ॥६४॥

यया कया च विधया शिखां सूत्रं च बिभृयात्।
शिखाच्छेदो पञ्चवारं यदि जायेत शत्रुभिः ॥६५॥
ब्राह्मण्यं तस्य नष्टं स्यात् पुनःसंस्कारतोऽपि तत्।

श्राद्धविघ्ने स्त्रीसंगे

श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने सन्ततं सूतकादिना ॥६६॥
अकृत्वैव तदा श्राद्धं नोपेयाच्च स्त्रियं तदाम्।
तदा यद्याहितो गर्भो ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥६७॥
तदा सकृत्सन्निपाते प्राजापत्यत्रयं चरेत्।
असकृद्गमनाच्चापाप्रयानं च समाचरेत् ॥६८॥

तस्योपनयनं भूयश्चोदितं ब्रह्मवादिभिः।
प्रविष्टपरकायो यः स्वभार्यां तेन वर्ष्मणा ॥६९॥
नोपेयात्तत्प्रविष्टः सन्नोपेयात्तस्य तामपि।
तादृशं कर्म कुर्याच्चेत्तत्कुलं स्वकुलं च ते ॥७०॥

आत्मानं पातयेद्घोरे नरके रौरवाभिधे।
नष्टे त्रिश्रावके श्राद्धे पूर्वस्मिन् हविषि क्वचित् ॥७१॥
तदा पुनस्तत्संपाद्य हुत्वा प्राणादिभिश्चरुम्।
द्वात्रिंशदाहुतेः पश्चात्तच्छेषेण समापनम् ॥७२॥

यत्तत्त्रिश्रावकं श्राद्धं तस्यागूर्च समापनम्।
अपराह्णे च मध्याह्ने सद्यः पक्वं भवेद्धि वै ॥७३॥

अपावृत्ते तृतीये च दिवसेऽथ चतुर्थके।
अह्नि द्वितीययामे वै शतकुम्भैरमन्त्रितैः ॥८४॥
अभिषेकं कारयित्वा शेषं कर्म समाचरेत्।

औपासने त्वनारब्धे द्वितीयेऽह्नि चेत्

औपासने त्वनारब्धे द्वितीयदिवसे यदि ॥८५॥
रजस्वला तदा तस्यै हविष्मन्मन्त्रसेचनात्।
परं वस्त्रद्वयं दत्वा तूष्णीकं मन्त्रवर्जनात् ॥८६॥
ताभ्यामाच्छाद्य तत्पश्चात्सहस्रैरुदकुम्भकैः।
चतुर्थदिवसे कुर्यादभिषेकं समन्त्रकैः ॥८७॥
पञ्चगव्यतिलैः श्वेतैः सर्षपैः सर्वधान्यकैः।
व्याहृत्या चैव गायत्र्या हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥८८॥
अष्टोत्तरसहस्रं चेत्सर्वदोषहरं परम्।
आयुष्यसूक्तं हुत्वाथ चरुणा लाजतोऽपि वा ॥८९॥
होमशेषं समाप्याथ कर्मशेषं समापयेत्।
पश्चाच्छुद्धिमवाप्नोति कर्मणस्तस्य केवलम् ॥९०॥
तत्पञ्चमेऽथ दिवसे त्वौपासनपरिग्रहः।
तथाथ संगमो मासाद्गर्भाधानविधानतः ॥९१॥
तद्गृहक्षेत्रमनसां परस्परविरोधतः।
निरुद्धप्रेतकृत्यानां सूतकं तत्समापनात् ॥९२॥
निरुद्धप्रेतकृत्या ये तद्द्रव्यहरणेच्छया।
तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥९३॥

अब्दानि मरणकालेषु कुर्यात्तत्र न सूतकी।
भवेद्वैव यदा सर्वा गते तस्मिन् पुनस्तथा ॥१०३॥

जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञादिश्राद्धम्

अपि जीवत्पिता पिण्डपितृयज्ञं समाचरेत्।
मासि श्राद्धं तथा होमान्दष्टका पितृयज्ञवः ॥१०४॥
पितुर्वियोगात्परतः पिण्डदानं समाचरेत्।
तेनायं श्राद्धकर्ता स्यान्न मातुः पिण्डदानतः ॥१०५॥
जीवे पितरि चेच्छ्राद्धे प्राप्ते नैमित्तिके यदि।
येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्तु तत्सुतः ॥१०६॥
एवं पितामहे जीवे येभ्यो दद्यात् स हि स्वयम्।
तेभ्यो दद्यात्तु तत्पौत्रस्तथा स्यात्प्रपितामहे(हान्) ॥१०७॥

पितरि संन्यस्ते पातित्यादिदूषिते तत्पित्रादिश्राद्धम्

संन्यस्ते पतिते ताते भ्रान्तचित्ते चलात्मनि।
तत्कर्तृकाणि श्राद्धानि स्वयं पुत्रः समाचरेत् ॥१०८॥
तत्तत्कालेषु विधिवच्छ्राद्धकर्ता न तेन सः।
तेषामकरणात्सोऽयं सद्यश्चण्डालतां व्रजेत् ॥१०९॥
श्राद्धाधिकारी पिण्डस्य दानमात्रेण जायते।
ऋत्विक्त्वेन वृते तस्मिन् न तु कर्ता भवेदयम् ॥११०॥
पितुः पिण्डप्रदानेन श्राद्धकर्ता भवेदयम्।
श्राद्धाधिकारसिध्यर्थं कुर्यादेकादशेऽहनि ॥१११॥
पार्वणं तद्विधानेन पितुः सिद्धेरनन्तरम्।
कर्मन्दी ब्रह्मभूतस्य यदा तस्मिन्नियोजयेत् ॥११२॥

अतस्मिन् तत्त्वमारोप्य संस्कुर्याद्यदि कामतः।
निष्फलं याति तत्कर्म सोऽपि पातित्यमाप्नुयात् ॥१२३॥
पितृत्वं जनितर्यैव मुख्यतोऽन्यत्र गौणतः।
तत्पुरस्कृत्य चेत्कर्म कृतमन्यैः पुनः क्रिया ॥१२४॥
विहितेनैव पुत्रत्वं स्वीकारेण न चान्यतः।
समवाप्नोति बन्धूनां राजविद्वदनुज्ञया ॥१२५॥
भ्रातृजः कृतदारः कृतक्रियोऽपि।
भ्रातृजो वाक्यतः पित्रोर्ज्येष्ठयकानिष्ठयवर्जितः।
पुत्रत्वं समवाप्नोति कृतदारः कृतक्रियः ॥१२६॥
सोऽप्येकश्चेदवाप्नोति नोभयोस्तु तथा विधिः।
जनितुर्मुख्यसूनुः स्यादन्यस्य गुणतः सुतः ॥१२७॥
मातुलत्वपितृव्यत्वसुतत्वाद्यनुबन्धकम्।
मुख्यतो यस्य यद्वा स्यात्तदुद्दिश्यैव तत्क्रिया ॥१२८॥
मुख्यानुबन्धनं त्यक्त्वा यः कर्म कुर्यात्प्रमादतः।
पितृव्यादिकमुद्दिश्य पुनः कुर्यात्तु तां क्रियाम् ॥१२९॥
गोत्रनामानुबन्धव्यत्यासे
गोत्रनामानुबन्धानां व्यत्यासेनाप्यनेहसः।
यदि कुर्यात्क्रियां तां वै पुनः कुर्याद्यथाविधि ॥१३०॥
उपनीतस्तु चेदुपनेतृत्वेनैव तत्क्रिया।
विद्यादत्वेन दातुर्भक्तदत्वेन तत्प्रदे ॥१३१॥
भयपत्वेन भयपे पितृव्यत्वेन तादृशे।
तत्तदुच्चारणं कृत्वा तत्तत्कर्म समाचरेत् ॥१३२॥

प्रेतसंस्काराभावे

अकृत्वा प्रेतसंस्कारं यो भुङ्क्ते कामकारतः।
स प्रेतकृत्यपापौघं तस्माद्भवेऽखिलम् ॥१४२॥
तद्दोषशमनायाथ चापामे स्नानमाचरेत्।
मासमात्रं प्रयत्नेन न चेतुकार्यं समाचरेत् ॥१४३॥

विप्रानुज्ञया यतिकृत्यम्

विप्राभ्यनुज्ञया कुर्यात् कर्ममात्रं विशेषतः।
पितृकृत्यं प्रेतकृत्यं तयोर्नो चेयतैरपि ॥१४४॥
विप्रानुज्ञो यतिरपि कृत्वा स्नात्वार्द्रवस्त्रः।
प्रेतकृत्यं प्रकुर्वीत न चेत् कृत्यं तु तत्र तु ॥१४५॥
अपि शास्त्रकृतं कर्म बहुविप्रामतं तु यत्।
तदभ्यनुज्ञया यत्तु कर्मतः पुनराचरेत् ॥१४६॥
बहुविप्रतिरस्कारमद्धेषागःप्रदूषितम्।
तदभ्यनुज्ञारहितं यत्तत्कर्म पुनश्चरेत् ॥१४७॥

कर्तरि सन्निहितेऽकर्तृकृतं पुनः

यदकर्तृकृतं कर्म समीपे कर्तरि स्थिते।
धनवृत्तिगृहक्षेत्रहेतवे तत्पुनश्चरेत् ॥१४८॥

असगोत्रसंस्कृतावाशौचम्

असगोत्रमपि प्रेतं दाहयेद्यः कथंचन।
स चापि गोत्रिभिस्तुल्यो दशाहं सूतकी भवेत् ॥१४९॥

अमेयैः संवृतो वेदः साक्षान्नारायणात्मकः।
तादृशास्यास्य वेदस्य पठनात् सर्वकिल्बिषैः ॥१४९॥
सद्य एव विमुक्तः स्यात् पातकी नात्र संशयः।

ब्राह्मणस्य वेदाधिकारः

तादृशास्यास्य वेदस्य पठने ब्राह्मणस्य वै ॥१५०॥
अधिकारो न चान्यस्य संस्कृतस्यैव कर्मभिः।
तत्रापि परिशुद्धस्य कृतनित्यक्रियस्य वै ॥१५१॥
तत्रापि परिशुद्धस्य विशेषेषु दिनेष्वपि।
शुद्धाच्छुद्धः स्वतो वेदस्तदुच्चारणतः क्षणात् ॥१५२॥
देषनामान्यनन्तानि निखिलान्यघहानि वै।
असकृत्पठितानि स्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥१५३॥
स्नानं कृत्वा प्रारभेत वेदं तं तादृशं शिवम्।

अस्नात्वारम्भे

यत्त्वस्नात्वैव मोहेन प्रारभेत् पातकी भवेत् ॥१५४॥
स्नानतः सर्वकर्माणि सिध्यन्त्येव न संशयः।

सर्वं स्नानमूलम्

स्नानमूलमिदं श्राद्धं स्नानमूलमिदं तपः ॥१५५॥
स्नानमूलाखिला यज्ञाः स्नानमूलमिदं जगत्।
सर्वकृत्येषु सर्वत्र स्नानमेव परं मतम् ॥१५६॥
कृत्स्नेष्वशुचिषु स्नानं तारकं परिकीर्तितम्।

अस्पृश्यस्पर्शनादिकर्माङ्गस्नानम्

अस्पृश्यस्पर्शने चैवमभक्ष्याणां च भक्षणे ॥१५७॥

रात्रौ वमने

रात्रौ तु वमने जाते रोगाद्यप्यक्षमान्वितः।
भोजनाद्यासम्पूर्णे पायसि स्नानमुच्यते ॥१७७॥
सर्वं प्रातरेव स्यादिति शाकलभाषितम्।

स्वगोत्रत्यागेऽन्यगोत्रपरिग्रहे

स्वीयगोत्रपरित्यागादन्यगोत्रपरिग्रहात् ॥१७८॥
प्रभवेत्पतितः सद्यः शुद्धः संस्कारतः पुनः।
स्वीयगोत्रपरित्यागो भिन्नगोत्रपरिग्रहः ॥
द्व्यनेकमकथितं त्रिय एव हि तुर्य तु।

अर्धोदयः

अर्कश्रुतिव्यतीपातयुक्ताऽमा पुष्यमाघयोः ॥१
असावर्धोदयो योगः कोटयर्कग्रहसंनिभः।
अस्मिन् स्नातो चापकोटौ कुर्यात्स्नानशतं यदि ॥
त्रिरात्रं त्यक्तपितृकर्मा शुद्धो भवेत्ततः।
महोदये तु तत्स्नानसहस्रं यदि भक्तितः ॥१८
कुर्याद्वा कारयेद्वापि शुद्धः पूर्वाघतो भवेत्।
अन्यथा निष्कृतिर्नास्ति तादृशस्यास्य पापिनः ॥१८
तं योगं सुसमीक्ष्यैव तस्मात्ताहक्तु किल्बिषी।

पत्यन्येन चितारोहितायाः पुत्रस्य कृत्यम्

यदि साध्वी प्रमादेन पत्यन्येन चितिं व्रजेत् ॥१८४॥
... तत्कर्मकरणं पश्चात्तज्जातजन्मनाम्।
... देवा बभूवुः किल वै चिरम् ॥१८५॥

दाता चाङ्गारशयननामकं प्रतिपद्यते ।

तस्य निष्कृतिः

तद्दोपशमनायाथ प्रायश्चित्तमिदं परम् ॥१९५॥
दाता सेतुगतः सद्यो धनुष्कोट्यां समाहितः ।
नित्यं त्रिषवणस्नायी यावकाहार एव वै ॥१९६॥

संवत्सरं प्रयत्नेन वसेद्देयान्वहं वराम् ।
स्वकृतं यच्च तत्पापं वदन्नित्यमटन् यतन् ॥१९७॥
सर्वेष्वपि च तीर्थेषु तप्तकृच्छ्रशतं चरेत् ।
ततः शुद्धो भवेदेवं वोढा चापि तदा पुनः ॥१९८॥

तद्दोपशमनायैव पुण्यं चान्द्रायणत्रयम् ।
यत्नात्कुर्वन् वसेत्तत्र ऋतुत्रयमतन्द्रितः ॥१९९॥
प्रतिनित्यं पञ्चगव्यं पिबंस्तद्विधिना हवन् ।
निर्लज्जया लोकगुरुः कूष्माण्डादीन् पठंस्तथा ॥२००॥

द्रुपदां नाम गायत्रीं गायत्रीं वेदमातरम् ।
संध्यात्रये सहस्राणि जपंस्तत्ताख्यकं शिवम् ॥२०१॥
कृच्छ्रं विधानतः कृत्वा पुनःसंस्कारतः पुनः ।
पुंसगर्भविधानेन शुद्धो भवति तत्र चेत् ॥२०२॥

■ चेत्सतशतं कुर्यात् पुनरुपनया (यना)त्परम् ।
सा चेद्दत्तं द्रव्यं त्यक्त्वा मेनुस्नानसहस्रकम् ॥२०३॥
कृत्वा च यावकाहारा वर्षमात्रेण शुध्यति ।
यद्यपुत्रा पुत्रिणी चेत् पतेद्देवाशु तैः सह ॥२०४॥

तत्त्वं तस्यास्तु विज्ञाय प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्।
यत्र यत्र च सा गत्वा यं यं वा स्वजनैः सह ॥२१४॥
मायया मोहयामास वञ्चयित्वाऽतिचर्यया।
तं तं ज्ञात्वा च संभाव्य तत्तद्वाङ्मूलमप्यलम् ॥२१५॥
श्रुत्वा पश्चाच्छ्रोत्रियेभ्यः श्रावयित्वाऽखिलं ततः।
राज्ञे बन्धुनि चावेद्य प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ॥२१६॥
एतादृशेषु कृत्येषु सा क्षेत्रं प्रभवेद्ध्रुवम्।
प्रथमोद्वाहकार्यैव परं त्वेषा परा न तु ॥२१७॥
कदाचिद्धर्मकृत्यानां न तस्यापि परस्य वा।

तदपेक्षया वेश्या विशिष्यते

सा भोगमात्रयोग्यापि वेश्या तस्या विशिष्यते ॥२१८॥
तथा चेत्तेषु कृत्येषु सपङ्क्तौ भोजनं तथा।
सह वा भोजनं दुष्टं यदि पातित्यकारकम् ॥२१९॥
तच्छुध्यर्थं रसायां [illegible] श्वभ्रे संज्ञाप्य धर्मतः।
त्वनित्या याममात्रं वा घटिकाद्वयमेव वा ॥२२०॥
तस्मादुद्धृत्य पश्चात्तु जातकादि समाचरेत्।
ततकृच्छ्रसहस्राणि धर्मतश्च समाचरेत् ॥२२१॥
नियतात्मा यायकाशी चापाम तद्वेन्दुधिः।
पञ्च स्नानसहस्राणि स्वयं विप्रमुखेन वा ॥२२२॥
स्वस्य शुद्धो भवति केवलम्।
परेषामयं योग्य एवमाह पुरा भृगुः ॥२२३॥

निर्गममन्योद्देशेन न देवाय निवेदयेत्।

निवेदितेनानिवेदितयोजने

निवेदितेन कथ्यर्थं योजयेन्नानिवेदितम् ॥२३३॥
तथा निवेदितं भूयो लवणं च नियोजयेत्।
निवेदनादथ पुनस्तद्द्वारा घृतेन वा ॥२३४॥
तैलेन लवणेनापि यत्नेन न नियोजयेत्।
तदुच्छिष्टं न कुर्वीत तत्करेण न पीडयेत ॥२३५॥
न खण्डयेन्मिथोऽज्ञानान्न तत्प्रोक्षणमाचरेत्।
परिषिञ्चेन्नैवमेव तूष्णीमास्ये विनिक्षिपेत् ॥२३६॥
गृह्णीयात्तु तदन्नं वै न दन्तैरपि पीडयेत्।
तदेतत्परमं शुद्धं निर्माल्यमतिदुर्लभम् ॥२३७॥
देवानामपि तद्भोज्यं प्रयत्नेनाविभक्तितः।
तदोपदंशं स्वीकुर्यान्निवेदितमहाक्षणे ॥२३८॥

भगवत्प्रसादग्रहणे भक्षणविषये

निवेदितस्य हविषो भक्षणे समुपस्थिते।
आपोशनं न कुर्वीत प्रोक्षणं परिषेचनम् ॥२३९॥
यदि कुर्वीत मोहेन रौरवं नरकं व्रजेत्।
अन्नं पकात् समुद्धृत्य पृथक्पात्रे नियुज्य च ॥२४०॥
कृत्वा सुखोष्णं संस्कृत्य पश्चाच्छाखादिभिर्यजेत्।

अत्युष्णादिनिवेदने

असह्योष्णं महोष्णं वा पकपात्रगमेव वा ॥२४१॥

अभ्यङ्गम्

अभ्यङ्गञ्च तथा स्नायाच्छरीरारोग्यहेतवे।
तत्स्नानं कथितं सद्भिर्न नित्यं तेन नाचरेत् ॥२५१॥
कर्म नैमित्तिकं तस्माद्देवानामपि नार्चनम्।
यावन्नित्यादिकर्मौघं निर्वर्त्यैव विधानतः ॥२५२॥
पश्चादभ्यञ्जनस्नानं न चेत्काले तु मध्यमे।
मध्याह्ने संगवे वापि स्नानं कृत्वा तु तादृशम् ॥२५३॥

माध्याह्निकस्नानम्

माध्यंदिनस्य कृत्यस्य पुनः स्नानं यथाविधि।
कृत्वा तत्प्रारभेत्कर्म तेनैतत्कर्म नाचरेत् ॥२५४॥
मलापकर्षणार्थाय तद्धि स्नानं प्रकीर्तितम्।

क्षुरस्नानम्

एवमेव क्षुरस्नानं कर्मायोग्यं प्रचक्षते ॥२५५॥
क्षुरस्नानात्परं यस्तु पुनः स्नानान्तरं विना।
करोति वैदिकं कर्म न तत्फलमवाप्नुयात् ॥२५६॥
भवेदपि प्रत्यवायी तथातो नाचरेद्बुधः।

प्रातःसायंपर्वादिष्वभ्यञ्जनस्नानम्

नाभ्यञ्जनं प्रकुर्वीत प्रातःसायं न पर्वसु ॥२५७॥
ग्रहणे श्राद्धकालेषु व्रतेषु निखिलेष्वपि।
पुण्यवैदिकदीक्षासु न नक्तं क्षेत्रतीर्थयोः ॥२५८॥
सुप्त्वा भुक्त्वा रुदित्वा वा दूरं गत्वा पिपासितः।
अतिक्षुधातुरो रोगी न कुर्वीत कथंचन ॥२५९॥

न संकल्पं विना कर्म नित्यकाम्यादिकं चरेत्।
स मानसः स्यात्संकल्पः कर्तव्यो वाचिकः परः ॥२६९॥
यश्च इत्येतद्वाक्येन तथा प्राह श्रुतिः शिवा।
देशः कालश्च संकल्पे वक्तव्यौ नञ्चेतुनः ॥२७०॥
तिथिः काल इति प्रोक्तो व्यत्यासे तस्य कर्म तत्।
नष्टमेव भवेत्सम्यक्तस्मात्तत्तु पुनश्चरेत् ॥२७१॥

पितृश्राद्धव्यत्यासे पुनश्चरेत्

एकस्मिन्नेव दिवसे पित्रोः श्राद्धमुपस्थितम्।
तत्क्रमेणैव कर्तव्यं व्यत्यासे तु पुनश्चरेत् ॥२७२॥
मोहादत्तद्दिनकृतश्राद्धं चापि पुनश्चरेत्।

शून्यतिथिकृतं पुनश्चरेत्

तथा शून्यतिथौ यत्नात्कृतं चापि पुनश्चरेत् ॥२७३॥
सूतकान्ते शून्यतिथिदोषोऽयं श्राद्धकर्मणः।
कदाचिन्न भवत्येव तस्मात्तत्रैव तच्चरेत् ॥२७४॥

पितृश्राद्धात्परं कारुण्यश्राद्धम्

पितुः श्राद्धात्परं श्राद्धं कारुण्यानां समाचरेत्।
तदन्यथाकृतं तच्चेत् परेद्युस्तत्पुनश्चरेत् ॥२७५॥
निमित्तग्रहणश्राद्धं कृत्वान्नेनापि तद्दिने।
भूयः सम्यक् प्रकुर्वीत भिस्सयैव न चान्यथा ॥२७६॥

मातृपितृश्राद्धमेकदिनेऽन्नेन

पित्रोर्मृताहं सततमपि कृच्छ्रगतो नरः।
अन्नेनैव प्रकुर्वीत मामाद्येन कदाचन ॥२७७॥

अधिकारप्रभेदेन भोजनस्य निरूपणम्।
यदेतत्तस्य सर्वस्य प्रवक्ष्यामि विनिर्णयम् ॥२८८॥
तत्कालाजीर्णराहित्ये द्वयं तन्निबोधत।
एवं स्थिते पुनर्वच्मि यामतः सार्धयामतः ॥२८९॥
जीर्णशक्तिमतो नुश्चेत्तत्काले क्षुद्भवेद्यदि।
न दोषः कथितः सद्भिः कदाचिद् यथायोगतः ॥२९०॥
अजीर्णः स्यात्तथा दोषः सुमहान् प्रभवेदपि।
तस्माद्यामद्वयं सर्वैर्भुक्तिस्त्याज्या विचक्षणैः ॥२९१॥

अत्यन्तातुरादीनाम्

विशेषः कोऽपि भूयश्च प्रोच्यते सुमहान् परः।
रोगिणोऽप्यतिमात्रस्य चौषधातिक्षुद्भतः ॥२९२॥
क्रूरमहातितप्तस्य पिशाचावेशिनस्तथा।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिभिः ॥२९३॥
पीडितस्य विशेषेण मूर्छितस्यातिताडनैः।
तत्कालभक्षणमपि न दुष्यति कदाचन ॥२९४॥
अत्युत्क्रान्तिप्रवृत्तस्य चिरत्यक्तान्धसस्तथा।
अप्राशनोत्पन्नमृतिसंशयस्य विशेषतः ॥२९५॥
तत्कालभक्षणावृत्तिर्न दोषाय भवेदयम्।
सर्वेषामपि वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥२९६॥
मुख्यो साधारणो धर्मस्तत्कालाजीर्णशून्यता।
यामत्रयादिकाः कालास्तत्र तत्र प्रचोदिताः ॥२९७॥

मौञ्ज्यन्तेनातिहर्षेण सर्वमत्या समन्वतः।
पुत्रो ज्ञातिमतां दत्तः कृतसर्वपितृक्रियः ॥२०७॥
यदि स्वयं तदा सर्वां तद्वृत्तिं लभते पराम्।
सर्वस्य प्रतिमन्त्रस्य पितृहेतुप्रपाटनात् ॥२०८॥
दत्तस्य तद्भूलाभः स्यात्तत्पूर्वं सा न सिध्यति।
हिरण्यकश्यामन्त्राणां पठनात्तत्स्वयं पुनः ॥२०९॥
प्रदूरीकृत्य तज्ज्ञातीनवशादेति चाखिलम्।
दत्तसूनुः पित्रान्येन संस्कृतो यदि तद्वृतः ॥२१०॥
तदा तु तद्धनं सर्वं ज्ञातिसाधारणं भवेत्।
स्वयमेव पितुर्दत्तः कर्म कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२११॥
तद्धनं तु न चेत्सद्यस्तज्ज्ञातिगतमेव वै।
दत्तोऽयमसगोत्रश्चेत्सदा दुर्बल एव वै ॥२१२॥
भवेदेव न संदेहः शास्त्रेऽमुत्र परत्र च।
यदि जामी तत्र भवेत्तन्मुखं नावलोकयेत् ॥२१३॥

अवश्यं पुत्रसंग्रहः कर्तव्यः

यथाकथंचित्पुत्रस्य संग्रहः कार्य एव वै।
दौर्बल्ये स्वस्य संजाते धर्मज्ञेन महात्मना ॥२१४॥
जलबुद्बुदसंकाशं वर्ष्मैतत्कथितं बुधैः।
न हि प्रमाणं जन्तूनामुत्तरक्षणजीवने ॥२१५॥
तस्मादात्महितं नित्यं चिन्तयन्नेव तच्चरेत्।

अपुत्रस्य लोको नास्ति

नापुत्रस्य तु लोकोऽस्ति पुत्रिणस्तु त्रिविष्टपम् ॥२१६॥

मौञ्ज्यन्तेनातिहर्षेण सर्वमत्या समन्त्रतः।
पुत्रो ज्ञातिमतो दत्तः कृतसर्वपितृक्रियः ॥२०७॥
यदि स्वयं तदा सर्वां तद्वृत्तिं लभते पराम्।
सर्वस्य प्रतिमन्त्रस्य पितृहेतुप्रपाठनात् ॥२०८॥
दत्तस्य तद्भूलाभः स्यात्तत्पूर्वं सा न सिध्यति।
हिरण्यकक्ष्यामन्त्राणां पठनात्तत्त्रयं पुनः ॥२०९॥
प्रदूरीकृत्य तज्ज्ञातीनवशाद्देति चाखिलम्।
दत्तसूनुः पित्रान्येन संस्कृतो यदि तद्युतः ॥२१०॥
तदा तु तद्धनं सर्वं ज्ञातिसाधारणं भवेत्।
स्वयमेव पितुर्दत्तः कर्म कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२११॥
तद्धनं तु न चेत्सशक्तज्ज्ञातिगतमेव वै।
दत्तोऽयमसगोत्रश्चेत्सदा दुर्बल एव वै ॥२१२॥
भवेदेव न संदेहः शास्त्रेऽमुत्र परत्र च।
यदि जामी तत्र भवेत्तन्मुखं नावलोकयेत् ॥२१३॥

अवश्यं पुत्रसंग्रहः कर्तव्यः

यथा कथंचित्पुत्रस्य संग्रहः कार्य एव वै।
दौर्बल्ये व्यस्य संजाते धर्मज्ञेन महात्मना ॥२१४॥
[illegible]पुरसंस्कारां वर्ष्मैतत्कथितं बुधैः।
न हि समायं जन्तूनामुपास्यप्रजीवने ॥२१५॥
तस्मा[illegible]हर्दिनं नित्यं चिन्तयन्नेव तद्भवेत्।

अपुत्रस्य लोको नास्ति

नापुत्रस्य तु लोकोऽस्ति पुत्रिणस्तु त्रिविष्टपम् ॥२१६॥

पुत्रसंपादनं धीमान् दुर्बलश्चेद्विशेषतः।

वृत्तिदत्तादयः

वृत्तिदत्तं कल्पयेद्वा मौञ्जीदत्तमथापि वा ॥३२६॥
विवाहदत्तमथवा यज्ञदत्तं न चेत्परम्।
वृत्तिदत्तः कुलान्यष्टौ मौञ्जीदत्तस्तु षोडश ॥३२७॥
विवाहदत्तो द्वात्रिंशद्यज्ञदत्तस्तरिष्यति।
चतुः षष्टिकुलान्यस्य लीलया सद्य एव वै ॥३२८॥
अपुत्रदत्तवृत्या यः प्राणवृत्तिं चरत्यलम्।
वृत्तिदत्त इति ख्यातस्तनयः पुण्यलोककृत् ॥३२९॥
धनतो यस्य यो लोके ह्युपनीतो भवेद्द्विजो।
स मौञ्जिदत्त इत्याख्यस्तनयस्तु ततोऽधिकः ॥३३०॥
एवमेव भवेदन्यस्तनयः परलोकदः।
विवाहदत्तसंज्ञः स्यात्ततोऽपि द्विगुणः परः ॥३३१॥
ततोऽधिको यज्ञदत्तस्तनयः पितृवल्लभः।
त एते तनयाः सर्वे तत्तत्कर्मैकपूर्तये ॥३३२॥
दत्तेन धनदानेन भवन्ति किल नान्यथा।
तस्मात्सन्तः किलैतेषां कर्मणामेकतो धनम् ॥३३३॥
न गृह्णन्ति महात्मानो परलोकदिदृक्षवः।
कणशः कणशः सद्भ्यः प्रतिगृह्य ततस्ततः ॥३३४॥
शनैः शनैश्च कालेन महता तानि साधयेत्।
एवं कृतेषु तेष्वेषु महत्सु किल कर्मसु ॥३३५॥

अभिनन्दनादौ द्विगोत्रत्वम्

विश्वामित्रकन्दने गन्धारनन्दने काश्यपनन्दने ।
कृत्स्नलिंगं त्वेकगोत्रं यस्मिन्नपि गोत्रके ॥३४२॥
गोत्रत्रार्षेयं तेन गोत्रमित्था ततः परम् ।
एकमेव यद्द्विगोत्रस्यैकद्व्यार्षकं तथा ॥३४३॥
पञ्चगोत्रार्षकं त्रैगण्यैकादशार्षकम् ।
गोत्रमेकं भवेदेवं त्रयोदशार्षकम् ॥३४४॥
एवं पञ्चदशार्षं च गोत्रं तत्रभवेदपि ।
एवं जातानि गोत्राणि दत्तानुस्युर्बहूनि वै ॥३४८॥
यतन्ते भूतले तस्माद्गोत्रिणस्तान्विचार्य च ।
बुद्ध्या तत्संशयान्त्याज्य एतावन्त्येव भूतले ॥३४९॥
गोत्राणि शास्त्रसिद्धानि चैकार्षेयाणि कानिचित् ।
द्व्यार्षेयाणि त्र्यार्षेयाणि पञ्चार्षेयाणि सन्ति हि ॥३५०॥
एतावन्त्येव सर्वत्र शास्त्रसिद्धानि नेतरत् ।
आद्यदत्तकतद्दत्तपारम्पर्येण केवलम् ॥३५१॥
दृश्यन्ते ब्राह्मणाः सप्तदशार्षेयावधीतरे ।

दत्तजादीनां पूर्वगोत्रम्

तस्माद्दत्तजपुत्रांस्तान् पूर्वगोत्रे प्रवेशयेत् ॥३५२॥
विना प्रवेशं यदि ते परं प्राप्तैकगोत्रिणः ।
यदि स्युर्मोहतः पश्चात्पूर्वं तज्जनकस्य च ॥३५३॥
गोत्रं वर्ज्यं विवाहादावेवं सत्यत्र कालतः ।
अज्ञात्वा पूर्ववृत्तान्तं गोत्रे तज्जनकस्य च ॥३५४॥

न चेद्दोषो महानेव भविष्यति न संशयः।

स्वीकृत्यनन्तरमौरसोत्पत्तौ

स्वीकृत्य परपुत्रं यः संजाते त्वौरसे पुनः ॥२६४॥
पुरोक्तान्यन्यथाकृत्वा मोहात्तदहितं चरन्।
मलपंस्तद्गुरुक्तानि मम मास्त्वयमथ वै ॥२६५॥
वदेत्पापी महाक्रूरस्तेन भूर्भारवत्यलम्।
तं देशाद्धार्मिको राजा ताडयित्वा प्रवासयेत् ॥२६६॥
सर्वस्वं तस्य गृह्णीयात्तस्मिन् जनपदे न चेत्।
न वर्षेत्किल पर्जन्यः राष्ट्रक्षोभोऽपि जायते ॥२६७॥

पुत्रप्रदानसमये यदुक्तं तत्कर्तव्यम्

पुत्रप्रदानसमये तत्पित्रोर्माहृकेण या।
वागुक्ता तां ततः काले विरस्कर्तुं न शक्यते ॥२६८॥
तद्बन्धुभिस्तेन राज्ञा तैर्जनैर्दातृदापकैः।
तद्भार्याभिस्तत्तनयैर्येन केनापि वा पुनः ॥२६९॥
पुत्रप्रदानसमये प्रोक्तवाक्यं तु तत्परम्।
अल्पं महद्वशक्यं वा शक्यं वा तन्न लङ्घयेत् ॥२७०॥
स्वकार्याय पुरा प्रोक्त्वा जनानां पुरतो दृढम्।
इच्छंस्तदन्यथयितुं यतते यस्तु वा जडा ॥२७१॥
ऊर्ध्वं लोकं न यातो वै भ्रूणहत्यामवाप्नुतः।

भर्तुः पितुर्वा वाक्यातिक्रमे

स्वपुत्रहितमिच्छन्त्यो भर्तृवाक्यं पुरोदितम् ॥२७२॥

प्रमादेन व्यपनयेन स्यातां तौ पतितौ ध्रुवम् ।
न तयोर्द्वन्द्वभावोऽस्ति कदाचित्तु परस्परम् ॥३८२॥

मृतभार्यपत्यादिपुत्रग्रहणम्

मृतभार्यो पतिर्वर्णी विदग्धस्ता दूरभर्तृका ।
पुत्रं न प्रतिगृह्णीयाद्दूरभार्योऽपि सूतकी ॥३८३॥
अधिकारो मिलितयोर्दम्पत्योरुभयोरपि ।
कदाचिन्न पृथक्त्वेन दत्ते तत्प्रतिग्रहे ॥३८४॥
सूतिप्रजननस्थानापन्नयुग्मद्वयस्य चेत् ।
वस्तुनो मेलनं पुत्रदानं तद्ग्रहणं भवेत् ॥३८५॥
सूतिप्रजननस्थानयुग्मद्वन्द्वमनःसुखम् ।
अचञ्चलं स्थिरं तुष्टं चेन्मनस्तत्करेन्नतु ॥३८६॥
दम्पती दम्पतीचित्तं तुष्टं कृत्वाम्बरादिभिः ।
कृत्वा च शपथं गाढं भविष्यत्कार्यहेतवे ॥३८७॥
साक्षिणां पुरतो नूनं देवब्राह्मणसन्निधौ ।
राज्ञो बन्धूनि चावेद्य गृह्णीयातां सुतं ततः ॥३८८॥

तत्काले प्रतिज्ञाय तदकरणे

शपथानन्तरं कालान्मर्यादा या कृता पुरा ।
नरास्तामुल्लङ्घयन्त राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत् ॥३८९॥

पत्नीषु सुतस्वीकारकाले या सन्निहिता सा माता, अन्या सपत्नीमाता

सुतस्वीकरणे याऽऽरात्स्थिता साऽस्य वै भवेत् ।
सापत्नी जननी दूरस्थिता भवति नान्यथा ॥३९०॥

अन्ये मातृमातामहादयः

द्वे तिस्रो वा स्थिताश्चेत्तु तदाराद्देव केवलम् ।
पुत्रग्रहणतुष्ट्यैव भर्त्रा साकं हृदा तथा ॥३६१॥
निखिला मातरो ज्ञेया बहुमातृक एव सः ।
तदानीं स्वीकृतसुतो नात्र कार्या विचारणा ॥३६२॥
तासां च पितरः सर्वेऽप्यस्य मातामहाः स्मृताः ।
सर्वश्राद्धेष्वनेनाथ सर्वान् मातामहान् क्रमात् ॥३६३॥
एकस्मिन्नेव तत्पिण्डे योजयेद्वा पृथक्तु वा ।
पिण्डान्वा निक्षिपेत्तेषां स्मर्तॄणामत्र केवलम् ॥३६४॥
वचनानां समत्वेन विकल्पस्तुल्य एव हि ।
यथारुचि प्रकुर्वीत यथा वा पुरतः कृतम् ॥३६५॥
तथैव पश्चात्कुर्वीत सर्वत्रैवं हि निर्णयः ।

सपत्नीपिता न मातामहः

सपत्नीजननीतातो न तु मातामहो भवेत् ॥३६६॥

सपत्नीमातृतर्पणम्

सपत्नीजननी नित्यतर्पणे ह्यथञ्जली लभेत् ।
स्वमातृवत्त्र्यञ्जलिं सा कदाचिदपि नो लभेत् ॥३६७॥
पुनर्विवाहितेनैवं तद्भार्या द्व्यञ्जलिं लभेत् ।
अपुत्रा वा सपुत्रा वा तत्समा सा प्रकीर्तिता ॥३६८॥

तस्या औपासनाग्नौ श्राद्धम्

तस्या औपासने श्राद्धमग्नौ कुर्यान्न लौकिके ।
यदि कुर्यात्प्रमादेन कुलं तस्य विनश्यति ॥३६९॥

पत्न्या अग्निः

यतः पत्नीमृतदिनं पितृनाशदिनेन वै ।
तुल्यत्वेनैव कथितं तस्याः को वा विमूढधीः ॥४००॥
लौकिकाग्नौ प्रकुर्वीत स्वसमाया विचक्षणः ।
सा विद्यमाना भार्यैव मृता चेन्मातृवर्गगा ॥४०१॥

भ्रातृपुत्रग्रहणविधिः

कृतत्रयविवाहस्य पत्नीं दृष्ट्वा चिरं पृथक् ।
द्वादशाब्दमलभ्यैतं तद्गुरोर्दर्शनात्परम् ॥४०२॥
पुत्रग्रहः प्रकथितो मुख्योऽयं तद्ग्रहे विधिः ।
तत्र साक्षात्कनिष्ठस्य सुतश्चेज्जातमात्रकः ॥४०३॥
प्रवरः कथितः सद्भिस्तस्य व्यवहितश्च चेत् ।
तस्मान्न्यूनो भवेत्पुत्र एवं द्वित्रिविभेदतः ॥४०४॥
भ्रातुः पुत्रो भवेन्न्यूनः सद्यः स्तन्यरसग्रहात् ।
परं तद्ग्रहणात्पुत्रस्तस्मान्न्यूनः प्रजायते ॥४०५॥
एवमन्येषु नवसु जातहोमात्परं पृथक् ।
दिनभेदेन तन्न्यूनो दत्तो भवति पुत्रकः ॥४०६॥
ततो ज्येष्ठस्य चेत्पुत्रस्तन्न्यूनो नात्र संशयः ।
न चाप्येकद्वित्रिभेदाद् भ्राता व्यवहितो यदि ॥४०७॥
तस्य सूनुस्तथा न्यून एवमेव पुनस्तथा ।
सापत्नीमातृतनया ज्ञेया ज्येष्ठतः परम् ॥४०८॥
तनयाः शास्त्रमार्गेण न्यूना एव भवन्ति ते ।
एवं पितृव्यतनयतनयाश्च पृथग्विधाः ॥४०९॥

तन्न्यूना एव कथिताः सगोत्रा एवमेव वै।
विज्ञेयाः किल किं भिन्नगोत्राश्चेत्तु ततः पुनः ॥४१०॥
किं वाच्यमस्ति तज्ज्ञात्वा बुद्धिमान् कालदेशकौ।
समालोच्य विधानेन कुर्यात्पुत्रस्य संग्रहम् ॥४११॥

विभागे भ्रातरस्तुल्याः

विभागे भ्रातरस्तुल्यास्तत्पुत्रास्तत्समा हि यत्।
ते गृहीत्वा न तुर्यांशं तल्लभन्ते सुतोद्भवे ॥४१२॥
सममेव लभन्तेंऽशमौरसेन समा हि ते।
धर्मपत्न्यां समुद्भूत औरसः कथितो बुधैः ॥४१३॥
द्वितीयादिसमुद्भूतो न तत्साम्यमवाप्नुयात्।

कामजपुत्राः

धर्मपत्नीसुतं प्राहुरौरसं ब्रह्मवादिनः ॥४१४॥
द्वितीयादिसुतान् सर्वान् कामजानिति चोचिरे।
धर्मपत्नीसुतो ज्येष्ठ्यं दत्ताद्गौरवमाप्नुयात् ॥४१५॥
पश्चाज्जातः कनिष्ठोऽपि द्वितीयादिसुतास्तु चेत्।
पित्र्यादिक्रियया कालाद्धर्मपत्नीसुतैः समाः ॥४१६॥
भवन्त्यपि न संदेहस्तथापि पुनरेककम्।
भवद्यामि समुद्भूतस्तस्मात्तत्कार्यकृद्भवेत् ॥४१७॥
वयोऽधिको दत्तसुतो न तत्कार्ये प्रभुर्भवेत्।
दत्तसूनुर्धर्मपत्न्याः सति तातेऽथवा न चेत् ॥४१८॥
द्विभार्यके क्रियाकृच्चेचद्भार्यायां (अथापि वा)।
दत्तसूनुस्तयोरन्यतरस्य यदि कर्मकृत् ॥४१९॥

यस्मौरसे तत्समोऽयं प्रभवेदिति वै मनुः।
दौहित्रो यदि दत्तः स्याद्भ्रातृजो वा तथाविधः ॥४२०॥
औरसेनैव तुलितौ सततं धर्मतत्परौ।
दत्तस्य पितरौ प्रोक्तौ ग्राह्यकावेव संततम् ॥४२१॥
पितृत्वमपि दत्तेन तिष्ठेज्जनकयोर्न तु।
स्नानहोमात्परं तस्मात्पितरावस्य तौ मतौ ॥४२२॥
पितृत्वमपि मातृत्वमेकत्रैव हि तिष्ठति।
न तिष्ठति तदन्यत्र क्रियाशतसहस्रकात् ॥४२३॥
पितृत्वं मातरि गतमेकशेषजमल्पकम्।
यथा न तत्कार्यकरं मातृत्वमपि तत्तथा ॥४२४॥
पितृव्यपत्न्यादीनां स्यात्ताहक्पत्नीत्वमेव हि।
तासां भवति तस्मात्तु न तन्मातृत्वमुच्चरेत् ॥४२५॥
प्रजापतिभ्यो ह्यभिमानसूनुः
पितृव्यसूनुस्त्वथवा सगोत्रः।
ज्येष्ठः कनीयांश्च भवेत्तथैको
न भिन्नगोत्रो न सगोत्रविद्विट् ॥४२६॥
सगोऽप्यसंमतः सूनुर्यः कश्चन समागतः।
पुत्रत्वेनोदरपरो नाभिमानसुतो भवेत् ॥४२७॥
धर्मपत्नीसुतो वर्णी द्वितीयादिसुतो गृही।
जातपुत्रोऽप्याहिताग्निं समस्तेन वर्णिना ॥४२८॥
धर्मपत्नीसुतो बालो द्वितीयादिसुतो युवा।
आहिताग्निर्दंशसुतो न समस्तेन चोदितः ॥४२९॥

स एव पितृकृत्येषु मुख्यकर्ता न संशयः।
अनुपेतोऽप्यसौ यद्यप्यथ तत्कर्तु सोऽखिलम् ॥४३०॥
कारयेज्ज्येष्ठमुख्यस्तथा चेत्कर्म तत्परम्।
जातमात्रे धर्मपत्नीसुते गौणसुताः परे ॥४३१॥
द्वितीयादिपुरोद्भूता भवेयुस्तत्क्षणान्ननु।
धर्मपत्नीसुतोत्पत्त्या दत्तस्तत्कार्यतोऽपि च ॥४३२॥
द्वितीयादिसुतानां स्यात्समो हैन्यं श्रुतीरितम्।
तत्पत्नीकर्मकर्ता चेद्द्वितीयातनयस्य सः ॥४३३॥

दत्तादौ विशेषः

दत्तोऽधिकश्चेद्भवति पितुर्यदि पुनस्तराम्।
असन्निधौ सन्निधौ वा ताते जीवति दत्तकः ॥४३४॥
तद्भार्याकर्मकर्ता चेत्तत्सुतापतिरिष्यते।
द्वितीयातनयश्चेत्तु कर्मकृच्चपरस्तदा ॥४३५॥
सद्यो हैन्यमवाप्नोति न ज्येष्ठातनयो यदि।
तातस्वद्धर्मपत्नी च समौ दत्तस्य संततम् ॥४३६॥
पराणि तत्कुलत्राणि संस्कार्याणि सुतो न चेत्।
सुते सति स एव स्यात्तत्कर्मणि न चेतरः ॥४३७॥
सर्वदैवं समाख्यातो न तेनायं हि दुर्बलः।
दत्तेन तत्कुलस्य प्रथमस्य कृता क्रिया ॥४३८॥
सत्यन्यातनये तावन्मात्रेणायमथाधिकः।
तुर्यांशोऽपि समांशः स्यात्तादृशं कर्म तत्कृतम् ॥४३९॥

सति तत्तत्सुते तस्मात् पितृपत्न्या विचक्षणः।
ज्येष्ठायास्तत्कनिष्ठाजः स्वयं कर्म समाचरेत् ॥४४०॥
ज्येष्ठेन दत्तपुत्रेण तत्क्षेत्रस्य पितुस्तु वा।
कृते कर्मणि तस्य स्यादाधिक्यं तत्सुतात्परम् ॥४४१॥
ताते सति कलत्रस्य तत्पुरो ज्यायसोऽस्य चेत्।
कृतं कर्म हि दत्तेन सद्यः पुत्राधिको भवेत् ॥४४२॥
पुत्रेषु सत्सु दत्तेन पितुः कर्म कृतं तु चेत्।
न तदा तस्य चाधिक्यं स्वाम्यं किमपि लभ्यते ॥४४३॥
यदि तज्ज्येष्ठभार्यायां अपुत्राया कृतं तु तत्।
कर्म तत्पुरतो नूनं दत्तः स्यादधिकः सुतात् ॥४४४॥
पितुः कर्म कृतं तेन दत्तेन यदि तत्परम्।
अप्ययं मुख्यकर्ता न मुख्यः स्यात्सुत एव वै ॥४४५॥
निखिलेभ्यो सुतेभ्योऽसावौरसो ह्यतिरिच्यते।

पत्नीविशेषाः, तत्र धर्मपत्नी

औरसो धर्मपत्नीजो धर्मपत्नी च केवलम् ॥४४६॥
याऽनेन पूर्वं बाला वा दुर्गुणा वा विवाहिता।
सैवास्य धर्मपत्नी स्याद्धर्मविद्भिरुदाहृता ॥४४७॥

द्वितीयपत्नी

तत्पश्चाद्या कुलीना वा सुरूपा वा वयोऽधिका।
न साऽस्य धर्मपत्नी स्याद्द्वितीया भोगिनी स्मृता ॥४४८॥
सति चेत्तनये तल्पे पुनः कामाद्विवाहिता।
द्वितीया भोगिनी नारी धर्मपत्नी न सोच्यते ॥४४९॥

पुत्राणां ज्यैष्ठ्यकानिष्ठ्यम्

धर्मपत्नीसमुद्भूतो ज्येष्ठपुत्र इति स्मृतः।
पत्नी तनयराहित्यकृतवैवाहिकस्य सा ॥४५०॥
येयमूढा धर्महेतोर्धर्मपत्न्यभिचोदिता।

भोगिनी

कलत्रे सति पुत्रे या पौत्रे नप्तरि सन्ततौ ॥४५१॥
स्थितायां येयमूढा स्याद्भोगिनी काञ्चनाख्यया।

भर्मणावावातादिपत्न्यः

भर्मणो(ऽमूनि)यानि नामानि तानि सर्वाणि कृत्स्नशः ॥४५२॥
लभतेऽतस्तु सा प्रोक्ता द्वितीया काञ्चनाख्यया।
न धर्मपत्नी भवति भोगिन्येव परा स्मृता ॥४५३॥
भर्मणेयं यतः साध्या वनिता तेन सा स्मृता।
सर्वस्वर्णपदैर्वाच्या वावातेति च कथ्यते ॥४५४॥
परा दुर्वर्णनामानि यानि ख्यातानि भूतले।
तानि सर्वाण्यवाप्नोति तृतीयेति च तां विदुः ॥४५५॥
परिवृत्तीति तामेके विज्ञेया विमलामति।
इन्दिरा हरिणी कल्या जगदुर्ब्रह्मवादिनः ॥४५६॥
एतासां तनयाः सर्वेऽप्युत्तरोत्तरदुर्बलाः।
धर्मपत्नीसुतान्न्यूना वयसाप्यधिकास्तराम् ॥४५७॥
प्रथमा धर्मपत्नी च सुभगा महिषीति च।
सत्कर्णीति च कल्याणी धर्मज्ञैः कथिता हि सा ॥४५८॥

धर्मपत्नीसुतो बालो मौञ्जीविरहितोऽपि वा।
तिष्ठत्सु चान्यापुत्रेषु कर्मभिः सत्कृतेष्वपि ॥४५९॥
उत्तमः पितृकृत्येषु तस्मादग्निप्रदः स तु।
तेन प्राधानिकं कर्म यद्यत्तत्तु तन्मुखात् ॥४६०॥
सम्यक्कारयितुं न्याय्यं मन्त्रान् सर्वान्परे सुताः।
पठेयुर्वै विधानेन चैवं धर्मोऽखिलो महान् ॥४६१॥
विहितस्तु समासेन तेन यावत्कृतं न तु।
तावत्स तु मृतो तातः परलोकं न विन्दति ॥४६२॥
प्रेतत्वाच्च न निर्मुक्तः क्षुत्तृष्णापीडितस्तराम्।
शरणं यत्र कुत्रापि ह्यटन् धावन् स्खलन् भ्रमन् ॥४६३॥
नित्यं च सलिलाकाङ्क्षी प्रेतलोके ह्यधोमुखः।
रुग्णो मुण्डश्च विकलो जडो भ्रान्तश्च दुर्मनाः ॥४६४॥
निवसेदेव सततं तस्मादौरस एव सः।

धर्मपत्नीजस्य स्पर्शमात्रकर्तृत्वम्

धर्मपत्नीसमुद्भूतो ह्यपरिज्ञातवर्णकः ॥४६५॥
प्रेतकार्यस्पर्शमात्रं स्नात्वा कुर्यादमन्त्रकम्।
तावन्मात्रेण तत्तातः कृतकृत्यः सुखीतराम् ॥४६६॥
सम्यक् पितृत्वमाप्नोति नित्यानन्दः प्रजायते।
तत्तन्मातुस्तत्तनया मुख्यकर्तार ईरिताः ॥४६७॥
सत्स्वौरसेषु मुख्यत्वात्त एव कथिताः पराः।
तत्तत्कर्मसु कर्तारो नान्यमातृसमुद्भवाः ॥४६८॥

धर्मपत्नीसुते बाले केवलं रहिताक्षरे।
अस्पष्टस्पष्टवर्णे वा विद्यमाने मृते तु वा ॥४६९॥
कक्ष्यानन्तरनिष्ठेन येन केन सुतेन वा।
तत्समेनाऽथवा भ्रात्रा शिष्येणान्येन बन्धुना ॥४७०॥
सर्वं कारयितव्यं स्यात्समन्त्रेणाऽत्र तत्र चेत्।
यद्यत्प्राधानिकं कर्म तत्र तत्रास्य वै शिशोः ॥४७१॥

सान्निध्यं स्पर्शमात्रकर्तृत्वम्

स्पर्शमात्रः प्रकर्तव्यस्तत्सान्निध्यं च केवलम्।
अपेक्षितं मृतस्यात्र महातृप्त्यैकहेतवे ॥४७२॥
तत्सान्निध्यस्पर्शमात्रात् स मृतः सुखभागलम्।
भवेदेव न संदेहस्तथा तस्मात्तु त्वरेत ॥४७३॥
मृतस्यैतानि प्रोक्तानि तारकाणि महात्मभिः।
कारकाणि महातृप्तेस्तानीमानि स्मृतानि हि ॥४७४॥

श्राद्धादावत्यन्ततृप्तिकराणि

जकारपञ्चकं त्वेकं धर्मपत्नीजसन्निधिः।
तत्कार्यकरणं वद्धद्ग्रहणश्राद्धमेव च ॥४७५॥
गयाश्राद्धं च फल्गुन्याः शाकश्राद्धमथापि च।
तथैव वरणं गौर्या वृषोत्सर्जनमेव च ॥४७६॥
महालयश्च पनसस्त्व एते निखिलाः पराः।
अत्यन्ततृप्तिमुक्त्यैकनिदानानीति वान् जगुः ॥४७७॥
जन्मभूम्यादिकं तत्र तज्जकारस्य पञ्चकम्।
मृतस्य तारकं पूर्वं तत्परं त्वौरसस्य वै ॥४७८॥

सान्निध्यं मृतिकाले तु द्वितीयादिसुतस्य वा ।
परलोकानुकूला या मृतस्य प्रभवेत्तथा ॥४७९॥
सत्क्रिया मन्त्रपूर्वं मृतस्य प्रभवेत्तथा ।
एतत् स्याद्ग्रहणश्राद्धं गयाश्राद्धमथापरम् ॥४८०॥
तृतीयं फल्गुनीश्राद्धमष्टोत्तरशतैकृत ।
शाके श्राद्धं यत्क्रियते तद्वैकमथ तारकम् ॥४८१॥

गौरीदानं पितृतृप्तिकरम्

गौरीदानं वृषोत्सर्गः पाक्षिकोऽयं महालयः ।
स्थापनं पनसाख्यस्य तानीमानि स्मृतानि हि ॥४८२॥
पितृणामपि सर्वेषां वल्लभानीति वै जगुः ।
जकारपञ्चकं यस्तः परलोकगतस्य तत् ॥४८३॥
तृप्त्यै संतरणायापि प्रोवाचैवं न चेतरत् ।

जकारपञ्चकम्

जलाधं जाह्नवीतीरं जनार्दनमहास्मृतिः ॥४८४॥
ज्वलनो जननोत्पन्नसुतसान्निध्यमेव च ।
जकारपञ्चकं प्रोक्तं कथितं जन्ममोचकम् ॥४८५॥

ग्रहणश्राद्धलक्षणम्

ग्रहस्पर्शादथ यतन् सद्यः पत्न्यादिभिर्वृतः ।
तदान्नेनैव यच्छ्राद्धं करोति पितृतृप्तये ॥४८६॥
स्नात्वा तेनैव विधिना तद्ग्रहश्राद्धमुच्यते ।
तदेतत्किल देवेशो भगवान् भूतभावनः ॥४८७॥

षोडशश्राद्धतुलितं महादानशताधिकम्।
प्रोवाच किल सर्वेशो गयस्य सुमहात्मनः ॥४८८॥
गयाफल्गुनिकाशाकश्राद्धान्येतत्समानि वै।
गौरीदानं तथैवेति वृषोत्सर्जनमेव च ॥४८९॥
महान्ति निष्क्रियाणीति मनुः कात्यायनोऽङ्गिराः।
कुत्सवत्साभिभरतविश्वामित्रशुकादयः ॥४९०॥
नैतेषां तुल्यमपरं पैतृकं कर्म विद्यते।
लोकत्रयेऽपि परमं तस्मादेतेषु चैककम् ॥४९१॥
अपि कर्ता कृतार्थः स्यात् सुकृती पितृतारकः।
इत्येवमेनं जह्नुः पनसस्थापकं तु तम् ॥४९२॥
वयं न विद्मः को वा स दू(दु)र्वासाजनकोऽथवा।
कुम्भोद्भवो दधीचिर्वा शिबिर्वा नहुषो नलः ॥४९३॥
मान्धाता वाऽप्यलर्को वा हरिश्चन्द्रोऽथवा महान्।
गयो रामोऽथवा श्रीमानेषु चैकोऽथवा न चेत् ॥४९४॥
एवत्समष्टिर्लोकानां हितायाऽत्र भुवः स्थले।
अवतीर्णो न सन्देह इति ब्रह्मा शिवो हरिः ॥४९५॥

पनसे स्थापिते महान् विशेषः

पनसस्थापकं प्रोचुः शलाटोस्तस्य पृष्ठतः।
सर्वे कण्टकरूपेण समाश्रित्यैव सन्ततम् ॥४९६॥
अष्टोत्तरशतश्राद्धदिव्यशाकविशेषकाः।
प्रवर्तन्ते यतस्तस्मात्तदा शाकसहस्रकम् ॥४९७॥

तस्यास्य दिव्यरूपस्य पितृप्राणैकरूपिणः ।
सर्वदेवस्वरूपस्य सर्वमन्त्रमयस्य च ॥४९८॥
सर्वयज्ञमहातीर्थसरिदग्निसुवर्ष्मणः ।
निखिलागमशास्त्रौघव्रतकृच्छ्रामृतान्धसाम् ॥४९९॥
निधानस्य पवित्रस्य पित्र्याकर्षणवर्ष्मणः ।
स्थापनं क्रियते येन तच्छायापत्रमूलकैः ॥५००॥
फलैः शलाटुभिर्वापि काष्ठैश्छायाभिरेव च ।
क्रियते पितृतृप्तिः स्याद्बुद्धिपूर्वमबुद्धितः ॥५०१॥
तस्य पुण्यफलं वक्तुं गुरुणा ब्रह्मणापि वा ।
शक्यं वर्षसहस्रेण फणिराजेन वा तु ॥५०२॥
पुरा किल पितृतृप्तिहेतवोऽखिलशाखकाः ।
तपस्तप्त्वा वरेणाऽथ ब्रह्मणः पनसं श्रिताः ॥५०३॥

अलर्कश्राद्धम्

अलर्कालर्ककाख्याच्युतधूताजरामराः ।
सप्तस्वेतेष्वच्युतश्चेदलर्कश्चाजरास्त्रयः ॥५०४॥
प्रतिमासजभेदेन स्मृता द्वादशजातयः ।
अतः षट्त्रिंशत्कसंख्या तस्मादेतत्त्रयस्य च ॥५०५॥
एतेषां मासजानां स्यादेकजातिशलाटुवः ।
तद्भिन्नैकादशानां च शलाटुफलभेदवः ॥५०६॥
द्वैविध्यं किल संप्राप्तं शलाटोरपि ये मुहुः ।
आर्द्रशुष्कप्रभेदेन द्वैविध्यं समुपागतम् ॥५०७॥

तद्वत्फलानां च पुनर्द्वैविध्यं समुपागतम्।
तच्चैवामलको ग्राह्य आशारस्सपवित्रकः ॥५०८॥

दिव्यशाकाः श्राद्धार्हाः

वारुकः कर्मजः शारिः श्रीपर्णं श्रीकरः शमी।
युगदो युग्मदो रम्यं वज्रपर्णी करीपकी ॥५०९॥
कारवल्ली त्रयी कारुः कामकृत् कामवारकः।
कामवाही कामदूरः शाकुटद्वयमग्रिमा ॥५१०॥
कामग्रं कामदं कम्रः कलिङ्गः कलिवारुकः।
अजक्षीरजचर्माख्यो दारुको धर्मदो दमः ॥५११॥
कुलंकारी मनुर्मानी राजश्रीः शेखरी नलः।
नालकः कारकः खाद्यो गायत्रो हरिलोचनः ॥५१२॥
हरिदरवो हयग्रीवः कारुण्यः कनकप्रियः।
कार्मुकः कर्मकृत्कार्यो धैर्यदो मानकृत् कुणिः ॥५१३॥
शरच्छ्रीको मङ्गलको कुण्डोऽकुण्डो गुडप्रियः।
फलश्रीर्मधुरमोघो दानदः फट्टुकः क्षमी ॥५१४॥
मान्मथो मधुरस्रावा वज्राभो वज्रपञ्जरः।
वल्मीकजो बालराजो बालपुत्रो बृहद्रथः ॥५१५॥
कर्णकारोऽक्षिरोगघ्नः प्रतीहारी वलीमुखः।
शर्मकृन्नेत्ररोगघ्नो धान्यद्वेषी दरिद्रहृत् ॥५१६॥
कुशलः कर्मसुखकृत् कष्टहृत् कनकप्रभः।
विश्वाकरः पिप्पलघ्नः क्षन्मूलो क्षुन्निवारणः ॥५१७॥

[illegible] [illegible] [illegible]कर्णिकाः ।
सर्वे [illegible] [illegible] च ॥४९८॥
[illegible]वर्णतः ।
[illegible] ॥४९९॥
[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] येन [illegible] ॥५००॥
वर्णैः शाल्मलिसमानि काष्ठैश्छायाभिरेव च ।
स्निग्धो [illegible] स्यात्सुद्धिपूर्वमुदितः ॥५०१॥
तस्य पुष्पफलं वर्ण्यं गुरुत्वा [illegible] वा ।
शाखे पर्णसहस्रेण [illegible]यानि ॥५०२॥
पुरा किल पितृतृप्तिहेतवेऽखिलशाकजाः ।
तपस्तप्त्वा चरेणाऽथ अलकाः पनसं श्रिताः ॥५०३॥

अलर्कश्राद्धम्

अलकालर्कनाम्न्याच्युतचूताजरामराः ।
सप्तस्वेतेष्वच्युतश्चेदलर्कश्चाजराख्यः ॥५०४॥
प्रतिमासजभेदेन स्मृता द्वादशजातयः ।
अतः षट्त्रिंशत्कसंख्या तस्मादेतत्त्रयस्य च ॥५०५॥
एतेषां मासजानां स्यादेकजातिशलाटुवः ।
तद्भिन्नैकादशानां च शलाटुफलभेदतः ॥५०६॥
द्वैविध्यं किल संप्राप्त शलाटोरपि वै मुहुः ।
आर्द्रशुष्कप्रभेदेन द्वैविध्यं समुपागतम् ॥५०७॥

तद्वत्फलानां च पुनर्द्वैविध्यं समुपागतम् ।
तच्चैवामलको ग्राह्य आशारत्नपवित्रकः ॥५०८॥

दिव्यशाकाः श्राद्धार्हाः

पारुकः कर्मजः शारिः श्रीपर्णं श्रीकरः शमी ।
युगदो युग्मदो रम्यं वज्रपर्णी करीपकी ॥५०९॥
कारवल्ली त्रयी कारुः कामकृत् कामवारकः ।
कामवाही कामदूरः शाकुटद्वयमग्रिमा ॥५१०॥
कामभं कामदं कम्रः कलिङ्गः कलिवारुकः ।
अजश्रीरजघर्माख्यो दारुको धर्मदो दमः ॥५११॥
तुलंकारी मनुर्मानी राजश्रीः शेखरी मलः ।
नालकः कारकः स्वाद्यो गायत्रो हरिलोचनः ॥५१२॥
हरिदरवो हयग्रीवः कारुण्यः कनकप्रियः ।
कार्मुकः कर्मकृत्कार्यो धैर्यदो मानकृत् कुणिः ॥५१३॥
शारश्लोको मङ्गल्को कुण्डोऽकुण्डो गुडप्रियः ।
फलश्रीर्मधुरग्रीवो दानदः कटुकः क्षमी ॥५१४॥
मान्मथो मधुरस्रावा वज्राग्रो वज्रपञ्जरः ।
वल्मीकजो वालराजो वाल्पुत्रो बृहद्रथः ॥५१५॥
कर्णकारोऽक्षिरोगघ्नः प्रतीहारी वलीमुखः ।
शर्मकृन्नेत्ररोगघ्नो धान्यद्वेषी दरिद्रहृत् ॥५१६॥
तुरालः कर्मसुखकृत् कण्ठहृत् कनकप्रभः ।
तिरवाकरः पिप्पलघ्नः क्षुन्मूलो क्षुन्निवारणः ॥५१७॥

अग्निधामा धरानाथो धरावासो धराश्रयः।
अद्रिराजो धर्मदेशी धर्माश्रयकरः प्रराट् ॥५१८॥
अनिकेतो निमिग्रीवो नीलनेत्रो मरुत्पतिः।
मणिमालो बृहन्नालो नारदो लिकुचो नटः ॥५१९॥
कुम्भाण्डः कुण्डली चक्रः शैत्यकर्मा शताकरः।
कल्याणाधार ईशान ईशानो दक्षिणास्पदः ॥५२०॥
शतवल्ली महावल्ली चक्रवल्ली निपानकृत्।
द्रोणप्रियो द्रोणराजो गुल्महृत् कटुमूलकः ॥५२१॥
नित्यश्रीको नित्यपुष्पो निर्मलो बहुपुष्पकः।
प्लक्षराजन्यसंभूतो हेतिमूलो निशाप्रियः ॥५२२॥
महादाहकरोऽश्वत्थः सुन्दरः पर्वताश्रयः।
कर्दमाढ्यः कर्दमाधः सूपस्थानः सुरास्पदः ॥५२३॥
पूर्णपात्रं शर्मपात्रं शातकुम्भः स्थिराकरः।
काव्यश्रीः श्रीकरः श्रीगः परागद्युतिदीपनः ॥५२४॥
महामाली जीवमाली पाशाढ्यः पाशादु सहः।
प्रथितो प्राणतरणो देवराजप्रियः पणः ॥५२५॥
सद्योमूलः पण्यमतिः गरदूषो गणत्रिगः।
गुहावासो गुहामूल्यं भरण्यं मुनिवन्दितः ॥५२६॥
मुनिप्रियो दन्तरिपुः शर्मकृच्छर्ममत्सरी।
त एते दिव्यशाकाः स्युः श्राद्धकर्मणि चोदिताः ॥५२७॥
एतेषामन्नयोगेन तदयोगेन च द्विधा।
भवेयुः किल ते भूय एतेषां पुनरेव वै ॥५२८॥

मध्ये शाकुटकादीनि मूलतः स्तम्भतस्तथा ।
पत्रतस्त्रिविधो ज्ञेयः कानिचिच्छुष्कभेदतः ॥५२९॥
पक्वेन जलतैलाभ्यां पृथक्त्वेन समष्टितः ।
चूर्णकल्कप्रभेदेन यत्नतः स्यात्सहस्रकम् ॥५३०॥

पनसमहिमा

एतत्सर्वं चैकपात्रे निधाय किल पद्मजः ।
अन्यपात्रे च पनसं तुलयामास पाणिना ॥५३१॥
तदा तु पनसः किंचिद्बभूवाधिक एव वै ।
बृहती त्रिशतसमा तदा जाता हि पश्यताम् ॥५३२॥
आर्द्रकं पद्शतसमं तिलाः शतसमं वराम् ।
एवं तुलायां त्रितयं संबभूव तदादि वै ॥५३३॥
भूतले ब्राह्मणाः सन्तः पवित्रे श्राद्धकर्मणि ।
तुल्यं शाकसहस्रस्य तिलार्द्रकबृहत्ककम् ॥५३४॥
संपादयन्ति यत्नेन पितॄणामतितृप्तये ।
तिलमाषव्रीहियवा मुद्गगोधूमशाककाः ॥५३५॥
काशा दशविधा दर्भा मुख्यामुख्याश्च ये मताः ।
खड्गं दशविधं मांसं प्रेतपर्पटभूतपाः ॥५३६॥
वामदेवादयो विप्राः पितृसूक्तविशेषकाः ।
गयादिपुण्यक्षेत्राणि वटभूरुह एव च ॥५३७॥
बिन्दुमाधवविश्वेशाचतुर्दशपदानि च ।
ईशानादिमुखान्येवं गदाधरमहेश्वरौ ॥५३८॥

भागीरथी फल्गुनी च यमुना च सरस्वती।
पितृतृप्तानि सर्वाणि तीर्थानि विशेषतः ॥६३९॥
रम्योद्यानि पवित्राणि पुनरन्ये तथाविधाः।
श्राद्धद्रव्यविशेषाः स्युः पितॄणामतिवल्लभाः ॥६४०॥
ते सर्वे पनसस्त्वेकः सुमहाश्रयकारकः।
एतस्मिन् पनसे रम्ये सर्वश्राद्धनिदानके ॥६४१॥
मृताहदिवसे पुण्ये नित्यतृप्ताः सुतोषिताः
पितरस्तु न्दिताः सद्यो भवन्त्येवेति सा श्रुतिः ॥६४२॥
एवं सत्यत्र यो मर्त्यः पनसस्थापको हरा।
मत्याऽमत्याथवाऽत्रैव भक्त्याऽभक्त्याथवा पुनः ॥६४३॥
ज्ञानेनाऽज्ञानतो वाऽपि भूतले यत्र कुत्रचित्।
स एष कथितः सद्भिर्गयाश्राद्धसहस्रकृत् ॥६४४॥
पनसं सहकारैश्च कदल्यादिद्रुमैः सह।
स्थापयित्वा विधानेन यत्नात्संवर्धितैः शिवैः ॥६४५॥
चम्पकैः पाटलीभिश्च मधूकैः सुमनोरमैः।
चन्दनैः स्यन्दनैर्नीपैस्तच्छायाभिश्च तत्फलैः ॥६४६॥
पत्रैः पुष्पैश्च तत्काष्ठैर्नानाशाकविशेषकैः।
कुर्वन् स्ववृत्त्या प्रयतः कुलकोटिसहस्रकैः ॥६४७॥
ब्रह्मलोकमवाप्येह तत्सायुज्यमवाप्नुयात्।
पनसं यत्र कुत्रापि दृष्ट्वा सद्यो महामनाः ॥६४८॥
तत्काष्ठपत्रकुसुमशलाटुफलमुख्यकैः।
येन केनापि वा तृप्तिं पितॄणां तां समाचरेत् ॥६४९॥

सद्य एव ब्राह्मणेभ्यो लब्धमात्रे च तत्फले।
दृष्टमात्रेऽथवा भक्त्या दद्याद्वै पितृतृप्तये ॥५५०॥
शलाटुं पानसं पत्रं फलं दृष्ट्वा तु यो नरः।
पितृतृप्तिमकृत्वैव तूष्णीं तिष्ठेन्महाजडः ॥५५१॥
तं तस्य पितरः सर्वे शपन्ति किल कोपतः।
दृष्टमात्रे [illegible] तस्मात्तु पानसद्रव्यमुत्तमम् ॥५५२॥
येन केनाप्युपायेन पत्रेण च फलेन वा।
शलाटुना छायया वा पितृतृप्तिनिमित्तकम् ॥५५३॥
यत्किंचिदपि वा तेषु ब्राह्मणेभ्यः प्रदापयेत्।
तावन्मात्रेण पितरो नित्यतृप्ता भवन्ति वै ॥५५४॥
एवं सत्यत्र यः कश्चिद्भाग्यवान् पनसी नरः।
तद्द्रव्यैरनिशं भक्त्या तृप्त्यकृत् पातकी भवेत् ॥५५५॥
गालवस्तु पुरा विप्रो दृष्ट्वा बीजानि भक्तितः।
क्रयेण पक्ववान् गृह्य पितृप्रीत्यै बुभुक्षितः ॥५५६॥
स्वयं पत्न्या भक्षयित्वा पितृतृप्तिं चकार ह।
तावन्मात्रेण वै चापि परं तृप्ताः शताब्दकात् ॥५५७॥
आनन्दसागरे मग्ना बभूवुरिति नः श्रुतम्।
पुरा कुरावने पुण्ये माण्डव्यो वेदवित्तमः ॥५५८॥
महाविन्ध्याटवीमार्गे पनसं कार्तिकेऽवशात्।
दृष्ट्वाकं च गतस्तूष्णीं समालोच्य क्षणात्परम् ॥५५९॥
तत्पत्राणि पवित्राणि पतितानि भुवः स्थले।
दृष्ट्वा समादायैतानि निपुणः सर्वकर्मसु ॥५६०॥

तानि स्वकरतः शीघ्रं कृत्वा पत्रपुटं त्वरन्।
कस्मैचिद्विप्रपुत्राय पात्राय जलकाङ्क्षिणे ॥५६१॥
समुद्युक्ताय पातुं तज्जलं भूमिगतं कथम्।
पास्यामि सलिलं वेत्ति समालोकयतेतराम् ॥५६२॥
पिबत्यनेकतरसा पितृप्रीत्यै पितॄन् महान्।
स्मृत्वा ददौ तदा तेऽपि समागत्यातिसत्वरम् ॥५६३॥
तावन्मात्रेण संतुष्टा गयाश्राद्धशताधिकात्।
अतिहृष्टं गताः सद्यस्तमेनं भूरितेजसम् ॥५६४॥
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रत्यक्षेणैनमीक्ष्य ते।
परं तृप्ताः स्मेति चोक्त्वा त्वं कृतार्थो महानसि ॥५६५॥
शास्त्रार्थधर्मतत्त्वज्ञस्त्वमस्मत्परितुष्टिकृत्।
इत्युक्त्वाऽऽभाष्य ते तेन तत्पदं चक्रपाणिनः ॥५६६॥
पश्यतस्तस्य पुरतो जग्मुः किल सुरोत्तमैः।
प्रार्थनीयं विशेषेण सोऽयमेतादृशो महान् ॥५६७॥
पितॄणां पनसः श्रीमान् वल्लभः परमो महान्।
क्षारश्च कारवल्लीकः क्षारकः कालिको फलन् ॥५६८॥
पर्ज्यंते ब्रह्मपुरतो देवानां शृण्वतां वरा।
इत्थंभूतं वचो दुःखादस्माकमपि सन्ति हि ॥५६९॥
कण्टकानि ततो भूयः खराणि सुमहान्त्यपि।
त्वमस्माकं नु तत्साम्यं किमर्थं नाकरोर्विभो ॥५७०॥
इत्येवमतिदैन्येन दीनःपुन्येन केवलम्।
ददुः किल दुःखातांस्तानेतान्तादृशान्विभुः ॥५७१॥

नाकिनां पुरतो भूयः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ।

रोदनम्

यन्माहात्म्यसुमहतो जन्मसिद्धातिसुश्रियः ॥५७२॥
दृष्ट्वा विभूतिं परमामसहन्नेव केवलम् ।
तत्साम्यमिच्छुरारान्मे रोदनं कृतवानसि ॥५७३॥
तस्मादेतत्प्रभृति ते भुवने ये दरिद्रकाः ।
श्राद्धैककरणाशक्ता अष्टोत्तरशतेष्वपि ॥५७४॥
श्राद्धेषु केषुचित्कालविशेषेषु कथंचन ।
रोदनाच्छ्राद्धकरणफलं ते प्राप्नुयुः परम् ॥५७५॥

कारुस्य श्लाघ्यत्वम्

यस्माद्यत्सम्लवचनं मधुरः प्रोक्तवानसि ।
देवानां शृण्वतां चापि तस्मात्त्वं श्राद्धकर्मसु ॥५७६॥
नित्याम्लयुक्तो यत्नस्व कार रे रे कृती भव ।
कारवल्ल्यादयो यूयं स्वेषां कण्टकसाम्यतः ॥५७७॥
तत्साम्यचेतसो यस्मादङ्गीकुरुध्वं साम्प्रतम् ।
युष्मान् श्राद्धेषु सर्वेषु तद्योग्या भवतैव वै ॥५७८॥
तत्साम्यं तत्त्रयस्यैव मिलित्वैव पृथक् न तु ।
नित्यं शाकसहस्रस्य बृहत्यादेस्तु वो न [redacted] ॥५७९॥
युष्माकं श्राद्धयोग्यत्वमात्रं मद्वचसा मतम् ।
सकण्टकबृहत्यस्ता मनसा पूर्वमेव ये ॥५८०॥
साम्यं कण्टकतरतस्य पनसस्य त्वकामयन् ।
युष्मदीयमिमं वृत्तं ज्ञात्वा तूष्णीं व्यवस्थिताः ॥५८१॥

अतिचातुर्यतोऽतीव निपुणाश्च विचक्षणाः।
ज्ञात्वा तद्धृदयं सर्वमवरूपं तथाविधम् ॥५८२॥
सर्वं ज्ञात्वा विधास्यामि लोकेष्वत्र च श्रूयताम्।
मन्वादिषु मघाद्येषु युगादिषु चतुर्ष्वपि ॥५८३॥
अष्टकासु च पुण्यासु संक्रान्तिषु च वृद्धिके।
नैमित्तिके च तासां स्याद्योग्यत्वं तथाविधम् ॥५८४॥
तत्र चैतासु याः क्रूराः प्रेतकर्मणि ता. पराः।
संभवन्तु न चान्येषु मर्यादेवं मया कृता ॥५८५॥

उर्वारुमहिमा

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवसृष्टोऽतिसुन्दरः।
पत्रपुष्पमहावल्लीशालाद्रुफलसंवृतः ॥५८६॥
समागत्यातिचपलात् कैलासाद्धरणीधरात्।
नत्वा बद्धाञ्जलिपुटश्चोर्वारुर्मम का गतिः ॥५८७॥
इति चोवाच लोकेशं भगवन्तं पितामहम्।
तादृशं तं समुद्वीक्ष्य गौरीवाक्येन केवलम् ॥५८८॥
शम्भुना लोकनाथेन सृष्टं शुद्धैकविग्रहम्।
समागतं महाप्रह्वं महागुरुषु वत्सलम् ॥५८९॥
शुद्धसत्वं दूरगतं ज्ञात्वा तं सर्वसुन्दरम्।
अतिप्रशस्यं चोवाच देवानां पुरतो विभुः ॥५९०॥
त्वमुर्वारो स्थाणुसृष्टो भवानीवचसा यतः।
स्वयं प्रकृत्या च महान् शान्तो दान्तो महामनाः ॥५९१॥

गुरुप्रियो विनीतश्च सततं गुरुवत्सलः ।
अवलेपैकरहितश्चाद्यप्रभृति भूतले ॥५९२॥
दैविकेषु च पित्र्येषु कल्याणेषु नवेषु च ।
नैमित्तिकेषु नित्येषु काम्येषु सकलेष्वपि ॥५९३॥
छत्रक्रियाविशेषेषु बालवृद्धातुरादिषु ।
नित्ययुक्तः सदा योग्यः शलाटूनां दशासु च ॥५९४॥
दशास्वेवं फलानां च शाश्वतो भव शाश्वतः ।
पितॄणां सर्वदात्यन्तं वल्लभः परमो भव ॥५९५॥
वसन्तमाधवस्य त्वं ग्रीष्ममृत्युंजयस्य च ।
महावर्षाः सप्ततन्तुः शरत्कालस्तथा पुनः ॥५९६॥
हेमन्तवनराजन्यः शिशिरः शीतलः शिवः ।
सुखाकरः शुभकरो नित्यकल्याणकारकः ॥५९७॥
प्रथितो भव सर्वेषां पानसैराम्रकैः शिवैः ।
रम्भाभिस्तुलितो भूयः कदाचिदधिकस्तथा ॥५९८॥
विद्वत्स्तुत्यो राजमान्यो त्वज्जातीयकपोदरैः ।
संमान्यो भव सर्वत्र सर्वनेत्रप्रियोऽनिशम् ॥५९९॥
सर्वदा सर्वसंवृद्धो भवोर्वरोऽविवर्धितः ।
मरुत्कृतौ [redacted] स्वद्बीजविक्षेपणमुखादितः ॥६००॥
फलबीजसमुत्पत्तिपर्यन्तं किल सर्वदा ।
तदित्थ्रियतः शुद्धो महान्मन्त्रपरिष्कृतः ॥६०१॥
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्यदेवानां वल्लभो भव ।
इति स्तुतः पूजितश्च शासितो विहितोऽनघः ॥६०२॥

अन्वन्वपितृश्राद्धैककारकः किल कारितः ।
उशीरमन्त्रादृशः प्रोक्तः संमाद्यः श्राद्धकर्मसु ॥६०३॥

उशीरत्यागे दोषः

नादृशं नमिमं यो वै मौढ्याच्छ्राद्धेषु संत्यजेत् ।
स तु पितृद्रोही भवेदेव न संशयः ॥६०४॥
देवद्रोही श्रुतिद्रोही सर्वद्रोही स एव हि ।
विधिघ्नः श्राद्धहन्ता स्यात्तानीमानि प्रचक्ष्यतः ॥६०५॥

षण्णवतिश्राद्धानि

अमामनुयुगक्रान्तिधृ(व्य)तिपातमहालयाः ।
तिस्रोऽष्टका गजच्छाया षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥६०६॥
मासिश्राद्धानि तान्येवं मासि मासि कृतानि वै ।
अष्टोत्तरशतानि स्युस्तानीमानि ततः पुनः ॥६०७॥
पित्रोर्मृताहः कथितोऽलङ्घनीयः कथंचन ।
रविं च प्रथमे पादे कविं चैव द्वितीयके ॥६०८॥
त्रयोदश तृतीये स्यादमाख्यानमुच्यते ।
पुनर्निरूप्यते स्पष्टममावाक्यस्य सांप्रतम् ॥६०९॥
अमावास्या द्वादश स्युर्मनवस्तु चतुर्दश ।
युगादयश्च चत्वारः क्रान्तयो द्वादश स्मृताः ॥६१०॥
धृतयश्चापि पाताश्च त्रयोदश त्रयोदश ।
महालयाः पञ्चदश अष्टका द्वादश स्मृताः ॥६११॥
गजच्छाया तथा चैका षण्णवत्य इतीरिताः ।
प्रतिमासं प्रकर्तव्यत्वेन तानि च सांप्रतम् ॥६१२॥

कीर्तितानि द्वादश हि मिलित्वैतेऽखिलान्यपि ।
अष्टोत्तरशतानि स्युः श्राद्धानि विहितानि वै ॥६१३॥
प्रतिवर्षं प्रयत्नेन ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
अमावास्यास्तत्र क्लृप्ता मासान्ता नित्यमेव वै ॥६१४॥
अत्रैव पितृयज्ञश्च कर्तव्यत्वेन चोदितः ।
धुरुकोऽयं पितॄणां स्यादतितृप्त्येककारकः ॥६१५॥
श्राद्धानां प्रकृतित्वेन चोदितः स्मृतिकर्तृभिः ।
नैतस्मात्तु परं श्राद्धं विद्यते यत्र कुत्रचित् ॥६१६॥
धुरुत्वमेतदेव स्यादेतन्मात्रे कृते तु चेत् ।
सर्वाण्यपि कृतानि स्युरथवैतद्दिने तु यैः ॥६१७॥
श्राद्धं वै क्रियते तद्वा प्रकृतिश्चेति वै जगुः ।
इतरैः सर्वपित्र्याणां श्रुतितो ब्रह्मवादिनः ॥६१८॥
यदनुष्ठानतः सर्वानुष्ठानं जायतेतराम् ।
तदेव प्रकृतिः प्रोक्ता हि कैश्चिद्ब्रह्मवादिभिः ॥६१९॥

दर्शश्राद्धम्

दर्शानुष्ठानतः सर्वश्राद्धानि स्युः कृतानि वै ।
इति सर्वे त्रयो लोकास्तूष्णीं तिष्ठन्ति केवलम् ॥६२०॥
न केनापि च तस्मात्तु दर्शः संत्यज्यते परः ।
दर्शमात्रेऽनुष्ठितेऽस्मिन् येन केन प्रकारतः ॥६२१॥
सर्वाण्यनुष्ठितानि स्युरिति वै लोकसंस्थितिः ।
न तत्र साक्षाच्छ्राद्धं च क्रियते येन केन वा ॥६२२॥

क्रियते कृतिना तत्तु भूतले येन केनचित्।
तेनाप्युदकमात्रेण श्राद्धेनापि कृतेन वै ॥६२३॥
सर्वाण्यपि कृतान्येवेत्येवं सर्वैकनिश्चयः।
स दर्शस्तादृशस्यानुष्ठाता यो ब्राह्मणोत्तमः ॥६२४॥
अग्निहोत्री स एव स्याद्दर्शयाज्यक्षयाज्यपि।
सोमयाजी सर्वयाजी तत्त्यागी ब्रह्मघातकः ॥६२५॥
स एव कर्मचण्डालस्तमेनं ब्रह्मघातकम्।
दृष्ट्वा समागतं पापं वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥६२६॥
प्रकृतिश्राद्धमात्रस्य दर्श एव न चापरः।
पितृयज्ञमुखादेव प्रकृतित्वं तदीरितम् ॥६२७॥
तत्रैव विहितोऽयं हि पितृयज्ञः श्रुतीरितः।

दर्शाब्दिकौ तुल्यौ

दर्शो मृताहस्य समो न कदाचित्तु शक्यते ॥६२८॥
येन केनापि वा त्यक्तुं तत्त्यागी चेत्पतत्यधः।
पित्रोर्मृताहस्त्वन्नेन कार्यः स्यात्तु न चान्यतः ॥६२९॥
न हेमान्नेन होमेन पिण्डदानेन मन्त्रतः।
अर्घ्येण शर्णमन्त्रैर्वा न दुःखेन तदाचरेत् ॥६३०॥
किं त्वग्नौकरणाद्ब्रह्मभोजनात्पिण्डदानतः।
कृतं भवति तत्कर्म न चेच्चण्डालतां व्रजेत् ॥६३१॥

दर्शाब्दिकौ न त्याज्यौ

मृताहोऽत्यजनीयः स्याद्दर्शश्चापि तथाविधः।
येन केन प्रकारेण शक्यते किल दुर्बुद्धेः ॥६३२॥

अकिंचनैर्दुर्बलैर्वा व्याधितैर्वा विशेषतः ।
बाधितैर्धावमानैर्वाऽज्ञातवासिभिरेव वै ॥६३३॥
नष्टक्रियैर्नष्टधनैर्मृतप्रायैस्तथापि वा ।
त्यक्तुं न शक्यते श्राद्धं मृताहाख्यं कथंचन ॥६३४॥
मृताहस्तादृशः क्लृप्तः प्रतिवर्षं च चान्द्रतः ।
मानेनैव भवेन्नूनमक्लृप्तोऽन्येन चेद्भवेत् ॥६३५॥
अत्यन्तावश्यको न स्यादक्लृप्तश्चेत्तु यो भवेत् ।
क्लृप्तस्यावृत्तिरित्येव मर्यादा शास्त्रसंमता ॥६३६॥
तिथ्यन्तो न तिथिस्तिथ्यांशे कृष्णेऽभोऽनलो महाः ।
तिथ्यर्द्धौ न शिवोऽग्रवोऽमातिथी मन्वादयः स्मृताः ॥६३७॥
मासास्तु क्लृप्ता इत्युक्तास्ततश्च क्रान्तयः स्मृताः ।
सूर्यराशिक्रमणतश्चाऽक्लृप्ता इत्युदीरिताः ॥६३८॥

संक्रान्तिस्वरूपम्

अयने द्वे च विषुवो चतस्रः षडशीतयः ।
चतस्रो विष्णुपदस्य संक्रमा द्वादश स्मृताः ॥६३९॥
स्थिरभेष्वर्कसंक्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया ।
षडशीतिमुखं ज्ञेयं द्विःस्वभावेषु राशिषु ॥६४०॥
सौम्ययाम्यायने नूनं अयने मृगकर्कटौ ।
तुलामेषोभयं ज्ञेयं विषुवं सूर्यसंक्रमे ॥६४१॥

संक्रान्तिपुण्यकाल.

अर्के संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् ।
रात्रौ संक्रमणे भानोर्व्यवस्था सर्वकर्मसु(सरस्वते) ॥६४२॥

शीतगाभ्यायनहन्द्रे त्रिंशत् इति वै जगुः।
अगस्त्यास्याप्य तत्कालं पुण्यकाल उदाहृतः ॥६४३॥
संक्रान्तिष्वपि सर्वासु तत्कालः पुण्यदः स्मृतः।
या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः ॥६४४॥
अयने द्वे च विषुवे चतस्रः षडशीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रमा द्वादश स्मृताः ॥६४५॥
त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः।
वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥६४६॥
षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्ताः प्रणाडिकाः।
पुण्याख्या विष्णुपद्यां च प्राक् पश्चादपि षोडश ॥६४७॥
अर्धरात्रात्तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने।
पूर्वमेव दिने कुर्यादुत्तरायण एव वै ॥६४८॥

अन्नश्राद्धे कुतपः

यत्तु पैतृकं कर्म श्राद्धमन्नेन चेत्पुनः।
कुतपे तद्धि कुर्वीत वह्निरस्य तु वेदयम् ॥६४९॥
विधिः ख्यातो न सन्देहो धर्मविद्भिः सनातनैः।
ओदनश्राद्धमात्रस्य संक्रान्तीनां च क्रमशः ॥६५०॥
द्वादशानां तथान्येषां कुतपो मुख्य उच्यते।
तद्भिन्नस्नानदानादितर्पणादिषु ते स्मृताः ॥६५१॥
तदा तदा तु विहिता एवे कालविशेषकाः।
श्राद्धवर्तुस्तु सर्वत्र कृतिनः काल एककः ॥६५२॥

कुतपो वेदवचसा मुख्यः प्रोक्तो न चेतरः।
सोऽपि यस्मिन् दिने सम्यग्दक्षिणायनकालकः ॥६५३॥
तमुत्तरायणे कुर्यादुत्तरायणमेव हि।
कुतपस्य तु यत्र स्याल्लोभपूर्वं तथाचरेत् ॥६५४॥

दर्शसंक्रान्त्यादिश्राद्धानि

संक्रान्तियुग्मश्राद्धादिकृत्यं सर्वं यथा क्रमेण।
औत्तरे ह्ययने सम्यक् कुतपेऽस्मिन् तथाऽऽचरेत् ॥६५५॥
संक्रान्तिमात्राः कथिता अक्लृप्ता इति सूरिभिः।
एवं धृतिश्च पातश्च षड्विंशतिकसंख्यया ॥६५६॥
कथिताः किल सर्वाण्यप्यक्लृप्तान्येव केवलम्।

महालयः

महालया बहुविधाः पूर्वं पञ्चदशेति वै ॥६५७॥
षोडशेति केचित्तु दशेति च तथापरे।
पञ्चेति त्र्यं चेति एकमेवेति केचन ॥६५८॥
षोढा ताः कथिताः मद्भिरष्टका द्वादश स्मृताः।
यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः ॥६५९॥
याम्या तिथिर्भवेत्सा तु गजच्छाया प्रकीर्तिता।

श्राद्धदेवताः

कर्माणि कानि ख्यातानि त्रिदैवत्यानि केवलम् ॥६६०॥
षड्दैवत्यानि कानि स्युर्नवदैवत्यकानि च।
नवादौ तु त्रिदैवत्यं मृताहश्चैक उच्यते ॥६६१॥

षड्दैवत्यस्तु दर्शः स्यादष्टका नवदेवताः।
अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च मृतेऽहनि ॥६६२॥
मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह।
पतिना सह कर्तव्यं पृथक्त्वेन कृते यदि ॥६६३॥
तत्पैतृकमहासङ्गसौख्यविघ्नकरं भवेत्।
पितृवर्गस्तु पूर्वं स्यान्मातृवर्गस्ततः परम् ॥६६४॥
ततो मातामहानां च वर्गोऽयं तत्क्रमश्रतः।

पितृभ्येऽप्रदक्षिणम्, शून्यललाटता च

पितृवर्गो यत्र पूर्वं तत्र स्यादप्रदक्षिणम् ॥६६५॥
अपसव्यं तथा शून्यललाटं प्रभवेदपि।
यत्र यत्राऽऽपसव्यं स्यात्तत्र तत्राऽप्रदक्षिणम् ॥६६६॥
तथा शून्यललाटं च प्रधानाङ्गे च तत्स्मृतम्।

तत्र गृहालंकारो न कर्तव्यः

यत्रैतत्त्रितयं तत्र गृहालंकरणं न [illegible] ॥६६७॥

मातृवर्गे प्रदक्षिणादि

मातृवर्गो यत्र पूर्वं तत्र स्यात्तु प्रदक्षिणम्।
सव्यं पुण्ड्रललाटं च मङ्गलस्नानमेव च ॥६६८॥
गृहालंकरणं चापि मङ्गलानि तथा पुनः।
पितॄणां च क्रमो मुख्यो भवत्यपि च सन्ततम् ॥६६९॥
प्रपितामहपूर्वं स्यात्तत्पितामहमध्यकम्।
पित्रन्त एव कथितं तदुच्चारणलक्षणम् ॥६७०॥

श्राद्धभेदेन विश्वेदेवाः

तेषां च विश्वेदेवास्ते सत्यसंज्ञिकनामकाः।
सर्वत्र वृद्धशब्दश्च प्रयोक्तव्यश्चतुर्ष्वपि ॥६७१॥
तथैव मातृवर्गेऽपि तार्तीयीके च वर्गके।
अननक्रमतश्चेदं तेषामुच्चारणं भवेत् ॥६७२॥
एतद्विरुद्धं तत्सर्वं तद्विरुद्धमिदं परम्।
निःशेषमिति बोद्धव्यं ते सर्वे देवताः किल ॥६७३॥
वसवः पितरोऽत्र स्यू रुद्राश्चापि पितामहाः।
प्रपितामहाश्च कथिता आदित्या इति तद्गणाः ॥६७४॥

सापिण्ड्यनिरूपणम्

एतत्त्रयात्पूर्वकस्य चतुर्थस्य सकृत्किल।
श्राद्धस्य करणं प्रोक्तं पाथेयाख्यस्य सूरिभिः ॥६७५॥
तदेवं सप्तपूर्वाख्यं सापिण्ड्यस्य निरूपणम्।

आशौचं च दशत्रिदिनमेकदिनम्

यावत्तु सूतकं सर्वं तज्ज्ञानां संप्रकीर्तितम् ॥६७६॥
समानोदकसंज्ञाश्च ततो भूयः सगोत्रिणः।
तदूर्ध्वमिति विज्ञेयं तेषां तत्सूतकं ततः ॥६७७॥
त्रिदिनं चैकदिवसं पश्चात्स्नानं च बोधितम्।
क्रमेणैव परं यावच्चावत्पर्यन्तमेव वै ॥६७८॥
स्नानमात्रं च कथितं प्रसंगादिदमीरितम्।
जीवच्छ्राद्धं तु तत्प्रोक्तं सर्वश्राद्धविलक्षणम् ॥६७९॥

[illegible] त्रिंशद्वै [illegible] पञ्चदर्शकाः ।
पुनः सप्तैतं [illegible] स्मृतम् ॥६८०॥
श्राद्धानि कानिचिद्भूयो देवतासहितान्यपि ।
अदैविकानि च पुनस्तानीमानि च भण्यते ॥६८१॥
वृद्धिश्राद्धं गयाश्राद्धं पूनश्राद्धं तथैव च ।
दधिश्राद्धं मृणश्राद्धममाद्दीन्यखिलान्यपि ॥६८२॥
सदैविकानि स्यातानि प्रेतश्राद्धानि कृत्स्नशः ।
अदैविकानि प्रोक्तानि सोदकुम्भानि कृत्स्नशः ॥६८३॥

अमादिश्राद्धे कर्तव्यानि

प्रेतश्राद्धेषु सर्वत्र संकल्पो मुख्यतः स्मृतः ।
अभ्यनुज्ञापि परमा सा चात्राऽऽवाहनं मतम् ॥६८४॥
सपाद्यार्घ्यगन्धधूपदीपपुष्पाणि केवलाः ।
तिलाः सर्वत्र तूष्णीकाः कृत्स्नं वेदमनुं विना ॥६८५॥
तत्र पूजा प्रकर्तव्या पिण्डदानं च दक्षिणा ।
आवश्यक्यत्र परमा दद्यात्स्वे वस्त्रमेव च ॥६८६॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत कुर्वन् नावलोकयेत् ।
पिण्डानि वायसेभ्यो वा गृध्रेभ्यो वा निवेदयेत् ॥६८७॥
न चेज्जलचरेभ्यो वा नान्यत्र तु विनिक्षिपेत् ।

एकोद्दिष्टाधिकारिणः

भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥६८८॥
मित्राय गुरवे श्राद्धं पितुर्मातुः स्वसुस्तथा ।
प्रव्रजाय श्यालकाय चैकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥६८९॥

अपिण्डकानि सपिण्डकानि च श्राद्धानि

युगक्रान्तिमनुश्राद्धं प्रेतश्राद्धादिकं तथा।
अपिण्डकानि ख्यातानि सपिण्डानीतराणि च ॥६६०॥
महालयषोडशत्वे गजच्छायाऽत्र नो भवेत्।
पञ्चवत्त्वसंख्यायै सा हि पञ्चदशात्वतः ॥६६१॥
यथा कया संख्यया वा तया षड्विधया भवेत्।
महालयत्वस्य सिद्धिर्विशेषे तु फलं तथा ॥६६२॥
सर्वत्रैवं समाख्याता प्रयासाधिक्यतः फलम्।
प्रभवत्येव सुमहन्नात्र कार्या विचारणा ॥६६३॥

महालयः

महालयः पाक्षिकोऽयं द्विविधः परिकीर्तितः।
एकविप्रानेकविप्रभेदेन किल तत्र वै ॥६६४॥
एकविप्राख्यपक्षस्य स्वरूपं वच्मि पूर्वतः।
महालयानां सर्वेषामापक्षान्तस्य केवलम् ॥६६५॥
ये कृताः प्रथमदिवसे चान्येषां च केवलम्।
त एव नान्ये कर्तव्याः पक्षान्ते श्राद्धदक्षिणा ॥६६६॥
एकदैव हि देया स्यान्न देया स्यात्तदा तदा।
अनेकविप्रपक्षे तु प्रतिनित्यं च बाडवाः ॥६६७॥
भिन्नभिन्नाः प्रकर्तव्याः प्रतिनित्यं पृथक् पृथक्।
दक्षिणा च प्रदातव्या प्रतिपूर्वं पृथक् पृथक् ॥६६८॥
प्रतिवर्गं न चेद्विप्रा वरणीया विधानतः।
षड्दैवत्यं तु सर्वत्र नवदैवत्यमेव वा ॥६६९॥

ख्यातो महालयः सद्भिः षड्विधोऽपि महालयः।
एवमेव प्रकर्तव्यो नान्यथा तं समाचरेत् ॥७००॥

सकृन्महालयः

चरेद्यदि विशेषेण नानादैवतकेन वै।
सकृन्महालयः सोऽयं स भवेत्किं तु स स्मृतः ॥७०१॥
गयाश्राद्धसमः कोऽपि कथितः परमो महान्।
अनिर्वाच्योऽखिलैः शास्त्रैर्महाश्राद्धविशेषकः ॥७०२॥
तादृशश्राद्धकर्तापि षड्दैवत्येन संयुतम्।
नवदैवतकेनापि विष्णुना वा समन्वितम् ॥७०३॥
धुरिलोचनसंयुक्तं कुर्याच्छ्राद्धं महालयम्।
सकृत्पक्षेण वा पूर्वप्रोक्तपक्षेषु येन वा ॥७०४॥
पक्षेण केनचित्कुर्यात् स महालयकृद्भवेत्।
न चेत्तयं गयाश्राद्धतुलितं यं च कंचन ॥७०५॥
पुण्यं श्राद्धविशेषं वै कुर्यादियेति सा श्रुतिः।

महालयस्य भरण्यादीनां श्लाघ्यत्वम्

दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपञ्चकम् ॥७०६॥
दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये [illegible] विंशतिः।
द्वादश्यां शतमित्याहुरमायां तु सहस्रकम् ॥७०७॥

महालयकालः

आषाढीमवधिं कृत्वा यस्याः पक्षस्तु पञ्चमः।
महालय इति प्रोक्तः पितृणां श्राद्धसंपदे ॥७०८॥

यतीनां महालयः

तत्र पक्षे यतीनां तु द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत् ।

दुर्मृतानाम्

चतुर्दश्यां विशेषेण दुर्मृतानां चरेत्क्रियाम् ॥७०९॥

सुमङ्गल्याः

सुमङ्गलीनां कथितं नवम्यां श्राद्धमेककम् ।
अष्टोत्रियकल्याणां यावत्तद्वर्षवर्तनम् ॥७१०॥
प्राणिलोके सतातत्तु कुर्याद्वा न तु वा द्वयम् ।
एवदस्ति सनुष्ठानं सकृन्महालये तु चेत् ॥७११॥
यावल्लौकिकधर्माः स्युस्तुलितस्तेन स स्मृतः ।
अतीतो यदि पक्षः स वह्निन्येऽपरपक्षके ॥७१२॥
यदन्यस्मिन् तादृशो वै तदन्यस्मिन् तथाविधे ।
यावत्तु वृश्चिकस्तिष्ठेत् तावत्तत्तु समाचरेत् ॥७१३॥
अदर्शने वृश्चिकस्य जाते तत्पितरः परम् ।
धनुर्मासे तु संप्राप्ते श्राद्धाकरणमीक्ष्य वै ॥७१४॥
सद्यः शापप्रदानायोद्युक्ता एव भवन्ति वै ।
तावदेव ततो भक्त्या श्राद्धं महालयाख्यकम् ॥७१५॥
विधिनैव प्रकुर्वीत न चेद्दोषो महान् भवेत् ।
येन केन प्रकारेण ततश्च श्राद्धमेककम् ॥७१६॥
कुर्यादेव पितुः श्राद्धतुल्यं प्रत्यब्दमेव वै ।

महालये परेऽहनि तर्पणम्

प्रत्यब्दधर्मा निखिलाः सकृन्महालयस्य ते ॥७१७॥

भवेयुरेव तस्मात्तु परेऽह्न्येव तर्पणम् ।
श्राद्धे यावन्त उद्दिष्टास्तत्परेऽहनि तान् यजेत् ॥७१८॥

रव्युदयात्पूर्वं तर्पणम्

तच्छेषतिलदर्भैस्तु पूर्वं सूर्योदयस्य वै ।
प्रनष्टपितृकश्चेत्तु तर्पणस्याधिकाययम् ॥७१९॥
स प्रनष्टप्रसूर्नित्यं तर्पणेऽधिकृतो भवेत् ।

जीवत्पितृकश्राद्धम्

मासिश्राद्धे पितृयज्ञे नान्दीश्राद्धे च सन्ततम् ॥७२०॥
जीवत्तातोऽपि कर्ता स्याद्वाहोमात्करणं स्मृतम् ।
पूर्वद्वये तु सततं नान्दीश्राद्धं तु सर्वदा ॥७२१॥
येषामेव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्तु तत्सुतः ।
ताते भ्रष्टे च संन्यस्ते रुग्णे रोगैकपीडिते ॥७२२॥
यत्कर्तव्यं तेन कर्म पैतृकं तत्सुतश्चरेत् ।

श्राद्धे वैदिकाग्न्यधिकारिणः

पित्रोः श्राद्धं स्वपत्न्याश्च सपत्नीमातुरेव च ॥७२३॥
मातामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धमौपासने भवेत् ।
वह्निभाजां तु सर्वेषां श्राद्धं स्याल्लौकिकानले ॥७२४॥
अपुत्राणां पितृव्याणां भ्रातॄणामग्रजन्मनाम् ।
तत्पत्नीनां च सर्वासां लौकिकाग्नौ यथाविधि ॥७२५॥
अवश्यत्वेन कर्तव्यं न त्याज्यं धर्मतोऽखिलैः ।
प्रत्यब्दं श्राद्धमात्रं स्यात् पितृश्राद्धसमानतः ॥७२६॥

अष्टकामासिश्राद्धम्

ाघकृष्णाष्टमी यस्यां रात्रौ कुर्यात्समन्त्रकम् ।
ोमं दध्यञ्जलिस्तस्यापूपस्य स्थानके ततः ॥७२७॥
यस्यां तु ततो भक्त्या श्राद्धं कुर्याद्विधानतः ।
ासिश्राद्धविधानेन तावन्मात्रेण केवलम् ॥७२८॥
ानि शिष्टानि सर्वाणि ह्येकादश किलाऽष्टकाः ।
वा एव भवेन्नूनं लघूपायोऽयमुच्यते ॥७२९॥
ष्टकासु यथा दर्शश्राद्धतोऽखिलपर्वकाः ।
श्राया इति तथा लघूपायः प्रकीर्तितः ॥७३०॥
ूर्वाणि पृथगेव स्युः कार्याणि नियमेन वै ।
अष्टोत्तराणि स्यातानि कदाचित्तु विशेषतः ॥७३१॥
असमर्थस्य तु प्रोक्तो लघूपायस्तु कश्चन ।
समर्थस्तु यथाकल्पं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥७३२॥
सर्वाणि कुर्याच्छ्राद्धानि न चेद्दोषश्च कीर्तितः ।

श्राद्धप्रयोगः

श्राद्धप्रयोगश्च मया कृत्स्न एवोच्यतेऽधुना ॥७३३॥

निमन्त्रणम्

निमन्त्रणं च पूर्वेद्युः प्रकर्तव्यं विधानतः ।

निमन्त्रणार्हाः

विप्राणां वेदिनां नित्यं कार्यं नाऽवेदिनां तराम् ॥७३४॥
कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते ।
कुलं तारयते तेषां दश पूर्वान् दशाऽपरान् ॥७३५॥
ु०

वेदाभ्यासी तु यो विप्रः सततं व्रतति स्थिरः ।
[illegible] ॥७३६॥

वेदहीननिमन्त्रणे

मन्त्रपूतं तु यच्छ्राद्धममन्त्राय प्रयच्छति ।
तदन्नं तस्य कृमिजं भवत्येव न संशयः ॥७३७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७३८॥
यावतः पिण्डान् ग्रसते स प्राश्नाति हविर्वोऽल्पकः ।
तावतः शूलान् ग्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम् ॥७३९॥
शाल्मलं च छिन्दन्ति जिह्वामलिनस्य च ।
पश्यतश्चक्षुषी चैव शृण्वतः श्रोत्रयुग्मकम् ॥७४०॥
दुर्लभाया स्वशाखाया भोक्तॄनन्यान्निवेदयेत् ।

स्वशाखीयः श्लाघ्यः

पित्रोः श्राद्धे विशेषेण स्वशाखीयान्निवेदयेत् ॥७४१॥
कन्यादानं पितृश्राद्धं शुद्धकच्छेभ्य एव च ।
प्रदेयं स्यात्प्रयत्नेन नासत्कच्छेभ्य एव वै ॥७४२॥

अभोज्याः

रोगयुक्तं दुष्टबुद्धिं दुश्चारित्रतत्परम् ।
सदोषकं च सद्वेषं कुनखं श्यावदन्तकम् ॥७४३॥
नित्याऽप्रयतचर्माणं दुर्वर्णं च कुरूपिणम् ।
नक्षत्रजीवनं दासकृत्यं शूद्रैकजीविनम् ॥७४४॥

शूद्रैकयाजकं शूद्रपुष्टं शूद्रनिकेतनम् ।
शूद्रप्रतिग्रहपरं नित्ययाचकमेव च ॥७४५॥
तथा षड्विकं क्रूरमात्मसंभाविनं शठम् ।
अतिमानिनमग्राह्यं निष्क्रियं वेदनिन्दकम् ॥७४६॥
वेदविक्रयिणं नित्यं ग्रामयाजकमेव च ।
ब्रह्मविद्वेषिणं चैव ब्रह्मस्वहरणोन्मुखम् ॥७४७॥
परदारपरं दुष्टं परदारैकचिन्तकम् ।
सकभार्यं दत्तपुत्रं पुत्रविक्रयिणं तथा ॥७४८॥
मातापित्रोरुपोष्टारं गुरुद्रोहिणमेव च ।
धनसंग्रहणोद्युक्तमानसं धनिनं कटुम् ॥७४९॥
निर्दयं दानविमुखं नास्तिकं परदूषकम् ।
मणिकारस्वर्णकाररजकादिपुरोहितम् ॥७५०॥
अधिकाशमनृतं च दुर्वादं दाम्भिकं जडम् ।
वेदकर्मत्यागपूर्वशास्त्रमात्रकृतश्रमम् ॥७५१॥
नास्तिकं किंभविष्यन्तमृणिनं त्यक्तवेदकम् ।
त्यक्तस्नानं त्यक्तसंध्यं निवृत्तक्षुरकर्मकम् ॥७५२॥
कृतार्धक्षुरकर्माणं तुच्छं विकसितमेहनम् ।
पङ्गुं कुब्जं तथा चान्धं बधिरं भ्रान्तमुल्बणम् ॥७५३॥
उन्मत्तं दुर्बलं खञ्जं कोपिनं कुनखं रतम् ।
कुण्डकं गोलकं व्रात्यमशुचिं परसूतकम् ॥७५४॥
पराग्निनं पराधीनं कर्षकं वार्धुषिं वृषम् ।
नृपवृत्तिं वैश्यवृत्तिं शूद्रवृत्तिं दुराशयम् ॥७५५॥

वेदाध्यायी तु यो विप्रः सततं ब्रह्मणि स्थितः।
साचारः साग्निहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः ॥७३६॥

वेदहीननिमन्त्रणे

मन्त्रपूतं तु यच्छ्राद्धमनाम्नाय प्रयच्छति।
तदन्नं तस्य कुक्षिस्थं रुदत्येव न संशयः ॥७३७॥
शपत्येनं प्रदातारं स्वस्य तं तादृशं किल।
यजनं च प्रदातारं तदन्नं तदुदरि स्थितम् ॥७३८॥
यावतः पिण्डान् खलु स प्राश्नाति हविषोऽल्पकः।
तावतः शूलान् ग्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम् ॥७३९॥
दातृहस्तं च छिन्दन्ति जिह्वामनितरस्य च।
पश्यतश्चक्षुषी चैव शृण्वतः श्रोत्रयुग्मकम् ॥७४०॥
दुर्लभायां स्वशाखायां भोक्तृनन्यान्निवेदयेत्।

स्वशाखीयः श्लाघ्यः

पित्रोः श्राद्धे विशेषेण स्वशाखीयान्निवेदयेत् ॥७४१॥
कन्य ानं पितृश्राद्धं शुद्धकच्छेभ्य एव च।
प्रदेयं स्यात्प्रयत्नेन नासत्कच्छेभ्य एव वै ॥७४२॥

अभोज्याः

रोगयुक्तं दुष्टबुद्धिं दुष्टचारित्रतत्परम्।
सद्दोषकं च सद्वेषं कुनखं स्यात्तदन्नकम् ॥७४३॥
नित्याऽप्रयतकर्माणं दुर्वर्णं च कुरूपिणम्।
नक्षत्रजीवनं दासकृत्यं शूद्रैकजीविनम् ॥७४४॥

शूद्रैकयाजकं शूद्रपुष्टं शूद्रनिकेतनम् ।
शूद्रप्रतिग्रहपरं नित्ययाचकमेव च ॥७४५॥
तथा पद्यविक्रं कूरमात्मसंभाविनं शपम् ।
अतिमानिनमग्राह्यं निष्क्रियं वेदनिन्दकम् ॥७४६॥
वेदविक्रयिणं नित्यं ग्रामयाजकमेव च ।
ब्रह्मविद्वेषिणं चैव ब्रह्मस्वहरणोन्मुखम् ॥७४७॥
परदारपरं दुष्टं परदारैकचिन्तकम् ।
त्यक्तभार्यं दत्तपुत्रं पुत्रविक्रयिणं तथा ॥७४८॥
मातापित्रोरुपोष्टारं गुरुद्रोहिणमेव च ।
धनसंग्रहणोद्युक्तमानसं धनिनं कटुम् ॥७४९॥
निर्दयं दानविमुखं नास्तिकं परदूषकम् ।
मणिकारस्वर्णकाररजकादिपुरोहितम् ॥७५०॥
अधिकाशमनन्नं च दुर्वादं दाम्भिकं जडम् ।
वेदकर्मत्यागपूर्वशास्त्रमात्रकृतश्रमम् ॥७५१॥
नास्तिकं भिन्नविप्यन्तमृणिनं त्यक्तवेदकम् ।
त्यक्तस्नानं त्यक्तसंध्यं निवृत्तक्षुरकर्मकम् ॥७५२॥
कृतार्धक्षुरकर्माणं तुच्छं विकसितमेहनम् ।
फल्गुं कुब्जं तथा चान्धं बधिरं भ्रान्तमुल्बणम् ॥७५३॥
उन्मत्तं दुर्बलं सन्नं कोपिनं कुनखं रतम् ।
कुण्डकं गोलकं व्रात्यमशुचिं परसूतकम् ॥७५४॥
परान्निनं पराधीनं कर्पकं वार्धुषिं नृपम् ।
नृपवृत्तिं वैश्यवृत्तिं शूद्रवृत्तिं दुराशयम् ॥७५५॥

अगम्यागमनं भार्यामद्योपजीविनं च ।
तथैव गर्भिणीनाथमभोज्यान्नं दुरागमम् ॥७५६॥
अधोत्रिपसुतं कानकूवरं च दुरात्मम् ।
गायकं शशिनं भृत्रभाषिणं गुरुभारकम् ॥७५७॥
द्यूतकारं नटं नास्तिकं कुण्डस्यकम् ।
शूद्रजीवं कार्यजीवं नित्यंगानजीविनम् ॥७५८॥
न भोजयेत्प्रयत्नेन निमन्त्रणदिनात्परम् ।
दिनत्रयं वर्जयित्वा (त्वा) कुर्याद्वविचयंगा ॥७५९॥
अनुमासिकभोक्तारं पक्षमात्रं परित्यजेत् ।
ऊनमासिकभोक्तारं मासमात्रं परित्यजेत् ॥७६०॥
नवश्राद्धे वर्षमात्रं नवश्राद्धे वर्षकम् ।
षोडशे सार्धवर्षं तु सपिण्डे च द्विवत्सरम् ॥७६१॥
वर्जयित्वा द्विजं पश्चाद्ग्राह्येच्छ्राद्धकर्मणि ।
शूद्रामश्राद्धगं सम्यक् त्यजेद्वर्षत्रयं तथा ॥७६२॥
नृपवैश्यश्राद्धभिक्षाभक्षकं सन्ततं वराम् ।
वर्जयेदब्दमात्रं तु ग्रामचण्डालकर्मसु ॥७६३॥
आमश्राद्धगृहीतारं तद्दिने नावलोकयेत् ।
दिवारात्रमसंभाष्यो दिवाकीर्त्यपुरोहितः ॥७६४॥
पुण्यकाले त्वसंभाष्यः कुलालानां पुरोहितः ।
भानुवारे भौमवारे शुक्रवारे च सन्ततम् ॥७६५॥
असंभाष्यः प्रयत्नेन परसौनपुरोहितः ।
पर्वणोर्योगकालेषु द्विजवेश्यापुरोहितः ॥७६६॥

नावेक्ष्या एव चैते वै यदि दृष्टास्तदा तदा ।
अग्नेर्मन्त्वेऽनुवाकस्य पठनात्कृतकृत्यता ॥७६७॥
तीर्थप्रतिग्रही दृष्टो यदि श्राद्धदिने तराम् ।
तीर्थजीवी तदावासी तत्पुरोहित एव च ॥७६८॥
यदा दृष्टस्तदा सूर्यं पश्येमेति विलोकयेत् ।

वरणम्

त्रिपूर्वपर्यावृत्तान्तः स्पष्टो यस्य भवेत्तराम् ॥७६९॥
तादृशं प्रयतं दान्तमलोलुपमदाम्भिकम् ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टं श्रोत्रियं वेदिनं शुचिम् ॥७७०॥
नित्याग्निं पूर्ववयसं सुधियं सत्कुलोद्भवम् ।
तस्मात्प्रत्युपकारैकरहितं सुमुखं द्विजम् ॥७७१॥
समीक्ष्य वरयेत्सम्यग्ब्राह्मणं श्राद्धकर्मणि ।
आदौ संकल्प्य प्रयतः सपवित्रकरस्तथा ॥७७२॥
दर्भपाणिः कृतप्राणायामोऽत्वरतरस्तराम् ।
अक्रोधनश्च सुमुखो वाचा संकल्पमाचरेत् ॥७७३॥
देशं कालं च संकीर्त्य तथा च प्रकृते ततः ।
पितॄन् देवान् प्राकृतान्वै समुद्दिश्य च प्राकृतम् ॥७७४॥
करिष्ये कर्म चैवेति संकल्पं प्रथमं चरेत् ।

प्रसादाय दर्भदानम्

विश्वेषामत्र देवानां स्थानमाहवनीयके ॥७७५॥
क्षणं कृत्वा प्रसादोऽद्य करणीय उदीर्यते ।
इत्येवं दक्षिणे हस्ते दद्याद्दर्भान् द्विजस्य वै ॥७७६॥

तत्र निक्षिप्य तथाम्भस्तद्धस्तेऽर्घ्यं प्रदापयेत्।
आवाहनं च तत्पूर्वं परं वा तत्कृताकृतम् ॥७९५॥
यदि कर्तव्यधीः स्याच्चेत्तदा व्याहृतिभिश्चरेत्।
या दिव्या इति वा नो चेद्देवा वोऽर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥७९६॥
दद्यात्तमर्घ्यं देवेभ्यः पितृभ्यश्च क्रमेण वै।
आवाहने विश्वेदेवा उशन्तस्त्वेति युग्मकम् ॥७९७॥
उभयत्र प्रकथितं केचनात्रापरामृचम्।
विश्वेदेवास इत्येकां विश्वेदेवेति वै पराम् ॥७९८॥
आगच्छन्त्विति तां चापि देवार्थे प्रजपन्ति वै।
पितृस्थान उशन्तस्त्वा आयन्तु न इतीव वै ॥७९९॥
प्रजपेयुः केचनात्र तदेतत् कथितं परम्।
कृताकृतं प्रकथितमनुक्तावाधकं न तु ॥८००॥
वेदमात्रानुक्तितस्तु गन्धाक्षतयवादिकम्।
धूपदीपदुकूलादि कृत्स्नं यज्ञोपवीतकम् ॥८०१॥
सर्वं व्याहृतिभिर्दद्यात्तूष्णीं वा तद्यथारुचि।

अग्नौकरणम्

ततोऽग्नौ करणं कुर्याद्यदि पूर्वं स्वसूत्रतः ॥८०२॥
अनुक्तमन्त्रैः काश्चित्तु कृताः स्युस्ताः क्रियास्ततः।
तत्पूर्वं कृतसंकल्पकर्ममध्याधिकत्वतः ॥८०३॥

पुनःसंकल्पप्रकरणम्

यत्किंचिद्द्विगुणीभूयात् तद्द्वैगुण्यत एव वै।
पुनः संकल्पयित्वैव तदर्थकक्रियां चरेत् ॥८०४॥

सर्वत्रैवं विजानीयात् तत्तत्संकल्पकर्मसु ।
चेदेकस्य संकल्प एकधैव भवेद्धि वै ॥८०५॥
आसमाप्तेर्विधानेन प्रकृते पंक्तिके किल ।
अनुधमन्त्रपठनात् पुनः संकल्पमाचरेत् ॥८०६॥
यद्युक्तमन्त्रमात्रेण यत्कर्म चलति स्थले ।
तत्कर्ममध्ये न पुनः संकल्पः प्रभवेद्धि वै ॥८०७॥
तस्मात्संकल्पयित्वाऽथ चाग्नौकरणमारभेत् ।

परिवेषणप्रकारपौर्वापर्यम्

संपरिस्तीर्य विधिना दर्भैर्दक्षिणाग्रकैः ॥८०८॥
अन्नमादाय पश्चात्तु चोपस्तीर्य ततः पुनः ।
मेक्षणेनान्नमादाय मन्त्रमेतं धुवीरितम् ॥८०९॥
प्रविकल्पैकपठितं सोमायेति हुनेद्धविः ।
तथैवेत्र यमायेति अग्नयेति च तत्परम् ॥८१०॥
इदंरत्यागमात्रं च प्राचीनावीतिनेव वै ।
समुचार्य पुनश्चैव परिषिच्याप्रदक्षिणम् ॥८११॥
अमन्त्रकं विधानेन तदन्नं शिष्टमुत्तमम् ।
अन्नं क्षिपेद्भिन्नपात्रे कृत्वा हस्तोदकं ततः ॥८१२॥
दैवपात्रेऽभिघार्याथ पूर्ववच्च विधानतः ।
अन्नं च पायसं भक्ष्यं व्यञ्जनानि फलानि च ॥८१३॥
पयो मधु घृतं चान्ते सूपं च परिवेषयेत् ।

अथ सूपदाने

यदि सूपादथ पुनर्वसु स्वकाःपरिवेषितम् ॥८१४॥

तद्राक्षसं भवेच्छ्राद्धं तथा तस्मान्न चाचरेत्।

रक्षोघ्नमन्त्रम्

अन्नमाज्येनाभिघार्य गायत्र्या प्रोक्ष्य तत्परम् ॥८१५॥
दर्भिनान्नं (दर्भेणान्नं) च प्रच्छाद्य चाहमस्मीति सूक्तकम्।
प्रपठेदत्र विधिना राक्षोघ्नश्रुतिमध्यगम् ॥८१६॥

येन केनाप्युच्चारणमसमर्थस्य

स्वयं यद्यसमर्थश्चेन्मन्त्रोच्चारणकर्मणि।
येन केन च विप्रेण वाचनीयं प्रयत्नतः ॥८१७॥
एते मन्त्रा वाच्यमाना अश्रोत्राः क्रिय कर्मणि।
राक्षसानां विनाशाय वेदघोषः प्रशस्यते ॥८१८॥
स घोषो ब्राह्मणैः कर्तुं शक्यते प्रकृते क्रिये।

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तथा घोषः प्रकर्त्तव्यः स्वयं परमुखात्तथा।
यत्नात्कारयितव्यश्च न चेद्दोषो महान् भवेत् ॥८३४॥
वेदोच्चारणसामर्थ्यविकलो यदि तत्करः।
नमो वः पितरो मन्त्रमात्रं भक्त्या जपेत्तु वै ॥८३५॥
इदं विष्णुर्व्याहृतीर्वा गायत्रीं वा विधानतः।
विष्णोरराटमन्त्रं वा गायत्रीं वैष्णवीमपि ॥८३६॥
न चेत्तु पौरुषं सूक्तमथवा तं त्रियम्बकम्।
आ वो राजानमन्त्रं वा मधुत्रयमथापि वा ॥८३७॥
नमो ब्रह्मण्यमन्त्रं वा दश शान्तिषु कामपि।
स्वाधीना तामृचं नो चेद्गायत्रीं सर्वशून्यदाम् ॥८३८॥
प्रतद्विष्णुमन्त्रमिरावती धेनुमतीति च।
यजमानः स्वयं प्रीत्यै पितृभ्यो प्रवदेत्तराम् ॥८३९॥
भोजनान्ते च संपन्नं प्रवदेत्पुरतः स्थितः।
तृप्ताः स्थेति द्विवारं तदुक्त्वा दद्यात्तदन्नकम् ॥८४०॥
तत्रैव विकिरेत्पात्रसमीपे तत्पुरः स्थितः।
उच्छिष्टपिण्डं च दद्यादुत्तरापोशनं ततः ॥८४१॥
सर्वाण्येतानि शिष्टानामाचारेण न चोदितः।
सूत्रकारस्य वेदस्य कृतेऽभ्युदयमुच्यते ॥८४२॥
अकृते प्रत्यवायो न पुनरन्यानि केवलम्।
तत्तत्क्रियाविशेषेषु तूष्णीकं वेदमन्त्रकैः ॥८४३॥
अत्रानुक्तैर्महाकालविलम्बो बाधकाय वै।
भवेदेव न सन्देहः श्राद्धमन्त्रो य ईरितः ॥८४४॥

अत्र पितरोऽमुत्र च अमी मद्मतः परम्।
ये समानास्ततो भूयो येन जातास्ततः परम् ॥८५५॥
वीरं धत्तेति तस्माद्‌घ्याघ्राय वा तत्परं पुनः।
मार्जयन्त्वेति मन्त्रेण पूर्ववच्च तिलोदकम् ॥८५६॥
दत्वाञ्जनाभ्यञ्जने च वासश्छित्वा विधानतः।
नमो व इति मन्त्रेण नमस्कारान् समाचरेत् ॥८५७॥
गृहान्न इति मन्त्रं च ऊर्जं वहन्तीमनु ततः।
उत्तिष्ठत पितरो मनो न्वाहुवेति मन्त्रकम् ॥६५८॥
पुनर्न इति भूयश्च यदन्तरिक्षमिति वै।
मन्त्रान् जप्त्वा क्रमेणैवं पिण्डांस्तान्पूजयेत्ततः ॥८५९॥
पितृपिण्डार्चनं यैस्तु क्रियते दर्भपत्रकैः।
तण्डुलैरक्षतैः पुष्पैस्तिलैरपि यवैस्तथा ॥८६०॥
प्रीणिताः पितरस्तेन यावच्चन्द्रार्कमेदिनी।

पुत्रकलत्रादिभिः पितृप्रदक्षिणनमस्कारः

वासोभिः पूजयेत्पिण्डान् यथाशक्त्या विचक्षणः ॥८६१॥
दक्षिणाभिश्च ताम्बूलैर्धूपदीपादिभिस्तथा।
प्रदक्षिणनमस्कारैः पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥८६२॥
कलत्रैः परिवारैश्च न चेत्तस्य कुलं तदा।
न वर्धते क्षीयते च काले काले शनैः शनैः ॥८६३॥
त एव पिण्डाः पितरस्तद्रूपेण स्थिताः परम्।
भवेयुः पूजनार्थाय नात्र कार्या विचारणा ॥ ॥८६४॥

अत्र पितरोऽमुत्र च अमी मद्‌मतः परम्।
ये समानास्ततो भूयो येन जातास्ततः परम् ॥
वीरं धत्तेति त्वाप्याय्याय वा तत्परं पुनः।
मार्जयन्त्वेति मन्त्रेण पूर्ववच्च तिलोदकम् ॥
दत्वाञ्जनाभ्यञ्जने च वासश्छित्वा विधानतः।
नमो व इति मन्त्रेण नमस्कारान् समाचरेत् ॥
गृहान्न इति मन्त्रं च ऊर्जं वहन्तीमनु ततः।
उत्तिष्ठत पितरो मनो न्वाहुवेति मन्त्रकम् ॥६
पुनर्न इति भूयश्च यदन्तरिक्षमिति वै।
मन्त्रान् जप्त्वा क्रमेणैवं पिण्डांस्तान्पूजयेत्ततः ॥८
पितृपिण्डार्चनं यैस्तु क्रियते दर्भपत्रकैः।
तण्डुलैरक्षतैः पुष्पैस्तिलैरपि यवैस्तथा ॥८६०
प्रीणि[illegible]ाः पितरस्तेन यावच्चन्द्रार्कमेदिनी।

पुत्रकलत्रादिभिः पितृप्रदक्षिणनमस्कारः

वासोभिः पूजयेत्पिण्डान् यथाशक्त्या विचक्षणः ॥८
दक्षिणाभिश्च ताम्बूलैर्धूपदीपादिभिस्तथा।
प्रदक्षिणनमस्कारैः पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥८६
कलत्रैः परिवारैश्च न चेत्तस्य कुलं वराम्।
न वर्धते क्षीयते च काले काले शनैः शनैः ॥८६२
त एव पिण्डाः पितरस्तद्रूपेण स्थिताः परम्।
अर्घ्युः पूजनार्थाय नात्र कार्या विचारणा ॥ ॥८६३

श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यो न दद्यात्तु कदाचन ।

पितृभोजनपात्रस्य खननम्

पितुरुच्छिष्टपात्राणि श्राद्धे गोप्यानि कारयेत् ॥८
खनित्वैव विनिक्षिप्य यथा श्राद्धे न गोचरम् ।

सोदकुम्भम्

कृतेऽकृते वा सापिण्ड्ये मातापित्रोः परस्य वा ॥८
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ।
अदैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् ॥८७६
कुर्यादाब्दिकपर्यन्तं संकल्पविधिनान्वहम् ।
कुर्यादहरहः श्राद्धममावास्यां विना सदा ॥८७
यत्सोदकलशश्राद्धं न कुर्यादनुमासिके ।

प्रथमाब्दे न तिलतर्पणम्

प्रथमाब्दे न कर्तव्यं तिलतर्पणमित्यपि ॥८७

सपिण्डीकरणात्परं श्राद्धाङ्गतर्पणम्

यदेतत्तु कथितं वत्सराब्दे सपिण्डने ।
एकादशे द्वादशे वा सपिण्डीकरणं यदि ॥८७९
कृतं चेत्तत्पुरं सम्यक् सद्यः श्राद्धाङ्गतर्पणम् ।
कुर्वीतैव तथा दर्शं प्रतिमासं पृथक् पृथक् ॥८८०॥
अकृते तर्पणे भूयः पितरस्तस्य केवलम् ।
भवेयुर्दुःखिता घोरं पुनः प्रेतत्वशङ्कया ॥८८१॥

पितॄणां रजतं, देवानां स्वर्णम्

ततः श्राद्धैकसाद्गुण्यहेतवे दक्षिणां मुदा।
यथाशक्त्या प्रदद्याच्च पितॄणां रजतं परम् ॥८९३॥
हिरण्यं चापि देवानां वाजेवाजेति वै वदेत्।
उत्तिष्ठतेति पितरः अनुगच्छन्तु देवताः ॥८९४॥
इत्युद्वास्य च तान् पश्चाद्भक्षेपोऽखिलः पुनः।
क्रियतां किमिति प्रोक्ते चेष्टैः स उपभुज्यताम् ॥८९५॥
इत्युक्तस्तु ततो भूयः स्वादुपं सद इत्यतः।
उपस्थानं पितॄणां च कुर्यात्प्राञ्जलिना द्विजः ॥८९६॥
तेषां तामाशिषं गृह्य प्रणिपत्य विधानतः।
अनुव्रज्य विधानेन स्वगृहस्यान्तिमे त्यजेत् ॥८९७॥
न चेत्सर्वत्र ताः प्रोक्ताः परा कथाहुतयः शिवाः।
न चेत्तु वामदेवाय मन्त्रं परममुत्तमम् ॥८९८॥
प्रयत्नेन मनुना यद्वैगुण्यमागतम्।
कर्मण्ये पैतृकेऽस्मिन् ज्ञानाज्ञानत एव वै ॥८९९॥
कर्तृभोक्तृमहादोषद्रव्यकालादिसंभवाः।
लोभमोहाज्ञानचित्तकायद्रव्यविशेषजाः ॥९००॥
महापराधाः सुकृताः परीहारैश्च वर्जिताः।
सर्वे स्मरणात्तस्य महामन्त्रस्य वैभवात् ॥९०१॥
सद्यो विलयमायान्ति कर्मसाद्गुण्यमाप्नुयात्।
तस्मात्सर्वं नमाप्नु मनुमुत्तमम् ॥९०२॥

तथापि वैष्णवं धाम तत्क्षणात्प्रापितं भवेत्।
त्रिरात्रफलदा नद्यः पुण्ये तद्दयनद्वये ॥६१३॥
अर्धोदये महोदये चक्रिके ग्रहणे तथा।
पद्मकापिलषष्ठ्यां या पुनरन्येषु ताः पुनः ॥६१४॥
विधिप्रयत्नरचिताऽवगाहनजपादिकैः।
फलप्रदा हि सरितो न तथा जाह्नवी शिवा ॥६१५॥
दर्शनस्पर्शनध्यानैर्जन्तूनां जन्ममोचनी।
तदुत्तरक्षणाद्गङ्गा तद्भागतनुसंभवा ॥६१६॥
सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः।
दिनत्रयमसंस्पृश्यास्तत्रादौ याः सरिद्वराः ॥६१७॥

महानद्यः

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका।
तापी पयोष्णी विन्ध्या स्तुङ्गिणि सरिद्वराः ॥६१८॥
पावनी नर्मदा चैव यमुना च महानदी।
सरस्वती विशोका च वितस्ता च तथा पुनः ॥६१९॥
दक्षिणायनकाले तु संप्राप्ते चावगाहनात्।
परं त्रिदिनपर्यन्तं भवेयुस्ता रजस्वलाः ॥६२०॥
तु सा शम्भुमंजन्धाम्नित्यशुद्धा प्रकीर्तिता।
जाह्नवी सरितां मुख्या सर्वलोकैकपावनी ॥६२१॥
हारनी पावनी कामा कामनीया कलावती।
करका कटुघ्नी या नागदर्पैतामुपीयकात् ॥६२२॥

अद्यावधिरतप्रभृति वै याः काश्चन जनैः किल।
नदीति नित्यं कथ्यन्ते मन्यन्ते च तदा तदा ॥६३४॥
नदीगा. सिन्धुगा वापि पर्वतादिसमुद्भवाः।
यत्र कुत्रापि या जाताः क्षुद्रा दीर्घा जलैर्युताः ॥६३५॥
वर्षाजलाश्च खननजला लवणशम्बराः।
सर्वास्ताः कथिताः मद्भिर्मासान्ते स्यू रजस्वलाः ॥६३६॥
विशेषेणाधुना प्रोक्ताः सर्वासां सरितामपि।
प्रसंगात्तत्स्वरूपस्य माहात्म्यं च तथाविधम् ॥६३७॥
उत्तमायं विजानीयाद्या या नित्यजलाः पुनः।
उत्तमा इति ताः प्रोक्ता नदीनां सिन्धुसंगतः ॥६३८॥
आधिक्यं तत्प्रकथितं पुण्यक्षेत्रादिना तथा।
क्षेत्रं चापि तथा ज्ञेयं नदीयुग्मैकमेलनात् ॥६३९॥
खननोत्पन्नसलिला तन्न्यूना कथिता तथा।
खननाबाधिकजला तच्छ्रेष्ठा वै स्मृताखिलैः ॥६४०॥
पञ्चयोजनपर्यन्तप्रवहत्सलिलोत्तमा।
उत्पत्तिप्रभृतिस्थैर्यवहत्सलिलसंयुता ॥६४१॥
परमा चोत्तमा चेति सा गङ्गेति च कथ्यते।
नदीनां प्रवरा गङ्गा तज्जलं श्राद्धकर्मणि ॥६४२॥
पावनं परमं प्रोक्तं वमनं मधु चोच्यते।
तत्रैवपर्पटं साक्षात्पितॄणां दुःखवारकम् ॥६४३॥
खड्गपात्रं हि कुतपो दौहित्रो वा पुनः स्मृतः।
शिवनिर्माल्यतः श्राद्धवैगुण्यं तत्प्रशाम्यति ॥६४४॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शे

उच्छिष्टेन [illegible] संस्पृष्टो भुञ्जानः श्राद्धकर्मणि ।
शेषमन्नं तु नाश्नीयात्कर्तुः श्राद्धस्य का गतिः ॥६५४॥
तत्स्थाननामगोत्रेण ह्यासनादि तथार्चयेत् ।
अग्न्यागारं ततः कृत्वा पावकं जुहुयात्ततः ॥६५५॥
पुरुषसूक्तेन जुहुयाद्यावद्द्वात्रिंशदाहुतीः ।
होमशेषं समाप्याथ श्राद्धशेषं समापयेत् ॥६५६॥
अकृत्वा तु समीपे तु ब्राह्मणे वमनं यदि ।
पुनः पाकं प्रकुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि ॥६५७॥
उच्छिष्टस्पर्शनं ज्ञात्वा तत्पात्रं च विहाय च ।
तत्पात्रं परिहृत्याथ भूमिं समनुलिप्य च ॥६५८॥
तस्य शीघ्रं विधायैव सर्वमन्नं प्रवेष्टयेत् ।
परिषिच्य ततः पश्चाद्भोजयेन्न दोषकृत् ॥६५९॥

अन्योन्यस्पर्शे

श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानावन्योन्यं स्पृशतो यदि ।
द्वौ विप्रौ विसृजेदन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥६६०॥
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शे शुना शूद्रेण वा तथा ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥६६१॥
इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् ।
अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धं संपूर्णमेव हि ॥६६२॥
इन्द्राय सोमसूक्तेन भोजनेनेति च त्रयम् ।
विधानं कथितं सम्यग्व्यवस्था ह्यत्र चोच्यते ॥६६३॥

उपवासार्थः

उपावृत्तिस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह ॥६७३॥
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः।

अपुत्रासापिण्ड्यम्

पत्न्याः कुर्यादपुत्रायाः पत्युर्मात्रादिभिः सह ॥६७४॥
सापिण्ड्यमनुयाने तु जनकेन सहात्मजः।

अनुगमने

मृतं यानुगता नाथं सा तेन सह पिण्डनम् ॥६७५॥
अर्हति स्वर्गवासेऽपि यावदाभूतसंप्लवम्।
स्त्रीपिण्डं भर्तृपिण्डेन संयुज्य विधिवत्पुनः ॥६७६॥
त्रेधा विभज्य तत्पिण्डं क्षिपेन्मात्रादिषु त्रिषु।
भर्तुः पित्रादिभिः कुर्याद्भर्त्रा पत्न्यास्तथैव च ॥६७७॥
सपत्न्या वाऽसपत्न्या वा न भेद इति गोभिलः।

एकादशेऽहनि षोडशम्

केचिदत्र पृथक्प्रोचुस्तं पक्षं प्रवदाम्यहम् ॥६७८॥
एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ।
एकोद्दिष्टं षोडशं च पृथगेकादशेऽहनि ॥६७९॥
द्वादशेऽहनि संप्राप्ते पिण्डमेकं द्वयोः क्षिपेत्।
पितामहादिपिण्डेषु तं पितुर्विनियोजयेत् ॥६८०॥
केचित्तमेव पिण्डं तु द्वेधा कृत्वा ततः परम्।
उदग्भागगतं पिण्डं पितृवर्गे नियोजयेत् ॥६८१॥

म्रियमानं [illegible] भर्तारं दृष्ट्वा नारी पतिव्रता।
अनुगच्छेत्तयोः श्राद्धं पृथगेकादशेऽहनि ॥९९३॥
शिलाप्रतिष्ठापनादिकृत्यं सर्वं पृथक् पृथक्।
एकत्रैव प्रकुर्वीत पितुर्मातुः समन्त्रकम् ॥९९४॥
षोडशान्तं पृथक्कृत्वा सापिण्ड्यं द्वादशेऽहनि।
प्रेतत्वात्तु विमुक्तेन सह मातुः सपिण्डकम् ॥९९५॥

पत्पिण्डसंयोजनम्

स्त्रीपिण्डं भर्तृपिण्डेन संयुज्य विधिवत्पुनः।
त्रेधा विभज्य तं पिण्डं क्षिपेन्मात्रादिषु त्रिषु ॥९९६॥

मातुः सापिण्ड्याभावस्थलम्

अत्र विष्णुर्मतं स्वस्य सुलभायावदत्किल।
कृते पितुः सपिण्डत्वे मातुस्तु [illegible] सपिण्डनम् ॥९९७॥
पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत्।
स्त्रीणां पृथङ् न कर्तव्या सपिण्डीकरणक्रिया ॥९९८॥

दत्तेन पालकपितुः सापिण्ड्यम्

अन्यगोत्रप्रदत्तश्चेत्तनयः स्वपितुस्ततः।
पालकस्य प्रकुर्वीत तत्पित्रादिसपिण्डनम् ॥९९९॥

दत्तपुत्रकृत्यम्

विवादो नात्र कोऽप्यस्ति तादृग्दत्तसुतः पितुः।
स्वयं तद्भिन्नगोत्रोऽपि तद्गोत्रे योजयेच्च तम् ॥१०००॥

आग्निमस्तुतिः

... प्रयातु धर्मगः सर्वकर्मसु ।
... पञ्चमासात्पूर्वं प्रभृति कृत्स्नम्
... पञ्चमासात्पूर्वमेव तदा तदा ॥१०
... मधुरन्ने कथाः काश्चन सन्ततम् ।
... विज्ञेशि दिष्टान् काश्चिद्विशेषकान् ॥१
... गुडमुद्गादिकान् मधु ।
... काश्चिद्वस्त्रकार्पासकादिकान् ॥१
... स्थापयेत्नादिव्यचन्दनखण्डकम् ।
... गुग्गुलुं च निक्षिपेच्चावनीतले ॥१०१
... काश्चिद्गोपयेच्छ्राद्धहेतवे ।
... काश्चिद्यत्नेन भूम्यन्तर्भूतले तथा ॥१०१६
... दुकूलेषु पुनः कुम्भघटेषु च ।
स्थापयेन्निक्षिपेदेवं निखनेत्काश्चिदप्युत ॥१०१६॥
समीचीनानि वस्तूनि हृष्टमात्राणि चेत्तदा ।
श्राद्धार्थमिति निश्चित्य प्रोक्त्वा स्वीयैश्च केवलम् ॥१०
गोपयित्वैव यत्नेन स्थापयेत्पालयेदपि ।
...कथाकथाः पितरो नित्यमेव वै ॥१०१८॥
आशीर्भिरेनं सततं वर्धयन्त्यपि तारिताः ।

कथातृप्तिः

भवन्ति कथया स्वर्गे पितृलोके च तेऽनिशम् ॥१०१९॥
तृप्तिरेवैषां स्मृत्योक्त्या वचनादपि ।
... ॥१०२०॥

पश्चाद्दर्शं प्रकुर्वीत पित्रोरेवायमुच्यते ।

मृताहे मातामहादिश्राद्धसंभवे

मातामहस्य तत्पत्न्याः सापत्नीमातुरेव च ॥१०२९॥
पितुः श्राद्धसमत्वेन प्रोचुः किल महर्षयः ।
दर्शे समागतं मन्वादिकं श्राद्धं समाचरेत् ॥१०३०॥
दर्शसिद्धिस्तावता स्याद्दैवतैक्येन केवलम् ।
सपिण्डकमपिण्डं वा दैवतैक्ये पृथक् न तु ॥१०३१॥
कार्यं भवति तच्छ्राद्धं भिन्नदैवतके पुनः ।

नित्यनैमित्तिके प्राप्ते

पूर्वं नैमित्तिकं कार्यं प्रत्यब्दे यदि तत्तदा ॥१०३२॥
प्रत्यब्दमागतं प्रत्यासत्तियोगवशाच्चरेत् ।
पितुः श्राद्धं प्रथमतो मातुः श्राद्धं ततः परम् ॥१०३३॥
पश्चान्मातामहस्यापि तत्पत्न्याश्च ततः परम् ।
पश्चात्सपत्नीमातुः स्यात्पश्चात्पत्न्या प्रकीर्तितम् ॥१०३४॥
सुतभ्रातृपितृव्याणां मातुलादिक्रमात्स्मृतम् ।

दर्शे बहुश्राद्धसंभवे

पित्रादिभिन्नश्राद्धानां काम्यानां यदा पुनः ॥१०३५॥
दर्शादिष्वागतानां चेन्मृताहानां तदा परम् ।
दर्शादिकं समाप्यैव काम्यश्राद्धमाचरेत् ॥१०३६॥
केचित्पत्न्याः पितृव्यस्य तत्पत्न्याश्च समागमम् ।
दर्शादिषु मृताहं वै पूर्वं कृत्वा ततः परम् ॥१०३७॥



अल्पकालमृतायां तु तत्तद्ग्रामस्थितैरपि।
तथा तथा पालितो यो दैवाज्जीवन्प्रवर्धितः ॥१०४

दृष्टमात्रैर्वान्य एव विप्रगुप्त्यैव तैस्तराम्।
संरक्ष्याप्याध्यापितश्च ज्ञाताज्ञातैकगोत्रकः ॥१०४

अज्ञातमामतातादिर्ज्ञातजातिर्जनोक्तितः।
ततो विद्वान् महात्मा यो यतस्तात इति स्मृतिः ॥१

एवमेव तथान्योऽपि तथावस्थाप्रभेदतः।
यतोत्पत्तिस्तु कथिता अज्ञातग्रामसंभवः ॥१०५१॥

स्वजीवनप्रकारं यो बाल्ये द्वादशवार्षिकात्।
न वेत्ति नष्टजनको यतोत्पत्तिस्तु कथ्यते ॥१०५२

मातरं यो न जानाति स्वकीयजनशून्यतः।
तथा पित्रादिकान् सर्वान् प्रोच्यतेऽसौ यतः प्रभुः ॥१

त एते किल सर्वेऽपि विपत्कालसमुद्भवाः।
नष्टपित्रादिकजना दैवात्संप्राप्तजीवनाः ॥१० ४॥

यैश्च कैश्चिद्दृष्टमात्रैर्विप्रगुप्त्यैकपालितैः।
अवस्थाभेदतः सर्वे तत्तन्नामाङ्किताः स्मृताः ॥१०५५॥

चत्वारः कथिताः सद्भिरतिदुःखैकजीवितम्।
अतिबाल्ये ततो भूयो यौवने प्राप्तसंपदः ॥१०५६॥

दैवयोगेन विद्वांसः कर्मठाश्चापि वा भवन्।
पितुर्मृततिथिं यो वा ज्ञात्वा बाल्येन केवलम् ॥१०५७

स्वयमेव श्राद्धहेतोर्मार्गशीर्षे क्षमादिकम्।
शास्त्रदृष्ट्या समालोच्य सद्भिरुक्तोऽथवा गृणन् ॥१०५८

तेषां श्राद्धैककरणमेतेषां स्वस्य केवलम् ।
प्रत्यवायैकशून्याय न चेद्दोषो महान् भवेत् ॥१०६९॥
तत्संभूतमहादोषपरिहाराय वा न चेत् ।
प्राप्तये कर्मठत्वस्य न चेदस्य तु केवलम् ॥१०७०॥
श्राद्धत्यागात् प्रत्यवायो भवेत्तस्मात्तथाऽऽचरेत् ।
नित्यं तेषां मृताहेषु दानधर्मादिकं चरेत् ॥१०७१॥
विप्राणां भोजनात्पूर्वं नियमोऽयमुदाहृतः ।
दुरात्मनां विशेषेण पूर्ववद्दोषशान्तये ॥१०७२॥
श्राद्धभुक्तेः परं तेषां न कुर्याद्भूरिभोजनम् ।

श्राद्धाङ्गतर्पणं परेऽहनि

परेद्युर्वा प्रयत्नेन श्राद्धाङ्गतिलतर्पणम् ॥१०७३॥
सद्य एव प्रकर्तव्यं पूर्वं पश्चात्तु वा तथा ।
अभिश्रवणमेवं स्याद्दैवेनैव हि कारितम् ॥१०७४॥
नान्नसूक्तं त्यागकाले प्राचीनावीतिकं न तु ।
अग्नौकरणहोमेऽपि तथावश्यकमुच्यते ॥१०७५॥

उद्देशत्यागकाले सव्यम्

उद्देशत्यागकाले च सव्यमेव भवेद्धि वै ।

मधुवाताद्यन्ते न

मधुवातादिकं भुक्तेरन्ते नैव वदेदपि ॥१०७६॥

विकिरं न कुर्यात्

विकिरं नैव कुर्वीत नित्यकर्माणि यानि वा ।
तानि सर्वाणि सर्वत्र कृत्वा पुनरुं विधानतः ॥१०७७॥

स्वच्छन्दतः प्रदेयानि तावन्मात्रेण ते परम्।
अतितुष्टा महातुष्टाः परितुष्टाः प्रहर्षिताः ॥१०८८॥
पूजिताश्च भविष्यन्ति तस्माद्बालमनोरथम्।
पूरयेत्पितृतृप्त्यर्थं तद्दिनेषु विशेषतः ॥१०८९॥
तृप्ताः स्थेति तथा प्रोक्ते त्रिवारं पितृसूनुना।
भावयन्ति तदा ते वै चेतसा तु वयं तथा ॥१०९०॥
तृप्ता जातास्तथा त्वं च तृप्तो यदि तदा वयम्।
तृप्ता भूम न चेन्नोऽद्य का तृप्तिरिति वै तराम् ॥१०९१॥
दूयमानेन मनसा तिष्ठन्ति किल तेन वै।
सम्यग्भुञ्जीत वै पूर्वं यथा कुर्वन् भुजिक्रियाम् ॥१०९२॥
अतृप्ता एव नो ते स्युरिष्टैः पुत्रैश्च बन्धुभिः।
विप्रालंकरणे जाते गृहालंकरणं भवेत् ॥१०९३॥
पत्न्यादीनामलंकारः शिष्टब्राह्मणभोजनम्।
अन्येष भोजनं तेषां तद्दिने क्रियते तु यत् ॥१०९४॥
तत्सवं प्रीतये तेषां भवेदेव [redacted] चान्यथा।
यद्वा तद्वा प्रकर्तव्यं तत्तत्सवं प्रयत्नतः ॥१०९५॥
अनन्तरं विप्रभुक्तेः पित्रुद्वासनतः परम्।
तत्पूर्वं लवमात्रं वा यत्तु किञ्चिदपि स्वयम् ॥१०९६॥

तिलद्रोणत्रयः

तिलद्रोणत्रयं कुर्यात्तद्दिने समुपस्थिते ॥१०९७॥
भक्ष्यास्तिलमयाः कार्यास्तिलकल्कं विशेषतः।
तिलचूर्णं नैवेद्यं तिलभर्जनमद्युत ॥१०९८॥

सतिलैर्विद्यते श्राद्धं विना सर्वत्र केवलम्।
मुख्यद्रव्यैस्तिलैरद्भिः पैतृकं निखिलं भवेत् ॥११०

सर्वेषां कर्मणामाद्या आप एव विशेषतः।
परमाः कारणानीह तस्माद्ब्राह्मपुंगवाः ॥१११

अप एव समाश्रित्य वर्तन्ते तोयदा महत्।
जलं तत्रैव वर्तन्ते तदेव परमं स्थलम् ॥११११

प्रभूतैधोदकग्रामः सर्वदेशोत्तमोत्तमः।
नदीतीरं विशेषेण तच्छताधिकमुच्यते ॥१११२

तत्रैव सकला धर्मा अनुष्ठेया हि सन्ततम्।
नद्यो च सजला ज्ञेया न तच्छून्या कदाचन ॥१११३॥

इति पूर्वाङ्गिरसम्

इत्याङ्गिरसस्मृतौ पूर्वाङ्गिरसं समाप्तम्।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* आङ्गिरसस्मृतिः *(५)

उत्तराङ्गिरसम्

प्रथमोऽध्यायः

धर्मपर्षत्प्रायश्चित्तानां वर्णनम्

विश्वरूपं नमस्कृत्य देवं त्रिभुवनेश्वरम् ।
धर्मस्य दर्शनार्थाय अङ्गिरा इदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अथ प्रयाणां वक्ष्यामि प्रमाणं विधिमादितः ।
धर्मस्य पर्षदश्चैव प्रायश्चित्तक्रमस्य च ॥ २ ॥
प्रायश्चित्तं चतुष्पादं विहितं धर्मकर्तृभिः ।
परिषद्दशधा प्रोक्ता त्रिविधा वा समासतः ॥ ३ ॥
प्रमाणाभिहितं वस्तु सर्वमङ्गिरसा तदा ।
अप्रमेयप्रमाणस्य दुःखेनाधिगमो भवेत् ॥ ४ ॥
तस्मादङ्गिरसा पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं कृतम् ।
उपस्थानव्रतादेशाचर्याशुद्धिप्रकाशनम् ॥ ५ ॥
स धर्मस्तु कृतो ज्ञेय स्याधिप्रानक एव वै ।
चतुर्भिः साधनैश्चैव धर्मः प्रोक्तः सनातनः ॥ ६ ॥

कृत्वा पूर्वमुदाहार्यं यथोक्तं धर्मकर्तृभिः।
पश्चात्कार्यानुसारेण शक्त्या कुर्युरनुग्रहम् ॥ ७ ॥
यत्पूर्वमृषिभिः प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम्।
तत्प्रमाणं [illegible] सर्वेषां लोकधर्मानुवर्णनम् ॥ ८ ॥
न हि तेषामतिक्रम्य वचनानि महात्मनाम्।
प्रज्ञानैरपि विद्वद्भिः शक्यमन्यत्प्रभाषितुम् ॥ ९ ॥
स्वाभिप्रायकृतं कर्म विधिविज्ञानवर्जितम्।
क्रीडाकर्मेव बालानां तत्सर्वं स्यान्निरर्थकम् ॥ १० ॥
इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे उपोद्घातो नाम प्रथमोऽध्यायः।

द्वितीयोऽध्यायः

परिषद उपस्थानलक्षणम्

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि चोपस्थानस्य लक्षणम्।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशनमर्हति ॥ १ ॥
सद्यो निःसंशयः पापो न भुञ्जीतानुपस्थितः।
भुञ्जानो वर्धयेत् पापं परिषद्यत्र वर्तते ॥ २ ॥
संशये न तु भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः।
प्रमाणेनैव कर्तव्यं यावदाशासनं तथा ॥ ३ ॥
कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं तु वर्धते।
स्वल्पं वाऽथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ४ ॥

ते हि पापकृतां वैद्या बोद्धारश्चैव पाप्मनाम् ।
दुःखस्यैव यथा वैद्या सिद्धिमन्तो रुजायताम् ॥ ५ ॥
प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने श्रीमान् सत्यपरायणः ।
मृदुरार्जवसंपन्नः शुद्धिं यायाद्द्विजः सदा ॥ ६ ॥
सचेलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः परिषदं व्रजेत् ॥ ७ ॥
उपस्थानं ततः शीघ्रमार्तिमान् धरणीं व्रजन् ।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किंचिदुदाहरेत् ॥ ८ ॥
ततस्ते प्रणिपातेन दृष्ट्वा तं समुपस्थितम् ।
विप्राः पृच्छन्ति यत्कार्यमुपवेश्यासने शुभे ॥ ९ ॥
किं ते कार्यं किमर्थं वा किं वा मृगयसे द्विज ।
पर्षदि ब्रूहि तत्सर्वं यत्कार्यं हितमात्मनः ॥१०॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे परिषदुपस्थानं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

प्रायश्चित्तविधानवर्णनम्

सत्येन द्योतते राजा सत्येन द्योतते रविः ।
सत्येन द्योतते वह्निः सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
भूर्भुवःस्वस्त्रयोलोकास्तेऽपि सत्ये प्रतिष्ठिताः ।
अस्माकं चैव सर्वेषां सत्यमेव परा गतिः ॥ २ ॥

यदि चेदन्ततो सत्यं नियतं लभ्यते ध्रुवम्।
यद्गृहीतो ह्यनृतेन न च शुध्येत कर्हिचित् ॥३॥
सत्येनैव विशुध्यन्ति शुद्धिकामास्तु मानवाः।
तस्मात्तत्र हि यत्सत्यमादिमध्यावसानकम् ॥४॥
एवं तैः समनुज्ञातः सत्यं ब्रूयादशेषतः।
तस्मिन्निवेदिते कार्येऽपसार्यो यस्तु कार्यवान् ॥५॥
तस्मिन्नुत्सारिते पापे यथावद्धर्मपाठकाः।
ते तथा तत्र कल्पेयुर्विमृशन्तः परस्परम् ॥६॥
आप्तधर्मेषु यत्प्रोक्तं यच्च सानुग्रहं भवेत्।
परिषत् संपदश्चैव कार्याणां च बलाबलम् ॥७॥
प्राप्य देशं च कालं च यच्च कार्यान्तरं भवेत्।
परिषच्चिन्त्य तत्सर्वं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥८॥
सर्वेषां निश्चितं यत्स्याद्यच्च प्राणान्न पातयेत्।
आहूय श्रावयेदेको यः परिषन्नियोजितः ॥९॥
शृणुष्व भो इदं विप्र यत्त आदिश्यते व्रतम्।
तत्तद्यत्नेन कर्तव्यमन्यथा ते वृथा भवेत् ॥१०॥
यदा च ते भवेच्चीर्णं तदा शुद्धिप्रकाशनम्।
कार्यं सर्वप्रयत्नेन न शक्त्या विप्रपूजितम् ॥११॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे प्रायश्चित्तविधानं नाम
तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

परिषल्लक्षणवर्णनम्

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपोनिश्चयसंयोगात्प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ १ ॥
प्रायश्चित्तसमं चित्तं चारयित्वा प्रदीयते।
पर्षदा क्रियते यत्तत्प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ २ ॥
चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवेदाग्निहोत्रिणः।
ये तु सम्यक्स्थिता विप्राः कार्याकार्यविनिश्चिताः ॥ ३ ॥
प्रायश्चित्तप्रणेतारः सप्तैते परिकीर्तिताः।
एकविंशतिभिश्चान्यैः पार्षदत्वं समागतैः ॥ ४ ॥
सावित्रीमात्रसारैस्तु चीर्णवेदव्रतैर्द्विजैः।
यतीनामात्मविद्यानां ध्यायिनामात्मवेदिनाम्।
शिरोव्रतैश्च स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ ५ ॥
एवं पूर्वं मयाप्युक्तं तेषां ये ये परे परे।
स्वधृत्या परितुष्टानां परिषत्त्वमुदाहृतम् ॥ ६ ॥
एषा लघुषु कार्येषु मध्यमेषु च मध्यमा।
महापातकचिन्तासु शतशो भूय एव वा ॥ ७ ॥
अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः।
परिषत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ ८ ॥
जन्मशारीरविद्याभिराचारेण श्रुतेन च।
धर्मेण च यथोक्तेन ब्राह्मणत्वं विधीयते ॥ ९ ॥

चित्रकर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥१०॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे परिषद्वर्णं नाम
चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तनियन्तृकथनम्

चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥१॥
चतुर्णामपि वेदानां पारगा ये द्विजोत्तमाः ।
स्वैः स्वैरङ्गैर्विनाप्येते चातुर्वेद्या इति स्मृताः ॥२॥
धर्मस्य पर्षदश्चैव प्रायश्चित्तक्रमस्य च ।
त्रयाणां यः प्रमाणज्ञः स विकल्पी भवेद्द्विजः ॥३॥
शब्दे छन्दसि कल्पे च शिक्षायां चैव निश्चयः ।
ज्योतिषामयने चैव सनिरुक्तेऽङ्गविद्भवेत् ॥४॥
वेदविद्याव्रतस्नातः कुलशीलसमन्वितः ।
अनेकधर्मशास्त्रज्ञः पठ्यते धर्मपाठकः ॥५॥
ब्रह्मचर्याश्रमादूर्ध्वमाश्रमाद्वृद्ध उच्यते ।
एषामेव तु वृद्धानां य एते संप्रकीर्तिताः ॥६॥
परिषद्ब्राह्मणानां च राज्ञां सा द्विगुणा स्मृता ।
वैश्यानां त्रिगुणा चैव पर्षद्वच त्रयं स्मृतम् ॥७॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणानां तु क्षत्रियाणां च पाठकः ।
वैश्यानां चैव यो प्रभुः स एव व्रतदाः स्मृताः ॥ ८ ॥
अगुरुः क्षत्रियाणां तु वैश्यानां चाप्ययाजकः ।
प्रायश्चित्तं समादिश्य तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ९ ॥
एवमुद्दिश्य वर्णेषु क्षत्रियादिषु दर्शनम् ।
प्रवृत्तानां तु वक्ष्यामि प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥१०॥
शूद्रः कालेन शुध्येत गोब्राह्मणहिते रतः ।
दानैर्वाप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषणे रतः ॥११॥
अपि वा मार्गमालम्ब्य क्षत्रधर्मेषु तिष्ठतः ।
अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा ततोऽस्य व्रतमादिशेत् ॥१२॥
तस्माच्छूद्रं समासाद्य तथा धर्मपथे स्थितः ।
प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं धर्मवेदविवर्जितम् ॥१३॥
आपन्नो येन वा धर्मो व्रतं वा येन शुध्यति ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन संतार्यः सर्व एव हि ॥१४॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे प्रायश्चित्तनियन्तृकथनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

प्रायश्चित्ताचारकथनम्

पणे पर्षत्कल्पस्य कल्पस्य परिषद्बलम्।
कारिणश्चाप्युपस्थानं बलं सम्यङ्निवेदितम् ॥ १ ॥
अकल्पा परिषद्यत्र कल्पो वा परिषद्विना।
कार्यं वाप्यन्यथोक्तं वा शुद्धिस्तत्रास्य दुर्लभा ॥ २ ॥
परिषत्कल्पतो कार्या यथा सर्वे बलीयसः।
भवन्ति न तथा पापं तस्मिन् योगेऽवतीर्यते ॥ ३ ॥
एवमेतत्समासाद्य तद्योगं च प्रणश्यति।
महत्यां चाम्भसि क्षिप्तं यथाल्पलवणं तथा ॥ ४ ॥
एवंयोगप्रधानाय कार्याणि परिशोधने।
तद्द्रव्यं कर्मसंयोगाद्वस्त्राणामिव शोधने ॥ ५ ॥
यत्पापं शाम्यमानस्य कर्तुर्धर्मेण शास्त्रतः।
तद्गच्छति कात्स्न्र्येन भागशः प्रब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अन्तःप्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ७ ॥
गुरु राजा यमो वाऽपि शास्ता धर्मेण युज्यते।
शास्ता संमुच्यते पापाद्धन्तो भवतः शुभम् ॥ ८ ॥
प्रायश्चित्तं यदा चीर्णं ब्राह्मणे कृष्णकिल्बिषे।
धर्मं पृच्छामि नस्तेन तत्पापं क नु तिष्ठति ॥ ९ ॥
नैव गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पार्षदम्।
मारुतार्काग्निसंयोगात्प्रलयं तत्र शाम्यति ॥ १० ॥

देवाः श्वेताग्निना दग्धं पावकस्य तु धीमतः।
नश्यते नात्र संदेहः सूर्यदृष्टिर्हिमं यथा ॥११॥
मनुष्यात्पक्षतो यच्च याह्यं यच्चापि पर्षदः।
गच्छतस्तावुभौ मूढौ नरकं तेन कर्मणा ॥१२॥
अजानन् यस्तु विप्रश्चाज्ञानन्वाप्यन्यथा वदेत्।
उभयोर्हि तयोर्दोषः पक्षयोरुभयोरपि ॥१३॥
अजानानां च दातॄणामदातॄणां च जानताम्।
एवं भवेन्महादोषस्तस्माज्ज्ञात्वा वदेत्सदा ॥१४॥
यत्तु दत्तमजानद्भिः प्रायश्चित्तं समागतैः।
तत्पापं शतधा भूत्वा दातॄनेवोपतिष्ठति ॥१५॥
ये तु सम्यक्स्थिता विप्रा धर्मवेदाङ्गपारगाः।
शक्तास्ते तारणे तेषामात्मनोऽनुग्रहस्य च ॥१६॥
इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे प्रायश्चित्ताचारकथनं नाम
षष्ठोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः

पापपरिगणनम्

आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः।
जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते च यान्ति समं तु तैः॥ १ ॥
तस्मादार्तं समासाद्य ब्राह्मणं तु विशेषतः।
जानद्भिः पर्षदः पन्था न दातव्यः पराङ्मुखैः ॥ २ ॥

प्रायश्चित्तं वक्तव्यम्

तस्य कार्यो व्रतादेशः प्रमाणार्थं हि दातृभिः ।
अज्ञानादुपदेष्टव्यः क्रमशः सर्व एव वा ॥ ३ ॥
भयाद्वभ्युत्तरेत्कश्चिद्ब्रूयात्तं ब्राह्मणं क्वचित् ।
एवं पापात्समुद्धृत्य तेन तुल्यफलो भवेत् ॥ ४ ॥
अनर्थिभैरनाहूतैरशक्तैश्च यथाविधि ।
प्रायश्चित्तं न दातव्यं जानद्भिरपि च द्विजैः ॥ ५ ॥
तस्माज्जनैः प्रदातव्यमनुज्ञाप्य च पर्षदम् ।
न चान्येषु प्रजल्पत्सु चैवं धर्मो न हीयते ॥ ६ ॥
पातकेषु शतं पर्षत् सहस्रं महदादिषु ।
उपपापेषु पञ्चाशत् स्वल्पं स्वल्पेषु निश्चयः ॥ ७ ॥

पञ्चमहापातकिनः

ब्रह्महा स्वर्णहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ।
एतैः संयुज्यते योऽन्यः पतितैः सह पञ्चमः ॥ ८ ॥

पतिताः

नारीपुरुषहन्ता च कन्यादूषी गवां च हा ।
चत्वारः पतिता प्रोक्ता यथा वै ब्रह्महादयः ॥
उपपातकास्त्वसंख्यातास्ते च गोघ्नादयस्तथा ॥ ९ ॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे पापपरिगणनं नाम
सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

शूद्रान्नस्यगर्हितत्ववर्णनम्

प्रतिग्रहे

आहिताग्निस्तु यो विप्रः प्रतिगृह्णाति शूद्रतः।
भोक्तृणां समतां याति तिर्यग्योनिं च गच्छति ॥ १ ॥

शूद्रान्नभोजने

यस्तु वेदमधीयानो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च।
शूद्रे वेदफलं याति शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ २ ॥

शूद्रं प्रशस्य स्वस्तिवचने

मत्वा पीत्वा निरीक्ष्याथ स्पृष्ट्वा च प्रतिगृह्य च।
प्रशस्य स्वस्ति चेत्युक्त्वा भोक्ता एव न संशयः ॥ ३ ॥
एते दोषा भवन्तीह शूद्रान्नस्य परिग्रहे।
अनुग्रहं [redacted] वक्ष्यामि मनुना चोदितं पुरा ॥ ४ ॥
आमं वा यदि वा पक्वं शूद्रान्नमुपसेवते।
किल्बिषं भुञ्जते भोक्ता यश्च विप्रः पुरोहितः ॥ ५ ॥

प्रतिगृह्यान्येभ्यो दातव्यम्

गुरुब्रह्मपतिथीनां तु भृत्यानां [redacted] विशेषतः।
प्रतिगृह्य प्रदातव्यं न भुञ्जीत स्वयं ततः ॥ ६ ॥

शूद्रान्नरसपुष्टाधीयानस्य

शूद्रान्नरसपुष्टस्य चाधीयानस्य नित्यशः।
जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वं न विद्यते ॥ ७ ॥

ससत्रे दानधर्मे च पक्वमन्नं [illegible] गर्हितम् ।
पञ्चरात्रं चरेद्भैक्ष्यं षडहं मध्यमाचरेत् ॥५॥
तथा धान्येष्वभोज्येषु त्र्यहमेवं समाचरेत् ।
अनापत्सु चरेद्भैक्ष्यं सिद्धं यस्तु गृहे वसन् ॥६॥
दशरात्रं चरेद्भैक्ष्यमापत्सु च त्र्यहं चरेत् ।
पतितानां च सर्वेषां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥७॥
प्रतिमासदिनं हृष्टमन्यथा पतितो भवेत् ।
प्रतिसंवत्सरं वापि श्रोत्रियस्य भवेदिदम् ॥८॥
ब्रह्मचारी यतिश्चापि विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥९॥
व्याधितस्य दरिद्रस्य कुटुम्बात्प्रच्युतस्य च ।
अध्वानां वा प्रयातस्य भैक्ष्यचर्या विधीयते ॥१०॥
ब्रह्मचारी शुना दष्टस्त्र्यहमेवं समाचरेत् ।
गृहस्थस्तु द्विरात्रं चाप्येकाहं चाग्निहोत्रवान् ॥११॥
नाभेरूर्ध्वं [illegible] दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत् ।
तदेव द्विगुणं वक्त्रे मूर्ध्नि चैव चतुर्गुणम् ॥१२॥
अत ऊर्ध्वं [illegible] यत्स्नातः स्नानेनैव विशुध्यति ।
सर्वेष्वेवावकाशेषु तदा प्रव्रजितः स्वयम् ॥१३॥
अव्रती सव्रती वापि शुना दष्टस्तथा द्विजः ।
दृष्ट्वाग्निं हूयमानं [illegible] सद्य एव शुचिर्भवेत् ॥१४॥
ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे दृष्टिं निपातयेत् ।
यदा [illegible] दृश्यते सोमः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१५॥

कुशैःकाशैस्तु बध्नीयादूर्ध्वं दक्षिणतोमुखम्।
पाशालग्ने तथा दाहे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥६॥
यदि तत्र भवेच्छोकः प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।
जपित्वा पावमानीयं मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥७॥
अस्थिभङ्गं गवां कृत्वा लाङ्गूलच्छेदनं तथा।
पातनं चैव शृङ्गस्य मासार्धं यावकं पिबेत् ॥८॥
व्रणभङ्गे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गश्च पाणिना।
यवसश्चोपहर्तव्यो यावद्दृढव्रणो भवेत् ॥९॥
अस्थिभङ्गे तथा शृङ्गकटिभङ्गे तथैव च।
यावज्जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१०॥
शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च चर्मनिर्मोचने तथा।
दशरात्रं पिबेद्दुग्धं यावत्स्वस्ति भवेत्तदा ॥११॥
अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहनिर्मोचने तथा।
सायं संगोपनार्थं [redacted] न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥१२॥
यन्त्रेण गोचिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने।
यत्ने कृते विपद्येत न दोषस्तत्र विद्यते ॥१३॥
औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणे हितम्।
प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१४॥
गजे वाजिनि वा व्याघ्रे खड्गे श्याममृगे वृके।
सिंहे शुनि वराहे च मयूरे पक्षिणामपि ॥१५॥
काके हंसे च गृध्रे च टिट्टिभे खञ्जरीटके।
यथा गवि तथा विन्द्याद्भगवान्मनुरब्रवीत् ॥१६॥

मोहाद्विरुद्धमाचार्यप्रत्यावृत्तौ तु यो द्विजः ।
प्रायश्चित्तं न मृग्येत शृणु तस्यापि यो विधिः ॥१७॥
विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं भवेत् ।
पश्चात्तु पश्चात्तापेन कृत्वा पापानि मानवः ॥१८॥
धनत्यागं गृहे कृत्वा सर्वत्यागेन शुध्यति ।
द्रव्यैर्वा विपुलैर्विप्रान् तोषयेद्यः सुनिश्चितम् ॥१९॥

बालवृद्धाङ्गनानां प्रायश्चित्तम्

अन्नाद्यैः कामतः प्राप्तः पापसर्वं समादिशेत् ।
अर्वाक्तु द्वादशाद्वर्षात् पुरुषो धर्मभाग्भवेत् ॥२०॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वर्षार्धं सकलो विधिः ।
प्रायश्चित्तस्य ये च स्त्रीबालवृद्धाङ्गनादयः ॥
तेषु सर्वेषु संचिन्त्य पादमेकं समाचरेत् ॥२१॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे हिंसाप्रायश्चित्तकथनं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

गोवधप्रायश्चित्तकथनम्

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो कुर्वीत वारुणम् ।
अक्षारलवणं रूक्षं षष्ठे कालेऽथ भोजनम् ॥ १ ॥
गोचारी वने गोष्ठे धर्मज्ञा तेन साधुनः ।
द्वौ मासौ स्नानमन्त्रं च गोमूत्रेण विधीयते ॥ २ ॥

पादशौचक्रिया कार्या अद्भिः कुर्वीत केवलम् ।
प्रतिबद्धारयेद्दण्डं समन्त्रा मेखला तथा ॥ ३ ॥
गाश्चैवानुव्रजेन्नित्यं रजस्तासां सदा पिबेत् ।
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेच्च व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ ४ ॥
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्वा रात्रौ वीरासनं वसेत् ।
गोमती च जपेद्विद्वानोंकारं वेदमेव च ॥ ५ ॥
आतुरामभिशस्तां वा चोरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वप्राणैर्विमोक्षयेत् ॥ ६ ॥
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा स्वशक्तितः ॥ ७ ॥
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ८ ॥
अनेन विधिना गोघ्नो यस्तु गा अनुगच्छति ।
स गोहत्यात्मकात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९ ॥
ऋषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥१०॥
एतेषां विहितं पुण्यं कृच्छ्रमङ्गिरसा स्वयम् ।
धर्मविद्भिरनूचानैरुपपातकनाशनम् ॥११॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे गोवधप्रायश्चित्तं
नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

कृच्छ्रादिस्वरूपकथनम्

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
यमधीत्य विशुध्यन्ति श्रुत्वा स्मृत्वा च वै द्विजाः ॥१॥
सदा त्रिषवणं स्नायात् सकृत्स्नात्वा पयः पिबेत्।
प्रातः स्नात्वा समारम्भं कुर्याज्जप्यं तु नित्यशः ॥ २ ॥
सावित्रीं व्याहृतीं चापि जपेद्दशसहस्रकम्।
ओंकारमादितः कृत्वा रूपे रूपे यथान्तरम् ॥ ३ ॥
स्थानं वीरासनं सद्यः कुर्यादासनमेव वा।
आसनं शल्यविद्धं स्यादधःशायी भवेत्तदा ॥ ४ ॥
गव्यस्य पयसोऽलाभे गव्यमेव भवेदपि।
तदभावे भवेत्तक्रं तक्राभावे तु यावकम् ॥ ५ ॥
तथान्यतमं यथाप्युपपन्नेन सन्निवेत्।
गोमूत्रेण तु संयुक्तं यावकं सन्निवेद्द्विजः ॥ ६ ॥
एतत्तु विहितं पुण्यं कृच्छ्रमङ्गिरसा स्वयम्।
तथा तु समारम्भो नाम्ना ... स्मृतम् ॥ ७ ॥
उपपातकयुक्तानां प्रायश्चित्तं विधीयते।
महापातकसंयुक्ताः सर्वैः शुध्यन्ति वै द्विजाः ॥ ८ ॥
अथोपपातकाश्चित्तस्यास्य ... समाचरेत्।
... यथोक्तस्य ... ॥ ९ ॥

ब्राह्मणा एव च क्षेत्रं ब्राह्मणा एव दैवतम् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन सूर्यो दिवि विराजते ॥१०॥
न ब्राह्मणसमं क्षेत्रं न ब्राह्मणसमोऽनलः ।
विधिर्न ब्राह्मणादूर्ध्वं न दैवं ब्राह्मणात्परम् ॥११॥
जपतां जुह्वतां चैव यच्छतां च सतामपि ।
क्षेत्रोऽग्नेस्तु सुसंभूतो ब्राह्मणोऽत्र विशिष्यते ॥१२॥
न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित् ।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥१३॥
देवतापितृभूतानां काचिद्भवति कस्यचित् ।
ब्राह्मणे देवताः सर्वाः स च सर्वस्य देवता ॥१४॥
यो हि यां देवतामिच्छेदाराधयितुमव्ययम् ।
सर्वोपायप्रयत्नेन तोषयेद्ब्राह्मणान् सदा ॥१५॥

समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः
समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः
पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥१६॥

इत्याङ्गिरसधर्मशास्त्रे कृच्छ्रादिस्वरूपकथनं नाम
द्वादशोऽध्यायः ।

इत्युत्तराङ्गिरसम्

इत्याङ्गिरसस्मृतिः ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* भारद्वाजस्मृतिः *

प्रथमोऽध्यायः

भारद्वाजस्मृति भृग्वादिमुनीनां सन्ध्यादिमुगकर्मविषये प्रश्नः

हेमाद्रिशिखरे रम्ये गुहागम्भीरे महाजनम् ।
भरद्वाजं मुनिश्रेष्ठं सर्वविज्ञानपोनिधिम् ॥ १ ॥
पुण्यकृतिं पुण्यशीलं ब्रह्मनिष्ठं जितेन्द्रियम् ।
समागताः मुनिश्रेष्ठाः भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः ॥ २ ॥
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च शाण्डिल्यो लोहितः क्रतुः ।
हारितो गौतमो गर्गः दक्षः कात्यायनोऽङ्गिराः ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयश्च माण्डव्यः कपिलो नारदः शुकः ।
जमदग्निर्याज्ञवल्क्यो विश्वामित्रः पराशरः ॥ ४ ॥
एते चान्येऽपि मुनयो धर्मज्ञा धर्मतत्पराः ।
सर्वोपचारैः सम्पूज्य वचनमिदमब्रुवन् ॥ ५ ॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्ववेदार्थपारग ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ सर्वलोकहितेरत ॥ ६ ॥

इति पृष्टो (ष्टो) भरद्वाजस्तैर्महामुनिभिर्मुनिः ।
तान्प्रत्युवाच धर्मात्मा सन्तुष्टहृदयो भृशम् ॥ ८
पृष्टा युष्माभिरधुना याः क्रियास्ता महर्षिभिः ।
यथा क्रमेण कथ्यन्ते सन्ध्याप्रणतिपूर्विकाः ॥ ६ ।
नित्यानुष्ठानरहितैर्द्विजैरधिकृतागमाः ।
यज्ञाः क्रतुश्च विधिवन्न भवन्ति फलप्रदाः ॥१०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुचि (र्भू) भूत्वा द्विजोत्तमः ।
अनुष्ठानम्प्रकुर्वीत प्रत्यहं शास्त्रचोदितम् ॥११॥
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु समस्तेष्वागमेषु च ।
सारमुद्धृत्य वक्ष्यामि शृणुध्वमृषयोऽनघाः ॥१२॥
शास्त्रायणमिदं श्रेष्ठमध्येयं श्रद्धया सह ।
ज्ञो पूर्धिमिः(?)द्विजैः काममनुष्ठानादि साधनम् ॥१३॥
शास्त्रायतारो दिग्भेदः मलमूत्रपरिच्युतिः ।
शौचमाचमनं दन्तधावनं स्नापनं ततः ॥१४॥
सन्ध्या प्रणामश्च जपः ब्रह्मयज्ञश्चतर्पणम् ।
औपासनं वैश्वदेवं महायज्ञचतुष्टयम् ॥१५॥
भोजनं शयनं ध्यानं महाध्यानञ्च पूजनम् ।
पूजा द्रव्यं जपलक्ष(?) कलशं च क्रिया अपि ॥१६॥
यज्ञोपवीतञ्च कुशाः प्रणवो व्याहृतिस्ततः ।
साधनं प्रायश्चित्तञ्च क्रमोऽयं शास्त्रसंग्रहः ॥१७॥
दिग्(क्)निर्णयं समारभ्यो प्रायश्चित्तावधि क्रमात् ।

पञ्चविंशति कर्माणि प्रोक्तान्यध्यायरूपतः ।
एकैकस्मिन्किस्क(?) माध्याये प्रोक्तैका परिसंख्यया ॥१६॥
स पञ्चविंशत्यध्याये कर्मतल्लक्षणैर्यथाक्रमम् ।
धर्मशास्त्रं समाख्यातं भारद्वाजमहर्षिणा ॥२०॥
इति भारद्वाजस्मृतौ सन्ध्यादिप्रमुखकर्मविषयक प्रश्न
वर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

दिग्भेदज्ञानवर्णनम्

अथ विजानीयात्पूर्वादि दिग्भेदज्ञानपद्धतिम् ।
कथयिष्याम्यहं सम्यक् सर्वकर्मफलाप्तये ॥ १ ॥
पूर्वादि दक्षिणा वारुण्युदीची च यथाक्रमम् ।
दिस(?श,श्चतस्रः परितः भवन्ति स्मृतिचोदिताः ॥२॥
यत्रोदेति सहस्रांशुः स्यात् (सा) पूर्वादिगुदाहृता ।
यत्रास्तमेति सा प्रत्य गीतकि(?)दक्षिणोत्तरे ॥ ३ ॥
दिक्संधयः स्युर्द्विदशाः चतस्रः परिकीर्त्तिताः ।
अभ्यन्तरं दिशोमन्ताः तदूर्ध्वमुपरि स्मृतम् ॥ ४ ॥
तदधस्तादधोदिक्स्यात् एकादश दिशः स्मृ श.(स्त्विमाः) ।
एवमेताः परिज्ञेया दिशः सामान्यरूपतः ॥ ५ ॥
प्राङ्मध्यम विजानीयात् मेषस्यार्कोदयम्बुधः ।
तत्क्रमेणेतरदिशः मध्यदेशं यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

इति पृष्टो (ष्टो) भरद्वाजस्तैर्महामुनिभिर्मुनिः।
तान्प्रत्युवाच धर्मात्मा सन्तुष्टहृदयो भृशम् ॥८॥
पृष्टा युष्माभिरधुना याः क्रियास्ता महर्षिभिः।
यथा क्रमेण कथ्यन्ते सन्ध्याप्रणतिपूर्विकाः ॥९॥
नित्यानुष्ठानरहितैर्द्विजैरधिकृतागमाः।
यस्मात् मन्तुश्च विधिवन्न भवन्ति फलप्रदाः ॥१०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुचि (र्भू) भूत्वा द्विजोत्तमः।
अनुष्ठानम्प्रकुर्वीत प्रत्यहं शास्त्रचोदितम् ॥११॥
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु समस्तेष्वागमेषु च।
सारमुद्धृत्य वक्ष्यामि शृणुध्वमृषयोऽनघाः ॥१२॥
शास्त्रायणमिदं श्रेष्ठमध्येयं श्रद्धया सह।
श्रो पूर्धिभिः(?)र्द्विजैः काममनुष्ठानादि साधनम् ॥१३॥
शास्त्रावतारो दिग्भेदः मलमूत्रपरिच्युतिः।
शौचमाचमनं दन्तधावनं स्नापनं ततः ॥१४॥
सन्ध्या प्रणामश्च जपः ब्रह्मयज्ञश्चतर्पणम्।
औपासनं वैश्वदेवं महायज्ञचतुष्टयम् ॥१५॥
भोजनं शयनं ध्यानं महाध्यानञ्च पूजनम्।
पूजा द्रव्यं जपसक्ष(?) कलशं च क्रिया अपि ॥१६॥
यज्ञोपवीतञ्च कुशाः प्रणवो व्याहृतिस्ततः।
साधनं प्रायश्चित्तञ्च क्रमोऽयं शास्त्रसंग्रहः ॥१७॥
दिग्(क्)निर्णयं समारभ्यो प्रायश्चित्तावधि क्रमात्।
स पञ्चविंशत्याध्यायं धर्मशास्त्रं ब्रवीमि वः ॥१८॥

समारवांसिन्ध्र् तिथांयु यि(ई,शानश्चेत्यमीश्वराः।
अंतरांध्यांधरदिशा भूतदेवादयोधिपा ॥१८॥
एवं दिग्धिपयाः प्रोक्ताः सर्वेषा सर्वकर्मणि।
परिज्ञेयः प्रयत्नेन बुधैः कर्मफलेच्छुभिः ॥१९॥
मेषकर्किनुनश्चत्वारो राशयस्त्वमी।
पूर्वादिषुचतुर्धि दि,क्षु मध्येऽन्योन्यत्र राशयाः ॥२०॥
प्राचीमध्यं विनान्यत्र संस्थितायेष राशयः।
तत्रस्थिता हि प्रतिच्छाया यक्षा मता भवेत ॥२१॥
समभूमितले दण्ड प्रमाण चतुरंगके।
शंकोकोरप द्विगुणेनैव तुल्ये(?) कृति मण्डले ॥२२॥
प्रथमस्थापयेच्छंकुं (?) मेषस्थार्कोदये बुधः।
मेषस्थार्णदयाभावे तुलास्थार्कोदयोपया ॥२३॥
मंडलं(लात)न्तायमच्छायायत्रानुरादमरी(वि,त।
अपराह्णे तथा तत्र शानमु हविद्वेत ॥२४॥
तयोर्बिन्दुद्वयं मध्ये प्रकुर्वीत विचक्षणः।
ततः प्रामारयेत्सूत्रं तत्रबिन्दु च मत्सम ॥२५॥
प्राचीप्रतीच्योर्मध्ये इतिज्ञेयं विपश्चिता।
बिन्दुयान्तरमानमायतानतपूर्वकं ॥२६॥
पूर्वं यत्कृत्वान्मध्यं दक्षिणोत्तरयो क्रमात्।
इत्यापरतानि पर्वतानि विनिर्दिशेत् ॥२७॥
सूत्राणि च ततः कुर्यात् प्रानुपात्नुत्तराणि च।
मार्गमार्गे मागदिर शंकोरपाके बुधेरतम ॥२८॥

मेष सूर्योदये यन्नच्छायाशंको समस्थले।
निर्गता सा प्रतीची स्यात् अस्ति प्राचीत्युदाहृता ॥७॥
दिङ्नामानित्पावास ग्रामादिस्थापने बुधाः।
शङ्कुच्छाया पशाद्देया प्रात्यक्मध्यनिश्चयः ॥ ८ ॥
यानि देवोक्त कर्माणि प्रागादिमुखसंस्थितः।
वेदी क्षेत्राणि सर्वाणि कुर्यात्तदभिवक्त्रतः ॥ ९ ॥
अथास्तरोर्ध्वकाष्ठासु कर्मान्यु(ण्यु)क्तानि यानि वै।
तानि कुर्यात्तदभ्यस्य तत्कर्मफलसिद्धये ॥१०॥
केचिद्देवालयद्वारं प्राचीमध्यं प्रचक्षते।
ग्राम राजग(गृ)हद्वारं तथाऽन्योऽस्यदिगन्तरम् ॥११॥
प्राक्पूर्वदिति नामानि प्राच्याः प्राहुः पुरातनाः।
याम्यवाची दक्षिणाया नामनी(नामानि)कथ्यते बुधैः ॥१२
पश्चा(त) प्रत्यग्वारुणीति प्रतिच्यानानुवाचकाः।
कौबेर्यावित्युत्तरेति नामानिस्युरु....... शः ॥१३॥
अभ्यन्तरान्तरालातरव कोशान्तराह्वयः।
अवान्तरदिशः सञ्ज्ञो:(सञ्ज्ञाः) विद्वद्भि परिकीर्तिता ॥१४॥
उपरिष्टादुपरिचेत्येतेद्वेसीमनो बुधाः।
आहुरूर्ध्व दिशस्त्वेवमभ्यासर्व दिशः स्मृताः ॥१५॥
हरिद्वाशाककुकाष्ठा चेतिनामानि वै दिशाम्।
सर्वासामेव हि दिशां सामान्यं विबुधा विदुः ॥१६॥
पूर्वादि चतुराशेशाः क्रमादिन्द्रियमुराद्।
किन्नरेश्वर इत्येते भवंति विदिशामथ ॥१७॥

समारुयांसिऋर्तिवायु यि(ई,शानश्चेत्यमीश्वराः।
अंतरोर्ध्वाधरदिशां भूतदेवादयोधिपाः ॥१८॥
एवं दिग्धिपयाः प्रोक्ताः सर्वेषां सर्वकर्मणि।
परिक्षेयः प्रयत्नेन बुधैः कर्मफलेच्छुभिः ॥१९॥
मेषकर्किनुनरश्चत्वारो राशयस्त्वमी।
पूर्वादिषुचतुर्षि(दि,क्षु मध्येऽन्योन्यत्र राशयाः ॥२०॥
प्राचीमध्यं विनान्यत्र संस्थितायेच राशयः।
तत्रस्थिता हि मरिषच्छाया यवत्रा सदा भवेत् ॥२१॥
समभूमितले दण्ड प्रमाण चतुरश्रके।
शंकोर्कोरथ द्विगुणेनैव शुल्पे(?) कृति मण्डले ॥२२॥
मध्यमस्थापयेच्छंकुं (?) मेषस्थार्कोदये बुधः।
मेषस्थार्णद्याल्लाभे मुलास्थार्कोदयोधया ॥२३॥
मंडलो(व्रात)गतायत्पच्छायायथावुराद्मरी(दि,त्र।
अपराह्णे तथा तत्र हातव्यतु हरिद्रुवेन ॥२४॥
तयोर्बिंदुद्वयं मध्ये प्रकुर्वीत विचक्षणः।
ततः प्रासारयेत्सूत्रं तत्रबिंदु च सत्तमः ॥२५॥
प्राचीप्रतीच्योर्मध्ये वृतिवंवं विपश्चिता।
बिंदुद्वयात्तरभातरापरात्तपुरचकं ॥२६॥
सूत्रं यत्तद्वंन्मध्यं दक्षिणोत्तरयोः क्रमात्।
इत्यगात्स्परोवाति पर्वतानि विनिर्दिशेत् ॥२७॥
नूत्राणि च ततः प्राचीः प्रागुत्तरानि च।
चार्मगार्ग्यमात्रदिर ' शर्कोदयाक बुधेश्वाः ॥२८॥

विद्रुकरकदिरश्चेति शंकुवृक्षाः समीरिताः।
यस्योच्छ्रादिर्विस्तकावष्टुरंगुल पंचकं ॥२६॥
चतुरंगुलविस्तारः मूर्धांसो शंकुरुत्तमः।
यस्योच्छ्रायादिनाचौ द्वौ भवतोष्टादशांगुलौ ॥३०॥
न शंकुर्मध्यमोमस्यनाभिः सप्तदशांगुलम्।
यस्यास्त्वनाभौ भवतः द्वादशैकादशांगुलौ ॥३१॥
कनिष्ठोसौ समाख्यातः शंकुच्छायावलोकने।
सर्वेनिवृत्ताः सस्निग्धाः च्छत्राकारसिरोंकिताः ॥३२॥
निर्व्रणाः शंकवोयेते निर्मितास्युः शुभप्रदाः।
त्वगिभर्चम्पकयाधानां नारिकेलफलस्य च ॥३३॥
ईज्जुर्गानिर्मितासंस्यात् प्रशस्ता मानकर्मणि।
न्यग्रोधकेतकीवालवल्केष्वंतेपुनिर्मितम् ॥३४॥
कार्पासपटतंत्वोर्वात्रिवृद्ग्रंथिविवर्जितम ।
स्वकनिष्ठाम्गुलि थूर्दभिर्ध्यकुदसंम्मितम ॥३५॥
सूत्रमेवंविधं शस्तं मापने सर्वभूमिषु।
शुल्बेरज्जुर्विदासूत्रं गुण एकार्थमुच्यते ॥३६॥
देवऋक्षादिशगां च ज्ञात्वाध्रुव यास्त्रिवृत्।
धृपकन्यकयोच्छाया नचवत्रास्याधृवस्थितौ ॥३७॥
धृगस्तभानोरुदये कन्यास्ताकोंदयेपि वा।
मण्डले स्थापयेच्छंकुं यथापूर्वं तथा कवौ ॥३८॥
परचाद्विगातमकच्छाया यत्र तत्र तथा ततः।
तत्प्राचीदिगितिप्राहुः वि(इ)तरेदक्षिणोत्तरे ॥३६॥

अजेतुलायां मिथुने मृगेद्व्यङ्गुलं नयेत् ।
कर्कटे वृश्चिके मीने शोधयेच्चतुरंगुलम् ॥४०॥
षडंगुलं घटे चापे मकरेऽष्टांगुलं तथा ।
छायायां दक्षिणे नीत्वा सूत्रं प्रसारयेत् ॥४१॥
केचिदेवं त्यजन्ति प्राक्प्रत्यग्दिग्विनिश्चये ।
तद्दिग्वीथीगतालामथूलदिशस्तथा ॥४२॥
ख्याताः शंकुसमा प्रोक्ताः अथवा सालभूरुहाः ।
एकादशांगुलादेकः त्रिंशदंगुलदीर्घकः ॥४३॥
पूर्णमुष्टिस्तु मध्यो मूलं सूचिनिभो भवेत् ।
प्रमाणसूत्रमित्युक्तं प्रमार्गनिश्चितोद्दितः ॥४४॥
तद्बहिः परितो भागे पर्यन्तं सूत्रमिष्यते ।
गर्भसूत्रादिरीत्या तु सूत्रमेवप्रचोदितम् ॥४५॥
यदि वृत्यासमसूत्रं हि वृत्यानं सूत्रमिष्यते ।
अणुरेणु शिरोजामूलाक्षायुकाः यथाक्रमात् ॥४६॥
एकैकाष्टगुणितास्तथाः स्यात्पादांकमंगुलम् ।
द्वादशांगुलकं तालः अलातादूर्ध्वमुत्तमम् ॥४७॥
हस्तैश्चतुर्भिर्दण्डः स्यात् सूत्रदंडादेकं स्मृतम् ।
स्मृतस्त्वाष्टरसूत्राणि चतुर्थं वदन्ति हि ॥४८॥
पितृस्थितमूलवित्युक्तः अंगानं सूत्रकं विवृतम् ।
अष्टभिः समभिन्नैश्च सर्वैर्विन्यासमुच्यते ॥४९॥
प्रथमं मध्यमं नीचं उत्तमेवं यथाक्रमम् ।
अंगुलं त्रिविधं प्रोक्तं हस्तं यवगतुर्दश ॥५०॥

अस्यथांगुलमेतैस्तु कथ्यतेस्मिन् यतो भवेत् ।
माषैरष्टभिर्यवैर्वाथसाध्यै सप्तभिरेव वा ॥५१॥
माष्यैः सप्तभिराख्यातं एवं त्रिविधमंगुलम् ।
शालिभिश्च त्रिभिः माषैः चतुर्भिश्च यथायवैः ॥५२॥
शाल्याद्यं समाख्यातं अंगुलं त्रिविधं(धं) बुधैः ।
एवंमानांगुलं प्रोक्तमात्रांगुलमथोच्यते ॥५३॥
मध्यमांगुलमध्यस्त पर्वदीर्घमितंतु यत् ।
तच्छ्रेष्ठमंगुलं प्रोक्तं पादहीनं तु मध्यमम् ॥५४॥
अर्धहीं (नं) कनिष्टं स्यादेवं मात्रांगुलत्रयम् ।
अंगुष्ठ तर्जनीदीर्घं यत्तत्प्रादेशसंज्ञतं ॥५५॥
अंगुष्ठमध्यमायामं यत्ता साराभिधानकम् ।
अंगुष्ठानामिकायामं यस्तद्गोकर्णसंज्ञिकम् ॥५६॥
अंगुष्ठाभ्यंगुला प्राहुः वितस्तेरिति कथ्यते ।
यत्रयत्रोदितं तत्र प्रयंजातेषु तत्प्रयः ॥५७॥
अंडादिसूत्रपर्यंतं प्रमाणं समुदाहृतम् ।
किष्वादि पंचशाकाना अधुनाभेद उच्यते ॥५८॥
किष्कुर्नामभवेद्धस्त चतुर्भिष्टविधरंगुलैः ।
प्राजापत्योभवेद्धस्तः पंचविंशद्भिरंगुलैः ॥५९॥
षड्विंशत्यंगुलैर्हस्तः स्याद्धनुमुष्टि संज्ञिकः ।
हस्तोमाहृद्वयोहस्तसप्तविंशद्भिरंगुलैः ॥६०॥
एवं चतुर्विधोहस्तः विज्ञेयः कर्मवित्तमैः ।
वेदमुष्टि(ष्टि)कं कोरज्ञिरत्निः सकनिष्ठिकः ॥६१॥

इत्येतौ कथितौ हस्तौ मनुष्याणां मनीषिभिः।
पूर्वोदित चतुर्हस्तो यत्रनाभिहितादिमौ ॥६२॥
हस्तौ तत्र प्रयोक्तव्यौ सामान्योनोऽङ्गिनकचे(?)।
यष्टिहस्ताद्वयोरन्तिरङ्गिः किष्कुरित्यपि ॥६३॥
कथितो हस्तपर्यायः हस्तेऽष्टाङ्गुलैरपि।
मद्शयनासनादीनि किष्कुहस्तेन कारयेत् ॥६४॥
प्राजापत्यकरेणैव प्रासादादिशिहस्तयान्।
विमानं मौलिशालां सभास्थानं च कारयेत् ॥६५॥
धनुर्महेण ग्रामादीन् धनुर्मुष्ट्या(ष्ट्या) महादिकान्।
राजान्वदं(?) राजधानी तद्वानयनसंज्ञिकम् ॥६६॥
धनुर्मुष्टिकरेणैव प्रकुर्वीत विचक्षणः।
अलाभे किष्कुहस्तो वा सर्वमानेन केवलम् ॥६७॥
अल्पाङ्गुलमानेन [illegible]ङ्गुलमानतः।
ग्रामं च नगरं खेटं पत्तनं(नं) खर्वटं पुरं ॥६८॥
विटंकं शिबिरं वेश्म निगमाराजधानिकम्।
सेनामुखमितिप्राहुः द्वादशैतानि सूरयः ॥६९॥
अन्येषु शिल्पशास्त्रेषु प्रदेशेषान्यलक्षणम्।
नदी जलाशयं क्षेत्रं सूत्रेणैव तु मापयेत् ॥७०॥
दंडेन पाथसूत्रेण ग्रामयोरन्तरं तथा।
वनवाटिविचरणेमध्ये उदकं भवनान्तरं च ॥७१॥
तस्माद्योमध्यमं प्रोक्तं भवितव्यानि सूरिभिः।
त्रिभ्योत्तराप्रतुल्या [illegible] ॥७२॥

गत्रेवं नैऋतिमध्यं इत्येते मु त्तनराः।
तत्प्रतीपं प्रतिच्यास्तु मध्यग्रंपरालके ॥७३॥
एवं मध्यद्वयं ज्ञात्वा ततोबिन्दुद्वयं क्षिपेत्।
ततो द्विविदुमध्ये सम सूत्रं प्रसारयेत ॥७४॥
एवं प्राग्प्रतिच्यास्तु ज्ञानीय्यान्मध्यमं बुधः।
पृथक्षानयुदिच्यास्तु मध्यपूर्वक्रमेण ॥७५॥
सूत्रं प्रसाययामाया मध्यं ज्ञेयं विपश्चिता।
ध्वनिः प्राच्याथवा सौम्यानिश्चिता पूर्वं वस्तुतः ॥७६॥
प्राचीतरं तु यत्स्थानं सर्वं सोपकरं भवेत्।
एवं प्राची"नहोच्युते"परिज्ञायानम्मेकर्माण्य धारयेत्।
अज्ञात्वाऽन्धऽकर्माणि निष्फलानि भवंति हि ॥७७॥
॥ इति भारद्वाजधर्मशास्त्रे दिङ्निश्चय नाम द्वितीयोध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

विण्मूत्रोत्सर्जनविधिवर्णनम्

विण्मा(मू)त्रोत्सर्जनविधिद्विजानां प्रथमेरघ(सृ)टं १।
शौचक्रमश्चाधतथा (?) समीचीनमिहोच्यते ॥ २ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय धर्मतत्वार्थमीश्वरम्।
न चिन्त्याथम(गृ)हाद्गत्वा देशे दक्षिणपश्चिमे ॥ ३ ॥

आहृताया मृदापश्चात्स्तास्शुद्धभूतले(?) ।
पात्रयोर्मृदमावस्च क्षिपेश्चाछार्धमाहात्मन(?) ॥ ४ ॥
वल्मीकेथाऽग्नि वृक्षादौ मार्गे मूषिकसद्मनि ।
शौचदेशे जलांतस्ति कर्दमे देवतालये ॥ ५ ॥
पुरीषभूमाल्लिरिणे निवासे च गवामपि ।
मृत्तिका न परिग्राह्या शौचार्थं जातु विप्रुवैः ॥ ६ ॥
संध्याश्वाह ? कर्णस्था ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।
वानसामौलिसाच्छाद्यामौनिमूर्ध्वानमस्पृशन् ॥ ७ ॥
समे रहसि भूभागे दर्भेतरत्तृणावृते ।
विसृजेन्मलमूत्रे तु रात्रौचेद्दक्षिणामुखः ॥ ८ ॥
देवालयमलस्थानश्मशानाचलदारिषु ।
तदीकाविधतटीतीरस्र्च्छायामूलभस्मसु ॥ ९ ॥
लोष्टसस्य च शस्यभ्रपराग बहुलीकृते ।
स त्यजेन्मलमात्रे तु स्थानेष्वेतेषु बुद्धिमान् ॥१०॥
आदित्यानलविप्राग्निनाभितस्त्यजेन्मूत्रपुरीषेतु विचक्षण(?)
प्रमादात्स्वमलं दृष्ट्वाभूमिस्थं ब्राह्मणोयदि ॥११॥
सवितारं द्विजंश्रग्रगामग्निं वा निरीक्षियेम ।
दर्भैरपितृणैश्शुष्कै गुदमुत्सृज्य सत्वरम् ॥११॥
अयज्ञदारुकाष्ठेन तत्पत्रैर्वाप्यलोभतः ।
उत्थाय सव्यहस्ते गृहीत्वाऽस्वमेहनम ॥१२॥
शौचदेशमदागव्य कुर्याच्छौचं मृदम्बुना ।
पूर्वं ज्जलेन प्रक्षाल्या मृदापश्चाचतोम्बुना ॥१३॥

एवं द्वादशकृत्वस्तु गुदशौचं समाचरेत्।
प्रसृति प्रमिताद्यामृत द्वितीया तु तदर्भका ॥१३॥
उत्तरोत्तरतः सर्वास्त्रितय्यावतुता बुधैः।
दशकृत्वोवामहस्तं सप्तकृत्वः करावुभौ ॥१४॥
संयोज्य चैवं प्रक्षाल्य सकृच्छौचं पुनश्चरेत्।
पंचकृत्वः प्रक्षाल्य मृदामलकमात्रया ॥१५॥
त्रिकृत्वोलिंगशौचं तु हस्तंक्षाल्यपदद्वयं।
संयोज्यत्रिमृदाक्षाल्य क्षालयेच्छौचभूतलं ॥१६॥
कुर्वीतैषदिवा शौचं रात्रावस्यार्थमुच्यते।
उ(अ)शक्तस्य यथा शक्ति शौचमुक्तं तथाध्वनि ॥१७॥
योषितामुक्त शौचार्धं शूद्राणामप्युदीरितम्।
नदीनरस्तडागेषु वापीकुण्डहृदेषु च ॥१८॥
निर्झरे देवखाते च्यौ द्विजः शौचं न कारयेत्।
एवं शौचविधि प्रोक्ता द्विजानां शुद्धि हो (है) तवे ॥१८॥
विधि विमृज्य यच्छौचं वृथा कृतमविभ्रमम्।
कृतं संध्यादिकं कर्म नित्यं नैमित्तिकं तथा।
सर्वं निष्प(ष्फ)लतायाति शौचहीनं द्विज(न्म)नाम् ॥१६॥

॥ इति भारद्वाजस्मृतौ विण्मूत्रविसर्जनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

आचमनविधिवर्णनम

समस्त कर्मणामादि साद्धनं सर्वशानां ।
उपस्पृष्ट विधिः सम्यग्द्विजानामधुनोच्यते ॥ १ ॥
आचम्य विधिवत्कर्मकृतं यत्तत्प्रसिध्यति ।
विनैवाचमनं कर्म कृतमन्यफलं लभेत् ॥ २ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचम्य विधिवत्ततः ।
श्रौतं कर्माथवास्मार्त्तं कुर्यात्कर्म फलाप्तये ॥ ३ ॥
जंघान्तं जानुपर्यन्तं अपिवाचरणद्वयं ।
परातंकरौसम्यक्प्रक्षालयेत्प्रथमं बुधः ॥ ४ ॥
नाभेरथ(ध)स्तात्सकलं क्षालयेत्सव्यपाणिना ।
कुर्यादाचमनादीनि कर्माणारेदपाणिना ॥ ५ ॥
जलस्थमुधृतं वापिवारिशुद्धं प्रपश्यते ।
स्थलस्थंबोधृतंवापि यथशुद्धंतदुत्दजेन ॥ ६ ॥
जले.जलस्थ आचामेत्यहिष्ठस्तु जलाद्बहिः ।
बहिरंतस्थ आचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥
जानोरधस्तात्तविले उपस्पृष्ट उपस्पृशेत् ।
जलाशयादिष्वाचामेदूर्ध्वाभः सूर्द्धसंस्थितः ॥ ८ ।
उपविश्य शुचौदेशे प्राङ्मुखो ब्रह्मसूत्रधृक् ।
बद्धचूडःकुशाकरः . द्विजः शुचिरुपस्पृशेत् ॥ ९ ॥

निष्ठीवन् भाषन् जल्पन् शृण्वन्नंत्यजभाषणम् ।
धनगन्धाश्च तिष्ठन् कथाचिदुपस्पृशेत् (?) ॥१०॥
काकभासरविड्क्रोष्टुलाग्रमृतजैस्वलाः ।
प्रात्यास्वजाति पतितान्यवश्यमभिस्पृशेद्विजः ॥११॥
देवलाजभिपः शूद्रान् चंडालानुरपातकान् ।
पश्यन्नोपस्पृशेद्धीमान् अन्याः संकरजानपि ॥१२॥
शयानः पादुकस्थश्चैव द्विजांनु शरासनः ।
उष्णीषीकंचुकीनग्न न कदाचिदुपस्पृशेत् ॥१३॥
ब्रह्मप्रजापतिपितृस्वर्गौकोजातवेदसाम् ।
संतिपंचापितीर्थानि पाणौ विप्रस्य दक्षिणे ॥१४॥
अंगुष्ठस्य कनिष्ठायाः तर्जन्यामूलमग्रकम् ।
कंकरस्यमध्यमंचाहुस्तीर्थस्थानानिसाधवः ॥१५॥
तर्पणं देवतादिभ्यः स्वतीर्थेनैव तर्पयेत् ।
पिबेदाचमनेद्वास्त्रिर्वीक्षितं ब्रह्मतीर्थतः ॥१६॥
पानमार्जनस्नानादिस्पर्शानामधिदेवताः ।
क्रमेण सम्यकथ्यंते तदा संस्मरणाय वै ॥१७॥
कार्यः सर्वांगिरो वेदः पुराणोनितिहासकः(?) ।
प्राणेंदुभानुदिग्भूमि ब्रह्मरुद्रामराधिपाः ॥१८॥
एतेपानशरीरांगदेवता इति कीर्तिताः ।
तत्तक्रियायां स्मर्तव्या यदोपस्पर्शने द्विजैः ॥१९॥
उपस्पर्शनकालेन स्मरन्त्यानांमादेवताः ।
पिबेत्तु द्विजन्मायः तस्योपस्पर्शनं वृथा ॥२०॥

प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
उपविश्यासनेशुद्धे कुर्याद्गोकर्णवत्करां ॥२१॥
सपवित्रंकरे तस्मिन् माषमानमितं जलं ।
आनीयत्रिःप्पिवेद्धीमान्वेदत्रितियतुष्टये ॥२२॥
पङ्कंसफेनकलुपं सदुर्गंद्धंस बुद्बुदम् ।
उष्णंस्मृत्तिकंक्षारं त्यजेदाचमने जलम् ॥२३॥
अंतरीक्षं नखस्पृष्टं भिन्नरंध्रविनिर्गतम् ।
एक हस्तार्पितंवारि त्यजेदाचमने द्विजः ॥२४॥
चितापर्युपितत्स्पृष्टं अंत्यजैः क्रमभि (?) संयुतं ।
देवाभिषिक्तं हेयं च त्यजेदाचमने पयः ॥२५॥
अथर्वांगिरसात्तुष्टै ततोधिः परिमार्जयेत् ।
तिर्यदंगुष्टमूलेन मुखरन्ध्रं विचक्षणः ॥२६॥
इतिहासपुराणानां तु(पु)ष्टैनिर्मार्जयेत्पुनः ।
अथावरोह क्रमतः तथा हस्ततलेन च ॥२७॥
पादयोः सत्यपाणौ च का(प्र)क्षिपेद्धि गुतुष्टये ।
नासामूलं स्पृशेत्तुष्ट्यै मध्यचंगुलिभिः शितः ॥२८॥
ततः पा(प्रा)णस्य संतुष्ट्यै नासिका विवरद्वयं ।
अंगुष्ठ तर्जनीभ्यांतु संस्पृशेत्तु द्विजोत्तमः ॥२९॥
सूर्याचन्द्रमसोः प्रीत्यैदीप्यौ प्रीत्यै च संस्पृशेत् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यांतु चक्षुषी श्रवणद्वयं ॥३०॥
प्ररोंगुष्ठ कनिष्ठाभ्यां नाभिं संप्रीउये स्पृशेत् ।
ब्रह्मणो हृदयंप्रीत्यै अलभेवतलेन वै ॥३१॥

सर्वांगुलीभिरीशस्य मूर्धानं प्रीतये स्पृशेत् ।
अंगुष्ठाङ्गुलीभिस्तुष्ट्यै जिष्णो स्पृशेद्बलौ(?) ॥३२॥
कर्मावसाने कर्मादौ दैवमाचमनं द्विजः ।
कुर्यात्स्वकर्मसिध्यर्थं सर्वदा सर्वकर्मसु ॥३३॥
ताम्रचर्मास्थियालाबु नारिकेलाश्मपत्रकी ।
उपस्पृशेत्स्वहस्ताग्रे रेखैरपि विचक्षणः ॥३४॥
ब्रह्मयज्ञे विशेषोऽस्ति किंचिदाचमनक्रमे ।
प्रवक्ष्यते तदेतद्धि तत्कर्मफलसिद्धये ॥३५॥
पानत्रयं यथा पूर्वं तथा द्विः परिमार्जनं ।
उपस्पृश्य शिरश्चाक्षु नासिकाद्वितयं तथा ॥३६॥
श्रोत्रद्वयं च हृदयं पूर्वोक्तविधिना स्पृशेत् ।
एवमाचमनं प्रोक्तं ब्रह्मयज्ञे महर्षिभिः ॥३७॥
स्नानपानक्षुतस्वाप होमभोजनकर्मसु ।
अघोपमर्षणे मूत्रवि[illegible]सृष्टौ द्विराचमेत् ॥३८॥
जपेश्मशानाक्रमेण परिधान्येन वासिनः ।
चत्वाराक्रमणे चैव द्विजातिर्द्विरुपस्पृशेत् ॥३९॥
विनाविष्णुक्रमाणेन यो द्विजो नित्यमाचरेत् ।
अनाचातः स एवस्यादशुद्धयितिभाषितः ॥४०॥
एवमाचमनस्योक्तं विधानं श्रुतिचोदितं ।
एतद्वेद्यं द्विजश्रेष्ठैः अनुष्ठानादिसाधकैः ॥४१॥
॥ इति भारद्वाजस्मृतावाचमनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

दन्तधावनविधिवर्णनम्

दन्तानां धावनविधिर्द्विजानामधुनास्य(स्तु)र्द ।
क्थते (कथ्यते) सुखशुध्यर्थं योगशार्थं सर्वकर्मणां ॥ १ ॥
प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ मुखंचाथ यथाविधि ।
आचम्य प्राङ्मुखःस्थित्वा दन्तधावनमाचरेत् ॥ २ ॥
एकादश्यष्टमीषष्ठि नवमी च चतुर्दशी ।
प्रतिपत्पौर्णमासी च काष्ठमेवामुवर्जयेत् ॥ ३ ॥
जन्मत्रयापराह्णार्कदिवसव्यतिपातकाः ।
स संक्रमाविवर्जान्युक्तंतधावनकर्मणीम् ॥ ४ ॥
शाल्मल्येरंडकार्पासा पालाशाश्चतिदुकाः ।
श्लेष्मातकशमीनिम्बधवधात्रिविभीतकाः ॥ ५ ॥
निवारशीतककंडुक्षिरिका कोविदारिकाः ।
काशांगुलिकुरारचैव विवर्जा दन्तधावने ॥ ६ ॥
अशोकमधुकप्लक्षविल्वांकोलप्रियंगवः ।
जंम्बुकदंम्बश्यामाक बदरीनागचंपकाः ॥ ७ ॥
शिरीषदाड़िमार्काम्राकरवीरातिमुक्तकाः ।
जन्नी क्षीरूल भांडीरभद्रशाखविकंकताः ॥ ८ ॥
कास्मरीवृहतीसाल चिरिविल्वा जम्बुकाः ।
अपामार्गाश्चत्मोरूर्ं स्नुकुंभाभूतनृणः ॥ ९ ॥

एते वृक्षा प्रशस्तास्तु क्षीरलब्धमहीरुहाम् ।
यादावनं (?) कुर्याद्दंतानां सततं द्विजा ॥१०॥
वक्रा विवालाः शुष्कामाः सरंध्राः युग्मपत्रकाः ।
विकूर्चाहोयगंधा च सकीटस्रावपूर्विका ॥११॥
सप्रयासा समुच्छेद्या न शाखोत्तामनोहरा ।
त्यक्तव्येधृग्विधाशाखा द्विजैः शुद्धे विचक्षणैः ॥१२॥
स्निग्धासान्द्रासुविदलाद्दाम्यामातिराजिता ।
स्वकनिष्ठांगुलिस्थूलावितस्त्यायातिकाशुभाः ॥१३॥
नित्य देवालये गोष्ठे श्मशाने जलमध्यगे ।
यागस्थाने शुचौदेशेनाचरेद्दंतधावनं ॥१४॥
शार्दूल कृष्णगोकृत्तो यज्ञवृक्षे शुगेषु च ।
उपविश्य न कुर्वीत चक्राशुद्धिमनासनः ॥१४॥
दक्षिणामुखस्तिष्ठं शयानश्चविदिक्मुखः ।
गच्छन्व्रजत्यक्षरवोभूत्वा नाचरेद्दंतधावनम् ॥१५॥
पतितान्त्यय पापंड देवजीवरजस्वलाः ।
भिपक्यातकिछंडाल न प्रक्ष्यादंतधावने ॥१६॥
शुनकं विड्वराहं च गर्धभंतमजूडकं ।
अन्यान्नैवंयशास्पर्श्ये द्विजः शुद्धविचक्षणः ॥१७॥
यावंतो नियमाः प्रोक्ता द्विजश्रेष्ठस्य सुजितः(?) ।
प्रेक्ष्याप्रेक्ष्येषु कर्तव्याः समौनेन विपश्चिता ॥१८॥
कदांवार्जुन कौशीरशिरीष खदिरद्रुषु ।
द्विजः शुद्धि यविः कुर्यात नदाष्टांगुलियालया ॥१९॥

आयुरित्यादिमंत्रोयं उक्तः शाखाभिमंत्रिणे ।
विनाभिमंत्रिणं तूर्ष्णीं वृथास्याद्दन्तधावनं ॥२०॥
अस्य प्रजापति ऋषिः छंदोनुष्टुब्वनस्पतिः ।
देवतेतिहृदिस्मृत्वा मंत्रारंभेपठेद्बुधः ॥२१॥
अभिमन्त्र्यांहृतांशाखां मंत्रेणानेन वै द्विजः ।
परवादूर्ध्वं मरूणे मदायेच्छाकयैकया ॥२२॥
शाखांविदार्य तस्यास्तु भागेनैकेन मार्जयेत् ।
स्थूलमध्याल्पभेदतः ॥२३॥
श्रेष्ठामध्याः कनिष्ठास्युरुशयैमासकल्पने ।
पिप्पलाद समुत्पन्ने कृत्यये लोकभयकारि ॥२४॥
पापार्णंतेमयादत्तमाहारार्थं प्रकल्पितम् ।
तिलाक्षतैः स्नहाशीला मार्मं,त्रेणानेनवारि च ॥२५॥
दत्वेवाथाञ्जलिवन्त्रा ततस्नायाद्यथाविधि ।
विद्धेपर्वत(न) स्नायाचतुर्दश्यां महोदधौ ॥२६॥
सावेक्षोमयुता स्नायात्तामतिक्रम्य पर्वणि ।
प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥२७॥
स्थित्वा यथावदाचम्य प्राणायामं समाचरेत् ।
ततः संकल्पयेत्स्नानं ब्राह्मस्य विनियोगकं ॥२८॥
आपोहिष्ठादिभिः षड्भिः तिसृभिः प्रणवस्य च ।
हिरण्यवर्ण इत्यादि चतुर्भिश्च ततः परं ॥२९॥
पवमानानुवाकेन पावमान्य विधानतः ।
स्वात्मानं सकुशैरद्भिः मार्जयेत्परितोबुधः ॥३०॥

ब्राह्मस्थानमिदं प्रोक्तं पापक्षयकरं परं ।
पादयोर्मूर्ध्नि हृदये मूर्ध्नि वक्षसि पादयोः ॥२१॥
वक्षस्यंघ्र्योश्चमूर्ध्नीति ब्राह्मो संमार्जनं क्रमः ।
प्राङ्मुखः प्रयतः पादौ प्रक्षाल्यचम्य पूर्ववत् ॥२२॥
प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्थानं समाचरेत् ।
आदायभसितं स्वेतं अग्निहोत्र समुद्भवं ॥२३॥
ईशानेन तु मंत्रेण शिरस्येव विनिक्षिपेत् ।
तत आदायतद्भस्म मुखेतत्पुरुषेण तु ॥२४॥
अघोराख्येन हृदये ततस्तद्भसितं क्षिपेत् ।
सद्योजाताभिधानेन भस्मपादद्वये क्षिपेत् ॥२५॥
सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूलयेत्ततः ।
एवमाग्नेयजं स्नानं उदितं परमर्षिभिः ॥२५॥
प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् ।
प्राणानायम्य संकल्प्य तिष्ठेद्व पंचमा ॥२६॥
स्वशरीरं भवेद्यावं यावत्तावदिसतिप्रभा ।
दिव्यं स्थानमिदं प्रोक्तं मुनिभिः सर्ववित्तमैः ॥२७॥
पूर्ववत्सकलं कृत्वा मंत्रस्नान्ते द्विजोत्तमः ।
पादाद्यैः शुचौ देशे गवागमसपद्धतौ ॥२८॥
स्मरन्नारायणं निष्टंगावदूल्यापूतं पुनः ।
वायव्यंस्नानमित्युक्तं कलशाम्रायपारिभिः ॥२९॥
देवालये नदीतीरे मठपुण्याश्रमेयने ।
स्वगृहे वाथवान्यस्थाने शुद्धे स्नानं समाचरेत् ॥३०॥

येषु देशेषु यच्छ्रव्यं तत्कृत्वा स्नानमादितः ।
प्रक्षाल्य चरणौ हस्तौ उपस्पृशं(श्य) यथाविधि ॥३१॥
उपविश्यशु(शु)चौ देशेशिश्चला कल्पशास्मृते ।
ऊर्ध्वपुंड्रं च विधिना ललाट हृदये गले ॥३२॥
आत्याग्निहोत्रजेनैव भस्मना च प्रसन्नधीः ।
पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च ॥३३॥
वामभागेस्मरेद्विष्णुं कमलारूढपक्षसं ।
पीताम्बरधरश्यामं चतुर्बाहुं कीरीटनं ॥३४॥
नानारत्नप्रभाजाल्खु(स्फु) रन्मकरकुण्डलं ।
सर्वाभरणसंयुक्तं हेमयज्ञोपवीतिनम् ॥३५॥
पवित्रहस्तोध्यायितः किंचित्प्रहसिताननं ।
सुदर्शनं पांचजन्यं च बिभ्राणं हस्तदक्षयोः ॥३६॥
कौमोदकीं रथागं च बिभ्राणं वामहस्तयोः ।
तिष्ठंतवासुखासीनं तदाध्यायेद्यथारुचि ॥३७॥
विवंभक्त्या स्मरेध्यायेदीश्वरं सुरनायकं ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमांगतिम् ॥३८॥
इदं स्नानंतु सर्वेषां स्नानानामाचरेद्यथा ।
द्विजः शक्तस्त्वशक्तश्चेदिममेव समाचरेत् ॥३९॥
इदं हि मानसंस्कारं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ।
देवैर्महर्षिभिः सेव्यं भक्तयापि परया सदा ॥४०॥
एवं सप्तविधं स्नानं प्रज्ञप्तं पुरोदितम् ।
ज्ञात्वा द्विजोत्तमः सम्यग्यथायोग्यं समाचरेत् ॥४१॥

अग्नोक्तं सर्वमंत्राणां प्रजापतिरिपि स्मृतः ।
छंदस्यंदसि विज्ञेयं लिंगोक्ता देवता स्मृता ॥४२॥
प्रयोगकाले मंत्राणां ऋषिश्चंदोधिदेवताः ।
विनियोगश्चमादुक्ता तत्तत्कर्म समाचरेत् ॥४३॥
अयदित्वा ऋषिश्छंदो दैवतं विनियोगकं ।
प्रयुनक्तिमसूत्रमौ पापिष्यान्भवविघ्रं ध्रुवं ॥४४॥
द्विजोमिमज्जनेव भस्मना च सवारिणा ।
धारयेदूर्ध्वपुंड्रं च सर्वपापविशुद्धये ।
ललाटचोर्ध्वपुंड्रस्यात्सर्वपुण्यफलं भवेत् ॥४५॥
॥ इति भारद्वाजस्मृतौ स्नानविधिवर्णनंनाम पञ्चमोध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

त्रिकालसंध्याविधानकथनम

अथ संध्यात्रयोपास्ति विधानं कथ
द्विजन्मनां परिस्पष्टं समस्ताभिष्टसिद्धं
ब्रह्मव्याकारभेदेन याभिन्ना कर्मसाक्षिणी ।
भास्वतीश्वरशक्तिः सासंध्येत्यभिहिता बुधैः ॥ १ ॥
तं मयूखकायायां निविष्टं स्वस्वविग्रहं ।
संचित्यतस्याः कुर्यादित् कर्मोपायस्तदुच्यते ॥ २ ॥

उत्पत्तिस्थितिसंहार स्वस्वभाव प्रभेदतः ।
संध्या सर्वगतासाध्या एकैव त्रिविधा भवेत् ॥ ४ ॥
प्राक्संध्यामध्यसंध्या च सायं संध्येत्यनुक्रमात् ।
तिस्रः संध्या भवंत्येवं जन्मस्थितिलयात्मिकाः ॥ ५ ॥
पूर्वसंध्या ब्राह्मीस्यान्मध्यसंध्या तु वैष्णवी ।
रौद्री तु पश्चिमासंध्या चैवं संध्या त्रयं स्मृतं ॥ ६ ॥
ऋग्युजुस्सामवेदानां रूपत्रयमिदं मतं ।
तस्माद्द्विजस्सदा संध्या त्रितयं सर्वदा चरेत् ॥ ७ ॥
पारब्धप्राक्काज्ज्योतिराभानुदय दर्शनात् ।
प्रातः संध्यत्यभिहित स्वाध्यायश्चमहर्षिभिः ॥ ८ ॥
सूर्यस्यार्धमयात्पूर्वमारभ्यातारकोदयात् ।
सायंसंध्येति सामध्यमुभयोर्मध्यमातथा ॥ ९ ॥
सेवेत पूर्वं प्राक्संध्यामध्यसंध्या ततस्तथा ।
ततश्चात्पश्चिमा संध्या नियमेन ततोद्विजः ॥१०॥
उद्धाय पूर्वं संध्यायाः कृत्वा चावश्यकादिकं ।
स्नानांतं विधियत्सर्वं संध्याकर्म समाचरेत् ॥११॥
महाधुनीधुनीश्रोतः सरोमातस्तटाककः ।
वाप्यः पुष्करिणीत्यष्टौ एते च मविलाशयः ॥१२॥
एतेष्वं... घटे शुद्धस्थानेषु चैव हि ।
वस्त्रीत्वाद्विजः संध्यामुपासीत विधानतः ॥१३॥
स्नात्वानुपहतः पादौ प्रक्षाल्य प्राङ्मुखस्थितः ।
उपस्पृश्यसमाचम्य प्राणायामं समाचरेत् ॥१४॥

प्रणवं व्याहृतिः सप्तगायत्रिं सिरसासह ।
त्रिः पठेदायतः प्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥१५॥
सप्तव्याहृति पूर्वां तां आशंतं प्रणवादृता ।
जपेद्वादश गायत्रिं एकोयं प्राणसंयमः ॥१६॥
अशक्तास्यात्समुदितः प्राणायामो द्विजन्मना ।
वाल्स्यर्वनेरेशा [redacted] प्रशस्तः प्रथमोदितः ॥१७॥
दक्षिणाघ्राणरंध्रेण रेचयेत्सर्वकर्मसु ।
प्राणायामेन वामेन स्वरंध्रेण च पूरयेत् ॥१८॥
प्रायशोखिलमंत्राणां ऋषिश्चंदोधिदैवताः ।
विनियोगं च संस्मृत्वा ततो मंत्राः समुच्चरेत् ॥१९॥
इत्येवमुक्तो विधिवज्जपः कर्मणि सूरिभिः ।
व्यक्तोपांशुश्च कंठोष्ठैर्मनस्सापित्र्यनुक्रमात् ॥२०॥
पार्श्वस्थितजनैश्रोतुं य उच्चारः स्परिस्फुटः ।
स्पस्यश्रोतुं परीसृष्टं उच्चारो जपकर्मणि ॥२१॥
यो सा उपांशुरित्युक्त जपयज्ञपरायणैः ।
य उच्चारः सविद्वद्भिः कंठोष्ठक इतिस्मृतः ॥२२॥
मंत्राक्षराणि मनसाचिंतयन्नप्यथक्रमात् ।
पृथक्पृथक्तदुच्चारो मानसाख्य इति स्मृतः ॥२३॥
व्यक्त एकगुणसस्मादन्योदशगुणाधिका ।
कंठोष्ठकश्शतगुणः तत्सहस्रगुणोदिकः ॥२४॥
पुरस्थात्प्रणवोच्चारः मंत्राणां सर्वदा स्मृताः ।
सर्वकर्मसु सर्वत्रापरेषां परमर्षिभिः ॥२५॥

णवस्य ऋषिर्ब्रह्म देवता च श्रुतित्रयं ।
दस्तु देविगायत्रि विनियोगोसुसंयमे ॥२६॥
यस्वर्महाजनस्तपः सत्यमितीरिताः ।
ाक्रमेण सप्तैताः महाव्याहृतय स्मृताः ॥२७॥
ादिनामत्रिभृगुकुत्सवशिष्ठगौतमकाश्यपांगिराः ।
ते मुनयस्सप्तव्याहृतिनां क्रमात्स्मृताः ॥२८॥
भूर्बासिगायत्र्युष्णिश्च अनुष्टु(पश्च) इति तथा ।
पंक्तिस्त्रिष्टुप च जगते चैव मुक्तान्यनुक्रमात् ॥२९॥
भूरादिव्याहृतीनां तु मुनयो मुनिसप्तकं ।
संस्मर्तव्यमिति प्राहुः केचित्स्वाध्यायवादिनः ॥३०॥
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः ।
अत्रिभृगुः कश्यपश्च इति सप्तमहर्षयः ॥३१॥
पावकस्य सन्त्सूर्यवागीशोयावसांपतिः ।
वैश्वादिवश्च देवाश्च देवता इत्युदीरिताः ॥३२॥
श्वेतश्यामश्च सारांभः पीतवर्णाश्च लोहिता ।
सुवर्णवर्ण इत्येते तासां वर्णाः क्रमात्स्मृताः ॥३३॥
विश्वामित्र ऋषिश्चंदो गायत्रि देवतांशुमान ।
गायत्र्याशिरसो ब्रह्म मुनिश्चंदस्तथैव च ॥३४॥
देवता परमात्मास्याद्विनियोगोनुसंयमे ।
भगवत्स्यवधावर्णं शुद्धस्फटिकसंनिभः ॥३५॥
तथैवामुक्तमंत्राणां सर्वत्रमिति स्मृतं ।
इत्येवमुक्तानत्वा च सर्वकर्म समाचरेत् ॥३६॥

आदौ यः सर्ववेदानां उच्चार्यः प्रणवो हि सः।
भूरादयोत्र कथिताः संत्तिचंदसि स[illegible] च ॥३७॥
यस्यतत्सवितुर्पूवं तदंतं च प्रचोदयात्।
तस्मादयं प्रकथितः मंत्रैः सर्वागमेष्वपि ॥३८॥
पवित्रवंत्तइत्यस्मिन् सूक्तदंयुजुरागमे।
नतामियंनित्यस्मिंश्च मंत्रस्यश्चंदसिस्पुटं ॥३९॥
ॐ आपो ज्योतिरित्यादि भूर्भुवः सुवरोमिति।
सर्वश्रुतिशिरोगुह्यमेतद्गायत्रिया स्मृता ॥४०॥
एतद्रहस्यं गायत्र्याः शिरः सप्तदशाक्षरं।
परंब्रह्मेत्यभिहितं वेदेवाजसनेय्यके ॥४१॥
ततः संकल्पयेत्प्रातः संध्योपास्तिकरोमि यः।
इति स्वचेतस्मरणं यः संकल्पस्तादुच्यते ॥४२॥
आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैः त्रिभिः संमार्जयेत्ततः।
सिंधुद्वीपऋषिश्चंदो गायत्र्यापोहि देवताः ॥४३॥
मार्जने विनियोगस्तु सूर्यश्चेति जलं पिबेत्।
अस्यानुवाकस्य ऋषिः छंदो गायत्रमंत्रगान् ॥४४॥
देवता विनियोगोपापाने समुपवेशयेत्।
आत्मानं प्रोक्षयेत्पश्चात् दधिक्राव्ण्ण इत्यृचा ॥४५॥
आपोहिष्ठादिनिसृभिः ऋग्भिश्च सुरभीमंत्रैः।
दधिक्राव्णमंत्रस्य वामदेवऋषिर्मतः ॥४६॥
छंदोनुष्टुप्त्रिधरेयाः देवतापरत्वयात्मना।
ततोघमर्षं व्याहृत्या या समहाशा ॥४७॥

पश्चादुभाभ्यां हस्ताभ्यां आदायांब्युसमाहितः ।
·······भिमुखस्तिष्ठप्राणव्याहृति पूर्वया ॥४८॥

गायत्रियाभिमंत्रोर्ध्वं त्रिःक्षिपेद्द्विजसत्तमः ।
तत प्रदक्षिणिकृत्य प्रोक्षेद्विशुचिस्थले ॥४९॥

दर्भेषु वाग्यतस्तिष्ठन् प्राङ्मुखोदर्भपाणिकः ।
त्रिः प्राणसंयमं कुर्यात ऋष्यादीनथनंतरान् ॥५०॥

गायत्र्यास्तु समाधाया ऋषिच्छंदोधिदेवताः ।
स्मृत्वाप्रत्यक्षरं पश्चात्सत्रादिन्क्रमशास्मरेत ॥५१॥

वशिष्ठभरद्वाज गौतमभृगुशाण्डिल्य लोहितगर्गशाण्डिल्य ।
शातातपसनत्कुमारसत्यदत्तगंधपराशरपौण्ड्रीक
क्रतुदक्षकाश्यपजमदग्न्यांगिरः कार्तिकेयमृगकु-
भयोनिसाध्या इति ॥५२॥

चतुर्विंशति वर्णानासदादिना यथाक्रमं ।
ऋषयोगीतमारुद्रावाः स्मर्तव्याः प्रथमे मनोः ॥५३॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुपबृहतिर्त्रिष्टुब्जगतिशक्वरि अतिजगति-
शक्वर - त्यष्टिधृतिपंक्ति अक्षर पंक्ति कृत्यावर्ति
अत्यतिधृति त्रिष्टुब्जगति । सर्वछंदो गायत्रिछंदो
देवी गायत्रित्येतानि छंदांसि ॥५४॥

चतुर्विंशतिरेतानि छंदांसिस्युर्यथाक्रमं ।
प्रोक्तानिगायत्र्यार्णानि वदादौना दृष्टष्टृथक ॥५५॥

अग्निप्रजापतिस्सोमः यीशानस्त्वदितिर्बृहस्पतिर्मित्रोभग
अर्यमान(स)वितात्वष्टा पूषेंद्राग्निरामदेवोमित्राव-
रुणावधातरौ विश्वेदेवाविष्णुर्वसोजीवः ॥
कुबेर अश्विनौ ब्रह्मेति तेषां यथाक्रमेणतेचतुर्विंशति
संख्यया ॥

अक्षराणां तदादीनां समाख्याता हि देवताः ।
पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशागंधरसरूपस्पर्शवाक्पृस्त्वि-
पादपाया(यू)पस्तश्रोत्रमनश्चक्षुर्जिह्वाघ्राणहंकारबुद्धि
गुणत्रयमित्येतानि सर्वाणितत्वानिति ॥५६॥
चतुर्विंशतिवर्णानां तत्वादीनां यथाक्रमं ।
तत्वानितानि प्रतिवर्णं पृथक् पृथक् ॥५७॥
ब्राह्मीसभामहानित्या धिपापा च सरस्वती ।
प्रभावतिलक्ष्माकांतिः कांत्तदुर्गापरानला ॥५८॥
विश्वरूपा विशावेशा व्यापिनी कमलापति ।
मोहावसूक्ष्मा हिरण्मया शांतापश्चा सचापरा
शोभानागदारूपिणिति ॥
चतुर्विंशतिरेतेषां अक्षराणां पृथक् पृथक् ।
यथाक्रमं समाख्याताः शक्तयः सर्वकामदा ॥५९॥
सुमुखं संपुटं वित्तीर्णं विसृतं द्विमुखं त्रिमुखं चतुर्मुखं
पंचमुखंषण्मुखादामुखव्यापकांज्जलिशकटयम-
पाशग्रथित सुमुखोत्मुख प्रलंबमुष्टिक मीनकूर्मवराह-
सिंहाक्रांत्तमहाक्रांत्तमुद्गरपल्लवमिति ॥

चतुर्विंशत्यक्षराणां चैतामुद्रा पृथक् पृथक् ।
तथा क्रमेण कथिताः शीघ्रसिद्धिप्रदायकाः ॥६०॥
आदौ सांगं च कर्मोक्तं सप्तम्यंतमनंतरं ।
विनियोग इतिवदेद्विनियोगस्तदुच्यते ॥६१॥
चम्पका पुष्पचलितं इन्द्रनीलसमप्रभं ।
पीतयोनि दीप्ताभं जलदह्नि समप्रभं ॥६२॥
शंखकुंदधवलं पांडरं शुक्रकोपहं ।
रक्तमदर्श भानोः उदयद्युतिसन्निभं ॥६३॥
गोरोचनप्रभावीतं नीलोत्पलदलप्रभं ।
शंखकुंदेंदुधवलं वर्णानीवांतरद्भुतं ॥६४॥
चतुर्विंशतिवर्णानां वर्णाः प्रोक्ता यथाक्रमं ।
एवंमुद्रादिकानेतः मर्थास्मृत्वा प्रणम्य च ॥६५॥
अन्यगुह्यप्रकारेणन्यासत्रयमथाचरेत् ।
प्रथमं करन्यासं देहन्यासंततः परं ॥६६॥
अंगन्यासं ततः प्रोक्तमेतन्यास त्रयं क्रमात् ।
अंगुष्ठादि [illegible] तलयोस्तलपृष्ठयोः ॥६७॥
तलयोर्मध्यमेविप्रः प्रणवं केवलंन्यसेत् ।
मणिबंधस्य विन्यासं संभार्जनपाणिनामिथः ॥६८॥
तलमध्यमविन्यासं संस्पर्शमध्यांगुल्यापरः ।
उभयोर्गुह्ययोस्तस्य तर्जन्या प्रणवंन्यसेत् ॥६९॥
अनामिका,मंगुलीनां तु चतुर्विंशाति वर्णं तु ।
चतुर्विंशत्यक्षराणि तर्जन्यानामिकामध्ये [illegible]

अंगुलीभिश्चतसृभिः कुर्याद्धृदयशीर्षयोः ।
मुष्टेरंगुष्ठशिरसोपरचमेतस्यचामतः ॥६३॥
यहिः कलाभ्या दकपालं मध्यमयोग्मुलेस्त्रिभिः ।
अंगुष्ठतर्जन्यमाभ्या सशब्दंद्वि(दि)शुपार्श्वयोः ॥६४॥
षडंगन्यासमित्युक्तं हृदंम्नेनप्रकारतः ।
न्यस्याधायातु यरदेत्यनुवाकेन मंडभानोरायाह्वये-
द्देवींसंध्यांगायत्र्याख्यया। चामुदेवभृपिश्चंदोनुष्टुप्सा-
विभ्रि देयता ॥६५॥
आवाहने विनियोगः देव्वा अस्यायथाक्रमं ।
अविचावाह्येद्देवी हृदयांभोरुहे द्विजः ॥६६॥
ध्यात्वाध्येयं यथाप्रोक्तं मूर्त्तिध्यानं तथैव हि ।
द्दात्वोपचाराः सकलास्तथाथजपसमाचरेत् ॥६७॥
अष्टोत्तरसहस्रं याह्यष्टोत्तरशतं तु वा ।
जसप्त्वष्वा विंशति वापि बीजशक्तिक्रमा(ज)पेत् ॥६८॥
पूर्वार्ण्हं च चतुर्थार्ण्हं बीजमस्या इति स्मृतं ।
चतुर्विंशाद्यक्षरांतं सदीर्घं शक्तिरुच्यते ॥६९॥
जपेदष्टोत्तरशतं अष्टाविंशतिरेफला ।
एतयोः पूर्वमुनिभिः आख्यातः शक्तिबीजयोः ॥१००॥
अंगुलिभिस्तुरेखाभिः अथवा जपमालया ।
जपस्यसंख्या विज्ञेया जपकृद्भिर्द्विजोत्तमैः ॥१०१॥
वृथाभवेत्कृतो विप्रैः संख्याज्ञानं विनाजपः ।
. . . . अवश्यं जपकर्मणि ॥१०२॥

जपस्यैकस्यैकर्माणि नयेदष्टगुणं क्रमात् ।
यथाप्युष्टेनमकलानि नवैर्भुतैः सदा ॥१०३॥
अपवित्रकरोनग्नः मुक्तकेश सवंगुक ।
स्यादिशुद्धो भूमिरः प्रलपञ्जपं ॥१०४॥
नेष्टेयसुंभग कोपनिद्राल्मयना सह ।
[illegible] जपवर्जितम् ॥१०५॥
[illegible] ।
[illegible] संदश वा जपेत् ॥१०६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०८॥
[illegible]
[illegible] ॥१०९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१११॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११३॥

इत्युक्तानेनगायत्रि अनुवाकेन वै द्विजः।
उद्वास्याधनमस्कुर्याच्चतुः संध्यादि देवताः ॥११४॥
संध्यापुरस्ताद्गायत्रि सावित्रि च सरस्वती।
एतत्संध्यादयः प्रोक्ताः चतस्रोदेवताः क्रमात् ॥११५॥
स्वस्वनाम चतुर्थ्यंतं प्रणवादि नमोंतकं।
मंत्रमासामिह प्रोक्तं प्रणमेत्स्वस्वमंत्रतः ॥११६॥
केचित्तु मुनयः प्राहुः प्रतिमंत्रं प्रदक्षिणं।
कुर्वन्प्रणामं कुर्वीतह्येताभ्याः भक्तितो द्विजा ॥११७॥
मित्रस्येत्यादिभिर्ऋग्भिः विस्पष्टोदित मंडलं।
आदित्यंतिसृभिर्देव उपतिष्ठेदथद्विजः ॥११८॥
असामृषिर्विश्वामित्रः देवता वै दिवाकरः।
भूमिगायत्र्यभाणस्यत्रिष्टुभाविह्यपश्चिमौ ॥११९॥
इत्येवमुक्तोपस्थाय ततस्थमभिवादयेत्।
अभिवादनमंत्रेण सद्भूपया लोकसाक्षिणं ॥१२०॥
सगोत्रनामशर्माहं भो प्यादैरभिवादयेत्।
इत्येवं भाष्यमाणेयं मंत्रमर्काभिवादने ॥१२१॥
सर्वाभ्यो देवताभ्यश्चेत्येनप्रणव संयुतं।
उक्तानमोनमयिनि प्रणमेत्सर्व देवताः ॥१२२॥
कामो कार्षिन्मनयुक्तापिदित्येनत्पूर्वमंत्रान्।
उक्ता प्रदक्षिणेन नमस्कुर्यात्रयितनुं ॥१२३॥
प्राचीं च दक्षिणाचाथ प्रतीचींचोत्तरोर्ध्वकं।
अधराचान्तरिक्षं च एताः सप्तादिगादिशः ॥१२४॥

अन्यत्सर्वं यथापूर्वं कर्मकुर्याद्द्विजोत्तमः ।
एवं मध्याह्न संध्यायां विशेषविधीरिति: ॥१३५॥

अथ पश्चिम संध्यायां विशेषोत्र विधीयते ।
सितेरयाऽपक्रम्य पश्चिमं तु समाप्नुयात् ॥१३६॥

अग्निश्चेत्यनुवाकश्च मुनिः सूर्योहुताशनः ।
देवता गायत्रं छंदः पानेपाविनियोगकः ॥१३७॥

एतस्मत्यङ्मुखस्थित्वा स्मृत्वात्त्वानेनकंपिबेत् ।
उपासने विशेषोयं उपस्थानेथ वक्ष्यते ॥१३८॥

याचिद्धित्यादिपंचर्चाल देवराज इति स्मृतः ।
गायत्रित्रिष्टुब्जगति गायत्रित्रिष्टुभित्यपि
यथाक्रमेनाच्छंदांसि वरुणाश्चाधिदेवता ॥१३९॥

उपस्थाने विनियोगयित्युक्तातं च पंचभिः ।
वरुणं समुपस्थाय कुर्यादन्यदापुरे ॥१४०॥

प्रयोगकाले मंत्राणि ऋषिच्छंदांसि दैवतं ।
विनियोगं शक्तिबीजे स्मरेन्नोचेद्वृथाफलं ॥१४१॥

इदं समस्तं स्मृतिभिः गायत्रिचेदुदाहृता ।
विधिनैवाभ्यसेद्यावत्तुरियं परमं पदं ॥१४२॥

ॐ भूदित्यादित्रिमंत्रैः प्रागायत्र्यनंतरं ।
तस्यां प्रथमपानेन भूर्भुवः सर्जगत्रयं ॥१४३॥

व्याप्यं द्वितियपादेन वेदानां त्रितया तथा ।
त्रितिय्येन तु पादेन प्राणंव्यानं समानकं ॥१४४॥

व्याप्त चतुर्थपादेन परमं रविमण्डलं।
क्रमाणानेन संक्रान्तं ययाव्याप्तमिदं जगत् ॥१४४॥
गायत्रि सर्व देवानां माताः साक्षाद्द्विजाश्रयाः।
तामेव प्रजपेद्ब्रह्मयाध्यायेच्च सततं द्विजः ॥१४५॥
दुष्पतिमह भुक्त्वाहं उपाह्वभ्यो निशां द्विजः।
गायंतं त्रायते यस्मात् गायत्रीति स्मृता बुधैः ॥१४६॥
पाणागाधाइति प्रोक्ताः त्रायतेतानथापि वा।
गायत्रीतिभवेन्नाम केवलं त्रायतीति वा ॥१४७॥
आशेषप्राणि जिह्वासु सदावाग्रूपवर्त्मनात्।
परस्वतीतिनाम्नोयं समाख्याता महर्षिभिः ॥१४८॥
सवित्र प्रकाशकरणात्सावित्रीतिस्मृता बुधैः।
जगतः प्रसवतीति हेतुनानेन वा भवेत् ॥१४९॥
तस्मादियं सदोपास्या निशादिवसयोर्द्विजैः।
गायत्रिसनन्निवेशायनैव संध्येति कीर्तिताः ॥१५०॥
यो जपेद्यजसंज्ञात्वा नश्यंत्यंहांसि तत्क्षणात्।
ऋषिच्छंदो देवताश्च जपेत्तास्ता यथाक्रमात् ॥१५१॥
'ज्ञात्वायोपास्तिमाचरेत्'
ज्ञात्वा पदानि जित्वा धमदिर्म्यं पादमव्ययम्।
ब्राह्मणो याति तत्साम्यं पदं ज्ञात्वा तुरिय्यकम् ॥१५२॥
यासायत्रिचरणा सात्रिमूर्तिस्वरूपिणि।
उपास्यानारतंप्रैः त्रिसंध्यासु त्रिमूर्त्तिषु ॥१५३॥
६

अन्यत्सर्वं यथापूर्वं कर्मकुर्याद्द्विजोत्तमः ।
एवं मध्याह्न संध्यायां विशेषविधीरितिः ॥१३५॥

अथ पश्चिम संध्यायां विशेषोत्र विधीयते ।
सितेरवाउपक्रम्य पश्चिमं तु समाप्नुयात् ॥१३६॥

अग्निश्चेत्यनुवाकश्च मुनिः सूर्योहुताशनः ।
देवता गायत्रं छंदः पानेपाविनियोगकः ॥१३७॥

एतन्मंत्रमुखस्थित्या स्मृत्वात्त्वानेनकंपिबेत् ।
उपासने विशेषोयं उपस्थानेथ यक्ष्यते ॥१३८॥

यच्चिद्धित्यादिपंचर्चाग्ढ देवराज इति स्मृतः ।
गायत्रित्रिष्टुब्जगति गायत्रित्रिष्टुभिरयपि
यथाक्रमेनाच्छंदांसि वरुणश्चाधिदेवता ॥१३९॥

उपस्थाने विनियोगयित्युक्तानं च पंचभिः ।
वरुणं समुपस्थाय कुर्यादन्यत्पुरं ॥१४०॥

प्रयोगकाले मंत्राणि ऋषिच्छंदांसि दैवतं ।
विनियोगं शक्तिबीजे स्मरेद्योपेद्वृथाफलं ॥१४१॥

इदं समर्थं मुनिभिः गायत्रिर्णगुरात्मना ।
विधिनिवाक्यसेशायतनुदित्यं परमं पदं ॥१४२॥

ॐ भूरित्यादिभिर्मंत्रैः प्राणायत्यनंतरं ।
तस्या प्रथमपादेन भूर्भुवः समंगपूर्वं ॥१४३॥

ध्यात्वं द्वितीयपादेन वेदाना त्रितया तथा ।
त्रितियेन तु पादेन प्राणंध्यानं समानकं ॥१४४॥

व्याप्त चतुर्थपादेन परमं रविमण्डलं ।
ब्रह्मायानेन संक्रान्तं यथाव्याप्तमिदं जगत् ॥१४४॥
गायत्रि सर्व देवानां माताः साक्षाद्विजाश्रयाः ।
तामेव प्रजपेद्ब्रह्मयाध्यायेव सततं द्विजः ॥१४५॥
दुष्प्रतिग्रह भुक्त्याहं उपाह्नेभ्यो निशां द्विजः ।
गायंतं त्रायते यस्मात् गायत्रीति स्मृता बुधैः ॥१४६॥
प्राणागाधाइति प्रोक्ताः त्रायतेतानथापि वा ।
गायत्रीतिभवेन्नाम केवलं त्रायतीति वा ॥१४७॥
आशेषप्राणि जिह्वासु सदावाग्रूपवर्त्मनात् ।
सरस्वतीतिनाम्नोयं समाख्याता महर्षिभिः ॥१४८॥
सवितृ प्रकाशकरणात्सावित्रीतिस्मृता बुधैः ।
जगतः प्रसवतीति हेतुनानेन वा भवेत् ॥१४९॥
यस्मादियं सदोपास्या निशादिवसयोर्द्विजैः ।
गायत्रिसनभिर्वेलायनैव संध्येति कीर्तिताः ॥१५०॥
यः जपेद्वजसंज्ञात्वा नश्यंत्यंहंसि तत्क्षणात् ।
ऋषिच्छंदो देवताश्च जपेत्तास्ता यथाक्रमात् ॥१५१॥
ज्ञात्वायोपास्तिमाचरेत्'
त्वा पदानि जित्वा धमदिव्यं पादमव्ययम् ।
णो याति तत्साम्यं पदं ज्ञात्वा तुरिय्यकम् ॥१५२॥
गायत्रिचरणा सात्रिमूर्तिस्वरूपिणि ।
ध्यानारतंम्रैः त्रिसंध्यासु त्रिमूर्तिषु ॥१५३॥

तुरियपादमेतस्या ज्ञात्वा यो पास्तिमाचरेत् ।
सरत्नपूर्णं पृथिवीं गृह्णन्नो दोषमाप्नुयात् ॥१५४॥
ब्रह्मकेशवरुद्रादि देवताभिरुपाशिताम् ।
संध्यांत्ताकोन सेवेत विप्रः सदभिलापकः ॥१५५॥
प्रातः सतारकां संध्यां सायं संध्यां सभास्कराम् ।
स्नानकर्मणितन्मध्यां उपासीत यथाविधि ॥१५६॥
प्रातरेयमुपासित्वा प्रात्कुर्याद्धवनं जपं ।
स्नानस्यानंतरं कुर्यात्तर्पणंच महाक्रमान् ॥१५७॥
सायं संध्यां तथोपास्य होमं कुर्वीत वासनं ।
संध्योपासनहीनो यः न योग्यः सर्वकर्म सु ॥१५८॥
तस्मादुपास्यविधिना संध्यामन्यक्रिया चरेत् ।
नोपासयो द्विजस्संध्याम्विनाशूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१५९॥
कर्माण्यान्यानि संत्यत्य संध्या या केवला द्विजाः ।
उपास्ये सर्वपुण्यानि क्रत्वाः सभवेत्फलं ॥१६०॥
संध्योपास्तिं विना विप्रः पुण्यन्यत्यास्तिचाचरेत् ।
यत्तास्यतानि पापानि भवंत्येव न संशयः ॥१६१॥
नाशये अनिशंपाप दशजन्मार्जमात्मनः ।
पुराकृतं शतजपात् गायत्र्यांच्यं विजन्मनः ॥१६२॥
कृतयुगेपिचैकस्मिन् सहस्रेण जपेन तु ।
वद्धकत्या जपतस्तस्माद्गायत्रिं सर्वदा जपेत् ॥१६३॥
ममलगननंतुभ्यः जपयज्ञः पुरात्मनः ।
हिंसयान्येव प्रवर्त्तेते जपयज्ञो न हिंसया ॥१६४॥

[illegible] सर्वेश्वरस्य [illegible] च [illegible] च ।
[illegible] ॥१६५॥
[illegible] नित्यं [illegible] ।
[illegible] ॥१६६॥
[illegible] ।
[illegible] द्विजं दृष्ट्वा [illegible] ॥१६७॥
[illegible] नित्यं [illegible] समाचरेत् ।
स [illegible] ॥१६८॥
[illegible] ।
[illegible] भवेदत्र न संशयः ॥१६९॥
[illegible] यो [illegible] द्विजः ।
[illegible] ॥१७०॥
स सर्वपापनिर्मुक्तः सर्वविद्याविशारदः ।
[illegible] ॥१७१॥
[illegible] यो [illegible] ।
[illegible] ॥१७२॥
[illegible] यो मूल [illegible] ।
[illegible] च पूर्वजनने [illegible] ॥१७३॥
यो दद्यादिममध्यायं मद्भक्त्या [illegible] ।
[illegible] निर्मलं तस्य भवेदस्य न संशयः ॥१७४॥
[illegible] यो [illegible] ब्राह्मणोत्तमान् ।
[illegible] ब्राह्मणो नियमेन च ॥१७५॥

अज्ञानेन प्रमादेन श्रुतविन्नान्य संततिः ।
(दुयत्समुदितं)तस्य तत्सकलं नाशं व्रजेत्तत्रन संशयः ।
या संध्योपास्तिविच्छित्ति यस्यस्नानविहीनता ।
पर्वणि श्रवणादन्यत्र तत्सर्वं पूर्णतां भवेत् ॥१७७॥
कामवान्मोहयाल्लाभात्संध्यांनातिक्रमेद्द्विजः ।
संध्यातिक्रमणद्विजः ब्राह्मण्यात्पततेयतः ॥१७८॥
अनागतांतु ये पूर्वां अनिधीतां तु पश्चिमां ।
संध्यांनोपासते ये तु कथंते ब्राह्मणा स्मृताः ॥१७९॥
सायं प्रातः सदासंध्यां विनादिप्राउपासते ।
कामं ता स्वधिरोराजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥१८०॥
विधानमेतन्नोदेयं रहस्यं यस्यकस्यचित ।
वेदाध्यायाभिजाताय प्रदेयं स द्विजन्मने ॥१८१॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ जपविधानवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

जपमालायाःविधानकथनम

सहस्रपरमां नित्यां शतमध्यां दशावरां ।
तां सावित्रिं जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतस्थितः ॥ १ ॥
अथोपनिष्टेनादित्यं उदयंतं समाहितः ।
मंत्रैस्तु विविधैर्भाटै सूक्ष्मटुः मानसंभवैः ॥ २ ॥

नमस्कार्य महादेवं देवदेवं दिवाकरं।
इत्येव मन्त्रं सूर्यो मुक्तिर्नैव संशयः ॥ ३ ॥
ॐ नमस्कृत्य सोमाय कालरूपाय हेतवे।
निरंतराय धान्याय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥ ४ ॥
नमस्ते पूजिते पुण्ये सूर्याय ब्रह्मरूपिणे।
विधानं जपमालायाः प्रवक्ष्यामि यथाक्रमं ॥ ५ ॥
यस्यां विधेयं मन्त्रः यो जपे जपमालया।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जपमालां यथाविधि ॥ ६ ॥
दानपरं विप्रः जपेन जपमालया।
जपमालाभिमन्त्रेण लभ्यन्ते नोविधिः ॥ ७ ॥
जपमालाविशेषश्च कथ्यते च यथाक्रमं।
पुत्रजीवसंस्फाटिक पद्माक्षमणिमौक्तिकाः ॥ ८ ॥
गोत्रजी गोत्र कुशग्रन्थ्याक्षसंज्ञिका।
ते जपमालायां मणिकाः पुरोहिताः ॥ ९ ॥
पुष्करादिभिरेकैकः फलेनाभिहिता अमी।
अंगुलीभिः फ्लजपः किंचितायानिति स्मृतः ॥१०॥
रेखाभिरेकोत्तरकः तेषनुजपिनेदश ?।
रेकगुणं बहुफलकाक्षिप्तचविभ्रमैः ॥११॥
क मध्यमणिभिः एकोदशसहस्रकः।
अयुतफलैरेकः कोटिरेकोऽब्जबीजकैः ॥१२॥
मैरेकादशकोटि शतकोटिस्तथा कुशैः।
अनंतमेकोरुद्राक्षैः प्रयुक्तं फलं क्रमात् ॥१३॥

मणिभिर्मोक्षमाला च सप्तविंशति संख्यकैः ।
त्रिशन्मध्ये तु मणिभिः जपमालामनंदिनः ॥१४॥
पंचाशच्छतसंख्याकैःमाला चतुरुत्तरपंचाशर्मणिभिर्जपमालिका ।
विद्वेषणादिषु क्षुद्रकर्मस्वभिहिता बुधैः ॥१५॥
अष्टोत्तरशतं मालामणिभिर्या विनिर्मिता ।
सर्वाभिष्टेक फलदा सदाजपहृतामलं ॥१६॥
एवं संख्याफलं प्रोक्तं मणिनांतु यथाक्रमं ।
अथोच्यतेंगुल फलं अंगुष्ठादि यथाक्रमं ॥१७॥
जपोमोक्ष प्रदोंगुष्ठः मध्यायुः प्रवृद्धिदाः ।
समस्ताभीष्टफलदा नामिकामरणादिषु ॥१८॥
क्षुद्रकर्मसुसर्वेषु तर्जनि तत्फलप्रदा ।
अंगुलिनां फलं सम्यक्क्रमेणोक्तं पृथक् पृथक् ॥१९॥
अथोच्यते मणीनां तु लक्षणं साध्वसाधु च ।
न स्यास्स्निग्धाः दृढ़ाः पक्काः गुरुवो ऋजुरंध्रकाः ॥२०॥
न्यायागताश्च मणयः ते शुभाजप कर्मणि ।
पाकनाविपुरुषा खंडाः स्फटिकाश्च सकीटकाः ॥२१॥
अतिसूक्ष्मा अतिस्थूलाः अपकावक्ररंध्रकाः ।
अन्यायेनागताः पूर्वं पूर्वोक्ता जपकर्मणि ॥२२॥
इत्ताश्चयेतें मणयः न ग्राह्यजपकर्मणि ।
रुद्राक्षा पुत्रजीवाख्याः पद्मबीजेष्वमीगुणाः ॥२३॥

पुंश्चिह्नविद्धाकारेषु [illegible] शुभाः ।
[illegible] धनुर्दण्डानुसारतः ॥२४॥
[illegible]कारः [illegible]निवृत्ति ।
[illegible] [illegible]धनुर्विधाः ॥२५॥
[illegible] गुच्छांश्च [illegible] यथाकर्मं ।
[illegible] [illegible] ॥२६॥
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible]नाः ॥२७॥
[illegible] [illegible]सम्भवाः ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥२८॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]विशारदैः ।
[illegible] [illegible]संनिभः ॥२९॥
[illegible] [illegible] ।
इयं धनुर्विधा [illegible] [illegible] [illegible] ॥३०॥
[illegible] [illegible]मोपमः ।
[illegible] महाविभ्रमकारकः ॥३१॥
गोधूमचूर्णं [illegible] [illegible] समंततः ।
[illegible] सर्वदा[illegible] ॥३२॥
[illegible] स्फटिकप्रख्यः [illegible] ।
[illegible] [illegible] संजननः सदा ॥३३॥
[illegible] समाकारा [illegible] पराकृतिः ।
[illegible] [illegible] ॥३४॥

कौशिका कृष्णलोहभाकृष्णंभ्रक समाकृतिः ।
शिखिपिंचवदाकारा त्रिधैतदसुनाशकृत् ॥३५॥
कीलकंकीलवकीलवतिष्ठेत् सत्वघाहृदयात्तकृत् ।
एवं रत्नेषु दोषाणां लक्षणं समुदाहृतम ॥३६॥
भल्लेक्षणानिरत्नानि माह्यण्यानि वर्जयेत् ।
गोमेधकः पुष्परागवैडूर्यः शवरुग्मणिः ॥३७॥
एतेचस्फटिकाप्रख्याः स्फाले स्फटिकजातयः ।
जपमालाकृताचैव मणीनालोक्य शोभनाम् ॥३८॥
जपांगुलिसमास्थूलमस्थूलान् संगृपिद्याद्विजोत्तमः ।
यज्ञोपवीतविधिना शुल्वं कृत्वा विधानतः ॥३९॥
मणिनेकमुखाः सर्वास्तृद्धयेद्वात्र पंक्तिवत् ।
रुद्राक्षस्योन्नतस्थानंरंध्रंस्यात्समुदाहृतं ।
पृष्ठनिम्नस्थलंरंध्रं संयुतं च शलाकया ॥४०॥
पद्मबीजस्यवक्त्रंनविद्धय समन्वितं ।
नेकविंदुस्थलं पृष्ठ विशालतस्य च स्मृतं ॥४१॥
पृष्ठास्ये पुत्रजीवस्य रुद्राक्षस्य यथापुरा ।
ज्ञात्वैनं प्रोतयच्छुल्वेस्वेष्ट संख्यामणिन्शुचान् ॥४२॥
ग्रन्थिपृथक्पृथक्कुर्यामणीनामंतरे बुधः ।
रूर्ध्वाभ्यां प्रोत्यसीमाग्रं मंथिदद्याद्यथाशुभं ॥४३॥
रुद्राक्षादित्रिबीजानां एवंमालाकृतिक्रमः ।
मणिनामितरेषां तु मुखभेदो न विद्यते ॥४४॥

परिस्तीर्याथतन्मध्ये ततः कूर्चं विनिक्षिपेत् ।
ततः प्रक्षाल्यचरणावाचम्य च यथाविधि ॥५६॥
उदङ्मुखः प्रसन्नः सन् उपविश्य कुशासने ।
प्राणानां संयमं कृत्वा प्रतिष्ठार्थं जपस्रजः ॥५७॥
ततः पुराणाद्य संकल्पं द्विजन्मानुज्ञया चरेत् ।
ततोविशुद्ध मार्गेण कुर्यात्पुण्याहवाचनं ॥५८॥
प्रक्षालयेत्ततोमालां पुण्याहं कलशोदकैः ।
ततोभिषेचयेत्पंचगव्यैरिक्षुरसेन च ॥५९॥
मधुना कुशतोयेन स्नाप्य संस्कृत्य बुद्धिमान् ।
गोमूत्रं गोमयंक्षीरं दधिसर्पिध्यमानि च ॥६०॥
पंचगव्यानिमुनयः प्रवदंति मनीषिणः ।
त्रिहिद्रोणेन कृत्वाथमंडलं चतुरश्रकं ॥६१॥
तन्मध्ये पद्ममालिख्य-साष्टपत्रं सकर्णिकं ।
पूर्वधन्मंडलंदर्भैः परिस्तिर्याथमध्यमे ॥६२॥
कुशाकूर्चंक्षिपेधीमान् प्रागग्रंचोदगग्रकं ।
लोहितः सदृढ़स्निग्धः-प्रस्थतोय प्रमाणकः ॥६३॥
कलशः पंचगव्यादि द्रव्याणां समुदाहृतः ।
असिता लोहितापीता धवला कपिला क्रमात् ॥६४॥
गोमूत्रगोमयक्षीर दध्याज्यानामिह स्मृताः ।
स्व स्ववर्णयुतालाभे ढब्वगव्यानि वा हरेत् ॥६५॥
तत्रापि दोषदुष्टानि परित्यक्त्वा शुभानि चेत् ।
आहारवशजीर्णाया रोगार्त्तक्षिणवत्सका ॥६६॥

एतैर्द्रव्यैस्तुविधिवत् स्नापयेदक्षमालिका ।
द्रव्याभिमंत्रिणे मंत्रं प्रणवस्यमुदाहृतः ॥७८॥
अष्टोत्तरशतंरूपं मंत्रावृत्तिरुदीरिता ।
कलशानां समस्तानामभिमंत्रविदोबुधैः ॥७६॥
आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैः स्त्रीभिः प्राक्मार्जयेद्बुधः ।
हिरण्यवर्णइत्याद्यैः चतुर्भिस्तदनंतरं ॥८०॥
पावमानानुपाकेन ततः सकुशवादिभिः ।
प्राणवाष्टशतेनाभिमंत्रितेनाम्भसा ततः ॥८१॥
स कूर्चाक्षतवलयमभिषिंचेद्विजोत्तमः ।
गायत्र्याष्टशतेनाभिमंत्रे तेनाम्भसा ततः ॥८२॥
अभिषिंचेत्तु सद्गंधं कूर्चेन च जपस्रजं ।
होमपात्रेथवाश्रो मृण्मयेतदनंतरं ॥८३॥
आलिप्य चंदनेनाथ पद्मपुष्पाणि लिखेत् ।
प्रणवं पंकजेध्यायेतत्मादं कर्णिकांतरे ॥८४॥
सवितुः शक्रदिक्छत्रे वरेण्यं वन्हिदिग्दले ।
भर्गोयमस्कुत्पत्रे देवस्यनैर्ऋतेदले ॥८५॥
प्रत्यग्दले धीमही च धिनः पावनादिग्दले ।
धियस्सोमदिग्दले युत्रदिग्दलेन प्रचोदयात् ॥८६॥
सर्वत्रैवंद्रव्याध्यायन् पद्मपीठं प्रकल्प्य च ।
ततस्तत्पद्मपीठस्य मध्येतत्कर्णिकोपरे ॥८७॥
कुशाकूर्चं यथा पूर्वं प्रक्षिपेद्विजसत्तमः ।
तन्मध्येनववस्त्रेण शुक्लेन जपमालिका ॥८८॥

भ्रामयित्वा पुनर्वक्त्रमारभ्य च जपेत्पुनः ।
अयमेवसमाख्यातः जपमाला विधिक्रमः ॥१००॥
एकादिपंचपर्यंतं कनिष्ठाद्यङ्गुलिक्रमात् ।
संकोदयेत्ततोविद्वान्यथापूर्वं प्रसारयेत् ॥१०१॥
अनेन जपसंख्यास्यात्क्रमेणैव जपस्य तु ।
एकः स संख्या वामहस्ते दक्षिणेन तथाक्रमात् ॥१०२॥
तत्रापि दशसंख्याया शतसंख्येति च स्मृतः ।
जपाङ्गुलिक्रमेणोक्तो रेखाक्रममथोच्यते ॥१०३॥
मध्याङ्गुलेर्मध्यरेखां समारभ्य प्रदक्षिणं ।
अनामिकांतरेखांतं अंगुष्ठेन यथाक्रमं ॥१०४॥
स्पृष्ट्वा द्वादशसंख्यानार्केनवारेण तत्पुनः ।
एवं रेखाक्रमजपः प्रस्पष्टः ""प्रकाशितः ॥१०५॥
एतत्समस्तं विज्ञाय यो जपेद्द्विजसत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१०६॥
इहलोके सुखी भूत्वा प्राप्नुयात्परमं पदम् ।
प्रणवव्याहृतिः सप्तगायत्रि वैदिकान्मनून् ॥१०७॥
विनानन्यान्जपेन्मात्राननयाजपमालया ।
गुर्वलाभे स्वयंवापि प्रतिष्ठाप्यजपस्रजं ॥१०८॥
अनेनविधिना विप्रा जपेदक्षस्रजातया ।
वामनेनस्पृशेन्मालां करेण ब्राह्मण कचित् ॥१०९॥
करेकंठेथवास्कन्धे धारयेन्नकदाचन ।
जपस्रजातयानित्य जपकाले जपः शुचिः ॥११०॥

कलौत्वैवायशुचिस्थाने द्विजन्मात्र विनिक्षिपेत् ।
अभ्याक्षमालयैतानि मंत्राणि च जपेद्बुधः ॥१११॥
नान्येषामन्यमंत्राणां जपकर्माथमर्पयेत् ।
श्लेष्मरक्तसुरामांस विण्मूत्रोच्छिष्टकिल्बिषैः ॥११२॥
कपालनखकेशैश्च पतितैरंत्यजैरपि ।
उष्ट्राकाककपिदूकोदुखरपाद्यायुथश्वभिः ॥११३॥
शाखारंडकदोपघ्न देवाजचमहादिभिः ।
जपमाला यदिस्पृष्टा ता तथैव परित्यजेत् ॥११४॥
अज्ञातपूर्वगणिका पंचमीसूतिकारुचिः ।
याताभिरपि संस्पृष्टा त्यजेदक्षस्रजं बुधः ॥११५॥
तयैवाक्षनृजानित्या जपेत्सर्वार्थसिद्धये ।
दोषदुष्टाक्षमालार्त्तं महानद्यां ह्रदेथवा ॥११६॥
पुण्यतीर्थेथवा विप्रो मंत्रेणैव प्रचिक्षिपेत् ।
समुद्रं गच्छस्वाहेति मंत्रमेतदुदीरयत् ॥११७॥
गंधपुष्पार्चितैः सार्धं मालामंत्रेण निक्षिपेत् ।
रुद्राक्ष पुत्रजीवाब्ज बीजदर्भ जपस्रज ॥११८॥
दुःस्पृष्टि दोषविक्षेपो न रत्नजपस्रजे ।
पुनरेवं विधानेन संधायाक्षस्रजस्ततः ॥११९॥
यदिविदोष संस्पृष्टि भवेद्रत्नजपस्रज ।
पुनरेवं प्रतिष्ठाप्य जपेदक्षस्रजातया ॥१२०॥
प्रतिष्टा कीर्त्तन्नाध्यायः समाख्यातो जपस्रजः ।
यस्य [illegible] न्मते ॥१२१॥

भ्रामयित्वा पुनर्वक्त्रमारभ्य च जपेत्पुनः ।
अयमेवसमाख्यातः जपमाला विधिक्रमः ॥१००॥
एकादिपंचपर्यंतं कनिष्ठाद्यङ्गुलिक्रमात् ।
संकोदयेत्ततोविद्वान्यथापूर्वं प्रसारयेत् ॥१०१॥
अनेन जपसंख्यास्यात्क्रमेणैव जपस्य तु ।
एकः स संख्या वामहस्ते दक्षिणेन तथाक्रमात् ॥१०२॥
तत्रापि दशसंख्याया शतसंख्येति च स्मृतः ।
जपांगुलिक्रमेणोक्तो रेखाक्रममथोच्यते ॥१०३॥
मध्यांगुलेर्मध्यरेखां समारभ्य प्रदक्षिणं ।
अनामिकांतरेखांत्तं अंगुष्ठेन यथाक्रमं ॥१०४॥
स्पृष्ट्वा द्वादशसंख्यानार्केनवारेण तत्पुनः ।
एवं रेखाक्रमजपः प्रस्पष्टः " प्रकाशितः ॥१०५॥
एतत्समस्तं विज्ञाय यो जपेद्द्विजसत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१०६॥
इहलोके सुखी भूत्वा प्राप्नुयात्परमं पदम् ।
प्रणवव्याहृतिः सप्तगायत्रि वैदिकान्मनून् ॥१०७॥
विनानन्यान्जपेन्मात्रानजयाजपमालया ।
गुर्वलाभे स्वयंवापि प्रतिष्ठाप्यजपस्रजं ॥१०८॥
अनेनविधिना विप्रा जपेदक्षस्रजातया ।
वामनेनस्पृशेन्मालां करेण ब्राह्मण कचित् ॥१०९॥
करेकंठेथवास्कन्धे धारयेन्नकदाचन ।
जपस्रजातयानित्य जपकाले जपः शुचिः ॥११०॥

कलौतैवायशुचिस्थाने छिद्रन्मात्र विनिक्षिपेत् ।
अस्याक्षमालयैतानि मंत्राणि च जपेद्बुधः ॥१११॥
नान्येषामन्यमंत्राणां जपकर्माधमर्पयेत् ।
श्लेष्मरक्तसुरामांस विण्मूत्रोच्छिष्टकिल्बिषैः ॥११२॥
कपालनखकेशैश्च पतितैरंत्यजैरपि ।
उदक्याकाकचिद्कोड्खरपादायुधश्वभिः ॥११३॥
शाखारंडकदोषघ्न देवाजयमहाहिभिः ।
जपमाला यदिस्पृष्टा तां तथैव परित्यजेत् ॥११४॥
अज्ञातपूर्वगणिका पंचवीसूतिकारुचिः ।
याताभिरपि संस्पतिष्ठां त्यजेदक्षस्यजं बुधः ॥११५॥
तथैवाक्षत्रजानित्या जपेत्सर्वार्थसिद्धये ।
दोषदुष्टाक्षमालांस्तं महानद्यां ह्रदेथवा ॥११६॥
पुण्यतीर्थेथवा विप्रो मंत्रेणैव प्रचिक्षिपेत् ।
समुद्रं गच्छस्वाहेति मंत्रमेतदुदीरयन् ॥११७॥
गंधपुष्पार्चितैः साधं मालामंत्रेण निक्षिपेत् ।
रुद्राक्ष पुत्रजीवाब्ज बीजदर्भ जपस्रज ॥११८॥
दुःस्पृष्टि दोषविक्षेयो न तु रत्नजपस्रजे ।
पुनरेवं विधानेन संवाद्याक्षस्रजस्ततः ॥११९॥
यदिस्वेदोष संस्पृष्टि भवेद्रत्नजपस्रज ।
पुनरेवं प्रतिष्ठाप्य . . .
प्रतिष्ठा कीर्त्तनाध्यायः
न यस्य

भ्रामयित्वा पुनर्वक्त्रमारभ्य च जपेत्पुनः ।
अयमेवसमाख्यातः जपमाला विधिक्रमः ॥१००॥
एकादिपंचपर्यंतं कनिष्टाद्यङ्गुलिक्रमात् ।
संकोचयेत्ततोविद्वान्यथापूर्वं प्रसारयेत् ॥१०१॥
अनेन जपसंख्यास्यात्क्रमेणैव जपस्य तु ।
एकः स स्यात्क्रमात् वामहस्ते दक्षिणेन तथाक्रमात् ॥१०२॥
तत्रापि दशसंख्याया शतसंख्येति च स्मृतः ।
जपाङ्गुलिक्रमेणोक्तो लेखाक्रममथोच्यते ॥१०३॥
मध्याङ्गुलेर्मध्यरेखां समारभ्य प्रदक्षिणं ।
अनामिकांतरेखांतं अंगुष्ठेन यथाक्रमं ॥१०४॥
स्पृष्ट्वा द्वादशसंख्यानावर्तनचारेण तत्पुनः ।
एवं रेखाक्रमजपः प्रस्पष्टः " प्रकाशितः ॥१०५॥
एतत्समस्तं विज्ञाय यो जपेद्विजसत्तमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१०६॥
इहलोके सुखी भूत्वा प्राप्नुयात्परमं पदम् ।
प्रणवव्याहृतिः मन्त्रगायत्रि वैदिकान्मनून् ॥१०७॥
विनानन्यान्जपेन्मात्रानन्यजपमालया ।
गुरुलाभे स्वयंचापि प्रतिष्टाप्यजपत्तमं ॥१०८॥
अनेनविधिना विप्रा जपेदक्षजमालया ।
यावनेनस्फुरन्माला करेण ... ... ॥१०९॥
कंठेदयवाऽऽथवा धारयेत्प्रयतात्मना ।
उपघ्नानयानित्य जपकाले जपः शुचिः ॥११०॥

अन्वेपणमंगुल्या मुखवास प्रपूरणं ।
शिरः कंठे प्रावरणं वाससादोः प्रसारणं ॥ ६ ॥
शिरः प्रच्छादनं शिल्पकरणं घोपचर्वणं ।
सूक्ष्मजंतु प्रहननं मालाधानं तथैव च ॥ ७ ॥
क्रोधनं दुष्क्रियाध्यानं कर्माण्यस्यदपिद्दशां ।
भवंति कर्माण्येतानि जप नाशकराणि च ॥ ८ ॥
पापकृपापोकृपाप अनाभूतिसुरार्चका ।
एपानिशामनंचैक भाषणं जपनाशकृत् ॥ ६ ॥
भवंति कर्माण्येतानि यदिचेत्तु प्रमादतः ।
प्रक्षाल्य चरणाहस्तौ आचम्य च यथाविधिः ॥१०॥
प्राणायाम त्रयं कृत्वा सवितारं विलोक्य च ।
नमस्कृत्य ततोधीमान्जपशेपन् समाचरेत् ॥११॥
एवं सर्वविधिं ज्ञात्वा जपं कुर्याद्विजोत्तमः ।
तत्तदुक्तफलं सम्यक् प्राप्नुयास्नेहमानवः ॥१२॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ जपविधानवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥

यदाक्षराभिधानाना वल्योनियमोत्र नः ।
स्मृतिष्वर्थं प्रगृह्णियादर्थमेव प्रयोजनं ॥१२२॥
आगमेषु पुराणेषु स्मृतिष्वि…कदासु च ।
अर्थमेव तु गृह्णियान्न च शब्दविचारयेत् ॥१२३॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौजपमालायाःविधानकथनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

जपेनिषिद्धकर्मवर्णनम्

जपेनिषिद्धकर्माणि यानि वक्ष्यामितान्यहं ।
निषिद्धकर्मकरणान्निष्पिध्यति जपोद्भवः ॥ १ ॥
तस्मात्सर्वप्रकारेण जपकर्माणि बुद्धिमान् ।
निषिद्धानिह कर्माणि कदाचिदपि नाचरेत् ॥ २ ॥
पादप्रसारणं यानांमालोकन विजृंभणि ।
हुङ्कारमारणंभ्रापः नखच्छेदन ताडनं ॥ ३ ॥
गुह्यागाम्कालनं रज्जुकरणं पगदंशनं ।
क्षुरादिप्दिषनं गात्रचलनं केशबंधनं ॥ ४ ॥
अधरस्पर्शनं दंतदर्शनं देहकंपनं ।
धान्यछेदनं महागानि शयनं परिवीक्षणं ॥ ५ ॥

एवं संख्याक्रमं ज्ञात्वा मंत्रिमंत्रासदा जपेत् ।
संख्याज्ञाननं पद्मबीजैः सूक्ष्मशुद्धात्मवित्तु वा ॥१०॥
संख्यारेकाभिरथवा भूमौ वा रज्जुबन्धनैः ।
विप्र पापक्षयार्थिचेत् प्रातः प्रथमवासरे ॥११॥
नत्वाथ नित्यकर्माणि निर्वर्त्य च यथाविधि ।
ब्रह्मकूर्चांपिबेद्वप्रि द्वितीये प्रथमोक्तवत् ॥१२॥
सर्वं कृत्वाथभुञ्जीत विशुद्धं यावकाशनं ।
पूर्ववत्सकलं कृत्वा द्वितीये दिवसे पुनः ॥१३॥
द्विजोत्तमाप्नमुक्ताथ सावित्रि जपमाचरेत् ।
गायत्र्यांत्त्वभिमर्ष्याभिः शतवारंजलस्थितः ॥१४॥
स्नात्वापीत्वा शतंजप्त्वा सर्वपापै प्रमुच्यते ।
ब्रह्महा मधुपस्वर्णस्तेयि च गुरुतल्पगः ॥१५॥
गोमास्तद्दापिविप्रो वा गुणश्रुतिर्व स सागरो ।
सदाचार्य मुखात्सागो अधिवोत्तु विधानतः ॥१६॥
गायत्रिमयुतं जप्त्वा पापैरेतैर्विमुच्यते ।
आदौवेयक्रममिदं कृत्वा स्वस्याभिवृद्धये ॥१७॥
गायत्र्योधत लाभाय होमं सम्यक्समाचरेत् ।
जपहोमौ च सततं कुर्याद्विप्रस्वतेजसा ॥१८॥
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं परंब्रह्मोऽप्युच्यते ।
नित्यनैमित्तिकेन्नाम्ने त्रितयेस्मिन्प्रतिष्ठिता ॥१९॥
गायत्रितत्परं नान्यत् इहैव च परत्रयः ।
मध्यंदिनेल्पभुग्यौनि त्रिकालज्ञानतत्परः ॥२०॥

अथ नवमोऽध्यायः

गायत्र्यासाधनक्रमवर्णनम्

अथैतस्याः प्रवक्ष्यामि गायत्र्याः साधनक्रमं ।
न साधितं य आमंत्रं प्रयोगो न फलप्रदः ॥ १ ॥
तस्माद्विगुक्तमार्गेण साधयित्वा द्विजोत्तमः ।
ततः प्रयोजयेत्मंत्रः अभिष्टफलदं भवेत् ॥ २ ॥
ऋषीःछंदांसि देवान्श्च वर्णनास्तत्वानिशक्तिः? ।
मुद्राश्च विनियोगं च बीजशक्त्यासनानि च ॥ ३ ॥
स्नानंकालं च तद्ध्यान यथावद् गुरुवक्त्रतः ।
अधिकृत्या ततो विप्रा मंत्रमेतत्पुरश्चरेत् ॥ ४ ॥
शिरोमध्ये शिखारुद्रैः विष्णुर्हृदयसंयुतः ।
उपायने विनियोगो गोत्रसांख्यायनस्य ॥ ५ ॥
ज्ञात्वैतानि शुचिष्मान्यानि शुद्धविक्षासनः सकृत् ।
यत्रकालाप्लवोमृत्युः जपे द्वादशलक्षकं ॥ ६ ॥
क्रमादिश(क)लिपर्यन्तं क्रमाल्लक्षत्रियंत्रयं ।
युगं प्रत्येकमारोप्य पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ७ ॥
पुरश्चरणमेतद्धि गायत्र्याः परिकीर्तितं ।
एकं द्वित्रिचतुः पंचषट्सप्ताष्टानवोपरि ॥ ८ ॥
दशाननक्रमेणैव शतंदशाननम्तं ।
तथा सहस्रमयुतं लक्षंचेति यथाक्रमं ॥ ९ ॥

क्षं तु जुहुयाद्राज्यं लभेन्निष्कंटकं ध्रुवं ।
निहेतसप्ताणि घृतयुक्तानि पावके ॥३१॥
क्षंभूमौ भवेद्दिप्तिर्महत्यत्र न संशयः ।
हस्र जुहुयाद्भस्म जलेवपं विमुंचति ॥३२॥
क्षेण भस्महोमेन कृत्वा चोत्तिष्ठते जलं ।
वैव जुहुयाद्प्सुलक्षं गुर्वि श्रीयंलभेत् ॥३३॥
लास्ट्रताक्तान्जुहुया लक्षं स्वाहधिनायके ।
मुक्तरसकलाहोमिः परमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३४॥
तंदुलतिलान्लक्षं जुहुयात्सर्पिषासह ।
ाहप्रियेत्यगेहेभिः वृद्धिरत्युत्तमा भवेत् ॥३५॥
त्यहं जुहुयाद्ष्टमष्टोत्तरशतं द्विजः ।
ाशत्कोष्टाविंशति वा तद्गृहोमध्रुवं भवेत् ॥३६॥
ाघृतं जुहुयाल्लक्षं समक्तायुर्मनोरथाः ।
चिर्भूत्वा द्विजश्रेष्ठाः सुनमिद्धेहुताशन ॥३७॥
ाघृतं मधुसंमिश्रं इष्टवी यत्यकर्मणि ।
युतं जुहुयाद्प्सौ सासिप्राणप्रिया भवेत ॥३८॥
द्भृत्यबलवानंविश्रयं गोघृतं लक्षंजुहुयात्मलभेस्थिरं ।
जुहुयाद्रक्तसिद्धार्थैः लक्षं साहा प्रिये यदि ॥३९॥
त्यर्थिनोध युध्यंतः ते भजेयुर्यमालयं ।
भ्राश्वमारसमिधः जुहुयाल्लक्षं हुताशने ॥४०॥
वेद्विदेशगमनं संप्यन्नस्य न संशयः ।
ा यत्र प्रतिलोमोक्ता वषश्चाच्छत्रून्विनाशयेत् ॥४१॥

त्र्यक्षरश्चाङ्गभिन्नुरसनजेभिद्रूये ।
गर्वेपुकार्गिकेष्वेवं क्रमेण त्रिभिरोरितः ॥२१॥
गायत्र्यधमभाग्निनु प्रातःस्नानं समाचरेत् ।
अथर्वशात्रिमात्ति प्रमादजननं विधि ॥२२॥
गायत्र्या संप्रवक्ष्यामि धर्मकर्माधर्माश्रयं ।
पूर्वं मूर्गोदयात्स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहा जपेत् ॥२३॥
आयुष्यमथमारोग्यं लभेत्कोर्ति च याधवा ।
उपयाम त्रयं कृत्वा सहस्रं जुहुयाद्भुतं ॥२४॥
सहस्रपोषं लभते शतृद्धार्थिपे पायके ।
पयसाभ्यज्यसमिधः पालाशस्यसहस्रकं ॥२५॥
ग्रहणंजुहुयाद्विद्वाः सहस्रं रजिनं लभेत् ।
घृतेनाभ्यज्यसमिधः खदिरस्यहुताशने ॥२६॥
जुहुयाद् ग्रहणभानोः सहस्रं णेपमाप्नुयात् ।
(सहस्रं पोषमाप्नुयात्)।
अलक्ष्मिप्रचुर्व्याधिदुःस्वप्नाश्च समाश्रीताः ॥२७॥
सहस्रजप्ता कुंभांभ सेवनाच्छादमाप्नुयात् ।
यां दिशो ब्राह्मणोगंतुमिश्चन्लोष्टानि सप्त च ॥२८॥
सप्तकृत्याभिमंत्र्याथ विसृजेत्तत्रनोभयं ।
क्षिराशीजुहुयाल्लक्षं क्षेरं मृत्युं व्यपोहति ॥२९॥
घृताशी प्राप्नुयान्मेधां जप्त्वालक्षं न संशयः ।
नाभिमात्रेभनिस्नात्वा सूर्यस्याभिमुखोजलं ॥३०॥

लक्षं तु जुहुयाद्राज्यं लाभेन्निष्कंटकं ध्रुवं ।
हुनेदेतसत्राणि धृतयुक्तानि पावके ॥३१॥
लक्षंभूमौ भवेद्दिश्रिर्महत्यत्र न संशयः ।
सहस्रं जुहुयाद्भस्म जलेवर्षं विमुंचति ॥३२॥
लक्षेण भस्महोमेन कृत्वा चोत्सिष्टते जलं ।
तदेव जुहुयादप्सुलक्षं शुचिं श्रीयंलभेत् ॥३३॥
तिलास्मृताक्तान्जुहुया लक्षं स्वाहधिनायके ।
विमुक्तसकलाहोमैः परमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३४॥
सतंडुलतिलान्लक्षं जुहुयात्सर्पिषासह ।
स्वाहप्रियेत्यगेहेभिः वृद्धिरत्युत्तमा भवेत् ॥३५॥
प्रत्यहं जुहुयादन्नमष्टोत्तरशतं द्विजः ।
अशक्तोष्टाविंशति वा तद्गृहोन्नधुवं भवेत् ॥३६॥
गोघृतं जुहुयाल्लक्षं समस्तास्युर्मनोरथाः ।
शुचिर्भूत्वा द्विजश्रेष्ठाः सुनमिद्धेहुताशन ॥३७॥
गोघृतं मधुसंमिश्रं श्रग्वी वश्यकर्मणि ।
अयुतं जुहुयादग्नौ मासिप्राणप्रिया भवेत् ॥३८॥
सद्भूत्यबलवानंविश्वर्थं गोघृतं लक्षंजुहुयात्प्रलभेस्थिरं ।
जुहुयाद्रक्तसिद्धार्थैः लक्षं स्वाहा प्रिये यदि ॥३९॥
प्रत्यर्थिनोध युध्यंतः ते प्रजेयुर्यमालयं ।
ताम्राश्रमारसमिधः जुहुयाल्लक्षं हुताशने ॥४०॥
भवेद्विदेशगमनं संध्यस्य न संशयः ।
सा यत्र प्रतिलोमोक्ता बवरचाच्छत्रून्विनाशयेत् ॥४१॥

अक्षरप्रतिलोमूयं यस्मिन्नुद्धृतकर्मणि ।
तदमोघं विजानियाद्देतद्धि ब्रह्मणोबलं ॥४२॥
विभीतकेथ समिधः ह्याक्षरप्रतिलोमया ।
हुनेत्सर्षप तैलेन विभीतकक्षतस्रुचा ॥४३॥
ययिचेत्पीटकंशत्रोः अपियोरसादनं पुनः ।
पञ्चत्वं संपुले शत्रून् वर्णाशश्च प्रयोजयेत ॥४४॥
कर्मणा मरकादीनां तत्रोक्तानामनंतरं ।
होमकर्म प्रवक्ष्यामि समस्तानां प्रशांतये ॥४५॥
गोसर्पिदधिपिप्यासमेकीभूत्वज्वलस्रुका ।
यावत्तत्कोपशमनं तावत्तज्जुहुयाच्छुचौ ॥४६॥
लब्धासनोब्रह्मचारी त्रिसहस्रं जपेच्छुचिः ।
संवत्सराद्धुनैश्वर्यं न लभेन्नात्र संशयः ॥४७॥
निराहारो जपेल्लक्षं सद्याधादीप्सितंपरं ।
प्रत्यंवयोजपेद्देताः अब्दत्रयमतंद्रितः ॥४८॥
द्विजन्मा सपरंब्रह्म ययादत्र न संशयः ।
पुरश्चरणपूर्वाणि कर्माणि सकलानि नु ॥४९॥
अध्यास्मिन्मयोक्तानि ज्ञातव्यानि द्विजोत्तमैः ।
अनेनविधिनाभीष्टं सकलं साधयेद्विजः ॥५०॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ गायत्र्यासाधनक्रमवर्णनंनाम नवमोध्यायः ॥

अथ दशमोऽध्यायः

गायत्र्यामन्त्रार्थकथनम्

थायमर्थं गायत्र्या प्रवक्ष्यामि यथातथं।
द्विजोत्तमानां सङ्ख्या जपादीनि प्रकुर्वतां ॥ १ ॥

त्वा सभक्तिजननं मंत्रार्थं ज्ञानमुत्तमं।
तस्मादर्थं विजानीयाद्यत्नेन जपकृद्द्विजः ॥ २ ॥

विधानभक्तिभाजां तु जपादीनां महत्तरं।
फलं लभेज्जपकृतामिति वेदेषु भाषितं ॥ ३ ॥

सदानजनमंत्रस्य तदादीनि यथाक्रमं।
मदं प्रत्यर्थनिष्पत्तिः विस्पष्टं क्रियतेत्र ॥ ४ ॥

तदिति द्वितियेकवचनं अनेन जगदुत्पत्तिस्थिति लयकारणभूतमौपनिषधिकंधानिरूपतेजः सूर्यमंडलाभेधंयं परब्रह्मभिधिय्यते। सवितिरितिषष्ठेकवचनंपून प्राणिप्रसवइत्यस्पधातोः एत द्रूपंसर्वस्य धातोर्वाभरित्यर्थः॥ वरेण्यं वरणियं प्रार्थनिय्यं नियमादिभिरयगतकल्मषैः। सध्येर्भर्गः भंज्जो- आमर्दने भुज्जिभदभर्जन इत्येतयोर्धात्वोः भजता पापभंजनहेतुभूतमित्यर्थः॥ धा लुदीप्तापितस्य- धातोर्वाभर्गाः। तेज इति यावत् देवस्यवृष्टिदाना- दिगुणयुक्तस्य निरतिशयेत्यर्थः। वः प्रकाशान धीम-

द्विजैर्नित्यायां नियमनिमुक्तविशारूपेण चक्षुषायो-
माऽऽदित्योहिरण्मयः पुरुषः सोहमिति चिन्तयामि-
धिय इते ॥ द्वितीयया बहुवचनं ॥ इलिङ्गाङमत्वा-
लिंगव्यत्ययः। यस्यतेजः सवितुर्देवस्यवरेण्यंश्रेष्ठं
अस्माभिध्यातं भर्गोदेवभजतां पाप भञ्जन हो
भूतं अस्माकं नः धियः। बुद्धिश्रेयस्करंपुकर्मसुप्रचो-
दयात् प्रेरयेदित्यर्थः।

एषाव्याख्या तु गायत्र्या सर्वपाप प्रणाशिनी।
विज्ञातव्या प्रयत्नेन द्विजैः सर्वं शुभेप्सुभिः ॥ ५ ॥
जपस्थानासरेव्याख्या कर्तव्याहरहर्द्विजैः।
स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यंति न संशयः ॥ ६ ॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ गायत्र्यार्थप्रतिपादननाम
दशमोऽध्यायः ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

गायत्र्यापूजाविधानकथनम्

उक्तप्रमाण सुस्निग्धं दृढशुल्पंचरंत्रिवृत्।
संस्कारेणोपसंयुक्तं यत्तर्द्धेयं द्विजोत्तमैः ॥ १ ॥
छिन्नं प्रभिन्नं स्फुटतं विशीर्णं मानतोधिकं।
मानहीनमसंस्कारं ब्रह्मसूत्रं न धारयेत् ॥ २ ॥

शशिव्रतं त्रयः कल्पाः गायत्र्या अयुत त्रयं ।
अल्पवनं महानद्या सममेतच्चतुष्टयं ॥ ३ ॥
अथ पूजां प्रवक्ष्यामि देव्यासिद्धार्थ सिद्धिदान् ।
सर्वपापप्रशमनी सर्वाभयविनाशिनीं ॥ ४ ॥
स्नात्वा शुक्लांबरधरःस्सपवित्रकरद्वयः ।
पादौशमे च प्रक्षाल्य सपस्तुश्यचाम्यतः ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु विधिवत्भस्मना चंदनेन वा ।
धृत्वा ललाट हृद्ग्रीवा भुजयुग्मेन च द्विजः ॥ ६ ॥
उपह्वरे शुचौदेशे विलिप्ते गोमयाम्बुना ।
दीपमारोप्यगंधादि पूजाद्रव्याणि निक्षिपेत् ॥ ७ ॥
सुगंधाक्षत पुष्पाणि धूपदीपादिकानि च ।
सताम्बूलोपहारं च द्रव्याणाराधनस्य तु ॥ ८ ॥
सौवर्णं रजितं ताम्रं शुल्बकांस्यंच्चदारवं ।
मृण्मयं चेति पात्राणि सप्तप्रकल्पिता ॥ ९ ॥
हाटकं कलधौतं च लोहशैलं च दारवं ।
आराधनविधौ पीठं पंचधा समुदाहृतं ॥१०॥
पूजापीठं ध्यानपीठं इति पीठं द्विधास्मृतं ।
पंकजं स्वस्तिकं चेति पूजकरासनंद्विधा ॥११॥
सत्यप्राचीनदेवाभा कार्पासाच्छादनानि च ।
नवानिधूतान्यच्छै सुखाप्यश्चोदितानि वै ॥१२॥
दर्भासनाद्यं तत्रोदर्भानान्नीयं प्राक्शेरासन ।
तेपापविरयोरङ्मुखः स्थापयेत् सिद्धयेन्महात ॥१३॥

तत्पश्चस्यवहिर्दिव्या स्नानंस्थानं हरेर्दिशि ।
तत्रैवस्थापयेत्पीठं नानार्थं द्विजसत्तमः ॥१४॥
पीठं तन्मध्यमेस्थाप्य वस्त्रमाछाद्य तत्र च ।
ततस्तस्यसमीभागे कुशकूचासनोपरि ॥१५॥
स्वाचार्यं पूज्य तद्भक्त्या चंदनप्रसयाक्षतैः ।
नमस्कृत्य ततः कुर्यात्प्राणायाम त्रयं बुधः ॥१६॥
ऋषिश्छंदो देवताश्च यणं तत्थान्यनुक्रमात् ।
विनियोगं च संस्कृत्वा न्यासं कुर्यादनंतरं ॥१७॥
करन्यासं पुराकृत्वा गेहन्यासमथाचरेत् ।
अंगन्यासं ततः कुर्यादेवंन्यास विधीक्रमः ॥१८॥
ततो भाण्डजलेकुर्च चंदनादित्रयं पुनः ।
दत्वामृताक्षरान्यश्च संपूरा द्विजसत्तमः ॥१९॥
गायत्र्यासप्रणव व्याहृतितितयान्यथा ।
अष्टकृत्वो येनतो विप्रमुद्रयाच्छादनाकृया ॥२०॥
पूर्वादिषु महादिक्षु विदिक्षु परिचक्रमात् ।
आत्मनरक्षणं कुर्यातद्विश्छेदनमुद्रया ॥२१॥
ततस्तज्जलमादाय पात्रेणास्यपूर्वतः ।
मन्त्राप्यजलसंस्कारं यथापूर्वं समाचरेत ॥२२॥
ततस्तद्वारिकूर्चेन समंतात्मकलेवरं ।
मूर्धादिपादपर्यंतं प्रोक्षयेन्मूलमुद्रया ॥२३॥
स्नानद्रव्याणि च तथा ततः संप्रोक्षयेद्विजः ।
द्रव्याणि चंदनादीनि त्रिण्यद्भिः संभृतो यदि ॥२४॥

तथाभिमंत्रणं दिक्षु रक्षणंचाथ कारयेत् ।
तानिद्विधा विभज्याथ समीचीनांशमेतयोः ॥२५॥
देव्यर्थं परिवारार्थं इतरांशमिति स्मरेत् ।
परिवारांशकद्रव्यैः यजेतात्मानमर्चकः ॥२६॥
गंधपुष्पाक्षतैर्धूप दीपाभ्यां चोधविद्यया ।
तत्पात्रे तोयमुत्सृज्य पुनंस्पत्रेण तेन च ॥२७॥
आदाय मांत्रसलिलं चतुष्पात्राणि पूरयेत् ।
अर्घ्याचमन पात्राणं पात्राणि त्रीणिचेतरत् ॥२८॥
सामान्यामृतमित्येवं उक्तं पात्र चतुष्टयं ।
ततः सलिलसंस्कारं यथापूर्वं समाचरेत् ॥२९॥
प्रक्षालनार्थं सलिल पात्रेप्रागेव पूरयेत ।
अप्रक्षालनार्थस्यादन्यसंस्कारणं न हि ॥३०॥
सामान्याचमानार्घ्यार्थं पादक्षालनयोस्तथा ।
पात्राणिस्थापयेत्सत्यगदिभागवसान्तिकं ॥३१॥
ततो गंधाक्तपुष्पेन पीठमध्ये सरोरुहं ।
संलिख्यकूर्चे तन्मध्ये न्यसेद्दर्भानुदक्छिरं ॥३२॥
ततः पीठस्य नैऋत्यां पद्मं संलिख्य पूर्ववत् ।
गंधादिभिस्त्रिभिर्देव अर्चयेद्गणनायकं ॥३३॥
पी(ई)शानदिशिपीठस्य लिखिताभोरुहोपरि ।
ततो गंधादिभिर्मर्त्या क्षेत्राधिपतिमर्चयेत् ॥३४॥
पश्चादधस्तात्पीठस्य चंदनप्रमुखैस्त्रिभिः ।
आधारशक्तिं संपूज्य तदूर्ध्वे कूर्ममर्चयेत् ॥३५॥

पश्यादनंतरं पृथ्वि ततो गंधाधिदिभिस्त्रिभिः ।
उपर्युपरिसंपूज्य धर्मादीनथ पूजयेत् ॥३६॥
धर्मंज्ञानंश्च वैराग्नं ऐश्वर्य्यंचेत्यनुक्रमात् ।
आग्नेयदिक्षुकोणेषु चतुर्ष्वापि यथाक्रमं ॥३७॥
अधर्माज्ञानवैराग्यनैश्वर्याणि ततः क्रमात् ।
पूर्वादिषु महादिक्षु यजेत्पीठोपरिद्विजैः ॥३८॥
ततस्तन्मध्यमस्थाने चंदनप्रमुखैस्त्रिभिः ।
महासिंहासनंध्यात्वा दिव्यं समभिपूजयेत् ॥३९॥
तदूर्ध्वेग्न्यर्कसो(मा)नां मंडलानि ततः क्रमात् ।
उपर्यपरिगंधादि त्रितयेन समर्चयेत् ॥४०॥
ततस्तदूर्ध्वंतस्योर्ध्वेरजः सत्वंददूर्ध्वतः ।
चंदनानि त्रयेणैव गुणत्रयमथार्चयेत् ॥४१॥
पीठस्यातः पूर्वदले पूजयेदणिमाह्वयं ।
लघिमाह्वयमाग्नेय्यां महिमाख्यंतुदक्षिणे ॥४२॥
प्राप्तिं निऋृतिदिग्भागे प्राकाम्यं पश्चिमे दले ।
ईशित्वंवायुदिक्पत्रे वसित्वं यक्षदिग्दले ॥४३॥
यी(ई)शानदिग्दले पश्चात् सर्वज्ञत्वं विचक्षणः ।
चंदनत्रितयेनैव ऐश्वर्यादिमर्चयेत् ॥४४॥
तद्बहिः पूर्वदिक्पत्रे प्रज्ञामनलदिग्दले ।
धृतियमककुत्पत्रे क्षेमां निऋृतिदिग्दले ॥४५॥
शांतिवरुणदिक्पत्रे स्मृतिं वायुककुद्दले ।
कांत्तिः मुत्तरदिक्पत्रे श्रुतिमीशानदिग्दले ॥४६॥

स्वस्ति गंधादिभिभक्त्या सहत्रिभिरथार्चयेत् ।
एवमेताः समभ्यर्च्य ततो वेदास्समर्चयेत् ॥४७॥
ऋग्वेदंतद्वहि प्राच्यां यजुर्वेदं तु दक्षिणे ।
सामवेदं तु वारुण्यां अथर्वाख्यं तथोत्तरे ॥४८॥
पुराणाद्यकथातर्कं धर्मशास्त्राण्यनुक्रमात् ।
अग्निरक्षोनिवेशाम्न कोणेषु च समर्चयेत् ॥४९॥
निरुक्तं ज्योतिषं शिक्षां कल्पव्याकरणं तथा ।
छंदः सूत्राणि शास्त्राणि पूर्वादिषु समर्चयेत् ॥५०॥
ततः पूर्वादि दिक्षादौ विधीशु च यथाक्रमं ।
भक्त्यार्चयेद्वसूनष्टौ चंदनप्रमुखैस्त्रिभिः ॥५१॥
धरः सोमोनिलश्चैव प्रभासोध्रुवसंज्ञकः ।
आपः प्रत्यूषसंज्ञिश्च ष(प)त्कारयिति स्मृतः ॥५२॥
ततस्तुदद्वहिरेशे रुद्रानेकादश क्रमात् ।
सद्भावभक्तिसहितः यजेत्श्रीतद्विजसत्तमः ॥५३॥
महादेवः शिवोरुद्रः शंकरो नीललोहितः ।
यी(ई)शानो विजयो भीमो देवदेवोभवोहरः ॥५४॥
कपालिसंज्ञिश्त्येते रुद्र एकादश स्मृताः ।
पूर्वादिषु त्रिकाष्टासु रुद्रास्त्रीस्त्रीननुक्रमात् ॥५५॥
रुद्रौद्वौउत्तराशायमर्चयेचंदनादिभिः ।
ततः प्रागादिकाष्टासु यजेद्वादश भास्करान् ॥५६॥
त्रींस्त्रीन्यथाक्रमेणैव तद्वाह्ये चंदनादिभिः ।
वैकर्तनोविवस्वांश्च मार्तण्डं भास्करो रविः ॥५७॥

लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः ।
आदित्यश्च तथा सूर्यः अंशुमाली दिवाकरः ॥५८॥
एतेद्वादशादित्याः सर्वलोकविभानका ।
एतानेवनमभ्यर्च्य तद्बाह्येतन्मुनीन्यजेत् ॥५९॥
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वशिष्ठाद्दीनप्रदक्षिणं ।
पत्न्यस्यथाक्रमेणैव मुनीनांमाधिभिस्त्रिभिः ॥६०॥
ततोवह्निस्थले धीमान् इन्द्रादिनष्टलोकपान् ।
पूर्वादिष्वष्टकाष्टासु पूजयेदर्चनादिभिः ॥६१॥
इन्द्राग्निसमवर्त्ति च निऋतिर्वरुणोनिलः ।
भीमकुबेर इत्यष्टौ लोकपाल अमीस्मृताः ॥६२॥
स्वस्वनाम चतुर्थ्यन्तं प्रणवादिनमोन्तकं ।
सर्वेषां परिवाराणां मंत्रमाराधने स्मृतं ॥६३॥
स्वस्वमंत्रेण सकलान् उपचारान्द्विजोत्तमः ।
आचार्य प्रमुखस्तत्तत् ध्यानेन सहपूजयेत् ॥६४॥
एवमेताः समभ्यर्च्य सुगंधकुसुमोक्षतैः ।
ततो देवीं यजेद्धीमान् गायत्रिं वेदमातरं ॥६५॥
ध्यानध्यायो यथाप्रोक्तं रूपंदेव्याश्चलक्षणं ।
स्वर्गादिभिस्तथा कुर्यात् प्रतिमां नयनप्रियां ॥६६॥
सुवर्णरौप्यस्फटिक पाषाण प्रतिमाकृता ।
चत्वारयेतेशास्त्रास्युरलाभे स्थंडिलं स्मृतं ॥६७॥
कृतांप्रतिष्ठां वां कृत्वा विधिना च द्विजोत्तमः ।
ततोद्विजन्महृदहः तस्यां देवीं समर्चयेत् ॥६८॥

पूर्वसंध्यार्चितं पुष्पं प्रतिमाया विसृज्य च ।
प्रक्षाल्य स्थापयेत्पीठे प्रतिमां प्राङ्मुखीं द्विजः ॥६९॥
पश्चात्पुष्पाक्षतैस्तेषुं प्रतिमायाः पदेषु च ।
ततः सलिलमादाय स्नानपात्रेण पूर्ववत् ॥७०॥
संस्थाप्य जलसंस्कारं यथापूर्वं समाचरेत् ।
ततः कुर्वन् तत्तोयं आदाय च शनैः शनैः ॥७१॥
संप्रोक्षयेत्तत्प्रतिमां सद्भावेनाद्यविद्यया ।
ततः पुष्पाञ्जलिं कृत्वा प्रसवेनार्कमंडलात् ॥७२॥
देवीमावाहयेच्छ्रीमान्प्रतिमायां यतेन्द्रियः ।
ततोऽञ्जलिस्थितं पुष्पं निक्षिप्य प्रतिमोपरि ॥७३॥
अधोमुखेनाञ्जलिना स्थापयेन्मूलविद्यया ।
ततोमुद्रिद्वयात्पश्चं कृत्वामुद्राद्वयं पुनः ॥७४॥
प्रदर्शयेन्मुखे देव्याः भवेत्तत्सन्निरोधनं ।
पश्चान्मुद्रिद्वयात्पश्चं कृत्वामुद्राद्वयात्पुनः ॥७५॥
षडङ्गं प्रदर्शयेद्देव्याः सन्निधीकरणं हि तत् ।
एतत्प्रयोगद्वितये मूलविद्यैव जापिता ॥७६॥
ततः पाद्यानपुष्पाणि दद्यानेद्याद्यविद्यया ।
पश्चात्पाद्याचमनमर्घ्यं चानुक्रमेण तु ॥७७॥
दत्वाद्यविद्यया पश्चात्वस्त्रं यज्ञोपवीतकं ।
दत्वाचाप्याचमनं पूर्ववन्मूलविद्यया ॥७८॥
चंदनाक्षतपुष्पाणि तथा दद्याद्यथाक्रमं ।
धूपदीपौ ततो दत्वा किंचिन्मूलमनुं जपेत् ॥७९॥

ततः समस्तनिर्माल्यं आदाय प्रविसृज्य च ।
पुष्पाणि शीर्षेष्वारोप्य दद्यदाचमनं ततः ॥८०॥
ततोनुपहतैर्गव्यैः पंचभिप्परमेश्वरी ।
ततः मृतैर्गंधतोयैः प्रत्यग्रैरभिषेचयत् ॥८१॥
गोमूत्रं गोमयंक्षीरं दध्याघृताभिधानकं ।
एतानि पंचगव्यानित्याख्यातानि महर्षिभिः ॥८२॥
पेष्यापदणाधाराख्यंमद्भ्वीक्षुरसपंचकं ।
एतत्पंचामृतंनाम स्नपने प्रवरं स्मृतं ॥८३॥
द्रव्याण्यमूनिपात्रेषु पूरयित्वाथ पंचसु ।
गंद्पुष्पाक्षतान्धूपदीन्दत्वा पृथक् पृथक् ? ॥८४॥
स्पृष्ट्वाप्यहृत्वा रक्षाविध्या पात्रंप्रत्यभिमंत्र्य च ।
द्रव्यैरेतैस्ततो देवीं स्नापयेद्विधिपूर्वकं ॥८५॥
गंधद्वारादकरिषस्य गायत्रि गोजलस्य च ।
आप्यायस्वेति पयसा शुक्रमस्यघमर्षिणः ॥८६॥
दध्नोदधिक्रावुष्ण इति देवस्यत्वा कुशोदकं ।
मधुवातामधोधाराधिगव्येक्षुरसस्य च ॥८७॥
मंत्राण्यमूनिद्रव्याणिमाख्यानानि पृथक् पृथक् ।
गोमूत्र पूर्वस्नानादि मंत्रैरेभिः समाचरेत् ॥८८॥
एवंदशविधं स्नानं कृत्वा चोष्णेन वारिणा ।
गंधपुष्पविष्णुसूक्तेनापंचभिश्चापिनिवेदयेत् ॥८९॥
ततोदक्षिणावर्तिस्य शुद्धशीतजलेन वा ।
अभिषिच्य ततस्नानं नित्यं च समाचरेत् ॥९०॥

आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैस्त्रिभिःप्राक् स्नापनं स्मृतम् ।
हिरण्यवर्णा इत्याद्यैश्चतुर्भिःस्नापनं स्मृतम् ॥९१॥
पवमानानुवाकेन स्न(स्न) पनं च तृतीयकम् ।
एवं त्रिः स्नाप्यमनुभिः एतैरण्याद्यविधया ॥९२॥
समस्तयाऽथव्याहृत्या परिषिंचेत्प्रदक्षिणम् ।
दद्यादाचमनं देव्याः स्नानं प्रत्यात्मविधया ॥९३॥
तथैवसाक्षतं पुष्पं ऊर्ध्वास्याघ्रिषु च द्विजः ।
ततः पूर्वार्चिते पीठे स्थापयेत्स्थानपीठतः ॥९४॥
ततः पुष्पांजलिं दत्वा नमस्कृत्यात्मविधया ।
ततः पूर्वस्थलाद्यादि त्रितयं क्रमशोऽर्चयेत् ॥९५॥
दद्यात्पाद्यं पदान्तेषुमुखेष्वाचमनिय्य(नीय)कम् ।
अर्घं पंचसु शीर्षेषु मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥९६॥
ततो वस्त्रं ब्रह्मसूत्रं दत्वाऽऽचमनमर्पयेत् ।
गंधपुष्पाक्षतैरेवमर्पयेदात्मविधया ॥९७॥
ततो नानाविधैः पुष्पैः सुगंधैः कुसुमादिभिः ।
यथेष्टं पूजयेद्देवीं यथानयनवल्लभम् ॥९८॥
ततो धूपं ततो दीपं दद्यात्पुष्पांजलिं ततः ।
सौवर्णे राजते शैलेकांचने भाजने शुभे ॥९९॥
नापूपघृतनिष्पन्नं परमान्नं सशर्करम्
दत्वाऽऽत्मविधया प्रोक्ष्य पुष्पं तदुपरि क्षिपेत् ।
ततोमंत्रासनस्योर्ध्वे तत्साध्यामृतमुद्रिकाम् ॥१००॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

गायत्रीध्यानवर्णनम्

अथ वक्ष्यामि गायत्र्याः ध्यानंसर्वाघनाशनम् ।
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षादिहलोके परत्र च ॥ १ ॥
ध्यानं संध्यात्रये(सायन्तने) यत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्
अन्यथा तु निजध्यानं प्रधानं च यथाक्रमम् ॥ २ ॥
ध्यानं विना जपं सर्वं यत्नेनाऽपि कृतं वृथा ।
तस्माद्द्विजस्तु ध्यानेन जपं सह समाचरेत् ॥ ३ ॥
हंसस्था काम्यका रक्ता चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजाम् ।
पद्मासन जटाचूडामष्टनेत्रां स्मिताननाम् ॥ ४ ॥
पीताम्बरप्रकटितां रत्नकुण्डलमण्डिताम् ।
दिव्यचंदनलिप्ताङ्गां दिव्यपुष्पैरलंकृताम् ॥ ५ ॥
सर्वाभरणसंयुक्ता हेमयज्ञोपवीतिनीम् ।
दक्षिणेऽक्षस्रजं कूर्चं वामभागे स्रुवं वरम् ॥ ६ ॥
चतुर्हस्तेन बिभ्राणांदरण्येदिक्प्रदक्षिणम् ।
प्राक्संध्यायाःस्मरेद्देवी गायत्र्याख्यां द्विजोत्तमः ॥ ७ ॥
दक्षिणेऽक्षस्रजं कूर्चं स्रुवं वामे कमंडलुम् ।
एवं वापि स्मरेद्देवी द्विजः पूर्वोक्तलक्षणाम् ॥ ८ ॥
दधती श्वेतरूपां तां शितवस्त्रां चतुर्भुजाम् ।
द्विनेत्रांहिमकोटि······ त्रिवेष्टनाम् ॥ ९ ॥

पीतक्षामांबरधरां प्रसन्नेंदुनिभाननाम् ।
सुगन्धां लिप्तसर्वाङ्गीं सुपुष्पस्रग्विभूषिताम् ॥१०॥
समस्ताभरणोपेतां स्वर्णयज्ञोपवीतिनीम् ।
दक्षिणे पंकजं शंखं वामे चक्रं महागदाम् ॥११॥
चतुर्हस्तेन बिभ्राणां वरादित्यो प्रदक्षिणाम् ।
एवं मध्याह्नसंध्यायां सावित्री द्विजसत्तमः ॥१२॥
कृष्णां प्रौढा(ढां)वृषारूढां एकवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
चतुर्भुजां जटानागकुंडलेनसुमंडिताम् ॥१३॥
व्याघ्रचर्मांबरधरां नानाभरणभूषिताम् ।
अक्षस्रजंमहाशूलंडमरुं चकपालकम् ॥१४॥
चतुष्करेषु बिभ्राणां अभयादि प्रदक्षिणम् ।
एवं सरस्वतीसंज्ञां सायंकाले स्मरेद् द्विजः ॥१५॥
सपवित्रां चतुर्हस्तां तिस्रो देव्य इमा ध्रुवाः ।
त्रिमूर्तिरूपधारिण्यः सृष्टिस्थितिलयाशकाः ॥१६॥
एवं त्रिषु च संध्यासु जपकालेऽर्कमंडले ।
गायत्रीं संस्मरेद्विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुया(त) ॥१७॥
पञ्चास्यानि त्रयः पादाः षड्वागादिशबाहवः ।
नेत्राणि पंचदश च श्वेतरुक्कान्तिमत्तनुः ॥१८॥
प्रदक्षिणां ततः प्रत्यगुह्यास्यानि(?) यथाक्रमम् ।
रक्तकृष्णसुवर्णाभः श्वेतज्योति निभानि च ॥१९॥
हुताशनवदास्यानि सुस्थिरत्वंत्तुलद्वयः ।
उत्संगे पृष्टभागे तु कुक्षयःपट्टप्रकीर्त्तिताः ॥२०॥

कूर्चाक्षसूत्रं शङ्खं धा(गदा?)भयाद्दक्षिणपाणिषु ।
पुस्तकानि स्रुवं पात्रं वराश्चेतरपाणिषु ॥२१॥
अथवाल्पकशास्त्राणि भवेयुर्दशपाणिषु ।
चतुर्भुजा वा तां ध्यायेदन्यत्सर्वं पुरोक्तवत् ॥२२॥
अक्षाक्षिमालामभयं दंडं दक्षिणहस्तयोः ।
कमंडलुं च वरदं बिभ्राणां वामहस्तयोः ॥२३॥
मुकुन्दं कुंडलं हारं कर्पूरं कुक्षिबन्धिनीम् ।
छन्नं पीनं कराकल्पं कराशाखाविभूषणम् ॥२४॥
कलापपादकटयोर्नूपुराङ्गुलिभूषणम् ।
एतैर्विभूषणैर्हैमैः नानारत्नसमन्वितैः ॥२५॥
दिव्यैर्विभूषितां देवीं रुक्ममयज्ञोपवीतिनीम् ।
पवित्रहस्तदलकां किंचित्प्रहसिताधराम् ॥२६॥
दिव्यगंधानुलिप्ताङ्गीं दिव्यमाल्यैरलंकृताम् ।
सीतश्यामपरीधानां सर्वावयवसुन्दराम् ॥२७॥
सर्वलक्षणसंपन्नां सर्वलोकैकनायकीम् ।
समस्तमंत्रतंत्राणां नायकत्वे प्रतिष्ठिताम् ॥२८॥
सुवर्णकांचनैर्वर्णैः अनेकैश्च शोभिता ।
ध्यानात्यंतगौर्यस्थाने पंचास्य त्रिणेत्रे ॥२९॥
तथाविधे भद्रपीठे त्रिमये धाम्नि संस्थिताः ।
चतुर्वेदैः षडंगैश्च चतुःषष्टिकलाभिः ॥३०॥
ऋषिश्रेष्ठैश्च मुनिभिः गायत्र्याद्यैश्च दैवतैः ।
धन्यादिमंत्रमुख्याभिः शान्तिभिः ह्रींकारादिभिः ॥३१॥

त्रयस्त्रिंशद्भि अमरैः सेन्द्रैः संसेविता भृशम् ।
सदाशिवस्वरूपेयमीश्वरस्याङ्गनाकृतिः ॥३२॥
सततं ब्रह्मविष्णुभ्यां समुद्रेश्चनमस्कृता ।
तस्मादियं द्विजश्रेष्ठा ध्येया जप्या च सर्वदा ॥३३॥
गायत्रीभक्तितस्तेषां भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
एवं सर्वेश्वरी देवी गायत्री वेदमातरम् ॥३४॥
ध्यायञ्जपन् सर्वसुखाप्नोतीह परत्र च ।
ब्रह्महा वा सुरापी वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः ॥३५॥
तद्योगी वान्यपापी वा यो वा को वा द्विजोत्तमः ।
देवीध्यानरतः सार्धं जपेन सहभक्तितः ॥३६॥
तथैते पातकाः सर्वे विनश्यन्ति न संशयः ।
व्याघ्रादयो मृगाः क्रूराः वृश्चिकाद्याश्च जन्तवः ॥३७॥
ब्रह्मराक्षसपूर्वाश्च पिशाचा व्याधयश्च ये ।
प्रेतामहाश्च निर्घाताः अप्यन्ये बद्धवैरिणः ॥३८॥
देवीध्यानरतं विप्रं न स्पृशन्ति प्रभक्तितः ।
देवाश्च मुनयश्चान्ये सिद्धाः साध्यौ(ध्याश्च)च गुह्यकाः ३९
गंधर्वाप्सरसो यक्षाः किन्नरागरुडोरगाः ।
विद्याधरास्तथैवाऽन्ये भूताख्या भुविचारणाः ॥४०॥
सर्वे तु वशमायान्ति देवीध्यानरतस्य च ।
महानदीषु गिरिषु महावाते महानले ॥४१॥
महाविपिने(वने?) भयंनास्ति देवीध्यानरतस्य च ।
द्विजस्य जप्यं ध्येयं च न गायत्र्याः परंपरम् ॥४२॥

सर्वप्रकाराल्लोकेषु त्रिषु सत्यं न संशयः ।
उत्पत्तिस्थितिसंहाराः यस्यास्तुवंशगा भृशम् ॥४३॥
तां गायत्रीं परित्यज्य विप्रः किं प्राप्यति(?) ध्रुवम् ।
स्वाध्यायाः संस्तरामंत्राः दानान्युग्रतपांसि च ॥४४॥
तीर्थानि वेदाः सकलं गायत्र्यैव द्विजन्मनः ।
सत्यं श्रेयोमहानंदोयकस्तेजोबलं(?) सुखम् ॥४५॥
भागधेयं च सकलं गायत्र्यैव द्विजन्मनः ।
आयुर्धान्यं धनं रूपं सुशीलं सुमतिः कुलम् ॥४६॥
ज्ञानं विज्ञानच सकलं गायत्र्यैव हि सोमपाम् ।
देवीमेतां परित्यज्य देवतामितरां द्विजः ॥४७॥
आश्रयेत्कोऽत्र निर्भाग्यस्तस्मात्कियदि(कोऽप्यस्ति)पापभाक्
गायत्री जननी माता गायत्री भ्रातरःस्मृताः ॥४८॥
गायत्री बन्धुवर्गश्चगायत्री चाधिदेवता ।
यतिर्निश्चित्य यो विप्रस्तां समाश्रित्य तिष्ठति ॥४९॥
तस्येह दुर्लभं किञ्चिदिह नास्ति परत्र च ।
गायत्रीं यो न जानाति जातो विप्रकुले यदि ॥५०॥
ब्राह्मणत्वं कुतस्तस्य स शूद्रेण समः स्मृतः ।
स्नात्वा विधिवदाचम्य मपवित्रं करद्वयः ॥५१॥
ऊर्ध्वपुंड्रं च विधिवदग्निहोत्रोत्थभस्मना ।
धृत्वा ललाटभुजयोर्हृदि कंठे यथाक्रमम् ॥५२॥
महाकल्पोक्त कर्माणि कृत्वा दर्भासने द्विजः ।
उपविश्येंद्रियदिग्वक्त्रः प्राचीमुख उदङ्मुख एव वा ॥५३॥

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा कृत्वा त्रीन्प्राणसंयमान् ।
ततो गुरुं गणेशानं भक्त्या देवं प्रणम्य च ॥५४॥
ऋषिश्छन्दो देवताश्च शक्तितत्त्वान्यनुक्रमात् ।
बीजं शक्तिं नियोगं च स्मृत्वोक्त्वा प्रणिपत्य च ॥५५॥
कृत्वा न्यासत्रयं पश्चाद्ध्यायेद्देवीमिहोदिताः ।
संध्यासंहिमरुग्विधे स्ववेत्तस्वधया बुधः ॥५६॥
एकाग्रमानसो भूत्वा जपेदष्टसहस्रकम् ।
नित्यमष्टशतं वापि यथाशक्त्याऽथ वा पुनः ॥५७॥
संभवेत् त्रिषु लोकेषु निग्रहानुग्रहक्षमः ।
यथेष्टमखिलान्भोगान्भुक्त्वा भूतिं च शाश्वतीम् ॥५८॥
ततःस्वर्गफलान्भुक्त्वा प्राप्नोत्यंते परं पदम् ।
ध्यानाध्यायमिदं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥५९॥
सद्ब्राह्मणाय दातव्यं सत्वादिग्रगुणाय च ।
दुश्चरित्राय दुष्टाय दुर्विप्राय दुरात्मने ॥६०॥
न देयमेतदध्यायं स्नेहात्किमपि कांक्षया ।
यदि दुष्टस्तद्देत्तमध्यायं येनकेनचित् ।
स पापात्मा महाघोरे नरकाब्दी वि(चि)रं वसेत् ॥६१॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ गायत्रीध्याननामको
द्वादशोऽध्यायः ॥

अथ त्रयोदशाऽध्यायः

गायत्रीमूलध्यानवर्णनम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूलध्यानं तदात्मकम् ।
चेत(द्य)प्रसादजननं(सर्वाघोघ)सर्वथाघविनाशनम् ॥

सर्वथाऽनुष्ठितं सिद्धं मुनिभिस्तत्त्वकांक्षिभिः ।
महानुभावैरमरै रवि सद्भक्ति तत्परम् ॥ २ ॥

अन्येषामपि सर्वेषां निखिलाभीष्टसिद्धिदम् ।
तस्मादिदं महाध्यानं ध्यातव्यं द्विजसत्तमैः ॥ ३ ॥

स्नात्वा शुद्धः शुचौ देशे प्रक्षालितपदद्वयः ।
स पवित्रकरद्वंद्वः कृते चास्पर्शने द्विजः ॥ ४ ॥

अग्निहोत्रजयाभूत्या शुद्धयाजलसिक्तया ।
धृत्वाह्निकादि स्नानेपूर्ध्वपुंड्रं च पञ्चसु ॥ ५ ॥

कुशासने प्राग्वदनः उदग्वक्त्रोयथामति ।
उपविश्य गुरुं वाचं गणेशं प्रणमेदथ ॥ ६ ॥

त्रिप्राणसंयमो भूत्वा भूर्भुवादित्रयेण तु ।
रेचकश्चाथतृतीयः कुंभकं (च) ततः (परम्) ॥ ७ ॥

ऋषिश्छंदो देवताश्च विनियोगं च वर्णकान् ।
तत्वादिशक्तिबीजं च शक्तिश्चाथ क्रमात्स्मरेत ॥ ८ ॥

अथहस्ताङ्गदेहेषु कुर्यान्न्यासत्रयं क्रमात् ।
दिग्बन्धनं च तत्पश्चाद् ध्यायेद्देवीं प्रसन्नधीः ॥ ९ ॥

...दित्यनुवाकेन हृदये वाऽर्कमंडले।
...षीमावाह्य गायत्रीं ततो ध्यायेद्द्विजोत्तमः ॥१०॥
...पञ्चवक्त्रा दशभुजा षड्गर्भा चरणत्रयाम्।
...प्रपञ्चपदि गायत्री परमेश्वरी ॥११॥
...दादिविद्याभूताशकुलरक्तं दधो जगत्।
...ब्रह्मविष्णुशिवाश्चास्याः प्रथनाश्चयथा अमी ॥१२॥
...ऋग्वेदः पूर्वचरणः यजुर्वेदो द्वितीयकः।
...सामवेदस्तृतीयस्तु चरणः प्रथितः परम्(ः) ॥१३॥
...हाद्रिमलयाद्रच यासौ रत्नाकरास्तनाः।
...पूर्वादिक्प्रथमा कुक्षिः दक्षिणादिग्द्वितीयका ॥१४॥
...पश्चिमादिक्तृतीयास्याः कुबेराशाचतुर्थका।
...ऊर्ध्वादिक्पश्चिमायादिग्द्वेन्मुक्ता यथाक्रमात् ॥१५॥
...इतिहासपुराणानि नाभिर्विख्याति वै जगत्।
...ब्रह्मांतरंमरुद्भ्रमंदंशाश्च मतान्तरौ ॥१६॥
...हृदयं धर्मशास्त्राणि कण्ठो न्यायविस्तरः।
...द्वारंपद्मानिरिपति शीर्षाणि च पृथक् पृथक् ॥१७॥
...हिः शिर शक्तसमग्रं शिरःशिवं द्वितीयकम्।
...तारः कल्पसूत्राणि तत्तुर्यं निरुक्तकम् ॥१८॥
...पंचमं ज्योतिषं शीर्षं षष्ठं परिकीर्तितम्।
...सतेककलेतिवक्त्रं यत्नाचेन्दुर्मंडलम् ॥१९॥
...मीरयं च निश्वासः प्रमत्तो वायुरीरित।
...स्या सर्वं नित्यका दोर्भ्यां द्विजोत्तिकः ॥२०॥

पुष्पायतंसान्योतीपि हरो नक्षत्रमालिका ।
रत्नाकल्पाश्चवनीरुद्रः मीमांसालक्षणानि च ॥२१॥
विद्याविधौशिरः पश्चा(द्) अथर्वाङ्गो विचेष्टितः ।
वेदान्तशास्त्रं विमलं मानसं परिकीर्तितम् ॥२२॥
ब्रह्मा मुखं शिखा रुद्रः विष्णुरात्मा हृदि स्थितः ।
एतल्लक्षणसंपन्ना गायत्रीति प्रकीर्तिता ॥२३॥
सांख्यायनस्य गोत्रैषा जगद्रूपाखिलेश्वरी ।
एवं ज्ञात्वा स्वहृत्पद्मे दिव्याकाशेऽद्भुत(?)स्थले ॥२४॥
हैमे सिंहासने देवी स्थितां ध्यात्वा द्विजोत्तमः ।
भद्रपीठेदयाघूढे नानारत्नसमन्विते ॥२५॥
पद्मासनेऽथवा सौम्ये तदायाते स्वचेतसः ।
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं वस्त्रं यज्ञोपवीतकम् ॥२६॥
चंदनं चाक्षतं पुष्पं धूपदीपं निवेद्यकम् ।
करानुलेपं तांबूलं दत्वाधिजपमाचरेत् ॥२७॥
प्रदक्षिणप्रणामांश्च यथाशक्त्या च कारयेत् ।
स्तुत्वाऽथ विविधैस्तोत्रैर्देवीमुद्वासयेत्ततः ॥२८॥
एतान्यमूनि द्रव्याणि प्रोक्तानीहार्चनाधुना ।
मानसोक्तानि सिद्धानि शुभानि द्रव्यजानि च ॥२९॥
एवं द्विजोत्तमः सम्यङ्नियमेनैव सर्वथा ।
यो ध्यानेनार्चयेद्देवीं सर्वाभीष्टं लभेत्ततः ॥३०॥
ध्यानं कृत्वा ततः सम्यग्ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
महापातकपूर्वाणि न स्पृशन्ति तमांस्यपि ॥३१॥

ानियोग्यानिवस्तूनि ध्यानं कुर्वन्स्पृशेद्द्विजः ।
यन्ति तानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः ॥३२॥
तवं ब्राह्मणो भक्त्या सदैव ध्यानतत्परः ।
तस्य दुष्कृतं किंचिदिहोपरिमहात्मनः ॥३३॥
ह्माविष्णुहराश्चैव मुनयः पितरस्तथा ।
ोताः प्रीत्या प्रयच्छंति धान्यानि च मनोरथम् ॥३४॥
ह्मविद्भिरिति ध्यानं ध्येयं तद्ब्रह्मसिद्धये ।
द्ब्रह्मणोऽनिशं शुद्धैर्भावैर्वस्यैरपिस्मृतम् ॥३५॥
ेरेन ध्यानमार्गेण जपेच्च सततं द्विजः ।
ाङ्गस्याश्रित्य वेदाख्या सनाक्षदीश्वरसंस्मृताः ॥३६॥
ायः किंजल्पनैर्व्यर्थैः भूयोभूयोविमोहनैः ।
ायत्र्यास्तु परं नास्ति दैवतं सद्द्विजन्मनाम् ॥३७॥
दायिका परित्यज्य गायत्री ये द्विजातयः ।
ठन्ति वेदान्स्तेषान्ते भवेयुर्दम्भस्वनाः ॥३८॥
ायत्रीध्याननिरतो यो द्विजो ह्यप्यवेदवित् ।
ावेदविदिति प्रोक्तो विशुद्धश्च द्विजातिषु ॥३९॥
तद्ध्यानं ततः कुर्यात् सद्भक्त्या नियमेन यः ।
ा स्नातः सर्वतीर्थेषु कृतास्तेनाखिलाध्वराः ॥४०॥
तानि सर्वदानानि भूदानप्रमुखानि च ।
च्छ्रचान्द्रायणादीनि कृतान्युग्रतपांसि च ॥४१॥
ान्यानि यानि पुण्यानि यानि धर्माणि तानि च ।
थोदितक्रमेणैव समस्तानि कृतानि वै ॥४२॥

महाध्यानमिति प्रोक्तं एतद्ध्येयं द्विजातिभिः ।
सद्द्विजायपरेण्व्यं(प्रदातव्यं) अन्यस्मै न कदाचन ॥४३॥
द्विजः सदा महाध्यानाध्यायमेतं परः शुचिः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्स याति परमं पदम् ॥४४॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ महाध्याननामक-
स्त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

पूजाफलसिद्धये द्रव्यगन्धलक्षणवर्णनम्

अथार्चनोक्तद्रव्याणां गंधानां च पृथक् पृथक् ।
लक्षणं संप्रवक्ष्यामि सपर्याफलसिद्धये ॥ १ ॥
चंदनागरुकर्पूरकाश्मीरजचतुष्टयम् ।
गंधाख्योऽयं विलेप्यास्या भक्ष्यावापि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
चंदनागरुकर्पूर कुंकुमस्निग्धकर्दमः ।
गंधोत्तमइति प्रोक्तः श्रेष्ठः सर्वानुलेपने ॥ ३ ॥
पूतिमृगमदादीनि पुण्यांगानि विशेषतः ।
द्रव्याण्यतिसुगंधीनि प्रमृज्यान्यनुलेपने ।
चंदनागरुलोहाख्य काश्मीरजचतुष्टयम् ॥ ४ ॥
एकैकमष्टद्वित्र्यशतसंख्यागुणाधिकम् ।
अभिन्नाशंखयश्वेताः सुस्निग्धा व्रीहितण्डुलाः ॥ ५ ॥

अक्षताश्चेत्यभिहितास्ते प्रशस्ताः समर्चने ।
कृष्णाः कद्रुगा(?)बहुविधाः पुरुषाश्चमलीमसाः ॥ ६ ॥
व्रीह्यक्षता अपि क्षुद्राः न हि योग्याः समर्चने ।
मालतीमल्लिकाशोकाः जीवन्ती नवमल्लिकाः ॥ ७ ॥
पुन्नागबकुलांभोजाः पाटलोत्पलचंपकाः ।
कदंबकर्णिकाराख्यपलाशकरवीरकाः ॥ ८ ॥
मंदारनागविजयश्वेतमंदारकेसराः ।
कौसुम्भमतमातलिसंध्यायतंयुर्मुभकाः ॥ ९ ॥
धकागस्त्यासनद्रोण आरग्वधककाचनाः ।
त्रिसंध्य पृथुशालार्कजपाश्च पुष्पसंकटः ॥१०॥
एषां पुष्पाणि सततं प्रशस्तानि समर्चने ।
एषु लक्षणयुक्तानि योग्यानि कुसुमेष्वपि ॥११॥
अलक्षणानि पुष्पाणि न योग्यानि कदाचन ।
सदलानि न नालानि शुष्कानि नवानि च ॥१२॥
स लक्षणानि तान्याहुः पुष्पाण्यक्षिप्रियाणि च ।
पुष्पेषु चतुर्वर्णा भवन्तिधवलादयः ॥१३॥
तानि सर्वाणि पुष्पाणि प्रयोज्यानि समर्चने ।
प्रयोज्यान्यर्चनादिभिः(?)ह्यपि पुष्पगन्धानुलेपनैः ॥१४॥
अतिपक्वान्यपक्वानि तप्तानि विदलानि च ।
निर्नालानि म्लानानि केशकीटयुतानि च ॥१५॥
विशीर्णानि सगंधानि छिद्रोपहतानि च ।
एतान्यलक्षणादीनि पुष्पाणि कार्य(वर्जित?)तानि तु ॥१६॥

क्रीतपुष्पफलाशानि विभज्य न तु पूजयेत् ।
अन्तरेण सरोजातेन्दीवर प्रसवद्वयम् ॥१७॥
अत्राख्यातानि पुष्पाणि न योग्यानि कदाचन ।
तस्मादुक्तानि पुष्पाणि योग्यान्यभ्यर्चने सदा ॥१८॥
बिल्वापामार्गमरुवतुलसीदमनाम्र्कः ।
भृङ्गराज़जंबुखदिरमहमविदकाह्वयाः ॥१९॥
शशिप्रक्षमहीजात हरिताल कुशाह्वयाः ।
एषां कोमलपत्राणि योग्यान्य(भ्य)र्चने सदा ॥२०॥
पूर्वोक्तकुसुमालाभे पत्रैरेतैर्नियोजयेत् ।
एषामलाभे पत्राणां अक्षतैर्वाविरे(र्ले)र्यजेत् ॥२१॥
स्वारामोद्भूतकुसुमै (र) अर्चाश्रेष्ठेत्युदीरिता ।
मध्यमा वनजैः पुष्पैः क्रीतपुष्पैः कनीयसी ॥२२॥
कपित्थया कुचीसर्ग शिरीषमद्यन्तिकाः ।
शालमल्यैरंडमधुकविभीतकविषद्रुमाः ॥२३॥
अन्ये येनात्र कथिताः विरोधो ह्रति द्रुमाः ।
त्रोगिग्रमूलानि यजने न भवन्ति हि ॥२४॥
ना नग्मान्लेर्यनेर्दयो(अल्पा)न्येष्टशीघ्रानिवाणुकः ।
स्वेयेनाऽऽहृत्य पुष्पाणि यथाज्ञा येन केनचित् ॥२५॥
यो यजेत नर्दुया पूजा भवेदेव न संशयः ।
गंधानि पूजाद्रव्याणि स्वेयेन प्रमभेन वा ॥२६॥
आहृत्य पूजयेनंदः सा पूजा च वृथा भवेत् ।
सि…दूं (सिन्दूरं) कुङ्कुमं चूर्णं कांस्यं आकरकं तथा ॥२७॥

मूनि पंचद्रव्याणि पाद्यान्याहुर्महर्षयः ।
लं कर्पूरसंमिश्रकोष्टैलोशिरजानि च ॥२८॥
मून्याचमनीयस्थानि द्रव्याण्युक्तानिसद्बुधैः ।
ग्राग्रं तिलसिद्धार्थं यवाक्षतयवांसि च ॥२९॥
व्याण्यमूनिपप्राहुः (?) अर्घ्यस्य मुनिपुंगवाः ।
मेकसज्ज्ञधीवासकुङ्कुमं श्रीफलं मधु ॥३०॥
क्षाकृष्णागरुः सर्पिः श्वसनः सरलद्रुमः ।
गर्कर्मेहिमाश्च श्रीगंधो गुग्गुलुस्तथा ॥३१॥
ण्यांसरच्चयनश्चेति धूपद्रव्याणि षोडश ।
न्येष्वेषु यथालब्धं तथा तद्धूपमर्चयेत् ॥३२॥
लाभे प्रसवेनैव धूपं संकल्प्य चार्चयेत् ।
पूरलोहश्रीखंडैलामन्जुकचतुष्टयम् ॥३३॥
पवेदांग तुरगसत्त्वं सघृ(घृ)तसाधनम् ।
तन्मधुयुतं पात्रे चितत्वालपावके ॥३४॥
क्षिप्य दद्यात्तद्धूपं महासंम्मोहनाधूपं(त्मकम्) ।
पूरसीतलोहांभूकालेयंकुदुरुष्करम् ॥३५॥
यांसश्चंदनंचेति द्रव्याण्येतानि सप्त वै ।
येकैव तु समानं संख्ययाच्युतभाषितम् ॥३६॥
धूपधत्पूर्व (द्रव्यात्मकं) देव्याः सप्तियं धूपसाधनम् ।
तेषामपि विज्ञेयाः भागाः पूर्वं यथोदिताः ॥३७॥
पूरं गोघृतं तैलं महच्चंदिय (क)साधनम् ।
द्रसूपंच कार्पासं तद्वर्तिकरणं स्मृतं ॥३८॥

ताम्बूलं भावयेच्छ्राद्धं यत्तन्नयनवल्लभम् ।
श्रेष्ठानि पत्रवस्त्राणि महार्घ्याणि च सर्वदा ॥६०॥
एषामलाभे कार्याः स्युर्वासांसि प्रयत्नानि वा ।
नेत्रप्रियाणि सूक्ष्माणि नूतनानि घनानि च ॥६१॥
यान्याहृतानि वस्त्राणि प्रशस्तानि भवंति हि ।
आहुर्दग्धानि जीर्णानि अन्यैरपि धृतानि च ॥६२॥
कृमिदुष्टानि जीर्णानि स्थूलान्युपहतानि च ।
दुष्करं सुप्रयुक्तानि देवताभिभूतानि च ॥६३॥
नूतान्यस्यानिलब्धानि सस्युशस्थानिजा···चित्(?) ।
एवं सर्वं समाख्यातं द्रव्याणां लक्षणं स्फुटम् ।
एतज्ज्ञात्वा द्विजोदेवीं सद्भिर्द्रव्यैः समर्चयेत् ॥६४॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ पूजाद्रव्योपकरणवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

यज्ञोपवीतविधिवर्णनम्

अथ यज्ञोपवीतस्य विधिं सम्यग्द्विजन्मना ।
श्रौतस्मार्तक्रियासिद्ध्यै प्रवक्ष्येऽखिलशाखिनाम् ॥ १ ॥
यज्ञोपवीतं धृत्वैव सर्वकर्माणि सर्वथा ।
श्रौतस्मार्तानि चान्यानि कुर्यात्पुण्यानि च द्विजः ॥ २ ॥

अज्ञात्वाऽस्यविधिं विप्रः कृत्वा कृत्यान्करोति यः ।
यानि कर्माणि सर्वाणि तानिस्युर्निष्फलानि वै ॥ ३ ॥
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यमुपवीतं विधानतः ।
विधानेन विना जातं भवेद्गोकंठरज्जुवत् ॥ ४ ॥
अतः सम्यग्विधिं ज्ञात्वा कुर्वीत विधिपूर्वकम् ।
यज्ञोपवीतं षट्कर्म तत्तत्कर्माधिसाधनम् ॥ ५ ॥
सह वै देहनाबेत्यायेसिन्नुश्रुतौ (च) ।
यज्ञोपवीतं विधिवत्कृत्वा धृत्वा द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥
ततो वेदमधीयीत श्रौतस्मार्तक्रिया चरेत् ।
इत्येवं सुदृढं प्रोक्तं अतोऽध्यादिनान्ततः ॥ ७ ॥
दैवं पैतृकमार्षं च कर्म कुर्यात्सदा द्विजः ।
कुर्याद्यज्ञोपवीत्येव नान्यथा तत्फलप्रदम् ॥ ८ ॥
निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं देवानामितिश्रुतिदर्शनात् ।
चतुर्णां ब्राह्मणानां च वर्णानां क्षेत्रसंभवम् ॥ ९ ॥
कार्पासमुपवीतार्थं गृह्णीयात्र (तु ?) भूमिजम् ।
कार्पासः प्रथमः सृष्टः जगत्स्रष्ट्रा स्वयंभुवा ॥१०॥
ब्राह्मण्यस्य स्थापनार्थं वेदानां स्थापनाय च ।
साधीनं क्षेत्रजं स्वस्य कार्पासमधमं स्मृतम् ॥११॥
तस्मात्क्षेत्रं स्वयं बीजं उप्त्वा तत्र समुद्भवम् ।
स्वस्ववर्णस्वदारै(र्हि) समुत्पादितबीरुधिः ॥१२॥
कार्पासं यत्तदुत्कृष्टं उपवीतकृत्वा भृशम् ।
स्वक्षेत्रे स्वगृहाभ्यासे शुचौ देशेऽपि वा द्विजः ॥१३॥

न्येष्टंयावत्स्थलं तावदवटं जानुमात्रकम् ।
गोमयेन प्रलिप्तेन स्वोक्तवर्णान्मृदा सह ॥१४॥
खंबूनि निर्वपेद्बीजं सकार्पासद्वयं शिवम् ।
प्रणवेनाभिमन्त्र्यैव ततस्तोयं प्रसेचयेत् ॥१५॥
आपोवाइत्यमित्यादि सूक्तेनैवाभिमंत्रितम् ।
ततः शुद्धाम्बुनैकेन तत्सस्यमनुवर्धयेत् ॥१६॥
तथा जातेषु जातं यत् कार्पासमतिशोभनम् ।
श्वेतलोहितपीताःस्युः विप्रक्षत्रविशां क्रमात् ॥१७॥
वर्णशूद्रस्य कृष्णःस्याद्वर्णोऽन्यः संकरः स्मृतः ।
स्वक्षेत्रात्स्वहृतं श्रेष्ठं कार्पासं धवलं द्विजैः ॥१८॥
पितरैरपि वा शुद्धं उपवीतकृतौ शुभम् ।
फलवत्तुपक्वेशाखि तृणवल्कानि यत्नतः ॥१९॥
पात्रे पवित्रं संस्थाप्य प्रयतः शोधयेद्द्विजः ।
तस्मिन्कराभ्यां मुच्येत कार्पासबीजसंचयम् ॥२०॥
कार्पासरज्जुशापेन कुर्वीत मृदु कर्म तत् ।
तेनैव द्विजकर्माऽथ कार्तिकं सूत्रमुत्तमे ॥२१॥
शुद्धाभिर्विधवाभिर्वास्वस्वगोत्राभिरथापि(रप्यथा) वा ।
पुंश्चलीभीरक्ताभिःकन्यकाभिश्च(?) पुरन्ध्रिभिः ॥२२॥
तंतुकर्म न कर्तव्यं कार्पासमृदुकर्म च ।
आसु न्यूनाधिकाङ्गाश्च कुत्सितावयवा अपि ॥२३॥
अभोग्यापनंन्नस्तु योषित्सं(?) (योषित्सतत्र)स्मृतौ ।
गुर्वंगत्वथवा कन्याप्यासा(स्या?)नु कर्माणि ॥२४॥

स्यान प्रशस्तेति केचिदाहुर्महर्षयः ।
तं स्वस्य हस्तेन सूत्रमित्युत्तमं स्मृतम् ॥२५॥
कर्मादिभिःपश्चादशक्तश्चेदयं यदि ।
स्तंतुकृत्प्रोक्तः कलधौतस्तुमध्यमः ॥२६॥
प्रस्थानपत्रश्चेति तंतुकर्मण्युदीरितम् ।
कुलमात्रायामंगुल्यां तस्य तु प्रमा ॥२७॥
फालक्षणं त्वेवं प्रोक्तं तंतुकृतः खलु ।
सोभवेदंगुले वृत्तं समातन्तुकृतौ मता ॥२८॥
णं द्विधमाख्यातं यन्त्रं तन्तु क्रियार्हकम् ।
न्नमणिशलाकान्तं संप्रोक्ष्याद्यवायतम् ॥२९॥
गतं स्थितं यत्तत्तु शङ्कमुदीरितम् ।
स्योतलोहानां लाञ्जेनैकेन निर्मितम् ॥३०॥
भवेदलाभे वा यज्ञपदमनिर्मितं ।
लोच्छ्रयं तस्य व्यासमंगुलपंचकम् ॥३१॥
मोवान्वितं यत्तत्तुकृत्पात्रमुच्यते ।
द्व्यंगुलं पात्रं तदग्रे कंधरांगुलम् ॥३२॥
उच्चोधस्तत्यविस्तारं कर्णस्य द्व्यंगुलं भवेत् ।
तन्तुकृद्भ्रमणं स्यात् पात्रे स्थातं द्विरंगुलम् ॥३३॥
तथैव पादस्तातं स्यात् कर्णरंध्रं यथारुचि ।
सौहकंकटकान्येषु यथालब्धे न वा कृतः ॥३४॥
काकादीनां तन्तुकृत्वा अलाभे तन्तुकृत्वेन ।
कुचन्दनरक्तखदिरः कस्यतेमपिकर्मसि ॥३५॥

तज्जातिनालं तस्य स्यात् कुशनालमथापि वा ।
स्वर्णतन्तुकृतादीनामलाभे घनसोमपाम् ॥३६॥
शुद्धमृण्मणिसंप्रोता कुशनाली प्रशस्यते ।
समक्षमृन्मणिस्तक्षः तंतुकृतंतुकर्तने ॥३७॥
यज्ञोपवीतस्य भवेज्जातु चिह्नं द्विजन्मनः ।
अस्य शुद्धिर्जनपुष्टिर्दोषो ह्यस्मान्नकारणात् ॥३८॥
आस्पृश्यलोत्पादेपः (?) तन्तुयंत्रो न शस्यते ।
अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं शीर्णं निम्नोन्नतं च यत् ॥३९॥
यत्नेन कीर्तितमपि द्विजः सूत्रं तदुत्सृजेत् ।
म्लानं यंत्रक्रियायुक्तं उपयुक्तसुरैर्धृतं ॥४०॥
दग्धं तष्टं मुष्टिकाद्यैः यत्तत्सूत्रं परित्यजेत् ।
पूयशोणितविण्मूत्रश्लेष्मोच्छिष्टैश्च यद्यपि ॥४१॥
संस्पृष्टं तद्वर्येत्सूत्रं उपवीतकृतौ न हि ।
उपक्रम्य प्रतिपदं यावत्स्यात्पूर्णिमावधि ॥४२॥
शुक्लपक्षःस्मृतस्तावत्प्राह्णे मध्याह्नतः पुरा ।
स्वाध्यायोक्ततिथौ पुण्ये नक्षत्रे शुभवासरे ॥४३॥
प्राह्णे शुचिः शुचौ देशे ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
स्वाध्यायपठने योग्यास्तिथयो या प्रकीर्तिताः ॥४४॥
ताश्च स्वाध्यायतिथयो पक्षान्ते पुण्यहानि च ।
चित्राश्विनीशतभिषक्स्वातिपुष्याःपुनर्वसू ॥४५॥
हस्तचित्राभिष्टानुराधा(विशाखानु)रेवतीतोद्वितीयभम् ।
उत्तरत्रितयं मूलविशाखा हरितारकम् ॥४६॥

एतान्यष्टादशर्क्षाणि पुण्यर्क्षाण्यक्षयाजनुः ।
हस्ताभिजिदनुराधश्वयुक्प्रौष्ठपदाह्वयाः ॥४७॥
तिष्यः पुनर्वसूचेतितारा: पुंसञ्ज्ञका इमाः ।
आसूपवीतं कुर्वीत श्राद्धर्मफलवाचकः ॥४८॥
ऋक्षेषु जन्मधेष्ठःस्याच्चतुर्थं पञ्चमष्टकम् ।
द्वितीयं नवमं चान्यस्यस्वतारा: शुभेतराः ॥४९॥
तृतीये सप्तमे षष्ठे दशस्वस्य(स्वा?) जन्मनि ।
एकादशे स्थितश्चंद्रः शुभप्रद इति स्मृतः ।
ताराचंद्रबलोपेते दिवसे स्वस्य कल्पयेत् ॥५०॥
ब्रह्मसूत्रं तयोर्हीनबलेनैव प्रकल्पयेत् ।
ऋगथर्वयजुः साम्नो क्रमादेतेऽधिपाः स्मृताः ॥५१॥
देवेड्ययेमकम्पुत्र दैत्येयाराध्यभूमिजाः ।
स्वस्ववेदे शखेर(?)वस्यचारेतदुदयेऽपिवा ॥५२॥
विदधितोपवीतानि तद्लाभे शुभेऽहनि ।
बृहस्पतिः सुराचार्यः रोहिणेयो हिमांशुकः ॥५३॥
एते शुभग्रहास्तेषां वासराः शुभवासराः ।
देवस्थानं नदीतीरमाश्रमं गोनिकेतनम् ॥५४॥
मठस्थेतेषु लब्धेषु कुर्याद्यज्ञोपवीतकम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवसूर्यः दुर्गागणपतिर्गुहः ॥५५॥
एतेषामन्तु मुनिस्थानं देवस्थानमिति स्मृतम् ।
गंगादिसरितां कूलं नदीतीरमितिस्मृतम् ॥५६॥

तपोवनमृषीणां यत्तत्त्वाश्रममिति स्मृतम् ।
वासस्थानं गवां यत्तदुदितं गोनिकेतनम् ॥५७॥

स्थानं तपस्विनां यत्र भवेत्तस्यमदाह्वयम् ।
स्नात्वा शुचिर्द्विजः श्रेष्ठश्चरणौ च करौ ततः ॥५८॥

प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः ।
कृष्णाजिनासनालाभेकुशावल्कासनोऽपिवा ॥५९॥

स्थित्वा समाहितमनाः प्राणायामं समाचरेत् ।
ततो गणेश्वरं वाचं स्वाचार्यं त्रिदशान्नृपान् ॥६०॥

पितृन्ब्राह्मणमज्जाक्षंरुद्रंभक्त्याभिवादयेत् ।
ततः प्रणवमुच्चार्य व्याहृतित्रितयं ततः ॥६१॥

नवतीसङ्गृह्णीयात्तत्सूत्रं चतुरंगुलैः ।
तदेवाचिररूपेण कुर्वीत त्रिगुणां ततः ॥६२॥

तत्संप्रक्षालयेच्छुद्धैरम्बुभिः प्रणवेन च ।
व्याहृतित्रितयेनाधस्तत्कूर्चोपरि निक्षिपेत् ॥६३॥

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः कुशैस्तन्मार्जयेत्त्रिभिः ।
हिरण्यवर्णा इत्याद्यैश्चतुर्भिर्मार्जयेच्चवः ॥६४॥

पवमानानुवाकेन ततो मार्जनमाचरेत् ।
उपवीतकृतो विप्रः शुद्धो द्वौ देवभाषितौ ॥६५॥

एकोनं वा ततो विप्रश्चान्यो मध्यमधारकः ।
प्राक्प्रत्यग्वदनो विप्रः दक्षिणाभिमुखोऽपि वा ॥६६॥

स्थित्वापठन्स्मरन् तुल्यं तत्सूत्रमनुपत्रयेत् ।
उच्चरन्प्रणवं पूर्वं व्याहृतित्रितयं तथा ।
शनैर्वामस्वहस्ताभ्यां अदाक्षमोऽनुवर्तयेत् ॥६७॥
तत्सूत्रं त्रिगुणीकृत्य करेभाभ्यां त्रिभिःसदा ।
प्राणानामंहि(?)रसीत्युक्त्वाथ परिवेष्टयेत् ॥६८॥
उच्चरन्प्रणवं पूर्वं व्याहृतित्रितयं तथा ।
शनैर्वामं स्वहस्ताभ्यां तथाक्षमोऽनुवर्तयेत् ॥६९॥
नरा मृगाः पतंगाश्च संधानेषानुवेष्टयेत् ।
सूत्रस्याधो न गन्तव्याः गताश्चेत्सूत्रसत्यजेत् ॥७०॥
विण्मूत्रांगारकेशास्थिचर्मकिमिचयोपरि ।
अनुवर्तनसंधाने सूत्रस्य न समाचरेत् ॥७१॥
कपालोच्छिष्टनिर्माल्यतुषधूमेरिणोपरि ।
न चानुवर्तयेत्सूत्रं संधानं चास्य नाचरेत् ॥७२॥
यज्ञोपवीतशिल्पस्य नवकस्य प्रमाणकं ।
सिद्धार्थस्यापि च फलस्थूलस्योक्तं महर्षिभिः ॥७३॥
स्थूलफलस्य सूत्रस्य मध्यमस्य कृशं न च ।
तत्र श्रेष्ठं मध्यमं स्यात् कनिष्ठं क्रमशः स्मृतम् ॥७४॥
आयुर्हरंतूलतुल्यं तपोहरं (कनिष्ठं च ?) ।
उत्तमप्रमाणं तुल्यं यदुपवीतं करोति शम् ॥७५॥
एवं ज्ञात्वानुवर्त्याऽधः कुर्यो सूत्रा कुर्यात्तते ।
देशे प्रसार्य दर्भौ द्वौ दत्वा कुर्यात्करप्वनिन् ॥७६॥

सूचनात्त्वधरस्यैव सूत्रमित्यभिधीयते ।
यज्ञोपयज्ञयागांगोगोपवीतं (?) लक्षणाह्वयम् ॥९९॥
यज्ञोपवीतमित्युक्तं तस्य संरक्षणतः सदा ।
अग्निष्टोमादयो यज्ञाः एतत्सम्यग्द्विजन्मनाम् ॥१००॥
सततं सूचनादेतद्यज्ञसूत्रमिति स्मृतम् ।
रुद्रश्चतुर्मुखो विष्णुरप्यन्येऽमृतभोजनाः ॥१०१॥
शश्वद्धधत्यतोदस्तद्देवरक्षेति चोच्यते ।
भूर्धारितेजोवायुश्चप्राणाआत्मत्रयं तथा ॥१०२॥
स्मात्भवंति तंतूनां सदानामधिदेवता ।
ग्रंथित्रयस्याधिपाःस्युः पितामहहरीश्वराः ॥१०३॥
यज्ञोपवीतकारस्य परं ब्रह्मादिदैवतम् ।
तन्तुमाहो ग्रन्थिकृतौ सूत्रसन्धारणेऽपि च ॥१०४॥
देवानेतान्हृदि स्मृत्वा नमस्कुर्वीत भक्तितः ।
एकैकमुपवीतं स्याद्रात्यंताश्रमिणोर्द्वयोः ॥१०५॥
दशाष्टौ वा गृहस्थस्य चत्वारि वनचारिणः ।
एकमेव यतेः सूत्रं तथैव ब्रह्मचारिणः ॥१०६॥
मौत्तरीयं गृहस्थस्य तथैव वनचारिणः ।
कृष्णसारंगचर्मानां धारणं क्रमशःस्मृतम् ॥१०७॥
भरोभूत्रानंभिभ्रमत्कृष्णंधवलं शुभम् ।
धरेद्वे नोपयुक्तं यत् प्रशस्तमजनं स्मृतम् ॥१०८॥
स्वर्णेन रत्नैर्वापि रं यथ्याचाश्रियं यथा ।
धार्यं क्षत्रियपुत्रेण तत्पुरोहितसूनुना ॥१०९॥

...संवर्तो संवर्तं त्रागुत्पिद्गतवासिना ।
...नामान्तरेण मौर्वी कृतव केनचित् ॥११०॥
...र्षि कृतघ्नं मम वैरतत सतत्वासिन ।
...कार्यार्थं च तस्य च त्रिपुर कृत्स्नविना ॥१११॥
...ष्वर्थापर्तलम्बाने केचन अपूर्वमालेपाः ।
...सीलपालनावसान पुण्ये तुम्बोपसंसवम् ॥११२॥
...अतपाते च तथाता वै ततविवत् ।
...पर्याररायथ पुरतवविमाल(चार) का ॥११३॥
...विपार्थवापना अपायं वेकां च गौः ।
...अविनपविनपात्ताविश्रुपयातसम् ॥११४॥
...नैतविलि संमं वीनपनरापानः ।
...पातंबपत्यागयार्थं पृथमुगमम् ॥११५॥
...भाग: कापार्थ मीधुवं अविपनव तु ।
...पौनमितुष्कं समेत समयातिनः ॥११६॥
...पसायविनं पर्व पानतापवनपालितम् ।
...यावगुणमागं यदेवापुत्र नूतनम् ॥११७॥
...यागुणविभागं व्यवधानं पवागुत्तम ।
...पूजापर्व पपतुर्णायविमिति स्मृतम् ॥११८॥
...र्थं पृथामय विज्ञायात्र महर्षिभिः ।
...नि नवपञ्चानि संस्थाय च सर्वेव हि ॥११९॥
...मण्डपद्वाणि चोदितानि महीतले ।
...पौरपञ्चाणीत्याहुः केचिन्महर्षयः ॥१२०॥

गुर्विर्विप्रस्य पालाशः नृपस्यौदुंबरो त्रिशः ।
बैल्वो विशः समाख्यातः क्रमेण ब्रह्मचारिणः ॥१२१॥
विप्रस्य दंडः पालाशः नैय्यग्रोधो महीपतेः ।
वैश्यस्यौदुंबरः प्रोक्तः अलाभे त्वग्रजन्मनः ॥१२२॥
पालाशबिल्वौ विप्रस्य पैप्पलं क्षत्रियस्य तु ।
वैश्यस्य बैल्वो दण्डः समानि ब्रह्मचारिणः ॥१२३॥
स्वस्य शाखोक्तदंडानामलाभे सर्वसोमपाम् ।
सर्वेष्वेषु यथालब्धो दंडःस्यात्संकटस्थले ॥१२४॥
नृपस्य स्वस्य वैश्यस्य भवेयुः सर्वभूरुहाः ।
स्ववृक्षा यस्य वैश्यस्य दण्डसंग्रहणे स्मृताः ॥१२५॥
गृहस्थस्ययसात्तस्य यतेरासु त्रिजातिषु ।
वेणुदंडः प्रशस्तःस्यात् निर्दोष···प्रणकः(?) ॥१२६॥
गुह्यारण्यस्थयोर्दण्डो युक्पर्वो यतिनोऽन्यथा ।
शिरःप्रमाणं विप्रस्य क्षत्रियस्यालकोन्नतम् ॥१२७॥
प्राणप्रमाणं वैश्यस्य दंडमेवं क्रमात्स्मृतम् ।
क्रिमिदुष्टः स्वयं शुष्कः सरंध्रः कुटिलो लघुः ॥१२८॥
श्रितो निर्वल्कलो दंडः यो न योग्यः स कथ्यते ।
सव्रणः फलकाकारः पक्वो नवकन्दकः ॥१२९॥
जीर्णोवयुक्तो यो दंडो न योग्यःस्यात्सदारणे ।
समच्छेदागुलत्र्यस्तो पकाऽऽश्यामः सुवर्तुलः ॥१३०॥
चक्षुस्याभिनवो दंडो योऽसौ सकलसिद्धिदः ।
एतैश्चदोषरहितैर्वैष्णवानयनवल्लभम् ॥१३१॥

दद्याद्दंडं नृपस्तद्वत्पुरोगस्य च तत्सुतः ।
विप्रस्य धवलच्छत्रं ताम्रं छत्रं महीपतेः ॥१३२॥
पीतच्छत्रं विशः कृष्णच्छत्रं शूद्रादिजन्मनाम् ।
द्विजन्मनः चतुस्तालं दशतालं नरेशितुः ॥१३३॥
पंचतालं विशश्छत्रं विस्तारः क्रमशःस्मृतः ।
स्वस्वोक्त वर्णसूत्रेणबध्वाछत्रं यथादृढम् ॥१३४॥
स्वस्वोक्त वाससाऽऽच्छाद्य संगृह्णीयु द्विजादयः ।
सर्वेषां वेणुदंडःस्यादलाभेवार्क्ष एव वा ॥१३५॥
श्लेष्मातककरंजाक्ष वृक्षाःसन्यासिनां शुभाः ।
चतुष्पष्ट्यंगुलायामः ब्राह्मणस्य महीपतेः ॥१३६॥
एकोनवत्यंगुलै र्द्वौ द्विसप्तत्यंगुलायतः ।
वैश्यस्यैवंक्रमादंडः छत्रस्तु समुदाहृतः ॥१३७॥
तेषां नाहं यथा योग्यं दंडानामित्युदाहृतम् ।
स्वस्वोक्तवस्त्रेणकृतं प्रथमात्याश्रमस्थयोः ॥१३८॥
द्विजछत्रमितिप्रोक्तमितरैर्नधृतं पुरा ।
धृत्वाऽन्त्यशूद्रादि स्पृष्टिदोषोऽस्ति सर्वदा ॥१३९॥
वृक्षपूतानि पात्राणिदद्यत्यस्य न जातुचित ।
पलाशकेतकीतालनारिकेलादिभूरुहाम् ॥१४०॥
पात्रैराराराधितंछत्रं अन्यं स्यादग्रजन्मनाम् ।
पट्टे देवांगचीनादि चित्रांशुकविनिर्मितम् ॥१४१॥
चित्रंयन्मौक्तिकच्छत्रं हेमछत्रं महीपतेः ।
वार्हतपत्रं सर्वेषां अमीषामितिभाषितम् ॥१४२॥

फ(प)लाशकृष्ण छत्रे द्वे शूद्रादीनां नृणां स्मृते ।
सुवर्णरजिताशाल्पात्रिविधाकुंण्डिका स्मृता ॥१४३॥
उत्तमामध्यमानी च पूर्वोक्ता च यथाक्रमात् ।
अपामूढ़कवाङ्भानश्रेष्ठानि प्रस्थवाङ्मिता ॥१४४॥
मध्याद्विप्रस्थवाङ्भौना कुंडिकास्यात्कनीयसी ।
कांस्यपित्तललोहैर्या कुर्यात्स्वर्णाद्यलाभतः ॥१४५॥
स्वर्णाद्याख्यातविधिना कुंडिकामुखवद्द्विजः ।
आसामलाभे गोचर्मनिर्मितःस्यात्कमंडलुः ॥१४६॥
अन्यानिषिद्धत्वग्जातो भवेत्सापि कर्मंडलुः ।
वैरूप्यताम्रैःकुर्वीतकाराधारजलानयम् ॥१४७॥
अलाभेयज्ञवृक्षेण कुर्वीतजलपद्धतिम् ।
मृत्तिकाभस्मलोघृत्यकषायाम्बुफलत्रयम् ॥१४८॥
एककर्णिदनन्या पूरणाश्चयंशुध्यति ।
पश्चात्तु पंचदश्यातुप्रक्षाल्याऽथ शुभैर्जलैः ॥१४९॥
प्रक्षाल्यापूर्व जलोयं उपयुंजीत सर्वदा ।
स्वयमारनारिकेलाम्रवृक्षालाबुफलेषु च ॥१५०॥
एतेष्वपि यथालब्धो भवेत्राऽपि कमंडलुः ।
अन्यैरनुपयुक्तायाः कुंडिकाशा शुभप्रदाः ॥१५१॥
उपयुक्तानसंमतः अपवित्रो द्विजोत्तमैः ।
धत्रामेत्मजलौतै स्वकरार्थैः सदा द्विजः ॥१५२॥
एतामुच्छिष्टस्नानाश्चिनत्याश्रयैव केवलम् ।
अतः पात्रमयोर्थ्यं स्यात्स्नानाचमनकर्मणि ॥१५३॥

तत्रस्थितं घनरसं नोपयोज्यं द्विजन्मभिः ।
यज्ञोपवीतं वैतक्ष्यं मेखलादंडमंबरम् ।
छत्रदंडकमंडलवाः (डलूनां) विधिरुक्तः सलक्षणः ॥१५४॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ यज्ञोपवीतविधानंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

यज्ञोपवीतधारणविधिवर्णनम्

अथ यज्ञोपवीतस्य धारणे कथ्यते विधिः ।
स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे प्रक्षाल्य चरणौ करौ ॥ १ ॥
पवित्रपाणिराचम्य प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
उपविश्याऽथदर्भेषु प्राणानायम्यवाग्यतः ॥ २ ॥
आचार्यं गणनाथं च तावन्देवानृषीन्पितॄन् ।
ब्रह्माणमच्युतं रुद्रं नमस्कुर्वीत भक्तितः ॥ ३ ॥
अथोपवीतं विधिना संजातं तद्द्विजोत्तमः ।
जपेत्त्रियम्बकं मन्त्रं स्पृशन्दक्षिणपाणिना ॥ ४ ॥
दक्षिणं पाणिमुद्धृत्य शिरसैवसहद्विजः ।
मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् ॥ ५ ॥
यज्ञोपवीतमित्यादि मंत्रमन्यैवदीरितं ।
यस्ययज्ञोपवीतेयन्मंत्रमुक्तमथापि वा ॥ ६ ॥

अथ द्विराचमेदेवं सदैव ब्रह्मचारिणः ।
विना यज्ञोपवीतेन द्विजातीनां न चेत्तरत् ॥ ७ ॥
गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः ।
मंत्रोच्चारणमाम्नाम्ना(माम्नातं) द्वितयं क्रमशःस्मृतम् ॥ ८ ॥
अनेनोक्तप्रकारेण धारयेयुर्द्विजाः सदा ।
अनेन वेदाः कर्माणि यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ॥ ९ ॥
विना यज्ञोपवीतेन द्विजातीनां न चेतरत् ।
जपहोमार्चनस्नानस्वाध्यायाहारकर्मसु ॥१०॥
गृहा(ह्वा) तिथिगुरुप्राप्तौ उपवीतो भवेद्द्विजः ।
ब्रह्मादि देवताःस्त्रिसो (सर्वे) देवताश्चेतरा अपि ॥११॥
उपवीतधरास्तस्माद्धार्यमेतद्द्विजातिभिः ।
आज्ञावन्तो वशिष्ठाद्याः ऋषयश्चतपोऽधिकाः ॥१२॥
धृत्वा चैतत्प्रसादेन जीवंतस्ते बलान्विताः ।
नियमेन सदा धार्यं उपवीतं द्विजोत्तमैः ॥१३॥
कदाचिदपि नो धार्यं शूद्रैरितरजातिभिः ।
आमेखलामजिनं वस्त्रं दंडं छत्रं कमंडलुम् ॥१४॥
स्वस्वगृह्योदितैर्मंत्रैः द्विजोदध्याद्विचक्षणः ।
अज्ञाता यदि चेन्मंत्राः स्वस्वगृह्येषु चोदिताः ॥१५॥
उपवीतमुखानां वै तेषां संधारणे द्विजैः ।
केवलं प्रणवो वाऽपि व्याहृतित्रितयं तु वा ॥१६॥
स्याता विप्रादिवर्णेषु द्वावेतौसर्वशाखिनाम् ।
प्रणवः सर्वमन्त्राणां पितेत्याहुर्महर्षयः ॥१७॥

ॐ मितित्रिब्रह्मचेत्याश्रुतिवाक्यनिदर्शनात् ।
सर्वेषामेव जंतूनां व्याहृतित्रितयन्तु वा ॥१८॥
भूर्भुवः सुवरित्येतद्व्याहृतित्रितयं स्मृतम् ।
भूर्भुवः स्वरित्येव एतास्तिस्रो व्याहृतयः ॥१९॥
ऋक्सामयजुरंगानीत्यागमोक्तिनिदर्शनात् ।
एतास्तिस्रो द्विजो वेत्ति सरहस्यं सकल्पकम् ॥२०॥
स हि देवः परं ब्रह्म तदंते यात्यसंशयम् ।
चतुरंगुलविस्तारं शिरसामूलं द्विजन्मनः ॥२१॥
राज्ञः पंचांगुलं न्यासं वैश्यानां वै तथैव च ।
स्थापयेयुः शिरो मध्ये शिखां सर्वे द्विजातयः ॥२२॥
स्वभूम्युक्तस्थले चाऽपि श्वर्गा(त्वा)टस्य न चोदितः ।
यज्ञोपवीतममलैर्युतं वा वीत(क्रीत?)मापणे ॥२३॥
धार्यं न जातुचिद्धेममन्तरेणोपवीतकम् ।
हैमंसतारवैकक्ष्यं उपवीतं सलक्षणम् ॥२४॥
धार्यं सहोपवीतेन देवैर्नृपतिभिः सदा ।
एकेन हैमसूत्रेण कुर्वीत लवनत्रयम् ॥२५॥
नयतंतुं स्मरेद्वैव प्रतिष्ठासमये बुधः ।
शुल्पः स्थूलोऽथ वा सूक्ष्मो न हि तन्नियमोऽत्र तु ॥२६॥
नेत्रशोभी यथाजाति कुर्याद्धेमोपवीतकम् ।
हैमयज्ञोपवीतस्य न संख्यानियम-कृतः ॥२७॥
एकसंख्यादिपर्यंतंयद्लक्ष्यं तत्प्रमाणकम् ।
तारवैमक्ष्यविस्तारं एकांगुलमुदाहृतम् ॥२८॥

श्रौतः स्मार्तक्रियाः कुर्यान्नैवतत्फलभाग्भवेत् ।
द्विजो नष्टोपवीतश्चेदुपवीतं परं द्विजः ॥५१॥
आचम्य सन्नियम्याऽथ मंत्रेणैव च धारयेत् ।
धारणात्प्राङ्निमज्ज्याः सु तूष्णींवसुरतः स्थितः ॥५२॥
नवतंतुकृतं सूत्रं प्रणवेनैव धारयेत् ।
उपवीती स भूत्वा च यत्नादाचम्य यथाविधि ॥५३॥
यज्ञोपवीतं विधिवत्कृत्वा दद्याद्विचक्षणः ।
यथावदेवोक्तपक्षतिथ्याहःकालभूमिषु ॥५४॥
कृत्वा यज्ञोपवीतानि धारणार्थं विनिक्षिपेत् ।
यथाद्विजन्मनः प्राप्त उपवीतस्य धारणम् ॥५५॥
समं सर्वाश्रमस्थस्य तथैव तानि धारयेत् ।
यज्ञोपवीतं ये दद्युर्मोहाच्छूद्रादयोनराः ॥५६॥
ते पापिनः पतिष्यन्ति महानरकवारिधौ ।
तंतुना वाऽथवान्येन कृत्वा यज्ञोपवीतवत् ॥५७॥
बिभर्त्ति शूद्रो यदि यः सोऽपि यास्यति दुर्गतिम् ।
पादजात्यायज्ञसूत्रं मनुजा दधते हृदि ॥५८॥
तांश्च धृत्वाऽथ तद्धर्मद्रव्यं नृपतिर्हरेत् ।
दृष्ट्वोपवीतं दृष्ट्वाश्रुत्वाथ वा नृपः ॥५९॥
यदि तूष्णीं समासीत नरकाब्धौ चिरं वसेत् ।
अतः सर्वप्रकारेण कुर्यात्तदनुशासनम् ॥६०॥
इहोपरि सुखं प्राप्य धर्मशास्त्रार्थमार्गतः ।
विना यज्ञोपवीतं यो यद्यासीतविचक्षणः ॥६१॥

उपवीती ततः शुद्धः स गायत्रीशतं जपेत्।
द्विजन्मना प्रशस्त्येतच्छ्रेष्ठे भेदे तथैव च ॥६२॥
पितामहाख्या:स्वर्देवाः भूमिदेवा द्विजोत्तमाः।
उपवीतमतो धार्यं नित्यं तेनैव नेतरैः।
अनामिकादेचयाङ्गु मूल देकं प्रमाणकम् ॥६३॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ यज्ञोपवीतधारणविधिर्नाम षोडशोऽध्यायः॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

यज्ञोपवीतमन्त्रस्यऋषिच्छन्दआदिनावर्णनम्

इति यज्ञोपवीतस्येत्याहुः केचिन्महर्षयः।
अथाम्नायगतो मंत्राणां ऋषिच्छंदोऽधिदेवताः॥ १॥
विनियोगं क्रमेणैव प्रवक्ष्यामि पृथक् पृथक्।
प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा परमात्मा च देवता॥ २॥
छंदस्तु देवी गायत्री विनियोगः क्रियावशात्।
देवताजपकाले तु तेऽपिहोमे हुताशनः॥ ३॥
ध्यानकाले परं ब्रह्म विश्वेदेवास्तु देवताः।
भूतादीनां सप्तानां व्याहृतीनां यथाक्रमम्॥ ४॥
ऋषिच्छन्दो देवताश्च प्रवक्ष्यामि प्रयत्नतः।
अत्रिभृगुश्च कुत्सश्च वशिष्ठो गौतमस्तथा॥ ५॥

श्रौतः स्मार्तक्रियाः कुर्यान्नैवतत्फलभाग्
द्विजो नष्टोपवीतश्चेदुपवीतं परं द्विज
आचम्य सन्नियम्याऽथ मंत्रेणैव च धा
धारणात्प्राङ्निमज्ज्याः सु तूष्णींतसुरत
नवतं[illegible]त्वं सूत्रं प्रणवेनैव धारयेत् ।
उपवीती स भूत्वा च यत्नादाचम्य यथ
यज्ञोपवीतं विधिवत्कृत्वा दध्याद्विज
यथावदेवोक्तपक्षतिथ्याह्नःकालभूमिषु
कृत्वा यज्ञोपवीतानि धारणार्थं विनि
यथाद्विजन्मनः प्राप्त उपवीतस्य धारण
समं सर्वाश्रमस्थस्य तथैव तानि धारये
यज्ञोपवीतं ये दध्युर्मोहाच्छूद्रादयोन
ते पापिनः पतिष्यन्ति महानरकवा
तंतुना वाऽथवान्येन कृत्वा यज्ञोपवं
बिभर्त्ति शूद्रो यदि यः सोऽपि यास्य
पादजात्यायज्ञसूत्रं मनुजा दधते ह्य
तांश्च धृत्वाऽथ तत्रमंत्र्यं नृपतिर्हरेत
द्ध्वोपवीतं दृष्ट्वाश्रुत्वाथ वा नृपः ॥
यदि तूष्णीं समासीत नरकान्धो
अतः सर्वप्रकारेण कुर्यात्तदनुशास
इहोपरि सुखं प्राप्य धर्मशास्त्रार्थं
विना यज्ञोपवीतं यो यत्नासीतथि

हिरण्यवर्णाइतिचतुर्णां मंत्राणां परमेष्ठीऋषिश्छंदः।
त्रिष्टुब्देवता स्यात् अपांसंप्रोक्षणे विधिः ॥१६॥
परमांशस्य मुनयो विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः।
प्रथमस्य द्वितीयस्य गायत्रं छंद उच्यते ॥१७॥
अनुष्टुप्च तृतीयश्च गायत्री चोपरि द्वया।
षष्टसप्तमयोस्त्रिष्टुब्गायत्री चाष्टमस्य तु ॥१८॥
नवमप्रभृत्यष्टानां अनुष्टुप्त्रिष्टुबंत्यकम्।
लिंगोक्तादेवताः प्रोक्ताः विनियोगस्तु मार्जने ॥१९॥
भूरग्निचादि सूक्तस्य प्रजापति ऋषिः स्मृतः।
स एव देवता छन्दो यजुरित्यभिधीयते ॥२०॥
आसत्यादीनां चतुर्णां हिरण्य स्तूपको ऋषिः।
त्रिष्टुब्अनुष्टब्गायत्री त्रिष्टुप्छंदांसि वै क्रमात् ॥२१॥
एषां समस्तमंत्राणां देवता तिग्मदीधितिः।
विनियोगश्चकथितः सूर्यसंदर्शकर्मणि ॥२२॥
वसिष्ठात्यंबकमनोः मुनिर्देवस्त्रियंबकः।
छंदोऽनुष्टुब्विनियोग उपवीताभिमंत्रणे ॥२३॥
उपवीतमनोर्ब्रह्म मुनिर्वेदाश्च देवताः।
छंदस्त्रिष्टुब्विनियोगः उपवीताभिमंत्रणं ॥२४॥
प्राणानांग्रंथिरसीत्यस्यब्रह्ममुनिर्यजुश्छंदः।
प्राणोब्रह्मयजुश्छंदइति स्मृतम् ॥२५॥
सविताचाश्विनीपूषा भवेयुरधिदेवताः।
उदुत्यंजातवेदस्य पूर्वमेवसमीरिताः ॥२६॥

ऋषिश्छंदो देवताश्च विनियोगमयात्र तु ।
आवहंतीत्यस्य ब्रह्मा ऋषिश्छंदोऽधि देवताः ॥२७॥
अनुष्टुप्छामहावंतो (?) च नियोगश्शास्त्रधारणे ।
प्रयोगकाले मंत्राणां ऋषिश्छंदोऽधिदेवताः ॥२८॥
विनियोगं च संस्मृत्वा नत्वा मंत्रानथोच्चरेत् ।
अज्ञात्वैतान्प्रयुङ्क्ते यः मंत्रास्तत्रक्रियासु च ॥२९॥
तस्यतत्तत्फलप्राप्तिर्द्विजस्य न भविष्यति ।
शास्त्रमेतच्चतुर्वर्गफलसाधनसाधकम् ॥३०॥
यावन्ति तस्य विप्रस्य नासाध्यमिहचोपरि ।
अध्यायोयोद्विजश्रेष्ठैः वाच्यःश्राव्यश्च सर्वदा ।
ब्राह्मण्यस्थापनार्थंच स्वाध्यायस्थापनाय च ॥३१॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ यज्ञोपवीतादिविधानंनाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

सप्रयोजनकुशलक्षणवर्णनम्

कुशस्य च पवित्रस्य लक्षणं तत्प्रयोजनं ।
सकलं कथ्यते स्पष्टं कर्मानुष्ठानहेतवे ॥ १ ॥
श्रुतिस्मृतिषु याः प्रोक्ताः नित्यनैमित्तिकाः क्रियाः ।
कुशैर्विना कृताः सर्वा निष्फलाःस्युर्द्विजन्मनाम ॥ २ ॥

तस्मात्समस्तकार्येषु मंत्रवत्सु द्विजोत्तमः ।
प्रयतश्च प्रसन्नात्मा कुशहस्तः समाचरेत् ॥ ३ ॥
पापाह्वयः कुशब्दः स्यात्स्यात्शब्दः शमनाह्वयः ।
तृणेन पापशमनं येनैतत्कुश उच्यते ॥ ४ ॥
कुशहस्तश्चरेत्स्नानं कुशहस्तः सदा जपेत् ।
जुहुयात्कुशहस्तश्च फलवाप्त्यभिलाषुकः ॥ ५ ॥
कुशस्य मूले मध्येऽग्रे ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
सदावसन्त्यतः श्रेष्ठः कुशः. सफलकर्मसु ॥ ६ ॥
नदीतीरेऽब्धितीरे तीर्थक्षेत्रे च कानने ।
जातः कुशः समस्तासु क्रियासु श्रेष्ठ उच्यते ॥ ७ ॥
तत्रापि च द्विजन्मादि द्विजात्यधनिसंभवः ।
तत्तज्जाति क्रियायोग्यः अलाभे चास्यभूभिजः ॥ ८ ॥
पाटलारुणपीताःस्युः विप्रराड्वैश्यभूमयः ।
कृष्णाशूद्रभूरन्याभूर्मुहुः संकराःस्मृताः ॥ ९ ॥
द्विजोवैश्योनृपश्शूद्रो इत्ययं स्याच्चतुर्विधः ।
गौरपीतारुणश्यामः सुमन्योविप्रेथा क्रमात् ॥१०॥
पुमांस्त्रीक्लीब इत्येवं तत्रापि त्रिविधाः स्मृताः ।
तत्तज्जातिक्रियास्वेव प्रयोक्तव्यः फलार्थिभिः ॥११॥
क्लीबेनापि प्रयोक्तव्यः स्त्रीपुंकर्मसु जातुचित् ।
स्त्रीपुंसावेव सर्वत्र प्रयोक्तव्या यतामतः ॥१२॥
समन्ताद्वृत्तरोमाधः पुरुषश्चन्दनः कशाः ।
समस्तकर्मसु श्रेष्ठः पुमान्योऽन्यो फलप्रदः ॥१३॥

ऋषिश्छंदो देवताश्च विनियोगमथात्र तु ।
आवहंतीत्यस्य ब्रह्मा ऋषिश्छंदोऽधि देवताः ॥२७॥
अनुष्टुप्छ्रामहावंती (?) च नियोगश्चास्त्रधारणे ।
प्रयोगकाले मंत्राणां ऋषिश्छंदोऽधिदेवताः ॥२८॥
विनियोगं च संस्मृत्य नत्वा मंत्रानथोच्चरेत् ।
अज्ञात्वैतान्प्रयुङ्क्ते यः मंत्रांस्तत्रक्रियासु च ॥२९॥
तस्यतत्तत्फलप्राप्तिर्द्विजस्य न भविष्यति ।
शास्त्रमेतच्चतुर्वर्गफलसाधनसाधकम् ॥३०॥
यावन्ति तस्य विप्रस्य नासाध्यमिहचोपरि ।
अध्यायोयोद्विजश्रेष्ठैः वाच्यःश्राव्यश्च सर्वदा ।
ब्राह्मण्यस्थापनार्थंच स्वाध्यायस्थापनाय च ॥३१॥
॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ यज्ञोपवीतादिविधानंनाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥

आचम्य सुमनाः सम्यक् प्राणायाममथाचरेत् (थाचरेत्)।
ततो निलविनं वायुं यमं वरुणमश्विनौ।
औषधीशं शचीनाथं विश्वेदेवान् सरस्वतीम् ॥२५॥

देवानृषीन्पितॄन् स्कंदं गुरून् गणपतिं ततः।
वसून्रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥२६॥
देवांश्च हृदये ध्यायन्नमस्कुर्यात्पृथक् पृथक्।
ततोदग्रेण पूर्वास्यः उदगास्योऽथ वा कुशान् ॥२७॥

मुष्टिमात्रोपरिष्टात्तु छिन्द्यात्प्रणवमुच्चरन्।
मितक्रियार्थे शिव्यर्थे आभिचारार्थकं तथा ॥२८॥
दक्षिणाभिमुखोऽपिप्राच्याप्राचीनावीतिको द्विजः।
भिमाधपूर्वं सालपत्रा कुशान्याद् द्विजसत्तमः ॥२९॥

अन्यान् सलक्षणकुशान् संगृह्णीयात्प्रयत्नतः।
त्रिपृष्पुल्वं कुशैः कृत्वा मार्गं चोदगमवम ॥३०॥
पितरश्च च कुशानेतान्क्षिपेत्तमिदन्यथा पुरः।
पश्चात्पुलिन तेनैव दृढं पध्यान यथाक्रम ॥३१॥

मागमनुवगापं वा शुचौ देशे भिधंदृगृहे।
चिरधार्यमेवंपुल्वं विपरीतं पितरं च ॥३२॥

ततोऽनुपदनं रंतं कुशैः कर्माणि बुद्धिमान।
शास्त्रान्त्रस्यान्यानाचम्य ध्यात्वेवान्पृथक् पृथक् ॥३३॥

श्रौतस्मार्तानि कर्माणि कुर्वीत पवित्रमाचरेत्।
ग्रनाग्रुहृदरा इन्द्रिया ऋषिभिश्चजुत ॥३४॥

खरेण कुक्कुटेनैव स्पृष्टः कर्मसु यः कुशः ।
कपिनाकृतकृत्येन पतितेनान्त्यजातिना ॥३५॥
भिषजा रोगिणा स्पृष्टः कुशः कर्मस्वशोभनः ।
देवलेन च षण्ढेन व्रात्येन ज्ञानहानिना ॥३६॥
पाखण्डः पानकेन स्पृष्टः कुशोऽनुक्तेषु कर्मसु ।
रक्तश्लेष्मादिभिः स्पृष्टः क्रियागुप्तः पुरामतः ॥३७॥
उच्छिष्टजनसंस्पृष्टः कुशः कर्मविनाशकः ।
सूतिकाश्रयकार्येषु ज्ञातपूर्वाभिसारिका ॥३८॥
अन्याः सदोषास्ताभिः कुशाःस्पृष्टाः क्रियास्विह ।
दोषैरेवंविधैरन्यैरपि स्पृष्टः प्रमादतः ॥३९॥
कुशः कर्मस्वयोग्यःस्यादाघ्रातः पशुभिः स्मृतः ।
पिण्डकर्मणि ये युक्ताः कुशा ये पितृतर्पणे ॥४०॥
उच्छिष्टेऽपि च ये युक्ताः ते योग्या न हि कर्मसु ।
दोषानष्टान्कुशो त्यक्त्वा कुशांस्त्वेतैर्गुणैर्बुधः ॥४१॥
श्रुतिस्मृत्युक्त कर्माणि धारयेत्कर्मसिद्धये ।
कुशालाभेश्ववालोवा विश्वामित्रोऽभिचारिजः ॥४२॥
दूर्वा चैतेषु यो लब्धः तेन कर्म समाचरेत् ।
अत्रोक्त कुशमुख्यानां तृणानां स्युः पृथक् पृथक् ॥४३॥
नामान्यमूनि सर्वेषां देवोबर्हिः कुशास्मृतः ।
अतःश्रेष्ठतमं कर्म अन्यश्रेष्ठोऽपि वा कुशः ॥४४॥
विश्वामित्राश्च वालौ द्वौ तथाद्रविवरौ स्मृतौ ।
शावत् ॥४५॥

जलाशयेषुजननं यस्या सावश्ववाल्कः ।
श्रुतिस्मृतीनांमित्रत्वाद्विप्राणां विश्वकर्मणाम् ॥४६॥
विश्वांहसाममित्रत्वात् विश्वामित्रमिति स्मृतः ।
यो नित्यमोषदीप्येकोनृभिर्योज्योऽनुवासरम् ॥४७॥
जनेष्वयं प्रसिद्धत्वात्प्रोक्तं संयुक्तलक्षणम् ।
पलाशमल्पदीर्घं च संधिप्कं कुशसंभवम् ॥४८॥
कुशानालुलतारूपं यत्तदूर्ध्वेविभापितम् ।
दु स्वप्नवाची दुःशब्दः वा शब्दो नामसंज्ञकः ॥४९॥
दुःस्वप्ननाशकत्वेन यत्तदूर्वेति कीर्तिता ।
विधिना स्वीकृतान्दर्भान्द्विजमान्यान्द्विजन्मनः ॥५०॥
अनुष्ठानाय शौर्येण नाहरेज्जातुचिद्द्विजः ।
तदनुज्ञां विना विप्र कुशानाहृत्य वेर्यदि ॥५१॥
कुर्यात्स्वकर्मानुष्ठानं तत्सर्वमफलं भवेत् ।
प्रकुर्यात्तुत्रिभिर्दर्भैः पवित्रं चाथ पंचभिः ॥५२॥
द्वाभ्यां वा शान्तिकार्येषु सर्वकर्मसु शस्यते ।
शान्तिकं पौष्टिकं चावच्छुभं किमपि कर्म च ॥५३॥
शांतिकादीनि कर्माणि त्रीण्यमूनि विदुर्बुधाः ।
चतुर्भिराभिचारे च पितृकर्मसु पंचकः ॥५४॥
तत्तत्कर्मानुरूपेण समस्ताश्च क्रियाश्चरेत् ।
अत्रोक्तसङ्ख्या कुशांश्चादेकीकृत्य समं यथा ॥५५॥
मूलानि दक्षिणे हस्ते धृत्वाग्रमण्यन्यपाणिना ।
दक्षहस्तेनदर्भाग्र मनुसृत्य यथाग्रम् ॥५६॥

यदेतद्वर्तते हस्ते तत्पवित्रं मलं स्मृतम् ।
तस्मात्पवित्रो मंत्राभ्यां धारयेदभिमंत्र्य च ॥६८॥
पवित्रवन्त इत्यादि मंत्रद्वितयमस्य तु ।
ऋषिर्विज्ञानयोश्छन्दो जगती ब्रह्मणःस्पतिः ॥६९॥
देवताब्रह्मविष्ण्वीशाः अधिदेवा इति स्मृताः ।
प्रणवस्तस्य मंत्रस्य समव्याहृतयस्तु वा ॥७०॥
वृध्यात्पवित्रमनयोः एकेन श्रुतिवर्जिताः ।
पवित्रोक्तप्रकारेण होता कुर्यात्पवित्रकम् ॥७१॥
तद्धार्यममरैर्भूपैश्शुचये मंगलाय च ।
अस्मद्विधा यथापूर्वं आग्नेयं ब्राह्ममित्यथ ॥७२॥
पुनः पित्र्ये तथैवैतत्पवित्रद्वितयं स्मृतम् ।
स्नानसंध्योपरिष्टाच्च जपे होमे सुरार्चने ॥७३॥
स्वाध्याये भोजने विप्रः पवित्रं करयोर्न्यसेत ।
श्रौतस्मार्तानि कर्माणि यावन्तोहोदितानि वै ॥७४
तानि सर्वाणि कुर्वीत सपवित्रकरो द्विजः ।
पवित्रं द्वितयं दर्भान्कारयेद्धस्तयोर्द्वयोः ॥७५॥
धृत्वा सर्वाणि कृत्यानि शुचिर्मौनी समाचरेत् ।
कृतमेनोऽनुदिवसं वपुषा चेतसा गिरा ॥७६॥
हन्यात्पवित्रं हस्तार्धं सर्वं यत्तद्द्विजन्मनः ।
नित्यनैमित्तिके वाऽपि काम्योपक्रमणे कृतं ।
पवित्रं चापिकर्मान्ते ग्रन्थि मुक्त्वाऽथ तत्त्यजेत् ॥७७

कुशाहस्तः पिबेत्तोयं कुशाहस्तः सदाऽऽचमेत् ।
सग्रन्थिकुशहस्तेन न कदाचिदुपस्पृशेत् ॥७९॥
मुक्त्वा ग्रन्थिं विमुच्याऽथ तेन पीत्वा जलं सदा ।
तत्पवित्रं त्यजेद्भूमौ अथ मंत्रेण जातुचित् ॥७९॥
विस्मृत्य यदि पात्रं तु पवित्रं विसृजेद्यदि ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं (व्रतं) तत्किल्बिषविशुद्धये ॥८०॥
शवस्प्रसवं स्पृष्टौ चाण्डालात्यजभाषणे ।
पवित्रं करशाखस्थं दक्षिणश्रवणे न्यसेत् ॥८१॥
गोपुच्छरोमभिः कृत्वा पूर्वाभिहितलक्षणम् ।
पवित्रं धारयेद्विप्रः कर्णोपक्रमणेन वा ॥८२॥
आग्नेयं ब्राह्मभेदोऽस्ति पवित्रस्याऽस्ति पूर्ववत् ।
तस्मात्फलविशेषोऽस्ति तथैवाशेषकर्मसु ॥८३॥
रोम्णां पवित्रकरणे नियमो न कुशाग्विना ।
कुशरज्जोर्यथामूलप्रमाणं करयोस्तथा ॥८४॥
क्रमशश्चतुर्भिरंगुल्योः पवित्रे धारयेद्दिमे ।
शुचिकर्मणिनान्येषु द्विजन्माऽखिलकर्मसु ॥८५॥
कर्मांते पुनरादाय पवित्रद्वितयं द्विजः ।
शुचौ देशे विनिक्षिप्यारभ्यादेतत्पुनः पुनः ॥८६॥
यद्युच्छिष्टाद्युपहतं पवित्रं च्छेदितुं यदि ।
तदेवग्रन्थिमुत्सृज्य त्यजेदितरथा न हि ॥८७॥
रोमाणि, मध्यमं बध्वा सुदृढं च कुशैः सदा ।
होमांगुलीयकेनापि मार्जनं सर्वपापहम् ॥८८॥

ऐन्द्रांशद्वे विप्राः कुशानां द्विजसत्तमाः ।
पत्रशाखाग्रभागा अनुक्रमेणाहो यथाक्रमम् ॥८९॥
एतानाहरेत् सर्वान् प्रज्ञा कपिला गताम् ।
गर्वेषां विप्रमुख्यानां सौमांशत्वं श्रुतम् ॥९०॥
अनामाग्रं प्रोक्तौ तौ संग्राह्य(?)कार्मिका ।
नवगृहाणां श्रौतिकानाम् न शोभना ॥९१॥
समीपमेत्य कुशयोः शमनाय विमरा ।
गृह्य नवका सोऽस्य कुशमादाय शांवहि ॥९२॥
प्रागग्रा कुशद्वितीयान्यमानो(मौमी)? निधाय पूर्ववत् ।
अग्नि पर्यभिप्रोक्ष्य चैव प्रणवेन च ॥९३॥
एकमात्रमशुने कुशानामशुभस्तुते ।
मध्ये स्थाप्य तौ च(पा)त्वा(?)प्रोक्षई त्वं प्रागदिशे ॥९४॥
ऐन्द्रसानेन कृत्वा तौ कुशद्वयाभिप्रायाग्रतः ।
गान्धानि भेदयेद्विप्रः मध्यप्रभागपवित्रयोः ॥९५॥
संयुक्तग्रन्थियुक्ते पवित्रीकरणात्मकः ।
आत्मानं सन्निधौ यच्च कूर्चाय करणं प्रभः ॥९६॥
नवांगुलं पंचाधिक प्रमाणः स्मृतः ।
कूर्चं ग्रंथिमध्यमतः कनीयस इति स्मृतः ॥९७॥
ग्रंथिद्व्यंगुलो ग्रंथ तदूर्ध्वं चतुरंगुलम् ।
पोडशांगुलमायामं अग्रमात्रमकीर्तितम् ॥९८॥
पवित्रं प्राग्यथा प्रोक्ता ग्रन्थितेनक्रमेण ।
ग्रन्थि कृत्वा द्विजः कूर्चे तद्विदः स्यात्सवर्चवत् ॥९९॥

गान्धर्वेद्वयोः कूर्चं कर्मणोऽस्य विग्रहम् ।
ग्रन्थिकार्यविशेषोऽत्र कथितस्तस्य विग्रहात् ॥१००॥
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानामेवं कूर्चं उदाहृतः ।
अलाभे त्वस्य कूर्चस्य यथालब्धोऽपि वा भवेत् ॥१०१॥
द्वाभ्यां कुशाभ्यामथवा सपूर्वोदितलक्षणम् ।
कृत्वा कूर्चमलाभे तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१०२॥
कूर्चाद्रिमंथनाग्राणामिमास्तिस्रोऽर्थदेवताः ।
भवन्ति वसुधा ब्राह्मी सर्वतीर्थानि च क्रमात् ॥१०३॥
आसने देवतादीनां अपि च स्नानवारिणि ।
पंचगव्यप्रयोगे तु द्विजकूर्चं प्रयोजयेत् ॥१०४॥
अमृतेषु च गव्येषु पंचसु स्नानकर्मणि ।
पुण्याहकमतोयेषु द्विजः कूर्चं प्रयोजयेत् ॥१०५॥
ऊर्ध्वाग्रं स्थापयेत्कूर्चं गलत्या कलशेषु च ।
ततः संप्रोक्षणं कुर्यात्तदग्रेण द्विजोत्तमः ॥१०६॥
प्रागग्रमुदगग्रं वा स्थापयेत्कूर्चमासनम् ।
भूम्यर्थं देवतार्थं च पित्र्यर्थं दक्षिणाग्रकम् ॥१०७॥
कर्मान्ते ग्रन्थिमुत्सृज्य द्विजः कूर्चं परित्यजेत् ।
ग्रंथ्या सह न तु त्याज्यं उपवीतं कदाचन ॥१०८॥
पवित्रकूर्चयस्याग्रं संग्रंथ्यास्तु प्रमादतः ।
उपवासश्चरेदेकं उपवासक्रमं तथा ॥१०९॥
कूर्चप्रयोगो यथोक्तः तत्रैतत्कूर्चमग्रजः ।
अनारतं प्रयुंजीत स्वेष्टकर्मफलाप्तये ॥११०॥

विधानमेतत्तथाख्यातं कूर्चस्य सकलं क्रमात् ।
अनंतरं प्रवक्ष्यामि दर्भमालाकृतिक्रमम् ॥१११॥
त्रिभिश्चतुर्भिश्च कुशैः दीर्घैर्लक्षणसंयुतैः ।
कुर्वीत मालिकां विप्रो यथानयनवल्लभाम् ॥११२॥
उपर्यग्रमधोमूलं कृत्वा दर्भांस्तदग्रकैः ।
रज्जुकनिष्टिका'' प्रकुर्वीत यथारुचम् ॥११३॥
कुशानामंतरं तेषां व्यस्तामास्थानमागतम् ।
उत्तमं त्र्यंगुलं मध्यं अधमं द्व्यंगुलं क्रमात् ॥११४॥
शुल्वस्याथ कुशायामा पंचशाखा प्रमाणकम् ।
एवं सम्यक्कृतायास्ता कुशमालंतमाःस्मृताः ॥११५॥
यज्ञशालायुता वेषा प्रोक्तातद्द्वारदक्षिणे ।
जपहोमार्चनस्थानध्यानसंवरणेऽपि च ॥११६॥
तृतीयांगुलमुष्टीनां द्वयं वैकमथापि वा ।
आसनं ब्राह्मणस्य स्यादूर्ध्वाग्रं प्रकुर्वतः ॥११७॥
अष्टोत्तरशतं दर्भाः निर्दोषानिप्सरायवाः ।
सदृशं सर्वहोमेषु संमार्ग सर्वत्रैदिनाम् ॥११८॥
आरम्भब्राह्मनार्थं च संकल्पो(ईरपका)र्थकम् ।
प्रोक्षणि पूर्णपात्रार्थं आज्यसंस्करणार्थकम् ॥११९॥
पात्रं सम्मार्जनार्थं च सम्परिस्तरणार्थकम् ।
संस्कारार्थममी दर्भाः प्रयोक्तव्या यथाक्रमम् ॥१२०॥
देव्याः कुशास्त्वनुरपरमालनि निर्वृताः ।
यत्रोक्तं वैदिकं कर्म कुशास्तत्र प्रकीर्तिताः ॥१२१॥

अतोऽब्रुवन्मुनयो लोकान्कुशेन मकलान्सुरान् ।
सामर्थ्यं चाभवत्तेषां अतोऽनेन कुशः स्मृतः ॥१२२॥

राजानेनकुशस्मृतः ।
यथेन्द्रस्याशनिर्हस्ते यथाशूलं कपर्दिनः ।
यथासुदर्शनं विष्णोः विप्रहस्तकुशास्तथा ॥१२३॥

वरुणस्य करे पाशः यथा दंडो यमस्य तु ।
तथा ब्राह्मणहस्तस्थः सकलं साधयेत्कुशः ॥१२४॥

विधिनाऽथकृतोदर्भैः सर्वकर्मफलप्रदः ।
विधिनाऽथ गृहीत्वाऽथ (साधयेत्सकलां?) विधिम् ॥१२५

विनागृहीतोयः प्रयुक्तस्तृणवद्भवेत् (तृणवच्चक्रमेत्सदा) ।
तस्माच्छास्त्रं परिज्ञाय शास्त्रोक्तविधिना द्विजः ॥१२६॥

कुशान्संगृह्य कर्माणि समस्तानि समाचरेत् ।
देवब्राह्मणकार्येषु भक्षयेद्वृषलः खलु ॥१२७॥

सुवर्णांगुलिकं कृत्वा तत्तत्कर्म समाचरेत् ।
दध्यात्पवित्रं वृषलः कर्मानुष्ठानवर्जितः ॥१२८॥

यच्छिद्रं नरके घोरे पतत्यत्र न संशयः ।
कस्मिन्नहनि वा शूद्रो पवित्रं धारयेद्यदि ॥१२९॥

न यच्यते(नच्छ्यतो,महाघोरैः सुचिरं नरकाग्निभिः ।
शूद्रः पवित्रमज्ञाना(दुदुर्द्धपा) विधारयेत् ॥१३०॥

स पापात्मा महाघोरे चिरं तिष्ठति दुर्गतौ ।

तस्मात्पवित्रं सततं द्विजैर्वेदपरायणैः ।
कर्मानुष्ठाननिरतैः धार्यनेतरजातिभिः ॥१३१॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ कुशविधानं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथ उनविंशोऽध्यायः

व्याहृतिकल्पवर्णनम्

अथ कल्पं प्रवक्ष्यामि व्याहृतीनां यथातथम् ।
द्विजानां सर्वशास्त्राणां कल्पानां महराःस्मृतः ॥ १ ॥
भूरितिव्याहृतिः पूर्वा द्वितीयेति भुव स्मृता ।
सुवस्तृतीयःतियाचमहः चतुर्थीः पंचमीजनः ॥ २ ॥
तत्पष्ठी सप्तमी च सम्यगेवं समीरिताः ।
एता महाव्याहृतयः सर्वदेह स्थिता द्विजाः ॥ ३ ॥
अनुसतमपूर्वा.सु. निम्नो व्याहृतय.क्रमात् ।
एवं महाव्याहृतयो द्विधा व्याहृतयस्तथा ॥ ४ ॥
अहं(एवं)? क्रमेण वक्ष्यामि मुनिच्छन्दोऽधिदेवताः ।
वर्णांस्थानस्वरूपाणि विनियोगं निजासनम् ॥ ५ ॥

पंचशाखं शरीराणां विन्यासत्रितयं तथा ।
जपे होमे क्रमं चैव पुरश्चरणसत्क्रमम् ॥ ६ ॥
काम्यहोमफलावाप्तिमन्यद्द्रव्यफलं च यत् ।
तदशेषं यथास्पष्टं भवत्यत्यन्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥
ऋषिरासां समस्तानां व्याहृतीनां प्रजापतिः ।
कथ्यंते मुनयस्तासां व्याहृतीनां पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
अत्रिर्भृगुःकुत्ससशाद्वा(कश्यपश्च?) वाशिष्ठो गौतमस्तथा ।
काश्यपश्चांगिराश्चैते मुनयः क्रमशःस्मृताः ॥ ९ ॥
सप्तर्षयोऽथचैतासां सप्तानां स्युर्यथाक्रमात् ।
क्रमेणैते प्रवक्ष्यंते परिस्पष्टं यथाह्यधः ॥१०॥
विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथगौतमः ।
अत्रिर्वशिष्ठकश्यप इति सप्तसप्त(र्ष)यः स्मृताः ॥११॥
दिव्यचंदन लिप्तांगाः दिव्यैःपुष्पैरलंकृताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पंक्तिरेव च ॥१२॥
त्रिष्टुप्चजगती चैवस्युश्छन्दांसि यथाक्रमम् ।
अग्निर्वायुः महत्सूर्यो वागीशो वरुणो वृषा ॥१३॥
आसां यथाक्रमेणैव विश्वेदेवाश्च देवताः ।
दिव्यचंदनलिप्तांगाः दिव्यपुष्पैरलंकृताः ॥१४॥
नीतोपवीतहृदयः सपवित्रे चतुष्कलाः ।
अपिद्र(प्रीभ?) वदनाम्भोजाः प्रभामंडल संस्थिताः ॥१५॥
अभयाक्षस्रग्दधानाः परहंसमरोरुहाः ।
एवं होमेन प्रारंभे ध्येयामुख्ययो द्विजैः ॥१६॥

तत्तत्फलप्रसिद्ध्यर्थं अन्यथा तत्फलं न हि ।
तत्तत्कर्माभिधानार्थे विनियोगः उदाहृतः ॥१७॥
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं जपहोमौ प्रकुर्वतः ।
कुशेशयासनं वापि वीरासनमथापिवा ॥१८॥
अंगुष्ठाऽधिकनिष्ठान्तं उभयोर्हस्तयोः क्रमात् ।
भूरादिपंचपि(कं)? न्यस्यन्यसेदन्यद्विकं दले ॥१६॥
करन्यासक्रमोऽयंस्याद्देहन्यासोऽथ कथ्यते ।
पादजानूरुधोनाभिवक्षः करास्यमूर्धसु ॥२०॥
भूरादिसप्तकं न्यस्य प्रणवं चाऽथ विन्यसेत् ।
देहन्यासोऽयमाख्यातः त्वयमेवान्यथोच्यते ॥२१॥
भूरिति न्यस्य शिरसि भुवो बाहुद्वये न्यसेत् ।
सुवश्चरणयोर्न्यस्यमहर्वामकरे न्यसेत् ॥२२॥
वामस्कंधे जनं न्यस्य तपो हस्तेऽथ दक्षिणे ।
सत्यं च दक्षिणस्कंधे न्यसेत्पश्चाद्विचक्षणः ॥२३॥
देहन्यासकरं प्रोक्तं त्वंगन्यासोऽथ कथ्यते ।
हृदये भूर्भुवो मौली शिखायां सुपरित्यथ ॥२४॥
तपोमहर्वहिश्चाक्षोः जनस्तपश्चपार्श्वयोः ।
सत्यं दशककुम्स्वेवं षट्स्थानेषु क्रमान्न्यसेत् ॥२५॥
आद्यन्तयोर्व्याहृतीना सप्तानां प्रणवेन सह ।
गायत्री शिरसा योज्य जपेत्संध्यां जप क्रमात् ॥२६॥
एवं समाहितमनाः प्राणान् संयम्य वै तथा ।
त्रिवेदस्यनामास्यात्प्राणायामो जपस्य [illegible] ॥२७॥

सप्तैताव्याहृतीरेता केवला वा द्विजो जपेत् ।
जपक्रमोऽयमेवं स्यात्सर्वपापप्रणाशनः ॥२८॥
पूर्वंयत्प्राणसंरोधं कृत्वैवाभ्र द्विजो जपेत् ।
तस्य चाप्यभिधानं स्यात्प्राणायामो जपस्य ॥२९॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।
जपतः सर्वपापानि प्रणश्यन्ति न संशयः ॥३०॥
देवादिस्थापनाचांसु भवने वाऽघमर्षणे ।
तिस्रो व्याहृतयो मुख्याः इति प्रोक्ता महर्षिभिः ॥३१॥
व्यस्तं पूर्वं प्रयोक्तव्यं समस्तं तदनंतरम् ।
एवमासां प्रयोगोऽयं चतुर्धा समुदीरितः ॥३२॥
व्याहृतित्रितयं श्रेष्ठमंत्रेण सकलेष्वपि ।
भूर्भुवः सुवरिति वा तिस्रो व्याहृतय :स्मृताः ॥३३॥
चतुर्थं मह इत्येतद्ब्रह्म सर्वं उदाहृतः ।
भूम्यान्तरिक्षस्वर्काख्याश्चतस्रःस्युः क्रमा इमाः ॥३४॥
प्राणापानव्यानानि अर्कवाय्वग्निवारिजाः ।
ऋक्सामयजुर्ब्रह्माणि इत्येवं श्रुतिचोदनात् ॥३५॥
एताश्चतस्रो यो वेत्ति सकल्पं सरहस्यकम् ।
स हि वेत्ति परब्रह्म तदन्ते यात्यसंशयम् ॥३६॥
जपहोमार्चनारंभे स्मृत्वा वा मुनिपूर्वकान् ।
मृत्वा(मूलं) न्यासत्रयं कृत्वा तत्तत्कर्माणि कारयेत् ॥३७॥
अज्ञात्वैतानि होमानि कुर्युरुक्तक्रियां द्विजः ।
होमेन केवलैर्मंत्रैः निष्फलत्वं प्रयान्ति ताः ॥३८॥

व्याहृतीनामथैतस्मिन्पुरश्चर्याविधिं पुरः।
शक्त्यर्थमन्यथाशक्तिर्न पुरश्चरणं विना ॥३९॥

तस्मात्पुरश्चरेद्धीमान् अथ कर्म समाचरेत्।
कर्माणीष्टानि सिध्यंति सत्यं तस्याग्रजन्मनः ॥४०॥

त्रिस्नानं ब्रह्मचर्यं च वसुधाशयनं चरेत्।
जपेद्द्वादशसाहस्रं उपवासत्रयं द्विजः ॥४१॥

अथाकोपस्त्वहोरात्रं पोपोष्याभिहितं जपेत्।
अपुरश्चरणं ह्येतदिष्टानर्थान्यथाऽऽचरेत् ॥४२॥

ब्रह्मवर्चसकामश्चेत्सहस्रं ब्रह्मभूरुहाम्।
सर्पाक्षीरदध्यक्ताः समिधो जुहुयाद्भवेत् ॥४३॥

तेजस्कामस्तथाऽऽज्येन धान्यकामस्तु शालिभिः।
क्षीरेण पशुकामस्तु पुत्रकामो वदेन्धनैः ॥४४॥

शांतिकामःशमीकाष्ठैः अर्थकामोर्कतर्पणैः।
रक्षोविनाशनार्थीबल्वाजैरपिति वैरपि ॥४५॥

दुःस्वप्नशापनाशार्थी पापी सद्यो विनश्यति।
प्रक्षिप्याभिभ्रातृकामः पुत्रार्थी पिप्पलेन्धनैः ॥४६॥

अपामार्गैरैश्वर्यकामः श्रीकामी यः पलाशकैः।
सुधर्मा प्रियकामस्तु सर्वद्रव्याण्यनुक्रमात् ॥४७॥

सहस्रसंख्यया होमः तत्तद्दं प्रयच्छति।
तस्माद्विप्रपुरश्चर्यांसम्यग् कृत्वार्थंहावयेत् ॥४८॥

किमप्यसाध्यमेताभिः व्याहृतीभिर्न जातुचित् ।
तस्मादेताः समाश्रित्य साधयेत्सकलं द्विजः ॥४६॥

॥ इति श्रीभारद्वाजस्मृतौ व्याहृतिविधानं नाम
ऊनविंशोऽध्यायः ॥

❀ ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ❀

॥ शुभम्भवतु ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

ईश्वर का आदेश है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा हैं। ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग—जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो। (किसी की भी हिंसा मत करो। सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णरूपेण सहायक हैं)। किसी भी प्राणी की शक्ति (द्रव्य) हरण करने की मन में भावना भी न आने दो। यही कल्याण का मार्ग है।

वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च।
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद् द्विजः।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥

(लघुहारीत स्मृ०)

समाहित मन से शुद्ध देश में वेद का अभ्यास करे। उच्च भावों से धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन करे। स्मृति एवं श्रुतिहीन जो मनुष्य हैं उनका भोजन नित्यकर्म व्यवहार अपने तथा कुल के लिये हानिकारक है। अतः सर्वप्रयत्नपूर्वक धर्मशास्त्र को पढ़े। महर्षियों द्वारा रचित वेद, स्मृति एवं पुराणादि धर्मशास्त्र मानव मात्र के नेत्र (प्रकाश) हैं।

मानव मात्र से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि धर्मग्रन्थ अवश्य पढ़ें। महर्षि प्रणीत श्रुति स्मृति आदि का उच्च आदर्श रखते हुए प्राणीमात्र की भावना से मन भर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें। इसी में अपना कल्याण है।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

ब्राहन रो, }
कलकत्ता। }

भवदीय सेवक—
मनसुखराय मोर